

प्राचीन भारत का इतिहास



छात्र हित में निर्गत पूर्व प्रकाशन प्रति

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड़, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी-263139
फोन नं. 05946-261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स न. 05946-264232, ई-मेल info@uou.ac.in
<http://uou.ac.in>

अध्ययन बोर्ड समिति

डॉ. गिरिजा प्रसाद पाण्डे, प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर रविन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा, इग्नू, नई दिल्ली
डॉ.लाल बहादुर वर्मा, प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ.रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
डॉ. मदन मोहन जोशी, सहायक प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्यक्ष

सदस्य

सदस्य

सदस्य

सदस्य

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ. मदन मोहन जोशी, सहायक प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

ब्लॉक एक

मगध का उत्कर्ष, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महा., हल्द्वानी।

छठी सदी ईस्वी पूर्व के गणतन्त्र तथा उनकी प्रशासनिक प्रणाली, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी. स्नात. महा., हल्द्वानी।
चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महा., हल्द्वानी।

ब्लॉक दो

अशोक, शिखा पंवार, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जे.एन.यू.नई दिल्ली

मौर्य कालीन प्रशासन, स्थापत्य, कला एवं मौर्य साम्राज्य का पतन, शिखा पंवार, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जे.एन.यू.नई दिल्ली
इकाई तीन—संगमकालीन दक्षिण भारत तथा संगम साहित्य, डॉ. बदरे आरा, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

ब्लॉक तीन

इकाई एक—शुंग एवं कण्व वंश, डॉ. मोना राठौड़, इतिहास विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इकाई दो—आन्ध्र या सातवाहन वंश तथा दक्षिणापथ की राजनैतिक स्थिति डॉ. मोना राठौड़, इतिहास विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय,
इकाई तीन—पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप डॉ. बदरे आरा, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

ब्लॉक चार

इकाई एक—कुषाणों का उदय, डॉ. राजेश गर्ग इतिहास विभाग, डी.ए.वी. स्नातकात्तर महाविद्यालय, बुलंदशहर

इकाई दो—कनिष्क प्रथम एवं उसकी उपलब्धियां, सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय, हल्द्वानी।

इकाई तीन—कुषाण साम्राज्य का विस्तार, डॉ. तनवीर हुसैन, इतिहास विभाग, फैंज—ए—आम कालेज, शाहजहाँपुर

ब्लॉक पांच

इकाई एक—गुप्त वंश का उद्भव, प्रारम्भिक इतिहास एवं चन्द्रगुप्त प्रथम डा.ज्योति साह, इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय राजकीय स्नात.
महाविद्यालय, सीतापुर

इकाई दो—समुद्रगुप्त एवं उसकी उपलब्धियां डा.ज्योति साह, इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय राजकीय स्नात. महा, सीतापुर

इकाई तीन—चन्द्रगुप्त II एवं उसकी उपलब्धियां, डॉ. नूतन सिंह, इतिहास विभाग, वाई.डी. कालेज, लखीमपुर, उत्तर प्रदेश

ब्लॉक छह

इकाई एक—कुमार गुप्त प्रथम, स्कन्ध गुप्त उसकी उपलब्धियां, डॉ. संतोष कुमार, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय, हल्द्वानी।

इकाई दो—गुप्त प्रशासनिक व्यवस्था, डॉ. संतोष कुमार, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय, हल्द्वानी।

इकाई तीन—गुप्त साम्राज्य का पतन, डॉ. संतोष कुमार, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय, हल्द्वानी।

ब्लॉक सात

इकाई एक—वाकाटक एवं उनके गुप्त शासकों के साथ सम्बन्ध, डॉ. आनन्द शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर

इकाई दो—मौखरी राज्य, डॉ. आनन्द शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर

इकाई तीन—हर्ष कालीन भारत, डॉ. आनन्द शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर

प्रकाशन वर्ष: अगस्त, 2018

कापी राइट: / उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: कुलसचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड।

प्राचीन भारत का इतिहास

पृष्ठ संख्या

ब्लॉक एक

इकाई एक—	मगध का उत्कर्ष	01—14
इकाई दो—	छठी सदी ईस्वी पूर्व के गणतन्त्र तथा उनकी प्रशासनिक प्रणाली	15—26
इकाई तीन—	चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार	27—38

ब्लॉक दो

इकाई एक—	अशोक	39—51
इकाई दो—	मौर्य कालीन प्रशासन,स्थापत्य ,कला एवं मौर्य साम्राज्य का पतन	52—65
इकाई तीन—	संगमकालीन दक्षिण भारत तथा संगम साहित्य	66—75

ब्लॉक तीन

इकाई एक —	शुंग एवं कण्व वंश	76—85
इकाई दो—	आन्ध्र या सातवाहन वंश तथा दक्षिणापथ की राजनैतिक स्थिति	86—93
इकाई तीन—	पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप	94—102

ब्लॉक चार

इकाई एक—	कुषाणों का उदय	103—117
इकाई दो—	कनिष्क प्रथम एवं उसकी उपलब्धियां	118—126
इकाई तीन—	कुषाण साम्राज्य का विस्तार	127—138

ब्लॉक पांच

इकाई एक—	गुप्त वंश का उद्भव, प्रारम्भिक इतिहास एवं चन्द्रगुप्त प्रथम	139—144
इकाई दो —	समुद्रगुप्त एवं उसकी उपलब्धियां	145—151
इकाई तीन—	चन्द्रगुप्त II एवं उसकी उपलब्धियां	152—168

ब्लॉक छह

इकाई एक —	कुमार गुप्त प्रथम, स्कन्ध गुप्त उसकी उपलब्धियां	169—184
इकाई दो—	गुप्त प्रशासनिक व्यवस्था	185—196
इकाई तीन—	गुप्त साम्राज्य का पतन	197—210

ब्लॉक सात

इकाई एक —	वाकाटक एवं उनके गुप्त शासकों के साथ सम्बन्ध	211—227
इकाई दो —	मौखरी राज्य	228—238
इकाई तीन—	हर्ष कालीन भारत	239—251

- 1.2 प्रस्तावना
- 1.1 उद्देश्य
- 1.3 भौगोलिक स्थिति
- 1.4 खनिज पदार्थों की प्रचुरता
- 1.5 भौतिक समृद्धि
- 1.6 पाटलीपुत्र की सामरिक स्थिति
- 1.7 शहरों का उदय
- 1.8 सैन्य संगठन
- 1.9 मगध के शासकों का योगदान
- 1.10 मगध का प्राचीन इतिहास
- 1.11 मगध का स्वतंत्र वातावरण
- 1.12 मगध का प्रथम राजवंश—हर्यक या शिशुनाग वंश
- 1.13 बिम्बिसार
- 1.14 अजातशत्रु
- 1.15 उदायिन या उदयभद्र
- 1.16 उदायिन के उत्तराधिकारी तथा हर्यक कुल का अन्त
- 1.17 शिशुनाग
- 1.18 कालाशोक (काकवर्ण)
- 1.19 नन्द वंश
- 1.20 इक्ष्वांकु
 - 1.20.1 पांचाल
 - 1.20.2 काशेय
 - 1.20.3 हैहय
 - 1.20.4 कलिंग
 - 1.20.5 अश्मक
 - 1.20.6 कुरु
 - 1.20.7 मैथिल
 - 1.20.8 शूरसेन
 - 1.20.9 वीतिहोत्र
- 1.21 महापदमा नन्द के उत्तराधिकारी तथा नन्द सत्ता का विनाश
- 1.22 नन्द शासन का महत्व
- 1.23 सारांश
- 1.24 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 1.25 संदर्भ ग्रन्थ

1.2 प्रस्तावना

ई०पू० छठी सदी की एक प्रमुख विशेषता भारत की आर्थिक सम्पन्नता और अनेक नगरों का निर्माण भी था। मगध कोशल अवन्ति व वत्स चार प्रमुख राज्य थे। इसके अतिरिक्त अनेक गणराज्य भी थे, पर इन सब में मगध का इतिहास बड़ा ही रोचक है। सोलह महाजनपदों में से

यही राज्य ऐसा था जिसके राजनीतिक प्रभुत्व का लगातार विकास होता चला गया और देखते ही देखते मगध के इस छोटे राज्य ने एक साम्राज्य का कारूप धारण कर लिया। मौर्यों के काल में तो यह अपने शिखर तक पहुंच चुका था।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि—

- मगध का उत्कर्ष एवं उन्नति कैसे हुआ।
- मगध के उत्कर्ष में वहां कि भौगोलिक एवं प्राकृतिक सम्पदा का क्या योगदान रहा।
- मगध के उत्थान में हर्यक वंश, शिशुनाग वंश एवं नन्द वंश इत्यादि की क्या भूमिका रही।
- मगध के शासकों की नीतियाँ एवं कार्यशैली।
- मगध साम्राज्य के पतन के कारण।

मगध साम्राज्य की प्रगति के निम्न कारण थे—

1.3 भौगोलिक स्थिति

यह राज्य प्राकृतिक दृष्टि से काफी सुरक्षित था। इसकी पहली राजधानी गिरिव्रज या राजग्रह, चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी हुई थी। अतः इन पर आसानी से दुश्मनों का आक्रमण नहीं हो सकता था। बाद की राजधानी पाटलीपुत्र गंगा और सोन नदियों के संगम पर बसा हुआ था तथा इसके इर्दगिर्द अन्य नदियाँ भी थी। अतः इसे बाहरी आक्रमण का खतरा नहीं रहता था। इस प्रकार दुश्मनों के आक्रमण की चिन्ता से मुक्त होकर मगधवासी अपने विकास एवं प्रसार का निरन्तर प्रयास करते रहे।

1.4 खनिज पदार्थों की प्रचुरता

मगध में खनिज पदार्थों की प्रचुरता थी। यहां लोहा मिलता था, जिससे शुद्ध हथियार बनाए जाते थे, यह सुविधा अन्य राज्यों को प्राप्त नहीं थी। लोहे की खाने पूर्वी मध्य प्रदेश में भी थी जो अवन्ति की राजधानी उज्जैन के निकट थी। यही कारण था कि उत्तरी भारत में अपनी सर्वोच्चता कायम करने के लिए मगध को अवन्ति के साथ दीर्घ कालीन संघर्ष करना पड़ा। उज्जैन को अपने अधीन लाने में मगध को लगभग सौ वर्ष लग गये।

1.5 भौतिक समृद्धि

यहां की भूमि अत्यन्त उर्वरा थी तथा उद्योग धन्धे विकसित थे। साम्राज्य आर्थिक दृष्टिकोण से काफी सम्पन्न था। राजाओं ने इस भौतिक सम्पन्नता का लाभ उठाया। वे कृषकों और व्यापारियों से कर वसूलने लगे जिसका उपयोग विशाल सेना खड़ी करने में किया गया।

1.6 पाटलीपुत्र की सामरिक स्थिति

पाँचवी शताब्दी में मगध की राजधानी पाटलीपुत्र थी। यह गंगा, गंडक और सोन के संगम पर बसी हुई थी। इससे इसका सामरिक महत्व काफी था। इसके पश्चिम में सोन, उत्तर

में गंगा तथा पूर्व और दक्षिण में पुनपुन नदियाँ बहती थी। अतः पाटलीपुत्र पानी की नाव की तरह था और इस पर कब्जा करना कठिन था।

1.7 शहरों का उदय

मगध के राजाओं ने शहरों के उदय और सिक्कों के प्रचलन का भी लाभ उठाया। उत्तर-पूर्व भारत में व्यापार-व्यवसाय के कारण नए-नए शहरों का उदय हुआ। वहाँ व्यापारी कई विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए थे। उनसे चुंगी, तटकर शुल्क आदि लिए जाते थे। राजा इनका उपयोग सैन्य संगठन में करता था।

1.8 सैन्य संगठन

सैन्य संगठन में मगध को विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी। भारतीय राज्यों को अश्व और रथ के उपयोग की जानकारी थी। मगध साम्राज्य की सेना एक प्रमुख अंग हस्ति सेना थी। अपने पड़ोसियों के साथ लड़ने में मगध साम्राज्य ने ही पहले-पहल बड़े पैमाने पर हाथियों का प्रयोग किया। मगध के पूर्वी भाग से हाथी की आपूर्ति होती थी। यूनानी स्रोतों के आधार पर हम जानते हैं कि नन्द की सेना में 6 हजार हाथी थे। दुर्गो या किलो को ध्वस्त करने में हाथी बड़े उपयोगी थे। दलदल भूमि या दुर्गम स्थानों में भी हाथी की सवारी सम्भव थी।

1.9 मगध के शासकों का योगदान

मगध के उत्थान में वहाँ के शासकों की भी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मगध में एक के बाद एक अनेक ऐसे शक्तिशाली शासक हुए जिन्होंने सैन्यबल और कूटनीति के आधार पर मगध की सीमा का विस्तार किया। मगध साम्राज्य की नींव बिम्बिसार और अजातशत्रु जैसे महान सेनानायकों और नीतिनिपुण शासकों ने डाली। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन शासकों ने उचित-अनुचित प्रत्येक प्रकार का मार्ग अपनाया। बाद में शिशुनाग और महापद्मानन्द जैसे प्रतापी शासकों ने भी मगध की सीमा का विस्तार किया।

1.10 मगध का प्राचीन इतिहास

हर्यक वंश के पहले मगध का इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं है। मगध का उल्लेख पहली बार अथर्ववेद में मिलता है। ऋग्वेद में यद्यपि मगध का उल्लेख नहीं मिलता तथापि कोकट (किराट) नामक जाति और इसके शासक प्रेमचन्द्र का उल्लेख मिलता है। इसकी पहचान मगध से की जाती है। मगध और व्रात्यों का उल्लेख वैदिक साहित्य में उपेक्षा और अवहेलना की दृष्टि से किया गया है। अथर्व संहिता के व्रात्य भाग में ब्राह्मण सीमा के बाहर रहने वाले व्रात्य को पुंश्चली या वेश्या और मगध से सम्बन्ध कहा गया है। वेदों में मगध के ब्राह्मणों को निम्न श्रेणी का माना गया है क्योंकि उनके संस्कार ब्राह्मण विधियों के अनुसार नहीं हुए थे, वैदिक साहित्य से मगध की इतिहास की स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। इसमें प्रमगन्द के अतिरिक्त मगध के अन्य किसी शासक का उल्लेख नहीं हुआ है। मगध के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा महाभारत तथा पुराणों में मिलती है। इन ग्रन्थों के मुताबिक मगध के सबसे प्राचीन राजवंश का संस्थापक बृहद्रथ था। वह जरासंध का पिता एवं वसु वैश्य-उपरिचर का पुत्र था।

मगध की आरम्भिक राजधानी वसुमती या गिरिव्रज की स्थापना का श्रेय वसु को ही दिया जाता था। बृहद्रथ का पुत्र जरासंध एक पराक्रमी शासक था, जिसने अनेक राजाओं को पराजित किया। अन्ततोगत्वा उसे श्रीकृष्ण के हाथों पराजित होकर मरना पड़ा।

1.11 मगध का स्वतंत्र वातावरण

मगध का वातावरण अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र था। चूंकि इसे अनार्यों का देश माना जाता था। इसलिए यहां ब्रह्मण व्यवस्था का कट्टरपन नहीं था। अनार्य तत्वों की बहुलता के कारण आर्यों का प्रभाव यहां कम था। यहां के लोगों में प्रसार की प्रवृत्ति और उत्साह उन राज्यों की अपेक्षा अधिक थी। जो बहुत दिनों से आर्यों के प्रभाव में थे। इन बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों का एक परिणाम विभिन्न प्रादेशिक और लोकप्रिय भाषाओं का विकास भी था। संस्कृति उस समय तक श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों और पुरोहितों की भाषा बनकर रह गयी थी। इस कारण जन भाषाओं की आवश्यकता थी। इस कारण उस समय संस्कृत पर आधारित विभिन्न लोकप्रिय भाषाओं की उत्पत्ति हुई। संस्कृत का एक अधिक लोकप्रिय स्वरूप प्राकृत भाषा बनी। इसी कारण पाली और मगधी भाषा जिसमें महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश दिये, इस समय में विकसित और लोकप्रिय हुई। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव भारतीयों के धार्मिक विचारों पर आया। नवीन व्यापारी औद्योगिक मजदूर वर्ग तथा उपजातियों के निर्माण ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देने वाली परिस्थितियों का निर्माण किया। नवीन जैन और बौद्ध धर्मों की उत्पत्ति और विकास का एक कारण बदलती हुई सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ थी।

1.12 मगध का प्रथम राजवंश—हर्यक या शिशुनाग वंश

मगध साम्राज्य पर शासन करने वाले प्रथम राजवंश के विषय में पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में अलग-अलग विवरण मिलता है। पुराणों के अनुसार मगध पर सर्वप्रथम बृहद्रथ वंश का शासन था। इसी वंश का राजा जरासंध था। जिसने गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनाई थी। उसके बाद वहां प्रद्योत वंश का शासन स्थापित हुआ। प्रद्योत वंश का अन्त करके शिशुनाग ने अपने वंश की स्थापना की। शिशुनाग वंश के बाद नन्द वंश ने शासन किया।

1.13 बिम्बिसार

मगध साम्राज्य की महत्ता का वास्तविक संस्थापक राजा बिम्बिसार(544-492 ई0पू0) था। वह हर्यक कुल से सम्बन्धित था। हर्यक कुल के लोग नागवंश की एक उपशाखा थे। डी0आर0भण्डारकर का विचार है कि बिम्बिसार प्रारम्भ में लिच्छवियों का सेनापति था जो उस समय मगध में शासन करते थे। सुत्तनिपात में वैशाली को मगध पुरम कहा गया है। कालान्तर में वह मगध का स्वतंत्र शासक बन बैठा। परन्तु बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बिम्बिसार जब 15 वर्ष का था तभी उसके पिता ने उसे मगध का राजा बनाया था। दीपवंश में बिम्बिसार के पिता का नाम बोधिस मिलता है। जो राजगृह का शासक था। मत्स्य पुराण में उसका नाम क्षेत्रोजस दिया गया है। यह इस बात का सूचक है कि बिम्बिसार का पिता स्वयं राजा था। ऐसी स्थिति में उसका लिच्छवियों का सेनापति होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैन साहित्य में उसे श्रेविक कहा गया है। सम्भवतः यह उसका उपनाम था। जिस प्रकार अजातशत्रु का उपनाम कुणिक था।

बिम्बिसार एक महत्वकांक्षी शासक था। गद्दी पर बैठते ही उसने विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। वह एक कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी सम्राट था। सर्वप्रथम उसने अपने समय के प्रमुख राजवंशों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ किया। इन वैवाहिक सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पहले उसने लिच्छवि गणराज्य के शासक चेटक की पुत्री चेलना (छलना) के साथ विवाह कर मगध की उत्तरी सीमा को सुरक्षित किया। वैशाली व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र भी था। इसकी दक्षिणी सीमा से होकर गंगा

नदी बहती थी और उसके जरिये यह कुछ सीमा तक पूर्वी भारत के जलीय व्यापार को नियन्त्रित किये हुए था। इस वैवाहिक सम्बन्ध ने परोक्ष रूप से मगध के आर्थिक विकास में भी योगदान दिया। विनयपिटक के अनुसार लिच्छवि लोग रात को मगध की राजधानी पर उत्तर की ओर से आक्रमण करके लूट-पाट करते थे। इस वैवाहिक सम्बन्ध से वे शान्त हो गये। दूसरा प्रमुख वैवाहिक सम्बन्ध कोशल राज्य में स्थापित हुआ। उसने कोशल नरेश प्रसेनजित की बहन महाकोशला के साथ विवाह किया। इस विवाह के फलस्वरूप उसका न केवल कोशलनरेश के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ। अपितु दहेज में उसे एक लाख की वार्षिक आय का काशी का प्रान्त एवं उसके कुछ भाग भी प्राप्त हुए। इस सम्बन्ध में उसने मद्र देश (कुरन के समीप) वत्स की ओर से भी मगध को सुरक्षित बना दिया। क्योंकि कोशल तथा वत्स परस्पर मिले हुए थे। इसके बाद उसने मद्र देश की राजकुमारी क्षेमा के साथ अपना विवाह कर मद्रों का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त कर लिया। सम्भव है कुछ अन्य राजवंशों के साथ भी उसने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया हो क्योंकि महावंश में उनकी 500 रानियों का उल्लेख हुआ है।

अवन्ति के शक्तिशाली राजा प्रद्योत के साथ भी उसने मैत्री संबंध स्थापित किया। एक बार जब वह पाण्डु रोग से ग्रसित था तो बिम्बिसार ने अपने राजवैद्य जीवक को उसके इलाज के लिए भेजा। रोरुक (सिंध) के शासक रुद्रायन तथा गान्धार के पुक्कुसाति भी उसके मित्र थे। गन्धार नरेश ने उनके पास एक दूत भेजा था। इस प्रकार उसके कूटनीतिज्ञ तथा वैवाहिक सम्बन्धों ने उसके द्वारा प्रारम्भ की गयी आक्रमण नीति में पर्याप्त सहायता प्रदान किया होगा।

विवाहों तथा मैत्री सम्बन्धों द्वारा अपनी आन्तरिक स्थिति मजबूत कर लेने के बाद उसने अपना विजय कार्य प्रारम्भ किया। इस विजय की प्रक्रिया में उसने अपने पड़ोसी राज्य अंग को जीतकर मगध साम्राज्य में मिला लिया। बिम्बिसार के पहले से ही मगध तथा अंग के बीच शत्रुता चल रही थी। ज्ञात होता है कि एक बार अंग के शासक ब्रह्मदत्त ने बिम्बिसार के पिता को युद्ध में पराजित किया था। विधुर पण्डित जातक से पता चलता है कि मगध की राजधानी राजगृह पर अंग का अधिकार था। अतः बिम्बिसार जैसे महत्वाकांक्षी शासक के लिए अंग की विजय करना अनिवार्य था। उसने अंग के ऊपर आक्रमण किया। वहाँ का राजा ब्रह्मदत्त मारा गया तथा वहीं बिम्बिसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को उपराजा के पद पर नियुक्त किया। इस विजय से मगध के विजय तथा विस्तार का दौर प्रारम्भ हुआ। जो अशोक द्वारा कलिंग विजय के बाद तलवार रख देने के बाद समाप्त हुआ अंग के मगध में मिल जाने पर मगध की सीमा अत्यधिक विस्तृत हो गई और वह पूर्वी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया। मगध का लगभग सम्पूर्ण बिहार पर अधिकार हो गया। बुद्धघोस के अनुसार बिम्बिसार के साम्राज्य में 80 हजार गांव थे तथा उसका विस्तार लगभग 900 मील था। बिम्बिसार ने पहली बार मगध में व्यवस्थित शासन की नींव डाली। उसने सड़कों और नहरों का निर्माण कराया विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति की और नियमित रूप से लगान वसूल करने की व्यवस्था की जो उसकी आर्थिक और सैनिक शक्ति का आधार बना। बिम्बिसार के राज्य में 80,000 गांव बताये गये हैं और सभी सम्पन्न थे।

बिम्बिसार एक महान एवं योग्य शासक था। गांव का शासन ग्राम सभाएँ करती थी। उसने अपने साम्राज्य में एक संगठित एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था की नींव डाली। मगध शीघ्र ही एक समृद्धिशाली राज्य बन गया। बिम्बिसार शासन की विविध समस्याओं में व्यक्तिगत रुचि लेता था। महावंश जातक में कहा गया है कि उसकी राज्यसभा में 80 हजार ग्रामों के प्रतिनिधि भाग लेते थे। उसकी राजसभा तथा ग्रामिकों के कार्यों के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। बौद्ध साहित्य में उसके कुछ पदाधिकारियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं। सब्बतथक महामात्त,

बोहारिक महामात्त, सेनानायक महामात्त। इसके प्रथम सामान्य प्रशासन का दूसरा न्यायिक अधिकारी तथा तीसरा सेना का प्रधान अधिकारी होता था।

प्रान्तों में राजकुमार वाइसराय अर्थात् उपराजा के पद पर नियुक्त किये जाते थे। बिम्बिसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को चम्पा का उपराजा बनाया था। वह अपने उत्तराधिकारियों तथा कर्मचारियों को उनके गुण-दोषों के आधार पर पुरस्कृत अथवा दण्डित किया करता था। वह एक निर्माता भी था और परम्परा के अनुसार उसने राजगृह नामक नवीन नगर की स्थापना करवाई थी। बिम्बिसार महात्मा बुद्ध का मित्र एवं संरक्षक था। विनय पिटक से ज्ञात होता है कि बुद्ध से मिलने के बाद उसे बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया तथा वेलुवन नामक उद्यान बुद्ध तथा संघ के मिमित्त प्रदान कर दिया। किन्तु वह जैन तथा ब्राह्मण धर्मों के प्रति भी सहिष्णु बना रहा। जैन ग्रन्थ भी उसे अपने मत का पोषक मानते हैं। दीर्घनिकाय से पता चलता है कि बिम्बिसार ने चम्पा के प्रसिद्ध ब्राह्मण सोनदण्ड को वहां की सम्पूर्ण आमदनी दान में दे दी थी।

1.14 अजातशत्रु

बिम्बिसार के पश्चात् उसका पुत्र "कुणिक" अथवा अजातशत्रु लगभग 492-460ई0पू0 मगध का शासक हुआ। वह अपने पिता के ही समान साम्राज्यवादी था। इसके समय में कोशल से मगध का संघर्ष छिड़ गया। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि बिम्बिसार की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी कोशला देवी की भी दुख से मृत्यु हो गयी। प्रसेनजित इस घटना से बड़ा क्रुद्ध हुआ तथा उसने काशी पर पुनः अपना अधिकार कर लिया। यही कोशल तथा मगध के बीच संघर्ष का कारण सिद्ध हुआ। संयुक्त निकाय में इस दीर्घकालीन संघर्ष का विवरण मिलता है।

पहले युद्ध में प्रसेनजित पराजित हुआ तथा उसने भाग कर श्रावस्ती में शरण ली। किन्तु दूसरी बार अजातशत्रु पराजित हुआ तथा बन्दी बना लिया गया। बाद में दोनों नरेशों के बीच सन्धि हो गई तथा प्रसेनजित ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया तथा पुनः काशी के ऊपर उसका अधिकार स्वीकर कर लिया। ऐसा लगता है कि अजातशत्रु के समय में काशी का प्रान्त अन्तिम रूप से मगध में मिला लिया गया। कोशल से निपटने के बाद अजातशत्रु ने वज्जि संघ की ओर ध्यान दिया। वैशाली, वज्जि संघ का प्रमुख केन्द्र था। जहां के शासक लिच्छवि थे। बिम्बिसार के ही समय से वज्जि संघ तथा मगध में मनमुटाव चल रहा था। जो अजातशत्रु के समय में संघर्ष में बदल गया। इस संघर्ष के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी बताये जाते हैं।

सुमंगल विलासिनी से पता चलता है कि गंगा नदी के किनारे एक रत्नों की खान थी। वज्जि तथा मगध दोनों ने इसके बराबर-बराबर भाग लेने के लिए समझौता किया था। वज्जियों ने इस समझौते का उल्लंघन करके सम्पूर्ण खान पर अधिकार कर लिया। यही मगध के साथ युद्ध का कारण बना।

जैन ग्रन्थ इस कारण यह बताते हैं कि बिम्बिसार ने लिच्छवि राजकुमारी चेलना से उत्पन्न अपने दो पुत्रों हल्ल और बेहल्ल को अपनी हाथी सेशनाग तथा रत्नों का एक हार दिया था। अजातशत्रु ने बिम्बिसार की हत्या कर सिंहासन ग्रहण कर लेने के बाद इन वस्तुओं की मांग की। इस पर हल्ल तथा बेहल्ल अपने नाना चेटक के पास भाग गये। अजातशत्रु ने लिच्छवि सरदार से अपने सौतेले भाईयों को वापस देने को कहा। जिसे चेटक ने अस्वीकार कर दिया। इसी पर अजातशत्रु ने लिच्छवियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

इन दोनों कारणों में से पहला अधिक तर्क संगत जान पड़ता है। वस्तुतः मगध तथा वज्जि संघ के बीच संघर्ष के बीच संघर्ष गंगा नदी के ऊपर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए ही हुआ था। क्योंकि यह नदी पूर्वी उत्तर भारत में व्यापार का प्रमुख माध्यम थी।

लिच्छिवियों की शक्ति और प्रतिष्ठा काफी बढ़ी हुई थी तथा उन्हें परास्त कर सकना सरल नहीं था। जैन ग्रन्थ निरयावलि सूत्र से पता चलता है कि उस समय चेटक लिच्छिवि गण का प्रधान था। उसने 9 लिच्छिवियों 9 मल्लों तथा काशी कोशल के 18 गणराज्यों की एकत्र कर मगध नरेश के विरुद्ध एक सम्मिलित मोर्चा तैयार किया। भगवती सूत्र में अजातशत्रु को इन सबका विजेता कहा गया है। रायचौधरी का विचार है कि कोशल तथा वज्जि संघ के साथ संघर्ष पृथक-पृथक घटनायें नहीं थी। अपितु वे मगध साम्राज्य की प्रभुसत्ता के विरुद्ध लड़े जाने वाले समान युद्ध का ही अंग थी। अजातशत्रु ने कूटनीति से काम लिया। वज्जियों के सम्भावित आक्रमण से अपने राज्य की सुरक्षा के लिए सर्वप्रथम पाटलिग्राम में उसे एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया।

तत्पश्चात् अपने-अपने मंत्री वत्सकार को भेजकर वज्जि संघ में फूट डलवा दी। ज्ञात होता है कि इस सम्बन्ध में अजातशत्रु ने महात्मा बुद्ध से परामर्श किया तथा उन्होंने ही उसे यह बताया कि वज्जि संघ का विनाश भेद द्वारा ही संभव है। वत्सकार ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक इस कार्य को पूरा किया तथा वज्जियों को परस्पर लड़ा दिया। फलतः वे असंगठित रूप से अजातशत्रु का सामना नहीं कर सके। अजातशत्रु ने एक बड़ी सेना के साथ लिच्छिवियों पर आक्रमण किया। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि इस युद्ध में उसने प्रथम बार रथमूसल तथा महाशिला कण्टक जैसे दो गुप्त हथियारों का प्रयोग किया। प्रथम आधुनिक टैंको के प्रकार का कोई अस्त्र था। जिसमें भारी संख्या में मनुष्य मारे जा सकते थे तथा दूसरा मारी पत्थरों की मार करने वाले शिला प्रक्षेपास्त्र था।

इससे ऐसा लगता है कि युद्ध बड़ा भयानक हुआ, जिसमें लिच्छिवी बुरी तरह पराजित हुए तथा उनका भीषण संहार किया गया। उनका भू-भाग मगध साम्राज्य में मिला लिया गया। अब मगध राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक पहुँच गयी। वज्जि संघ को पराजित करने के बाद अजातशत्रु ने मल्ल संघ को भी पराजित किया तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक बड़े भूभाग पर उसका अबिधकार हो गया। इन सफलताओं के फलस्वरूप मगध साम्राज्य की सीमा पर्याप्त विस्तृत हो गई। अब मगध का प्रतिद्वन्दी केवल अवन्ति का राज्य था। मज्झिम निकाय से पता चलता है कि प्रद्योत के आक्रमण से अपनी राजधानी राजगृह को सुरक्षित रखने के लिये अजातशत्रु ने उसका दुर्गीकरण करवाया। जिस समय अजातशत्रु कोशल के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था उसी समय प्रद्योत मगध पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। किन्तु अजातशत्रु तथा प्रद्योत के बीच प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं हो सका। इसका कारण संभवतः यह था कि दोनों एक दूसरे की शक्ति से डरते थे। भास के अनुसार अजातशत्रु की कन्या पद्मावती का विवाह वत्सराज उदयन के साथ हुआ था।

इस वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अजातशत्रु ने वत्स को अपना मित्र बना लिया तथा अब उदयन मगध के विरुद्ध प्रद्योत की सहायता नहीं कर सकता था। ऐसा लगता है कि अब उदयन दोनों राज्यों अवन्ति तथा मगध के बीच सुलहकार बन गया। अजातशत्रु की धार्मिक नीति उदार थी। बौद्ध तथा जैन दोनों ही ग्रन्थ उसे अपने-अपने मत का अनुयायी मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले वह जैन धर्म से प्रभावित था परन्तु बाद में बौद्ध हो गया। भरहूत स्तूप की एक वेदिका के ऊपर अजातशत्रु भगवान बुद्ध की वन्दना करता है। (अजातशत्रु भगवतों बन्दते) उत्कीर्ण मिलता है। जो उसके बौद्ध होने का पुरातात्विक प्रमाण है उसके

शासनकाल के आठवें वर्ष में बुद्ध को महापरिनिर्माण प्राप्त हुआ था। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके अवशेषों पर उसने राजगृह में स्तूप का निर्माण करवाया था। उसके शासन काल में राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया। इस संगीति में बुद्ध की शिक्षाओं को दो पिटकों सुत्तपिटक तथा विनय पिटक में विभाजित किया गया। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार लगभग 32 वर्षों तक शासन करने के बाद अजातशत्रु अपने पुत्र उदायिन द्वारा मार डाला गया।

1.15 उदायिन या उदयभद्र

अजातशत्रु के बाद उसका पुत्र उदायिन या उदयभद्र मगध का राजा हुआ। जैन ग्रन्थों में उसकी माता का नाम पदमावती मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में उसे पितृहन्ता कहा गया है। परन्तु जैन ग्रन्थों का साक्ष्य इसके विपरीत है। परिशिष्टपर्वन के अनुसार वह पितृ भक्त था। वह अपने पिता के शासनकाल में चम्पा का उपराजा था। पिता की मृत्यु से उसे बड़ा दुख हुआ तथा उसे कुलीनों और अमात्यों ने राजा बनाया। उदायिन के शासनकाल की सर्वप्रमुख घटना गंगा और सोन नदियों के संगम पर पाटलिपुत्र नामक नगर की स्थापना की है। उसने राजगृह से इसी स्थान पर अपनी राजधानी स्थानान्तरित की। चूंकि अजातशत्रु की विजयों के फलस्वरूप मगध साम्राज्य की उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक पहुंच गयी थी। अतः पाटलिपुत्र राजगृह की अपेक्षा अधिक उपयुक्त राजधानी थी।

यहां से वज्जियों के ऊपर भी दृष्टि रखी जा सकती थी तथा व्यापार व्यवसाय की दृष्टि से भी यह नगर गंगा और सोन नदियों के संगम पर स्थित होने के कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण था। बिम्बिसार के ही समय से अवन्ति का राज्य मगध का प्रतिद्वन्दी था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उदायिन के समय में भी मगध एवं अवन्ति के बीच निर्णायक युद्ध नहीं हो सका। उदायिन जैन मतानुयायी था। इसी कारण जैन ग्रन्थ उसकी प्रशंसा करते हैं। आवश्यक सूत्र से पता चलता है कि अपनी राजधानी के मध्य उसने एक जैन चैत्यगृह का निर्माण कराया था। वह नियमित रूप से व्रत करता था आचार्यों के उपदेश सुनता था। एक दिन जब वह किसी गुरु से उपदेश सुन रहा था। एक व्यक्ति ने छुरा भोंककर उसकी हत्या कर दी। यह हत्यारा अवन्ति नरेश पालक द्वारा नियुक्त कोई गुप्तचर था।

1.16 उदायिन के उत्तराधिकारी तथा हर्यक कुल का अन्त

बौद्ध ग्रन्थों में उदायिन के तीन पुत्रों का उल्लेख है— (1) अनिरुद्ध (2) मुंडक (3) नागदशक। इन तीनों को पितृहन्ता कहा गया है, जिन्होंने बारी-बारी से राज्य किया। अन्तिम राजा नागदशक कुछ प्रसिद्ध था। पुराण में उसे (दर्शक) कहा गया है। ये तीनों शासक अत्यन्त निर्बल एवं विलासी थे। अतः शासन तन्त्र शिथिल पड़ गया। चारों और षडयन्त्र और हत्याये होने लगी। फलस्वरूप जनता में व्यापक असन्तोष छा गया। इनके शासन के विरुद्ध विद्रोह हुआ तथा जनता ने इन पितृहन्ताओं को सिंहासन से उतार कर शिशुनाग नामक एक योग्य अमात्य को राजा बनाया। शिशुनाग के राज्यारोहण से मगध में जिस नवीन वंश की स्थापना हुई वह शैशुनाग वंश के नाम से प्रसिद्ध है। उदायिन के उत्तराधिकारियों ने लगभग 412 ई0पूर्व तक राज्य किया।

1.17 शिशुनाग

शिशुनाग भी नाग वंश से ही सम्बन्धित था। महावंश टीका में उसे एक लिच्छवि राजा की वेश्या पत्नी में उत्पन्न कहा गया है। पुराण उसे क्षत्रिय कहते हैं पुराणों का कथन अधिक

सही लगता है क्योंकि यदि वह वेश्या की सन्तान होता तो रुढ़िवादी ब्राह्मण उसे कभी भी राजा स्वीकार न करते तथा उसकी निन्दा भी करते। पुराणों के विवरण से ज्ञात होता है कि पांच प्रद्योत पुत्र 138 वर्षों तक शासन करेंगे। उन सब को मारकर शिशुनाग राजा होगा। अपने पुत्र को वाराणसी का राजा बनाकर वह गिरिव्रज को प्रस्थान करेगा। इससे स्पष्ट है कि शिशुनाग ने अवन्ति राज्य को जीतकर मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। सुधाकर चट्टोपाध्याय की धारणा है कि शिशुनाग अन्तिम हर्यक शासक नागदशक का प्रधान सेनापति था और इस प्रकार उसका सेना के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण था। उसने अवन्ति के ऊपर आक्रमण नागदशक के शासन काल में ही किया होगा तथा इसी के तत्काल बाद नागदशक को पदच्युत कर जनता ने उसे मगध का राज सिंहासन सौंप दिया होगा।

अवन्ति राज्य की विजय एक महान सफलता थी। इससे मगध साम्राज्य की पश्चिमी सीमा मालवा तक जा पहुंची। इस विजय से शिशुनाग का वत्स के ऊपर भी अधिकार हो गया क्योंकि यह अवन्ति के अधीन था। आर्थिक दृष्टि से भी अवन्ति की विजय लाभदायक सिद्ध हुई। पाटलिपुत्र से एक व्यापारिक मार्ग वत्स तथा अवन्ति होते हुए भड़ौच तक जाता था। वत्स तथा अवन्ति पर अधिकार होते हुए भड़ौच तक जाता था। वत्स तथा अवन्ति पर अधिकार हो जाने से पाटलिपुत्र को पश्चिमी विश्व के साथ व्यापार वाणिज्य के लिए एक नया मार्ग प्राप्त हो गया। इस प्रकार शिशुनाग की विजयों के फलस्वरूप मगध का राज्य एक विशाल साम्राज्य में बदल गया तथा उसके अन्तर्गत बंगाल की सीमा से लेकर मालवा तक का विस्तृत भू-भाग सम्मिलित हो गया उत्तर प्रदेश का एक बड़ा भाग भी उसके अधीन था। भण्डारकर का अनुमान है कि इस समय कोशल भी मगध की अधीनता में आ गया था। इस प्रकार अब मगध का उत्तर भारत में कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं बचा। मगध साम्राज्य में उत्तर भारत के वे सभी मनुष्य राजतन्त्र सम्मिलित हो गये जो बुद्ध के समय विद्यमान थे। इस प्रकार शिशुनाग एक शक्तिशाली राजा था। गिरिव्रज के अतिरिक्त वैशाली नगर को उसने अपनी दूसरी राजधानी बनाई थी। जो बाद में उसकी प्रधान राजधानी बन गई। ऐसा उसने सम्भवतः वज्जियों के ऊपर कठोर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से किया होगा।

1.18 कालाशोक (काकवर्ण)

शिशुनाग ने सम्भवतः 412 ईसापूर्व तक शासन किया महावंश के अनुसार उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र कालाशोक राजा बना। पुराणों में उसी को काकवर्ण कहा गया है। उसने अपनी राजधानी पुनः पाटलिपुत्र में स्थानान्तरित कर दिया। इस समय के बाद पाटलिपुत्र में ही मगध की राजधानी रही। कालाशोक के शासन काल में वैशाली में बौद्ध धर्म की दूसरी संगीति का आयोजन हुआ। इसमें बौद्ध संघ में विभेद उत्पन्न हो गया तथा वह स्पष्टतः दो सम्प्रदायों में बट गया। (1) स्थाविर (2) महासंघिका पराम्परागत नियमों में आस्था रखने वाले लोग स्थविर कहलाये तथा जिन लोगों ने बौद्ध संघ में कुछ नये नियमों को समाविष्ट कर लिया वे महासंघिक कहे गये। इन्हीं दोनों सम्प्रदायों से बाद में चलकर क्रमशः हीनयान और महायान की उत्पत्ति हुई।

बाणभट्ट के हर्षचरित से पता चलता है कि काकवर्ण की राजधानी के समीप घूमते हुए किसी व्यक्ति ने गले में छुरा भोंककर हत्या कर दी। यह राजहन्ता कोई दूसरा नहीं अपितु नन्दवंश का पहला राजा महापदमानन्द ही था। कालाशोक ने सम्भवतः 366 ई०पू० तक राज्य सम्मिलित रूप से 22 वर्षों तक राज्य किया। इसमें नन्दिवर्धन का नाम सबसे महत्वपूर्ण लगता है। पुराणों के अनुसार नन्दिवर्धन शिशुनाग वंश का अन्तिम राजा था। जिसका उत्तराधिकारी महानंदिन हुआ। ग्रेगर महोदय ने इन दोनों नामों को एक ही माना है। इस प्रकार नन्दिवर्धन

अथवा महानन्दिन शैशुनाग वंश का अन्तिम शासक था। कालाशोक के उत्तराधिकारियों का शासन 344 ई०पू० के लगभग समाप्त हो गया।

1.19 नन्द वंश

जिस व्यक्ति ने शिशुनाग वंश का अन्त कर नन्दवंश की स्थापना की वह निम्न वर्ग से सम्बन्धित था। उसका नाम विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न दिया गया है। पुराण उसे महापदमानन्द कहते हैं जबकि महाबोधि वंश में उसे उग्रसेन कहता है। भारतीय तथा विदेशी दोनों ही साक्ष्य नन्दों की शूद्र अथवा निम्न जातीय उत्पत्ति का स्पष्ट संकेत करते हैं। पुराणों के अनुसार महापदमानन्द शिशुनाग वंश के अन्तिम राजा महानन्दिन की शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। विष्णु पुराण में कहा गया है कि महानन्दी की शूद्रा से उत्पन्न महापदमानन्द अत्यन्त लोभी तथा बलवान एवं दूसरे परशुराम के समान सभी क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा। जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वन के अनुसार वह नापित पिता और वेश्या माता का पुत्र था। आवश्यक सूत्र उसे नापितदास (नाई का दास) कहता है। महावंश टीका में नन्दों को अज्ञात कुल का बताया गया है जो डाकुओं के गिरोह का मुखिया था। उसने अवसर पाकर मगध पर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया।

जैन मत की पुष्टि विदेशी विवरणों से भी हो जाती है। यूनानी लेखक कार्टियस सिकन्दर के समकालीन मगध के नन्द सम्राट अग्रमीज यह संस्कृत के औग्रसेन अर्थात् उग्रसेन का पुत्र का रूपान्तर है, के विषय में लिखते हुए बताता है कि उसका पिता जाति का नाई था। वह अपनी सुन्दरता के कारण रानी का प्रेम पात्र बन गया तथा उसके प्रभाव से राजा का विश्वास प्राप्त कर उसके अत्यन्त निकट पहुंच गया। उसने छल से राजा की हत्या कर दी तथा राजकुमारों के संरक्षण के बहाने कार्य करते हुए उसने राजगढ़ी हथिया ली। अन्ततः उसने राजकुमारी की भी हत्या कर दी तथा वर्तमान राजा का पिता हुआ। यहाँ कार्टियस ने जिस राजा की चर्चा की है वह नन्दवंश का संस्थापक महापदम नन्द ही था। महाबोधि वंश में कालाशोक के 10 पुत्रों का उल्लेख हुआ है। सम्भव है कि सभी अल्पवयस्यक रहे हो तथा महापदम नन्द उसका संरक्षक रहा हो।

डियोडोरस इससे कुछ भिन्न विवरण देता है। उसके अनुसार धनानन्द का नाई पिता सुन्दर स्वरूप का होने के कारण रानी का प्रेम पात्र बन गया। रानी ने अपने वृद्ध पति की हत्या कर दी तथा अपने प्रेमी को राजा बनाया। वर्तमान शासक उसी का उत्तराधिकारी था। इस प्रकार जहाँ कार्टियस अन्तिम शिशुनाग राजा का हत्यारा प्रथम नन्द शासक को बताता है वहीं डियोडोरस उसकी रानी पर हत्या का लांछन लगाता है। महाबोधिवंश में महापदम नन्द का नाम उग्रसेन मिलता है। उसका पुत्र धनानन्द सिकन्दर का समकालीन था। इस प्रकार नन्द वंश शूद्र अथवा निम्न वर्ण से सम्बन्धित था। पुराणों में विवरण से स्पष्ट है कि इस वंश का संस्थापक क्षत्रिय पिता (महानन्दी) तथा शूद्र माता की सन्तान था। मनुस्मृति में इस प्रकार से उत्पन्न सन्तान को 'अपसद' अर्थात् निकृष्ट बताया गया है।

नन्दवंश में कुल 9 राजा हुए और इसी कारण उसे नवनन्द कहा जाता है। महाबोधिवंश में उनके नाम इस प्रकार मिलते हैं— (1) उग्रसेन (2) पण्डुक (3) पण्डुगति (4) भूतपाल (5) राष्ट्रपाल (6) गोविषाणक (7) दशसिद्धक (8) कैवत (9) धंग। इसमें प्रथम अर्थात् उग्रसेन को ही पुराणों में महापदम कहा गया है। शेष आठ उसी के पुत्र थे। महापदम नन्द अभी तक मगध के सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं में सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। उसकी विजयों के विषय में हमें पुराणों से विस्तृत सूचना प्राप्त होती है। उसके पास अतुल सम्पत्ति तथा असंख्य सेना

थी। वह कलि का अंश सभी क्षत्रियों का नाश करने वाला दूसरे परशुराम का अवतार था जिसने अपने समय के सभी प्रमुख राजवंशों पर विजय की। उसने एकछत्र शासन की स्थापना किया तथा एकराष्ट्र की उपाधि ग्रहण की। उसके द्वारा उन्मूलित कुछ राजवंशों के नाम इस प्रकार मिलते हैं।

1.20 इक्ष्वाकु

इस वंश के लोग कोशल में शासन करते थे। वर्तमान अवध का क्षेत्र इस राज्य के अन्तर्गत था। महापदमा नन्द द्वारा कोशल विजय की पुष्टि सोमदेवकृत कथा सरितसागर से भी होती है। तदनुसार अयोध्या के समीप नन्दों का एक सैनिक शिविर था।

1.20.1 पांचाल

इस राजवंश के लोग वर्तमान रुहेलखण्ड (बरेली-बदायूं- फर्रुखाबाद क्षेत्र) में शासन करते थे। ऐसा लगता है कि महापदम के पहले उनका मगध से कोई संघर्ष नहीं हुआ था।

1.20.2 काशेय

इससे तात्पर्य काशी के वंशजों से है। बिम्बिसार के समय से ही काशी मगध का एक प्रान्त था। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि जिस समय शिशुनाग ने गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनायी उसने अपने पुत्र को बनारस का उपराजा नियुक्त किया था। ऐसा लगता है कि इसी वंश के उत्तराधिकारी की हत्या कर महापदमनन्द ने काशी को प्राप्त किया।

1.20.3 हैहय

इस राजवंश के लोग नर्मदा नदी के एक भाग पर शासन करते थे उसकी राजधानी माहिष्मति थी।

1.20.4 कलिंग

यह राजवंश उड़ीसा प्रान्त में शासन करता था। खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से पता चलता है कि किसी नन्द राजा ने कलिंग के एक भाग को जीता था।

1.20.5 अश्मक

इस वंश के लोग आन्ध्र प्रदेश की गोदावरी सरिता के तटपर शासन करते थे। आन्ध्र प्रदेश के निजामाबाद के समीप "नवनन्द देहरा" नामक एक नगर स्थित है। कुछ विद्वानों के अनुसार वह इस प्रदेश में नन्दों के आधिपत्य का सूचक है। परन्तु इस विषय में हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कर सकते।

1.20.6 कुरु

मेरठ, दिल्ली तथा थानेश्वर के भूभाग पर कुरु राजवंश का शासन था। इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ में थी।

1.20.7 मैथिल

मैथिल लोग मिथिला के निवासी थे। मिथिला की पहचान नेपाल की सीमा में स्थित वर्तमान जनकपुर से की गयी है।

1.20.8 शूरसेन

आधुनिक ब्रजमंडल की भूमि पर शूरसेन राजवंश का शासन था। उसकी राजधानी मथुरा में थी।

1.20.9 वीतिहोत्र

पुराणों के अनुसार वीतिहोत्र लोग अवन्ति के प्रद्योतों तथा नर्मदा तटवर्ती हैहयों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे। सम्भवतः उनका राज्य इन्हीं दोनों के बीच स्थित रहा होगा।

पुराणों में उपर्युक्त सभी राज्यों के शासकों को समकालीन बताया गया है तथा विभिन्न राजवंशों के शासन काल के विषय में भी सूचना मिलती है। तदनुसार इक्ष्वाकु ने चौबीस वर्ष, पांचाल ने सत्ताइस वर्ष, काशी ने चौबीस वर्ष, हैहय ने 28 वर्ष, कलिंग ने 32 वर्ष, अश्मक ने 25 वर्ष, कुरन ने 36 वर्ष, मैथिल ने 28 वर्ष, शूरसेन ने 23 वर्ष तथा वीतिहोत्र ने 20 वर्ष तक शासन किया। भारतीय इतिहास में पहली बार एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हुई जिसकी सीमायें गंगाघाटी के मैदानों का अतिक्रमण कर गईं। विन्ध्यापर्वत के दक्षिण में विजय वैजयन्ती फहराने वाला पहला मगध का शासक था। खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से भी उसकी कलिंग विजय की पुष्टि होती है।

1.21 महापदमा नन्द के उत्तराधिकारी तथा नन्द सत्ता का विनाश

यद्यपि पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में महापदमनन्द के उत्तराधिकारियों की संख्या आठ मिलती हैं परन्तु उनके शासन काल के विषय में हमारा ज्ञान बहुत कम है। इस वंश के अन्तिम राजा धनानन्द था। जो सिकन्दर का समकालीन था। उसे यूनानी लेखकों ने अग्रभोज कहा है। यूनानी लेखकों के अनुसार उसके पास असीम सेना तथा अतुल सम्पत्ति थी। कार्टियस के अनुसार उसके पास 20 हजार अश्वरोही, 2 लाख पैदल, 2 हजार रथ तथा 3 हजार हाथी थे। जेनोकोन उसे बहुत धनाढ्य व्यक्ति बताता है। संस्कृत तमिल तथा सिंहली ग्रन्थों से भी उसकी अतुल सम्पत्ति की सूचना मिलती है। भद्रशाल उसका सेनापति था। उसका साम्राज्य बहुत विशाल था। जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिणपथ में कलिंग भी इसके अन्तर्गत था।

वह एक लोभी शासक था, जिसे धन संग्रह का शौक था। उसके धन तथा बलपूर्वक कर वसूलने की बौद्ध अनुश्रुति टर्नर ने इस प्रकार प्रस्तुत की है। सबसे छोटा भाई धनानन्द कहलाता था क्योंकि उसे धन बटोरने का व्यसन था। उसने 80 करोड़ धनराशि गंगा के भीतर एक पर्वत गुफा में छिपाकर रखी थी। एक सुरंग बनवाकर उसने वह धन वही गड़वा दिया। वस्तुओं के अतिरिक्त उसने पशुओं के चमड़े वृक्षों की गोंद तथा खानों की पत्थरों के ऊपर भी कर लगाकर अधिकाधिक धन संचित किया। एक तमिल परम्परा में इसका समर्थन करते हुए बताया गया है कि नन्द राजा के पास अतुल सम्पत्ति थी जिसको पाटलीपुत्र में उसने संचित किया तथा फिर गंगा की धारा में उसे छिपा दिया। अन्त में चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य ने धनानन्द की हत्या कर इस वंश का अन्त किया।

1.22 नन्द शासन का महत्व

चन्द्रगुप्त मौर्य एवं चाणक्य के सामूहिक प्रयास से एक शक्तिशाली राज्यवंश का अन्त हुआ। नन्द राजाओं का शासन काल भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अपना एक अलग महत्व रखता है। यह भारत के सामाजिक राजनैतिक आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। सामाजिक दृष्टि से इसे निम्न वर्ग के उत्कर्ष का प्रतीक माना जा सकता है। उसका राजनैतिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि इस वंश के राजाओं ने उत्तर भारत में सर्वप्रथम एकछत्र शासन की स्थापना की। उन्होंने एक ऐसी सेना तैयार की थी जिसका उपयोग परवर्ती मगध राजाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने तथा भारतीय सीमा में अपने राज्य का विस्तार करने में किया। नन्द राजाओं के समय में मगध राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली तथा आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्धिशाली साम्राज्य बन गया था।

नन्दों की अतुल सम्पत्ति को देखते हुए यह अनुमान करना स्वभाविक है कि हिमालय पार के देशों के साथ उनका व्यापारिक संबंध था। साइबेरिया की ओर से वे स्वर्ण मंगवाते थे। जेनोफोन की साइरोपेडिया से पता चलता है कि भारत का एक शक्तिशाली राजा पश्चिमी एशियाई देशों के झगड़ों की मध्यस्थता करने की इच्छा रखता था। इस भारतीय शासक को अत्यन्त धनी व्यक्ति कहा गया है। जिसका संकेत नन्दवंश के शासक धनानन्द की ओर ही है। सातवीं शदी के चीनी यात्री हुएनसांग ने भी नन्दों के अतुल सम्पत्ति की कहानी सुनी थी। उसके अनुसार पाटलिपुत्र में पांच स्तूप थे जो नन्द राजा के सात बहुमूल्य पदार्थों द्वारा संचित कोषागारों का प्रतिनिधित्व करते थे।

मगध की आर्थिक समृद्धि ने राजधानी पाटलिपुत्र को शिक्षा एवं साहित्य का प्रथम केन्द्र बना दिया। व्याकरणाचार्य पाणिनी महापदमनन्द के मित्र थे और उन्होंने पाटलिपुत्र में ही रहकर शिक्षा पाई थी। 34 वर्ष वररूचि कत्यायन जैसे विद्वान भी नन्द काल में ही उत्पन्न हुए थे।

नन्द शासक जैनमत के पोषक थे ताकि उन्होंने अपने शासन में कई जैन मंत्रियों को नियुक्त किया था। इनमें प्रथम मंत्री कल्पक था। जिसकी सहायता से महापदमनन्द ने समस्त क्षत्रियों का विनाश कर डाला था। धननन्द के जैन अमात्य शाकटाल तथा स्थूलभद्र थे। मुद्राराक्षस से भी नन्दों का जैन मतानुयायी होना सूचित होता है।

इस प्रकार नन्द राजाओं के काल में मगध साम्राज्य राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। बुद्धकालीन राजवन्तों में मगध ही अन्तगोत्वा सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न साम्राज्य के रूप में उभर कर सामने आया। इसके लिए मगध शासकों की शक्ति के साथ ही साथ प्राकृतिक कारण भी कम सहायक नहीं थे। मगध की दोनों राजधानियों राजगृह तथा पाटलिपुत्र अत्यन्त सुरक्षित भौगोलिक स्थिति में थी। राजगृह पहाड़ियों से घिरी होने के कारण शत्रुओं द्वारा सुगमता से जीती नहीं जा सकती थी। इसी प्रकार पाटलिपुत्र नदियों से घिरी होने के कारण सुरक्षित थी।

1.23 सारांश

इस प्रकार पहाड़ों तथा नदियों ने तत्कालीन परिवेश में मगध की सुरक्षाभित्ति का कार्य किया था। समीपवर्ती वन प्रदेश से मगध के शासकों ने हाथियों को प्राप्त कर एक शक्तिशाली गज सेना का गठन किया। मगध क्षेत्र में कच्चा लोहा तथा तांबा जैसे खनिज पदार्थों की बहुलता थी। लोहे का समृद्ध भण्डार आसानी से उपलब्ध होने के कारण मगध के शासक अपने लिये अच्छे हथियार तैयार करा सके। जो उनके विरोधियों को सुलभ नहीं थे। ईसा पूर्व पांचवीं शती से ही मगध पूर्वी भाग में उत्तरापथ के व्यापारिक मार्ग को नियन्त्रित करता था। मगध की इस आर्थिक समृद्धि ने ही साम्राज्यवाद के विकास में प्रमुख योगदान दिया। अजातशत्रु के काल

में मगध का गंगा नदी के दोनों तट पर नियन्त्रण हो गया। यहां से कई व्यापारिक मार्ग होकर जाते थे। तक्षशिला से प्राप्त आहत सिक्कों से पता चलता है कि सिकन्दर के समय में मगध के सिक्के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में काफी प्रचलित थे। ईसा पूर्व 5वीं शदी के अन्त तक मगध समस्त उत्तरापथ के व्यापार पर नियंत्रण कर लिया। अब मगध राजनैतिक एवं व्यापारिक शक्तिशाली राज्य के रूप अपनी पहचान बना चुका था।

1.24 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मगध के उत्कर्ष के विभिन्न कारणों का वर्णन कीजिए।
2. मगध के उत्कर्ष में विभिन्न राजवंशों के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. अजातशत्रु की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
4. शिशुनाग वंश पर टिप्पणी लिखिए?
5. मगध के उत्कर्ष में नन्द वंश के राजाओं की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
6. बिम्बिसार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

1.25 संदर्भ ग्रन्थ

1. के०सी० श्रीवास्तव— प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो इलाहाबाद 211002
2. एल०पी०शर्मा—प्राचीन भारत; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 282002
3. डॉ० दीनानाथ वर्मा— प्राचीन भारत; ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली।
4. बी०एन० लूनिया०— प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल
5. विपिन बिहारी सिन्हा—भारत इतिहास—(प्राचीन काल से 1526 तक)—ज्ञानदा प्रकाशन दिल्ली।
6. झा एवं श्रीमाली— प्राचीन भारत का इतिहास। हिन्दी मा०का०नि० दिल्ली।

छठी सदी ई. पू. के गणतंत्र एवं उनकी प्रशासनिक प्रणाली

2.1 प्रस्तावना	2.15 अश्मक	2.29 मिथिला का विदेह
2.2 उद्देश्य	2.16 अवन्ति	2.30 गणराज्यों का विधान एवं शासन पद्धति
2.3 अंग	2.17 गन्धार	2.31 गणराज्यों का प्रधान
2.4 मगध	2.18 कम्बोज	2.32 परिषद के कार्य विधि
2.5 वज्जि	2.19 छठी सदी ई. पू.	2.33 न्याय व्यवस्था के गणतंत्र
2.6 काशी	2.20 कपिल वस्तु के शाक्य	2.34 सामाजिक व्यवस्था
2.7 कोशल	2.21 सुमसुमार पर्वत के भग्ग	2.35 आर्थिक जीवन
2.8 मल्ल	2.22 अलकल्प के बुलि	2.36 धार्मिक अवस्था
2.9 वत्स	2.23 केसपुत्त के कलाम	2.37 सारांश
2.10 चेदी	2.24 रामग्राम के कोलिय	2.38 अभ्यासार्थ प्रश्न
2.11 कुरु	2.25 कुशीनारा के मल्ल	2.39 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.12 पांचाल	2.26 पावा के मल्ल	
2.13 मत्स्य	2.27 पिप्लिवन के मोरिय	
2.14 शूरसेन	2.28 वैशाली की लिच्छवि	

2.1 प्रस्तावना

छठी सदी ई. पू. प्राचीन भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण समय माना जाता है। इसे भारतीय इतिहास के संक्रान्ति काल से भी सम्बोधित किया जाता है। इस समय भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। राजनीतिक क्षेत्र में उत्तर वैदिक काल से बड़े राज्यों की स्थापना की जो प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई थी वह इस समय तक काफी विकसित हो चुकी थी। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय के अनुसार उत्तर भारत में सोलह महाजनपद स्थापित हो चुके थे। इनमें अधिकतर राजतंत्रात्मक थे, परन्तु कुछ गणतंत्र राज्यों की चर्चा भी है। अंगुत्तर निकाय एवं जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र से इन गणतंत्रीय राज्यों की प्रशासनिक प्रणाली की जानकारी प्राप्त होती है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास का प्रारम्भ अति प्राचीन काल में हुआ किन्तु उसके राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ अपेक्षाकृत बहुत बाद में हुआ। राजनैतिक इतिहास का मुख्य आधार सुनिश्चित तिथिक्रम होता है और इस दृष्टि से भारत के राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ हम ई. पू. सातवीं शदी के मध्य (650 ई. पू.) के पहले नहीं मान सकते। उत्तर वैदिक काल में हमें विभिन्न जनपदों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लोहे का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा था। लौह तकनीक ने लोगों के भौतिक जीवन में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न कर दिया तथा इसमें स्थाई जीवन-यापन की प्रवृत्ति सुदृढ़ हो गयी। कृषि, उद्योग, व्यापार-वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे-छोटे जनो का स्थान जनपदों ने ग्रहण कर लिया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक आते-जाते जनपद, महाजनपदों के रूप में विकसित हो गये।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बातें जान सकेंगे—

- छठी शताब्दी ई.पू. में भारत की राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थिति
- भारत के सोलह महाजनपदों की प्रशासनिक प्रणाली एवं गणतंत्रीय व्यवस्था
- गणराज्यों के प्रधान एवं परिषद की कार्य विधि

- सोलह महाजनपदों के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति
- गणतंत्रीय एवं प्रशासनिक प्रणाली में न्याय व्यवस्था

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में उत्तर भारत में सार्वभौम सत्ता का पूर्णतया अभाव था। सम्पूर्ण प्रदेश अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। ये राज्य यद्यपि उत्तर वैदिक कालीन राज्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा शक्तिशाली थे। तथापि इनमें से कोई भी देश राजनैतिक एकता के सूत्र में संगठित करने में समर्थ नहीं था। इस काल की राजनैतिक स्थिति का प्रामाणिक विवरण यद्यपि हमें किसी भी साहित्यिक साक्ष्य से उपलब्ध नहीं होता तथापि बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय से ज्ञात होता है कि महात्मा गौतम बुद्ध के उदय के कुछ पूर्व समस्त उत्तरी भारत 16 बड़े राज्यों में विभाजित था। इन्हें सोलह महाजनपद कहा गया है। अंगुत्तरनिकाय व भगवती सूत्र दोनों की सूचियों की तुलना करने पर ऐसा स्पष्ट होता है कि कुछ राज्यों के नाम जैसे—अंग, मगध, काशी, कोशल, वत्स, वज्जि, आदि दोनों में ही समान हैं। इतिहासकार हेमचन्द्र रायचौधरी का विचार है कि भगवती सूत्र की सूची में जिन राज्यों का नाम गिनाये है वे सुदूर-पूर्व तथा सुदूर दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति के सूचक हैं। उनका विस्तार यह सिद्ध करता है कि वे अंगुत्तर निकाय में उल्लिखित राज्यों के बाद के हैं। अतः छठी शताब्दी ईसा पूर्व के पूर्वार्द्ध में भारत की राजनैतिक स्थिति के ज्ञान के लिए हमें बौद्ध ग्रन्थ की सूची को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

अंगुत्तर निकाय में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ है वे बुद्ध के पहले विद्यमान थे, क्योंकि बुद्धकाल में काशी का राज्य कोशल में तथा अंग का राज्य मगध में मिला लिया गया था। सम्भवतः उस समय अश्मक भी अवन्ति द्वारा जीत लिया गया था। इसी प्रकार वज्जि का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि महाजनपद विदेह राजतंत्र के पतन के बाद (छठी शताब्दी ईसा पूर्व के कुछ पूर्व) ही अस्तित्व में आये होंगे। इस प्रकार हम सोलह महाजनपदों को ईसा पूर्व छठी सदी के प्रथमार्द्ध में रख सकते हैं। अंगुत्तर निकाय की सूची में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ, इनमें दो प्रकार के राज्य थे।

1—राजतंत्र

2—गणतंत्र

राजतंत्र में राज्य का अध्यक्ष राजा होता था। इस प्रकार के राज्य थे, अंग, मगध, काशी, कोशल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ति, गन्धार तथा कम्बोज, इनका वर्णन निम्न प्रकार है।

इन ग्रन्थों के अनुसार छठी सदी ई. पू. में निम्नलिखित राज्य थे।

2.3 अंग

उत्तरी बिहार के वर्तमान भागलपुर तथा मुंगेर के जिले अंग महाजनपद के अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी चम्पा थी। महाभारत तथा पुराणों में चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' प्राप्त होता है। बुद्ध के समय तक चम्पा की गणना भारत के छः महानगरों में की जाती थी। दोहा निकाय के अनुसार इस नगर के निर्माण की योजना सुप्रसिद्ध वास्तुकार महागोविन्द ने प्रस्तुत की थी। महापरिनिर्वाण सूत्र में चम्पा के अतिरिक्त अन्य पाँच महानगरियों के नाम राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा बनारस दिये गये हैं। प्राचीन काल में चम्पा नगर वैभव तथा व्यापार वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध थी। अंग, मगध का पड़ोसी राज्य था। जिस प्रकार काशी तथा कोशल में प्रभुसत्ता के लिए संघर्ष चल रहा था उसी प्रकार अंग तथा मगध के बीच भी दीर्घकालीन संघर्ष चला। अंग के शासक ब्रह्मदत्त ने मगध के राजा भट्टिय को पहले पराजित कर मगध राज्य के कुछ भाग को जीत लिया था किन्तु बाद में अंग का राज्य मगध में मिला लिया गया।

2.4 मगध

यह दक्षिणी बिहार में स्थित था वर्तमान पटना और गया जिले इसमें सम्मिलित थे। कालान्तर में यह उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद बन गया। मगध तथा अंग एक दूसरे के पड़ोसी राज्य तथा दोनों को पृथक करती हुई चम्पा नदी बहती थी। इस महाजनपद की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विन्ध्यापर्वत तक तथा पूर्व में चम्पा से पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत थी। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह अथवा गिरिव्रज थी। यह नगर पाँच पहाड़ियों के बीच में स्थित था। नगर के चारों ओर पत्थर की सुदृढ़ प्राचीर बनवायी गयी थी। कालान्तर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित हुई।

2.5 वज्जि

यह आठ राज्यों का एक संघ था। इसमें वज्जि के अतिरिक्त वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह तथा कुण्डग्राम के ज्ञातृक विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। वैशाली उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित आधुनिक बसाढ़ है। मिथिला की पहचान नेपाल सीमा में स्थित जनकपुर नामक नगर से की जाती है। यहाँ पहले राजतंत्र था परन्तु बाद में गणतंत्र स्थापित हो गया। कुंडग्राम वैशाली के समीप ही स्थित था। यदु के समय में यह एक शक्तिशाली संघ था।

2.6 काशी

वर्तमान वाराणसी तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र ही प्राचीन काल में काशी महाजनपद था। उत्तर में वरुणा तथा दक्षिण में असी नदियों से घिरी हुई वाराणसी नगरी इस महाजनपद की राजधानी थी। सोननन्द जातक से ज्ञात होता है कि मगध, कोशल तथा अंग के ऊपर काशी का अधिकार था। जातक ग्रन्थों से पता चलता है कि इस राज्य का विस्तार तीन सौ लीग था और यह महान समृद्धिशाली तथा साधन-सम्पन्न राज्य था। काशी तथा कोशल के बीच दीर्घकालीन संघर्ष का विवरण बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यहाँ का सबसे शक्तिशाली राजा ब्रह्मदत्त था जिसने कोशल के ऊपर विजय प्राप्त की थी। किन्तु अन्तगोत्वा कोशल के राजा कंस ने काशी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

2.7 कोशल:-

वर्तमान अवध का क्षेत्र प्राचीन काल में कोशल महाजनपद का निर्माण करता था। यह उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में सई नदी तथा पश्चिम में पांचाल से लेकर पूर्व में गण्डक नदी तक फैला हुआ था। कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। इसके अन्य प्रमुख नगर अयोध्या तथा साकेत थे। रामायण कालीन कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या थी। बुद्ध काल में कोशल राज्य के दो भाग हो गये। उत्तरी भाग की राजधानी साकेत तथा दक्षिणी भाग की राजधानी श्रावस्ती में स्थापित हुई। साकेत का ही दूसरा नाम अयोध्या था।

2.8 मल्ल

पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में मल्ल महाजनपद स्थित था। वज्जि संघ के समान यह भी एक संघ गण राज्य था जिसमें पावा (पडरौना) तथा कुशीनारा (कसया) के मल्लों की शाखाएँ सम्मिलित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि विदेह राज्य की ही भाँति मल्ल राज्य भी प्रारम्भ में एक राजतंत्र के रूप में संगठित था। कुस जातक में ओक्काक को वहीं का राजा बताया गया है। कालान्तर में उनका एक संघ बन गया। बुद्ध के समय तक उनका स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा।

2.9 वत्स

आधुनिक इलाहाबाद तथा बाँदा के जिले प्राचीन काल में वत्स महाजनपद का निर्माण करते थे। इसकी राजधानी यमुना नदी के किनारे स्थित है। विष्णु पुराण से पता चलता है कि हस्तिनापुर के राज निचक्षु ने हस्तिनापुर के गंगा प्रवाह में बह जाने के बाद कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था। बुद्धकाल में यहाँ पौरववंश का शासन था जिसका शासक उदयन था। पुराणों के अनुसार

उसके पिता परंतप ने अंग की राजधानी चम्पा को जीता था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा कौशाम्बी में विस्तृत खुदाइयाँ की गयी हैं जिनसे पता चलता है कि ई.पू. बारहवीं शदी के मध्य से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी तक यहाँ बस्ती बनी हुई थी। श्रेष्ठि घोषित द्वारा निर्मित बिहार तथा उदयन के राजप्रसाद के अवशेष भी प्राप्त होते हैं।

2.10 चेदि या चेति

आधुनिक बुन्देलखण्ड के पूर्वी तथा उसके समीपवर्ती भागों में प्राचीन काल का चेदि महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी जिसकी पहचान महाभारत के शुकितमती से की जाती है। महाभारत काल में यहाँ का शासक शिशुपाल था जिसका बध कृष्ण द्वारा किया गया। चेतिय जातक में यहाँ के एक राजा का नाम उपचर मिलता है।

2.11 कुरु

मेरठ, दिल्ली तथा थानेश्वर के भू-भागों में कुरु महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। महाभारतकालीन हस्तिनापुर का नगर भी इसी राज्य में स्थित था। जातक, ग्रन्थों के अनुसार इस नगर की परिधि दो हजार मील के लगभग थी। बुद्ध के समय यहाँ का राज कोख्य था। कुरु के लोग प्राचीन समय से ही अपनी बुद्धि एवं बल के लिए प्रसिद्ध थे। पहले कुरु एक राजतंत्रात्मक राज्य था किन्तु कालान्तर में यहाँ गणतंत्र की स्थापना हुई।

2.12 पांचाल

आधुनिक रुहेलखण्ड के बरेली बदायूँ तथा फरुखाबाद के जिले से मिलकर प्राचीन पांचाल महाजनपद बनता था। प्रारम्भ में इसके दो भाग थे।

1—उत्तरी पांचाल, जिसकी राजधानी अहिच्छत्र थी तथा दक्षिणी पांचाल जिसकी राजधानी काम्पिल्य थी। कान्यकुब्ज का प्रसिद्ध नगर इसी राज्य में स्थित था। छठी शताब्दी ई.पू. कुरु तथा पांचाल का एक संघ राज्य था।

2.13 मत्स्य (मच्छ)

राजस्थान प्रान्त के जयपुर क्षेत्र में मत्स्य महाजनपद बसा हुआ था। इसके अर्न्तगत वर्तमान अलवर का सम्पूर्ण भाग तथा भरतपुर का एक भाग भी सम्मिलित था। यहाँ की राजधानी विराटनगर थी जिसकी स्थापना विराट नामक राजा ने की थी। बुद्धकाल में इस राज्य का कोई राजनैतिक महत्व नहीं था।

2.14 शूरसेन

आधुनिक ब्रजमण्डल क्षेत्र में यह महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी मथुरा थी। प्राचीन यूनानी लेखक इस राज्य को शूरसेनोई तथा इसकी राजधानी को मथुरा कहते थे। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार यहाँ यदु (यादव) वंश का शासन था। कृष्ण यहाँ के राजा थे। बुद्धकाल में यहाँ का राजा अवन्तिपुत्र था जो बुद्ध का सर्वप्रथम शिष्य था। उसी की सहायता से मथुरा में बौद्ध धर्म का प्रचार संभव हुआ। मज्झिम निकाय से पता चलता है कि अवन्तिपुत्र का जन्म अवन्ति नरेश प्रद्योत की कन्या से हुआ था।

2.15 अश्मक (अस्मक या अश्वक)

गोदावरी नदी (आन्ध्रप्रदेश) के तट पर अश्मक महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी पोतन या पोटिल थी। महाजनपद में केवल अश्मक ही दक्षिण भारत में स्थित था। पुराणों से पता चलता है कि अश्मक के राजतंत्र की स्थापना ईक्ष्वाकुवंशी शासकों ने किया था। चुल्लकलिंग जातक से पता चलता है कि अस्सक के राजा आरुण ने कलिंग के राजा को जीता था। महात्मा बुद्ध के पूर्व अश्मक का अवन्ति के साथ निरन्तर संघर्ष चल रहा था तथा बुद्ध काल में अवन्ति ने इसे जीतकर अपनी सीमा के अर्न्तगत समाहित कर लिया था।

2.16 अवन्ति

पश्चिमी तथा मध्य मालवा के क्षेत्र से पता चलता है कि यहाँ अवन्ति महाजनपद बसा हुआ था। इसके दो भाग थे, उत्तरी अवन्ति जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी तथा दक्षिणी अवन्ति जिसकी राजधानी भी उज्जयिनी ही थी। जहाँ का राजा प्रद्योत था। उज्जयिनी का पहचान मध्यप्रदेश के आधुनिक उज्जैन नगर से की जाती है। राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से उज्जयिनी प्राचीन भारत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ लोहे की खानें थी तथा लुहार इस्पात के उत्कृष्ट अस्त्र-शस्त्र निर्मित कर लेते थे। इस कारण यह राज्य सैनिक दृष्टि से अत्यन्त सबल हो गया। यह बौद्ध धर्म का भी प्रमुख केन्द्र था जहाँ कुछ प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु निवास करते थे।

2.17 गन्धार

वर्तमान पाकिस्तान के पेशावर तथा रावलपिंडी जिलों की भूमि पर गन्धार महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी तक्षशिला में थी। रामायण से पता चलता है कि इस नगर की स्थापना भरत के पुत्र तक्ष ने की थी। इस जनपद का दूसरा प्रमुख नगर पुढकलावती था। तक्षशिला प्रमुख व्यापारिक नगर होने के साथ-साथ शिक्षा का भी प्रसिद्ध केन्द्र था। छठी शताब्दी ई.पू. के मध्य में यहाँ पुकुसाति अथवा पुढकरसारिन नामक राजा राज्य कर रहा था। उसने मगधराज बिम्बिसार के दरबार में अपना एक दूतमण्डल भेजा था। और इस प्रकार गन्धार तथा मगध राज्यों के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ। पुकुसाति ने अवन्ति के ऊपर आक्रमण कर वहाँ के राजा प्रद्योत को पराजित किया था।

2.18 कम्बोज

दक्षिणी-पश्चिमी कश्मीर तथा काफिरिस्तान के भाग को मिलाकर प्राचीन काल में कम्बोज महाजनपद बना था। इसकी राजधानी राजपुर अथवा हाटक थी। यह गन्धार का पड़ोसी राज्य था। कालान्तर में यहाँ राजतंत्र के स्थान पर संघ राज्य स्थापित हो गया। कौटिल्य ने कम्बोजों को वार्ताशास्त्रोपजीवी संघ अर्थात् कृषि पशुपालक, वाणिज्य तथा शस्त्र द्वारा जीविका चलाने वाला कहा है। प्राचीन समय में कम्बोज जनपद अपने श्रेष्ठ घोड़ों के लिए विख्यात था। इस प्रकार छठी शताब्दी ई.पू. के प्रारम्भ में उत्तर-भारत विकेन्द्रीकरण एवं विभाजन के दृश्य उपस्थित कर रहा था। जिन सोलह महाजनपदों के नाम ऊपर गिनाए गये हैं। उनमें पारस्परिक संघर्ष, विद्वेष एवं घृणा का वातावरण व्याप्त था। काशी और कोशल के राज्य एक दूसरे के शत्रु थे। प्रारम्भ में काशी विजयी रहा, परन्तु अन्ततोगत्वा वह कोशल की विस्तारवादी नीति का शिकार बना। इसी प्रकार अंग, मगध, तथा अवन्ति और अश्मक भी परस्पर संघर्ष में उलझे हुए थे। गणराज्यों का अस्तित्व राजतंत्रों के लिए असाध्य हो रहा था। प्रत्येक राज्य अपने पड़ोसी की स्वतंत्र सत्ता को समाप्त करने पर तुला हुआ था। अन्य जनपदों की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं रही होगी।

2.19 छठी सदी ई. पू. के गणतंत्र

प्रारम्भ में अधिकांश इतिहासकारों की धारणा थी कि प्राचीन भारत में केवल राजतंत्र ही थे परन्तु बाद के खोजों से यह तथ्य प्रकाश में आया कि प्राचीन भारत में राजतंत्रों के साथ-साथ गण अथवा संघ राज्यों का भी अस्तित्व था। सर्वप्रथम 1903 में रिज डेविड्स ने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को चुनौती देने के लिए गणराज्यों की खोज की थी। प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों को गणतंत्र से भिन्न बताया गया है। अवदान शतक से पता चलता है कि मध्य प्रदेश के कुछ व्यापारी दक्षिण गये जहाँ के लोगों ने उनसे उत्तर भारत की शासन व्यवस्था के विषय में पूछा! उत्तर में उन्होंने बताया कि कुछ देश गणों के अधीन हैं तथा कुछ राजाओं के अचारंगसूत्र जैन भिक्षु को चेतावनी देता है कि उसे उस स्थान में ही नहीं जाना चाहिए जहाँ गणतंत्र का शासन हो।

संघ गण का पर्यायवाची था। पाणिनी ने संघ को राजतंत्र से स्पष्टतः भिन्न बताया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दो प्रकार के संघ राज्यों का उल्लेख मिलता है। प्रथम के अन्तर्गत कम्बोज, सुराष्ट्र आदि और दूसरे के अन्तर्गत लिच्छवि वज्जि, मल्ल, भद्र, कुकुर, पांचाल आदि की गणना की गयी है। स्पष्टतः यहाँ राजशब्दोपीवजी संघ से तात्पर्य उन गणराज्यों से ही है जो राजा की उपाधि का प्रयोग करते थे। महाभारत में भी गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। भारतीय साहित्य के अतिरिक्त यूनानी रोमन लेखकों के विवरण से भी प्राचीन भारत में गणराज्यों का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। इससे सूचित होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब तथा सिंध में कई गणराज्य थे जो राजतंत्रों से भिन्न थे। मुद्रा सम्बन्धी प्रमाणों से भी गणराज्यों का अस्तित्व सिद्ध होता है। मालव, यौद्धेय, अर्जुनायन आदि अनेक गणराज्यों के सिक्के का उल्लेख न कर गण का ही उल्लेख करते हैं। इस प्रकार अब यह सिद्ध हो गया है कि प्राचीन भारत में गणराज्य थे तथा वे राजतंत्रों से इस अर्थ में भिन्न थे कि उनका शासन किसी वंशानुगत राजा के हाथ में न होकर गण अथवा संघ के हाथ में होता था। परन्तु प्राचीन भारत के गणतंत्र आधुनिक काल के गणतंत्र से भिन्न थे। आधुनिक काल में गणतंत्र प्रजातंत्र का समानार्थी है जिसमें शासन की अन्तिम शक्ति जनता के हाथों निहित रहती है। प्राचीन भारत में गणतंत्र इस अर्थ में गणतंत्र नहीं कहे जा सकते हैं। उन्हें हम आधुनिक शब्दावली में कुलीनतंत्र अथवा अभिजातंत्र कह सकते हैं जिसमें शासन का संचालन सम्पूर्ण प्रजा द्वारा न होकर किसी कुल विशेष के सम्मुख व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। उदाहरण के लिए यदि हम वैशाली के लिच्छवि गणराज्य का नाम लेते हैं तो हमें यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वहाँ के शासन में वैशाली नगर की सम्पूर्ण जनता भाग लेती थी। बल्कि तथ्य यह है कि केवल लिच्छवि कुल के ही प्रमुख व्यक्ति मिलकर शासन प्रणाली चलाते थे। बुद्धकाल में गंगाघाटी में कई गणराज्यों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं जो इस प्रकार हैं।

2.20 कपिलवस्तु के शाक्य

यह गणराज्य नेपाल की तराई में स्थित था। जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। शाक्य गणराज्य के उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में रोहिणी नदी तथा दक्षिण और पश्चिम में राप्ती नदी स्थित थी। कपिलवस्तु की पहचान नेपाल में स्थित आधुनिक तिलौराकोट से की जाती है। कुछ विद्वान इसकी पहचान सिद्धार्थनगर जिले के पिपरहवा नामक स्थान से करते हैं। जहाँ के बौद्ध स्तूप तथा उसकी धातु गर्भ-मंजूषा के अवशेष प्राप्त किये गये हैं। इसे शाक्यवंशीय सुकीर्ति ने प्रतिस्थापित करवाया था। कपिलवस्तु के अतिरिक्त इस गणराज्य में अन्य अनेक नगर थे। चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, नगरक, देवदह, सक्कर आदि। बुद्ध के माता देवदह की ही कन्या थी। शाक्य गणराज्य में लगभग 80 हजार परिवार थे। शाक्य लोग अपने रक्त पर बड़ा अभिमान करते थे और इसी कारण वे अपनी जाति के बाहर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करते थे। गौतम बुद्ध का जन्म इसी गणराज्य में हुआ था। बुद्ध से सम्बन्धित होने के कारण इस गणराज्य का महत्व काफी बढ़ गया किन्तु राजनैतिक शक्ति के रूप में शाक्य गणराज्य का कोई महत्व नहीं था और यह कोशल राज्य की अधीनता स्वीकार करता था। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है। इस राज्य का विनाश कोशल नरेश विडूडश द्वारा किया गया। शाक्य लोगों का जीवन बहुत सच्चरित्र था। यहाँ स्त्रियों का बहुत सम्मान था। इनका जीवन सुखमय था जिसमें धन से अधिक महत्व मर्यादा को दिया जाता था। विवाह के अवसर पर वर-वधु की योग्यता का विशेष महत्व होता था। राजकुमारों को युद्ध संचालन की शिक्षा दी जाती थी। उनके लिए धनुष-वाण का प्रयोग, अश्वारोहण, खड्ग युद्ध आदि में कुशल होना आवश्यक माना जाता था। महात्मा बुद्ध के विवाह के समय कुमारी गोपा के पिता दणपाणी की यह चिन्ता थी कि सिहार्थ युद्ध संचालन में सक्षम है अथवा नहीं इस बात को सिद्ध करता है। शाक्यों का विवाह स्वजातीय व्यक्तियों में ही होता था। महिलाओं में यहाँ शिक्षा का

प्रचार-प्रसार था। कोशल के राजा विद्दभ ने छठी सदी के अन्त में इसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

2.21 सुसुमार पर्वत के भग्ग

सुसुमार पर्वत का समीकरण मिर्जापुर जिले में स्थित वर्तमान चुनार से किया गया है। ऐसा लगता है कि भग्ग ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित भर्गवंश से सम्बन्धित थे। भग्ग गणराज्य के अधिकार क्षेत्र में विन्ध्य क्षेत्र की यमुना तथा सोन नदियों के बीच का प्रदेश सम्मिलित था। भग्ग लोग वत्सों की अधीनता स्वीकार करते थे। ज्ञात है कि सुसुमार पर्वत पर वत्सराज उदयन का पुत्र बोधि निवास करता था।

2.22 अलकल्प के बुलि

यह गणराज्य आधुनिक बिहार प्रान्त के शाहाबाद आरा और मुजफ्फरपुर जिले के बीच स्थित था। बुलियों का वेठद्वीप (बेतिया) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। यही सम्भवतः उनकी राजधानी थी। बुलि लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के बाद उन्होंने उनके अवशेषों का एक भाग प्राप्त किया तथा उस पर स्तूप का निर्माण करवाया था।

2.23 केसपुत्त के कलाम

केसपुत्त का निश्चित रूप से समीकरण स्थापित कर सकना कठिन है। यह गणराज्य कोशल के पश्चिम में स्थित था। सम्भवतः यह राज्य सुलतानपुर जिले के कुडवार से लेकर पालिया नामक स्थान तक फैला हुआ था। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि कलामों का सम्बन्ध पांचाल जनपद के केशियों के साथ था। इसी गणराज्य के आलारकलाम नामक आचार्य से जो उरुवेला के समीप रहते थे, महात्मा बुद्ध ने गृहत्याग करने के बाद सर्वप्रथम उपदेश ग्रहण किया था। कलाम लोग कोशल की अधीनता स्वीकार करते हैं।

2.24 रामग्राम के कोलिय

यह शाक्य गणराज्य के पूर्व में स्थित था। दक्षिण में यह गणराज्य सरयू नदी तक विस्तृत था। शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच रोहिणी नदी बहती थी। दोनों राज्यों के लोग सिंचाई के लिए इसी नदी के जल पर निर्भर करते थे। नदी के जल के लिए उसमें प्रायः संघर्ष भी हो जाता था। एक बार गौतम बुद्ध ने ही इसी प्रकार के एक संघर्ष को शान्त किया था। कोलिय गण के लोग अपनी पुलिस शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। कोलियों की राजधानी रामग्राम की पहचान वर्तमान गोरखपुर जिले में स्थित रामगढ़ ताल से की गयी है।

2.25 कुशीनारा के मल्ल

कुशीनारा की पहचान देवरिया जिले में स्थित वर्तमान कस्या नामक स्थान से की जाती है। बाल्मीकी रामायण में मल्लों को लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु मल्ल का वंशज कहा गया है।

2.26 पावा के मल्ल

पावा आधुनिक देवरिया जिले में स्थित पडरौना नामक स्थान था। मल्ल लोग सैनिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। जैन साहित्य से पता चलता है कि मगध नरेश अजातशत्रु के भय से मल्लों ने लिच्छवियों के साथ मिलकर एक संघ बनाया था। अजातशत्रु ने लिच्छवियों को पराजित करने के बाद मल्लों को भी जीत लिया था।

2.27 पिप्पलिवन के मोरिय

मोरिय गणराज्य के लोग शाक्यों की ही एक शाखा थे। महावंशटीका से पता चलता है कि कोशल नरेश विडूडभ के अत्याचारों से बचने के लिए वे हिमालया प्रदेश में भाग गये जहाँ उन्होंने मोरों की कूक से गुंजायमान स्थान में पिप्पलिवन नामक नगर बसा लिया। मोरों के प्रदेश का निवासी होने के कारण ही वे मोरिय कहे गये। मोरिय शब्द से ही सीधे मौर्य शब्द बना है। चन्द्रगुप्त मौर्य

इसी परिवार से उत्पन्न हुआ था। पिप्पलिवन का समीकरण गोरखपुर जिले में कुसुम्हीं के पास स्थिति राजधानी नामक ग्राम से किया जाता है।

2.28 वैशाली के लिच्छवि

यह बुद्ध काल के सबसे बड़े तथा शक्तिशाली गणराज्यों के रूप में विद्यमान थे। लिच्छवि वज्जिसंघ में सर्वप्रमुख थे। उनकी राजधानी वैशाली मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ नामक स्थान में स्थित थी। महावग्ग जातक में वैशाली को एक धनी, समृद्धशाली तथा धनी आबादी वाला नगर कहा गया है। यहाँ अनेक, सुन्दर भवन, चैत्य तथा बिहार थे। एकपण्ण जातक से पता चलता है कि वैशाली नगर चारों ओर से तीन दीवारों से घिरा हुआ था। प्रत्येक दीवार एक दूसरी से एक योजन दूर थी। और उसमें पहरे की मीनारों वाले तीन द्वार बने हुए थे। लिच्छवियों ने महात्मा बुद्ध को निवास के लिए महावन में प्रसिद्ध कट्टारगार शाला का निर्माण करवाया था। जहाँ रहकर बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे। लिच्छवि लोग अत्यन्त स्वाभिमानी तथा स्वतंत्रता प्रेमी हुआ करते थे। उनकी शासन व्यवस्था संगठित थी। बुद्ध काल में यह राज्य अपनी समृद्धि की परकाष्ठा पर था। यहाँ का राजा चेटक था। उसकी कन्या चेलना का विवाह मगध नरेश बिम्बिसार के साथ हुआ था। महावीर की माता त्रिशला उसकी बहन थी। जैन साहित्य से पता चलता है कि अजातशत्रु के विरुद्ध चेटक ने मल्ल, काशी तथा कोशल के साथ मिलकर एक सम्मिलित मोर्चा बनाया था।

3.29 मिथिला के विदेह

बिहार के भागलपुर तथा दरभंगा जिलों के भू-भाग में विदेह गणराज्य स्थित था। प्रारम्भ में राजतंत्र था। यहाँ के राजा जनक अपनी शक्ति एवं दार्शनिक ज्ञान के लिए विख्यात थे। परन्तु बुद्ध के समय में यह संघ राज्य बन गया। विदेह लोग भी वज्जि संघ के सदस्य थे। उनकी राजधानी मिथिला की पहचान वर्तमान जनकपुर से की जाती है। बुद्ध के समय मिथिला एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था जहाँ श्रावस्ती के व्यापारी अपना माल लेकर आते थे।

इन गणतंत्रीय एवं कुलीन तंत्रीय राज्यों में से केवल शाक्य और लिच्छवि राज्यों के बारे में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। इनके विषय में एक बात महत्वपूर्ण है, जैसा कि डॉ. बी.सी. लो ने लिखा है "आरम्भ में इनमें से अधिकांश जातियों पर राजा का शासन था।" इस कारण ग्रीस की भाँति भारत में भी राजतंत्रों को नष्ट करके कुलीनतंत्र अथवा गणतंत्रिक राज्यों की स्थापना का मूल कारण राजाओं की आयोग्यता तथा अत्याचार ही रहा होगा। यह विश्वास किया जाता है कि इन राज्यों में छोटे और बड़े सभी प्रकार के गणराज्य संघ—गणराज्य थे। आन्तरिक फूट और मगध राज्य के विस्तार ने इनको नष्ट कर दिया। इनमें से कुछ को अजातशत्रु ने कुछ को नन्द सम्राटों ने कुछ को मौर्य सम्राटों ने समाप्त किया।

इसके उपरान्त हमें गणराज्यों का अस्तित्व भारत के उत्तर पश्चिम भाग में प्राप्त होता है। जिनका मुकाबला यूनानी आक्रमणकारियों जैसे सिकन्दर को करना पड़ा। झेलम और चिनाव नदी के संगम के दक्षिण में उस समय निम्न गणराज्य अग्रश्रेणी, क्षुद्रक, मालव, अम्बडदू, क्षत्रिय, शूद्र, मूषिक, मुचिकण, आविस्कानुस, शम्भू और पत्तल थे। इनमें से प्रायः सभी ने सिकन्दर के वापस लौटने के मार्ग में बाधाएँ प्रस्तुत की और उससे भीषण युद्ध किये। निःसन्देह वे सिकन्दर की विशाल सेना के सम्मुख परास्त हुए परन्तु उन्होंने अनेक अवसरों पर सिकन्दर को कठिनाई डाल दिया था। बाद में चन्द्रगुप्त मौर्य ने इन सभी गणराज्यों को समाप्त कर दिया। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की साम्राज्यवादी नीति और एकछत्र साम्राज्य का सिद्धान्त इनके अस्तित्व के विरुद्ध था। इस कारण उनके समय में गणराज्यों को समाप्त करने के लिए एक सुनिश्चित नीति अपनायी गयी थी। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् हमें पश्चिमी भारत में पुनः गणराज्य प्राप्त होते हैं। इनमें से यौधेय, अर्जुनायन और मालव प्रमुख गणराज्य थे। इन्होंने विदेशियों से युद्ध करने में प्रमुख भाग लिया। यौधेयों ने पूर्वी

पंजाब और उत्तरी राजस्थान में अपने राज्य स्थापित किये। सम्भवतया उनके निर्वाचित प्रधान को महाराज अथवा महासेनापति पुकारा जाता था।

उन्हें शकों से परास्त होना पड़ा परन्तु उन्होंने कुषाणों से कई सफल युद्ध किये। अर्जुनायनों का राज्य आधुनिक जयपुर के प्रदेश में था। उन्होंने भी शकों और आर कुषाणों से युद्ध किये। मालव सिकन्दर के आक्रमण के बाद पूर्वी राजपुताना के निकट आकर बस गये थे। मौखरि वंश के शासक इनके अधीन थे। इनके अतिरिक्त शिवियों ने चित्तौड़ के निकट अपना राज्य स्थापित किया, कुलुत गणराज्य कुल्लु घाटी में था। औदुम्बर गणराज्य कांगडा, गुरुदासपुर और होशियारपुर जिलों में था। भद्रक गणराज्य स्यालकोट (पंजाब) में था। आमीरों का गणराज्य मध्य भारत में था। प्रार्जुन गणराज्य सम्भवतया मध्य प्रदेश में था, सनकासिक गणराज्य भिलसा के निकट था, काक गणराज्य सोची के निकट था और खरपरिक गणराज्य सम्भवतया मध्यप्रदेश में दमोह के निकट था।

2.30 गणराज्यों का विधान तथा शासन पद्धति

गणराज्यों के विधान तथा शासन पद्धति के विषय में हमें बहुत कम ज्ञात है। इतना तो स्पष्ट ही है कि लिच्छवि आदि बड़े गणराज्यों की शासन व्यवस्था मोरिय, कोलिय आदि छोटे राज्यों की अपेक्षा भिन्न रही होगी। गण की कार्यपालिका का अध्यक्ष एक निर्वाचित पदाधिकारी होता था। जिसे राजा कहा जाता था। सामान्य प्रशासन की देखभाल के साथ-साथ गणराज्य में आन्तरिक शान्ति एवं सामंजस्य बनाये रखना उसका एक प्रमुख कार्य था। अन्य पदाधिकारियों में उपराजा, सेनापति, भाण्डारिक आदि प्रमुख थे। परन्तु राज्य की वास्तविक शक्ति एक केन्द्रीय समिति अथवा संस्थागार में निहित होती थी। इस समिति के सदस्यों की संख्या काफी बड़ी होती थी। समिति के सदस्य भी राजा कहे जाते थे। एकपण्ण जातक के अनुसार लिच्छवि गणराज्य की केन्द्रीय समिति में 7707 राजा थे। तथा उपराजाओं, सेनापतियों और कोषाध्यक्षों की संख्या भी यहीं थी।

इसी प्रकार एक स्थान पर शाक्यों के संस्थागार के सदस्यों की संख्या 500 बतायी गयी है। ये सम्भवतः राज्य के कुलीन परिवारों के प्रमुख थे जिन्हें राजा की पदवी का अधिकार था। प्रत्येक राजा के अधीन उपराजा, सेनापति भाण्डारिक आदि पदाधिकारी होते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लिच्छवि राज्य अनेक छोटी-छोटी प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त था तथा प्रत्येक इकाई का अध्यक्ष एक राजा होता था। जो अपने अधीन पदाधिकारियों की सहायता से उस इकाई का शासन चलाता था। प्रत्येक इकाई का अध्यक्ष केन्द्रीय समिति के सदस्य होते थे। गणराज्यों से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषयों जैसे-संधि विग्रह, कूटनीतिक सम्बन्ध राजस्य संग्रह आदि के ऊपर केन्द्रीय समिति के सदस्य संस्थागार में पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात बहुमत से निर्णय लेते थे। जब रोहिणी नदी के जल वितरण के सम्बन्ध में कोलियों तथा शाक्यों के कृषकों के बीच विवाद हुआ तो उन्होंने अपने-अपने अधिकारियों को सूचित किया तथा अधिकारियों ने अपने राजाओं को बताया। राजाओं ने इन विषयों पर पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात युद्ध का निर्णय लिया। इस प्रकार कोशल विडूडभ द्वारा शाक्य गणराज्य पर आक्रमण किये जाने तथा उनकी राजधानी का घेरा डालकर उनसे आत्म समर्पण के लिए कहे जाने पर शाक्यों ने अपने संस्थागार में आत्म समर्पण अथवा युद्ध करने के ऊपर विचार विमर्श किया। अन्त में बहुमत से आत्म समर्पण का निर्णय लिया गया। लिच्छवि गणराज्य में सेनापति के चुनाव का भी एक विवरण प्राप्त होता है। तदनुसार सेनापति घण्ड की मृत्यु के बाद सेनापति सिंह को नियुक्त संस्थागार के सदस्यों द्वारा निर्वाचन के आधार पर की गयी थी। कुशीनारा के मल्लों ने बुद्ध की अन्त्येष्टि तथा उनकी धातुओं के विषय में अपने संस्थागार में विचार-विमर्श किया था। गणराज्यों की शासन व्यवस्था को हम निम्न बिंदुओं से वर्णित करेंगे।

2.31 गणराज्यों का प्रधान

गणराज्यों का एक प्रधान होता था। जो गणमुख्य कहलाता था। वह सम्भवतः दस वर्षों के लिए निर्वाचित किया जाता था। राज्य की कार्यपालिका शक्ति उसी में निहित रहती थी। वह परिषद

के निश्चय के अनुसार अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों की सहायता से गण का शासन चलाता था। राज्य की सर्वोच्च सत्ता एक निर्वाचित संस्था के हाथों में होती थी जो परिषद कहलाती थी। परिषद का चुनाव कैसे होता था इस सम्बन्ध में अभी तक कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। गणराज्यों की शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत तीन प्रमुख विभाग होते थे। सैन्य विभाग, अर्थविभाग तथा न्याय विभाग। सैन्य विभाग का अध्यक्ष सेनापति होता था। अर्थ विभाग का प्रधान अधिकारी भंडागारिक कहलाता था। गणराज्यों की न्याय व्यवस्था स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर आधारित थी। व्यक्ति की स्वतंत्रता को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। न्याय करने के लिए कई तरह के न्यायालयों की व्यवस्था की गयी थी। एक न्यायालय महातात्रों का था। दूसरा न्यायालय व्यावहारिकों का था और तीसरा न्यायालय सूत्रधारों का। सर्वोपरि अपील का न्यायालय होता था। निम्न स्तर के न्यायालयों के फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती थी। इन सभी न्यायालयों को अपने निश्चित कार्यालय होते थे।

2.32 परिषद की कार्य विधि

जिस सदन में परिषद की बैठकें होती थी। उसे संस्थागार कहा जाता था इसकी बैठक निश्चित समय पर होती थी। संस्थागार का अधिवेशन तभी वैध हो सकता था जब सदस्यों की एक निश्चित संख्या (कोरम) उपस्थित हो। सभाभवन में सदस्यों के बैठने के लिए आसनों का प्रबन्ध "आसन्न पन्नापक" नामक एक पदाधिकारी करता था। विचारणीय विषय पर प्रत्येक सदस्य को बोलने का अधिकार था। कभी-कभी प्रस्ताव पाठ कई बार होता था। जो सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में होते थे वे मौन रहते थे और जो विपक्ष में होते थे बोलते थे। विवाद ग्रस्त प्रश्नों पर मतविभाजन होता था। मतविभाजन भिन्न-भिन्न रंगों की शलाकाओं के द्वारा होता था। एक रंग की शलाका एक प्रकार के मत को सूचित करती थी। शलाका को एकत्र करने वाला शलाकाग्राहक कहलाता था। अधिवेशन की पूर्ण कार्यवाही रखी जाती थी और यह कार्य लिपिकों द्वारा होता था। संस्थागार ही राज्य की सबसे बड़ी संस्था थी। इसी के द्वारा राजा, उपराजा, सेनापति एवं अन्य पदाधिकारी होते थे। राजनीति का निर्णय भी यहीं होता था। परिषद में जो प्रस्ताव उपस्थित किये जाते थे वे प्रतिज्ञा कहलाते थे। प्रतिज्ञा के नियमानुसार रखने को स्थापना कहा जाता था। प्रतिज्ञा के उच्च स्तर में घोषणा को अनुश्रावन कहा जाता था। प्रतिज्ञा का निर्वाचन होता था जिसे प्राप्ति प्रथम, प्राप्ति द्वितीय, प्राप्ति तृतीय आदि कहते थे। प्रत्येक प्रतिज्ञा पर वाद-विवाद होता था। परिषद के कार्यवाही के इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह एक लोकतांत्रिक व्यवस्था थी। मोरिय, कोलिय आदि छोटे गणराज्यों में सम्पूर्ण प्रबन्ध एक केन्द्रीय संस्थागार के द्वारा होता था। परन्तु शाक्यों और लिच्छवियों के गणतंत्र बड़े थे अतः केन्द्रीय संस्थागार के अतिरिक्त उनके प्रान्तीय संस्थागार भी होते थे।

2.33 न्याय व्यवस्था

गणराज्यों की न्याय व्यवस्था भी सुविकसित थी। दण्डविधान लिखित था। न्याय करने के लिए कई प्रकार के न्यायालय थे। फौजदारी तथा दीवानी के मुकदमों का अलग-अलग न्यायालयों में फैसला होता था। सबसे ऊपर अपीलिय न्यायालय थे। न्यायालयों की कार्य प्रणाली भी सुनिश्चित थी। लिच्छवियों की न्याय व्यवस्था विचित्र थी। कहा जाता है कि न्याय प्रशासन के लिए आठ नियमित न्यायालयों की एक श्रृंखला थी। किसी अभियुक्त को तभी दण्ड दिया जा सकता था जबकि सभी आठ न्यायालय उसे अपराधी तथा दण्ड का भागी ठहराते। यदि एक न्यायालय उसे छोड़ देता, तो उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता था। इससे स्पष्ट है कि इन गणराज्यों में नागरिक की स्वतंत्रता के विषय में ऐसा लोकतांत्रिक दृष्टिकोण प्रचलित था जिसका समानान्तर उदाहरण विश्व के इतिहास में सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिलेगा।

बौद्ध साहित्य में उल्लेख आता है कि एक बार बुद्ध ने वज्जियों के संविधान की प्रशंसा करते हुए कहा था कि जब तक वज्जि अपने संविधान को कायम रखे हुए हैं और उसके अनुसार काम

करते हैं तब तक उनकी शक्ति का खात्मा नहीं हो सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्धकालीन भारत में दो राजनीतिक प्रवृत्तियाँ राजतंत्रात्मक एवं गणतंत्रात्मक साथ-साथ पायी जाती हैं। यद्यपि गणराज्यों का प्रचलन इस समय था परन्तु कालान्तर में वे बढ़ते साम्राज्यवाद के शिकार बन गये और उनका ही अस्तित्व समाप्त हो गया।

2.34 सामाजिक व्यवस्था

इस काल में न तो वैदिक काल जैसी सामाजिक उदारता थी और न ही महाकाव्य काल जैसी जटिलता। व्यवसाय तथा विवाह की पूर्ण स्वतंत्रता थी। कई ब्राह्मण इस समय कृषि तथा व्यापार का कार्य करते थे। यह वहीं समय है जब ब्राह्मणों के सम्मान में कमी आने लगी थी। इस काल में ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनसे विदित होता है कि क्षत्रीय ब्राह्मणों के बताये मार्ग पर बिना सोचे समझे नहीं चलते थे।

अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित हो गये थे। साधारणतया विवाह माता-पिता के इच्छानुसार ही होते थे। स्वयंवर तथा गन्धर्व विवाह भी प्रचलित थे। जैस वत्स के राजा उदयन के साथ अवन्ति के राजा प्रद्योत की कन्या का विवाह हुआ। दहेज की प्रथा प्रचलित थी। बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। नैतिक स्तर पर इस समय उच्च था। स्त्रियाँ पति की इच्छा के अनुसार चलती थी।

2.35 आर्थिक जीवन

इस समय के लोगों का भी प्रधान व्यवसाय कृषि था। गन्ने तथा धान की खूब खेती होती थी। खेत अधिकतर छोटे होते थे। देश का आंतरिक तथा वाह्य व्यापार उन्नत था। व्यापारियों के काफिले चला करते थे। मुख्य व्यापार गलगल, रेशमी वस्त्र, कढ़े हुए कपड़े, औषधि, आभूषण, तथा अस्त्र-शस्त्र होता था। जातक कथाओं में ऐसा उल्लेख मिलता है कि स्थल मार्ग से व्यापारियों के काफिले बैलगाड़ियों के द्वारा चला करते थे। इस काल की अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

2.36 धार्मिक अवस्था

जनपद काल में महाकाव्य काल के समान आधुनिक हिन्दू धर्म का स्वरूप जम गया था। हिन्दू धर्म में जटिलता बहुत आ गयी थी। इससे धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात सा होने लगा था। ब्राह्मणों की पहले से ही समाज में जेष्ठता कायम थी जिससे लोग अपनी स्वतंत्रता में कभी महसूस करने लगे थे। ज्ञान की खोज करने वाले अब अधिक शास्त्रार्थ करने लगे थे। लोगों में शास्त्र का कहना क्या है इस बात पर झगड़े होने लगे थे। इसीलिए सूत्रों के भाष्य बनने लगे तथा धर्म के क्षेत्र में अलग-अलग धाराएँ प्रवाहित हुईं।

2.37 सारांश

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि छठी ई. पू. में गणतंत्रीय शासन प्रणाली स्थापित हो चुकी थी। इन गणराज्यों में ग्राम पंचायतें भी होती थी। जो राजतंत्रात्मक राज्यों की ग्राम पंचायतों के समान ही अपना कार्य करती थी। तथा कृषि, व्यापार, उद्योग आदि के विकास का ध्यान रखती थी। गणराज्यों के विधान तथा शासन के विषय में हमें जो थोड़ी बहुत सी सूचना मिलती है उससे स्पष्ट होता है कि वे राज्य बड़े समृद्ध तथा सुव्यवस्थित रहे होंगे। सम्पन्न एवं खुसहाल रहे होंगे। प्रशासनिक कार्यों में उनका भी सहयोग एवं भागीदारी रही होगी।

2.38 अभ्यासार्थ प्रश्न

- 1-प्राचीन भारत के गणतंत्रीय राज्यों की शासन व्यवस्था का वर्णन करो ?
- 2-प्राचीन भारत के प्रमुख गणराज्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए ?
- 3-प्राचीन भारत के गणराज्यों से पूर्व राजतंत्रों का विस्तृत वर्णन कीजिए ?
- 4-कपिलवस्तु के शाक्यों पर टिप्पणी लिखिए ?
- 5-गणराज्यों की परिषद की कार्य विधि पर टिप्पणी लिखो ?

6—गणराज्यों की न्याय व्यवस्था पर टिप्पणी लिखो ?

2.39 सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1—बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा
- 2—एल.पी. शर्मा, प्राचीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
- 3—के.सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद
- 4—डॉ. दीनदयाल वर्मा, प्राचीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली
- 5—बिपिन बिहारी सिन्हा, भारत का इतिहास, (प्राचीन काल से 1526 तक) ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली

चन्द्रगुप्त मौर्य एवं बिन्दुसार

3.1 प्रस्तावना	3.14 विभागीय व्यवस्था एवं आमात्य
3.2 उद्देश्य	3.15 प्रांतीय शासन
3.3 चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन परिचय	3.16 नगर शासन
3.4 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ	3.17 गुप्तचर व्यवस्था
3.5 नन्दों का उन्मूलन	3.18 न्याय व्यवस्था
3.6 सेल्यूकस के विरुद्ध युद्ध	3.19 अर्थव्यवस्था
3.7 चन्द्रगुप्त मौर्य की पश्चिमी विजय	3.20 सड़कें एवं सिंचाई व्यवस्था
3.8 चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिणी विजय	3.21 स्वास्थ्य, स्वच्छता भारत की जनगणना
3.9 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार	3.22 सैनिक शासन
3.10 चन्द्रगुप्त मौर्य का अंत	3.23 बिन्दुसार
3.11 राज्य सिद्धान्त	3.24 सारांश
3.12 राजा अथवा सम्राट	3.25 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.13 मंत्रीसभा तथा मंत्रीपरिषद	3.26 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

मौर्य वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य था। यूनानी आक्रमण से उत्पन्न संकट से ग्रस्त और मगध के अत्याचारी शासकों से त्रस्त जनता को मुक्ति दिलाने के लिए उसने आचार्य चाणक्य की सहायता से नन्दों का नाश कर अपना राज्य स्थापित किया। वह एक साहसी एवं महत्वाकांक्षी शासक था। उसने राज्य विस्तार के साथ जनता के हित में भी अनेक कार्य किया। यूनानियों को पराजित कर भारतीय क्षेत्र को प्राप्त करने एवं धनानन्द के कुशासन से जनता को मुक्त कराने के कारण उसे 'मुक्तिदाता' भी कहा जाता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि—

- मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन परिचय एवं उसकी उपलब्धियाँ
- चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रशासनिक व्यवस्था
- चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा जनहित में किये गये कार्य
- बिन्दुसार का जीवन परिचय एवं विदेशों के साथ सम्बन्ध

3.3 चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन परिचय

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन के ज्ञान के लिए हमें मुख्यतः बौद्ध स्त्रोतों पर ही निर्भर करना पड़ता है। यद्यपि वह साधारण कुल में उत्पन्न हुआ था तथापि बचपन से ही उसमें उज्ज्वल भविष्य के सूचक महानता के सभी लक्षण विद्यमान थे। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त का पिता मोरियनगर का प्रमुख था। जब वह अपनी माता के गर्भ में था तभी उसके पिता की किसी सीमान्त युद्ध में मृत्यु हो गयी। उसकी माता अपने भाईयों द्वारा पाटलिपुत्र में सुरक्षा के निहित पहुँचा दी गयी। यहाँ चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही वह एक गौपालक को समर्पित कर दिया गया। गौपालक ने गौशाला में अपने पुत्र के समान उसका लालन-पालन किया। कुछ बड़ा होने पर उसने उसे एक शिकारी के हाथों बेच दिया। शिकारी के ग्राम में वह बड़ा हुआ तथा उसे पशुओं की देख-भाल के लिए रख दिया गया। अपनी प्रतिभा के कारण उसने शीघ्र ही अपने समवयस्क बालकों

में प्रमुखता हासिल कर ली। वह बालकों की मंडली का राजा बनकर उनके आपसी झगड़ों का फैसला किया करता था। इसी प्रकार एक दिन जब वह 'राजकीलम' नामक खेल में व्यस्त था चाणक्य उधर से निकला। अपनी सक्षम दृष्टि से उसने इस बालक के भावी गुणों का अनुमान लगा लिया। उसने शिकारी को 1000 कार्षापण देकर चन्द्रगुप्त को खरीद लिया।

चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य तक्षशिला आया। तक्षशिला उस समय विद्या का प्रमुख केन्द्र था और चाणक्य वहाँ का आचार्य था। उसने चन्द्रगुप्त को सभी कलाओं तथा विधाओं की विधिवत शिक्षा दी। अतिशीघ्र वह सभी विधाओं में पारंगत हो गया। यह युद्ध विद्या में भी पर्याप्त निपुण हो चुका था। ऐसा लगता है कि तक्षशिला में ही सैनिक शिक्षा ग्रहण करते हुए वह अपने समय के एक महान विजेता सिकन्दर से मिला था तथा वह उसके सैनिक प्रशिक्षण का एक ही अंग था। इसके विषय में 'प्लूटार्क' तथा 'जस्टिन' जैसे लेखकों ने बड़ा ही रोचक विवरण दिया है। जस्टिन हमें बताता है कि सिकन्दर उसकी स्पष्टवादिता से बड़ा क्रोधित हुआ तथा उसे मार डालने का आदेश दिया, किन्तु शीघ्रता से भागकर उसने अपनी जान बताई।

3.4 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ

चाणक्य ने जिस कार्य के लिए चन्द्रगुप्त को तैयार किया था उसके दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला यूनानियों के विदेशी शासन से देश को मुक्त करना और दूसरा नन्दों के घृणित एवं अत्याचारी शासन की समाप्ति करना। यद्यपि इतिहासकारों में इस विषय में मतभेद है कि चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर भारत में यूनानियों से युद्ध किया अथवा मध्य के नन्दों का विनाश किया तथापि यूनानी रोमन एवं बौद्ध साक्ष्यों से जो संकेत मिलते हैं उनसे यही सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त ने पहले पंजाब तथा सिन्धु को ही विदेशियों की दासता से मुक्त किया था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में विदेशी शासन की निन्दा की है तथा उसे देश और धर्म के लिए अभिशाप कहा है। चन्द्रगुप्त ने बड़ी बुद्धिमानी से उपलब्ध साधनों का उपयोग किया तथा विदेशियों के विरुद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ दिया। उसने इस कार्य के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया। इस सेना के सैनिक अर्थशास्त्र के अनुसार निम्नलिखित वर्गों से लिए गये थे।

(1)—चोर अथवा प्रतिरोधक

(2)—मलेच्छ

(3)—चोरगण

(4)—आटविक

(5)—शस्त्रोपजीवी

जस्टिन चन्द्रगुप्त की सेना को डाकूओं का गिरोह कहता है। मेकिन्डल के अनुसार इससे तात्पर्य पंजाब के गणजातीय लोगों से है। जिन्होंने सिकन्दर के आक्रमण का प्रबल प्रतिरोध किया था। मुद्राराक्षस तथा परिशिष्टपर्वन से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को पर्वतक नाम एक हिमालय क्षेत्र के शासक से सहायता प्राप्त हुई थी।

कुछ विद्वानों ने इस शासक की पहचान 'पोरस' से की है किन्तु इसके पीछे कोई ठोस आधार नहीं है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ. ओम प्रकाश ने प्रचर्तक की पहचान अभिसार के शासक के साथ किये जाने के पक्ष में अपना मत प्रकट किया है। यह चन्द्रगुप्त का सौभाग्य है कि पंजाब तथा सिन्धु की राजनीतिक परिस्थितियाँ उसके पूर्णतया अनुकूल थीं। सिकन्दर के प्रस्थान के साथ ही इन प्रदेशों में विद्रोह उठ खड़े हुए तथा अनेक यूनानी क्षत्रप मौत के घाट उतार दिये गये। उनमें आपस में ही विद्वेष एवं घृणा की भावना बढ़ी। 325 ईसा पूर्व के लगभग ऊपरी सिन्धु घाटी के प्रमुख यूनानी क्षत्रप फिलिप द्वितीय की हत्या कर दी गयी। 323 ईसा पूर्व में सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् परिस्थितियाँ बिगड़ गईं तथा सिन्धु और पंजाब में सिकन्दर द्वारा स्थापित प्रशासन का ढाँचा ढहने लगा। इन प्रदेशों में घोर अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी जिसने चन्द्रगुप्त का कार्य सुगम

कर दिया। इन प्रदेशों में चन्द्रगुप्त की सफलता का संकेत इतिहासकार जस्टिन इन शब्दों में करता है। “सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् भारत ने अपनी गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंका तथा अपने गर्वनों की हत्या कर दी। इस स्वतंत्रता का जन्मदाता सान्ड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त) था। इस प्रकार जस्टिन के विवरण से ज्ञात होता है कि सिकन्दर के क्षत्रपों के निष्कासन अथवा विनाश के पीछे चन्द्रगुप्त का ही मुख्य हाथ था। ऐसा प्रतीत होता है कि फिलिप द्वितीय तथा सिकन्दर की मृत्यु के बीच के दो वर्षों (325–323 ईसा पूर्व) के काल में चन्द्रगुप्त ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यापक योजनायें तैयार कर लीं। अब उसकी तैयारी पूरी हो चुकी थी। उसने सर्वप्रथम एक सेना एकत्र कर अपने को राजा बनाया तथा फिर सिकन्दर के क्षत्रपों के विरुद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ दिया। 317 ईसा पूर्व में पश्चिमी पंजाब का अन्तिम यूनानी सेनानायक यूडेमस भारत छोड़ने के लिए बाध्य हुआ और इस तिथि तक सम्पूर्ण सिन्ध तथा पंजाब के प्रदेशों पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो चुका था।

वस्तुतः यह उसकी सुनियोजित योजना का फल था। जस्टिन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य तथा मेसीडोनियन क्षत्रपों के बीच भीषण युद्ध हुआ होगा तथा चन्द्रगुप्त मौर्य को बिना चुनौती दिये ही 317 ईसा पूर्व में शान्ति पूर्वक भारत छोड़ दिया। अब चन्द्रगुप्त मौर्य सिन्ध तथा पंजाब का एकच्छत्र शासक था।

3.5 नन्दों का उन्मूलन

सिन्ध तथा पंजाब में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य मगध की ओर अग्रसर हुए। मगध में इस समय धनानन्द का शासन था। अपने असीम सैनिक साधनों तथा सम्पत्ति के बावजूद भी वह जनता में लोकप्रियता अर्जित कर सकने में असफल रहा और यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। उसने एक बार चाणक्य को भी भरी सभा में अपमानित किया था जिससे क्रुद्ध होकर उसने नन्दों को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा ली थी। प्लूटार्क के विवरण से पता चलता है कि नन्दों के विरुद्ध सहायता याचना के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त पंजाब में सिकन्दर से मिला था। इतिहासकार हेमचन्द्र राय चौधरी ने उसके इस कार्य की तुलना मध्ययुगीन भारत के राजपूत शासक राणा संग्राम से की है। जिसने इब्राहिम लोदी का तख्ता पलटने के लिए मुगल सम्राट बाबर को आमंत्रित किया था। परन्तु चन्द्रगुप्त अपने उद्देश्य में असफल रहा। हम देख चुके हैं कि सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात किस प्रकार उसने यूनानी अधिकारियों की हत्या पंजाब और सिन्ध पर अधिकार कर लिया। अब उसके पास एक विशाल संगठित सेना थी जिसका उपयोग उसने नन्दों के विरुद्ध किया। दुर्भाग्यवश हमें किसी भी साक्ष्य से नन्दों तथा मौर्यों के बीच इस युद्ध का विवरण नहीं मिलता है। बौद्ध तथा जैन स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त ने नन्द साम्राज्य के केन्द्रीय भाग पर आक्रमण किया परन्तु सफलता नहीं मिली और उसकी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। अब उसे अपनी भूल ज्ञात हुई तथा उसने दूसरी बार सीमान्त प्रदेशों की विजय करते हुए नन्दों की राजधानी पर धावा बोला। ऐसा प्रतीत होता है कि नन्द मौर्य युद्ध बड़ा रक्तंजित रहा होगा। बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो में इस युद्ध का बड़ा ही रक्तंजित विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ में भट्टशाल नामक नन्दों के मंत्री का उल्लेख हुआ है। इसमें युद्ध के हताहतों की संख्या बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बतायी गई है। जो मात्र आलंकारिक प्रतीत होती है। इससे केवल इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि युद्ध बड़ा घमासान तथा भयंकर रहा। अन्ततः धनानन्द मारा गया और चन्द्रगुप्त का मगध साम्राज्य पर अधिकार हो गया। यह उसकी दूसरी महत्वपूर्ण सफलता थी। अब चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के एक विशाल साम्राज्य का शासक बन गया।

3.6 सेल्युकस के विरुद्ध युद्ध

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात उसके पूर्वी प्रदेशों का उत्तराधिकारी सेल्युकस हुआ। वह एन्टीओकस का पुत्र था। बेबीलोन तथा बैक्ट्रिया को जीतकर उसने पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली। वह अपने सम्राट द्वारा जीते गये भारत के प्रदेशों को पुनः अपने अधिकार में लेने को उत्सुक था।

इस उद्देश्य से 305 ईसा पूर्व के लगभग उसने भारत पर पुनः चढ़ाई की तथा सिन्धु तक पहुँचा। परन्तु इस समय का भारत सिकन्दरकालीन भारत से पूर्णतया भिन्न था। अतः सेल्युकस को विभिन्न छोटे-छोटे प्रदेशों के सरदारों के स्थान पर एक संगठित भारत के महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से युद्ध करना था। यूनानी लेखकों ने केवल इस युद्ध के परिणाम का ही उल्लेख किया है। अपिआनुस लिखते हैं कि 'सिन्धु नदी पार करके सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त से युद्ध किया। कालान्तर में दोनों में सन्धि हो गयी तथा एक वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हो गया' स्ट्रेबो के अनुसार 'उस समय भारतीय सिन्धु नदी के समीपवर्ती भाग में रहते थे। यह भाग पहले पारसीकों के अधीन था। सिकन्दर ने इसे जीतकर वहाँ अपना प्रान्त स्थापित किया। किन्तु सेल्युकस ने इन्हें सान्द्रोकोटस को वैवाहिक सम्बन्ध के फलस्वरूप दे दिया तथा बदले में पाँच सौ हाथी प्राप्त किये। इन विवरणों से ऐसा संकेत मिलता है कि सेल्युकस युद्ध में पराजित हुआ। फलस्वरूप चन्द्रगुप्त तथा सेल्युकस के बीच एक संधि हुई जिसकी शर्तें निम्नलिखित थी।

1-सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त को आरकोसिया और पेरोपनिसडाई के प्रान्त तथा हेरात एवं जेड्रोसिया की क्षत्रपियों के कुछ भाग दिये।

2-चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस को 500 भारतीय हाथी उपहार में दिये।

3-दोनों नरेशों के बीच एक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार सेल्युकस ने अपनी एक पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। परन्तु उपलब्ध प्रमाणों से इस प्रकार की कोई सूचना नहीं मिलती।

4-सेल्युकस ने मेगस्थनीज नामक अपना एक दूत चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा। वह बहुत दिनों तक पाटलिपुत्र में रहा तथा भारत पर उसने 'इण्डिका' नामक एक पुस्तक की रचना की थी।

यह निश्चय ही चन्द्रगुप्त की एक महत्वपूर्ण सफलता थी। इससे उसका साम्राज्य भारतीय सीमा का अतिक्रमण कर पारसीक साम्राज्य की सीमा को स्पर्श करने लगा तथा उसके अन्तर्गत अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग भी सम्मिलित हो गया। चन्द्रगुप्त के कन्धार पर आधिपत्य की पुष्टि वहीं से प्राप्त हुए अशोक के लेख से भी हो जाती है क्योंकि अशोक अथवा बिन्दुसार ने इस भाग की विजय नहीं की थी। भारत ने सिकन्दर के हाथों हुई अपनी पराजय का बदला ले लिया। इस समय से भारत तथा यूनान के बीच राजनैतिक सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ जो बिन्दुसार तथा अशोक के समय में भी बना रहा।

3.7 चन्द्रगुप्त मौर्य का पश्चिम भारत की विजय

शक महाक्षत्रप रुद्रदामन के गिरनार अभिलेख (150 ई0) से इस बात की सूचना मिलती है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत में सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) तक प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत कर लिया था। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस प्रदेश में पुष्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल था और उसने वहाँ सुदर्शन झील का निर्माण कराया था। सुराष्ट्र प्रान्त के दक्षिण में सोपारा नामक स्थान से चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक का अभिलेख प्राप्त हुआ है, परन्तु अशोक अपने अभिलेखों में इस प्रदेश को जीतने का दावा नहीं करता। अतः इससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सुराष्ट्र के दक्षिण में सोपारा तक का प्रदेश भी चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा ही विजित किया गया था।

3.8 चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण भारत की विजय

चन्द्रगुप्त मौर्य की विजय के सम्बन्ध में अशोक के अभिलेखों तथा जैन एवं तमिल स्त्रोतों से कुछ जानकारी प्राप्त होती है। दक्षिण भारत में कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के कई स्थानों से अशोक के लेख मिलते हैं, जैसे सिद्धपुर, ब्रह्मगिरि, जटिंगरामेश्वर, पहाड़ी (कर्नाटक राज्य के चित्तलदुर्ग जिले में स्थित) गोविभट, पालकिक, गुण्डु, मास्की तथा गूटी (आन्ध्र प्रदेश के करनूल जिले में स्थित) अशोक स्वयं अपने चोल पाण्डेय सतियुपुत्र तथा केरलपुत्र जातियों का उल्लेख करता है। उसके

तेरहवें अभिलेख से ज्ञात होता है कि दक्षिण में उसने केवल कलिंग की ही विजय की थी। जिसके पश्चात उसने युद्ध कार्य पूर्णतया बन्द कर दिया। ऐसी स्थिति में दक्षिण में उत्तरी कर्नाटक तक की विजय का श्रेय हमें या बिन्दुसार को अथवा चन्द्रगुप्त मौर्य को देना पड़ेगा। बिन्दुसार की विजय अत्यन्त संदिग्ध है और इतिहास उसे विजेता के रूप में स्मरण नहीं करता। अतः यही मानना तर्कसंगत लगता है कि चन्द्रगुप्त ने ही इस प्रदेश की विजय की होगी।

चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण भारतीय विजय के विषय में जैन व बौद्ध और तमिल स्त्रोतों से भी कुछ संकेत मिलते हैं। जैन परम्परा के अनुसार अपनी वृद्धावस्था में चन्द्रगुप्त ने जैन साधु भद्रबाहु की शिष्यता ग्रहण की तथा दोनों श्रवणबेलगोला नामक स्थान पर आकर बस गये। यहीं चन्द्रगिरि नामक पहाड़ी पर चन्द्रगुप्त तपस्या किया करता था। यदि इस परम्परा का विश्वास किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसी स्थान पर तपस्या के लिए गया होगा जो उसके साम्राज्य में स्थित हो। इससे श्रवणबेलगोला पर उसका अधिकार प्रमाणित होता है। तमिल परम्परा से ज्ञात होता है कि मौर्यों ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण क्षेत्र में 'मोहर' के राजा पर आक्रमण किया तथा इस अभियान में कौशल और वडडगर नामक दो मित्र जातियों ने उसकी मदद की थी। इस परम्परा में नन्दों की अतुल सम्पत्ति का एक उल्लेख मिलता है जिससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तमिल लेखक मगध के मौर्यों का विवरण दे रहे हैं जो नन्दों के उत्तराधिकारी थे। इस परम्परा में मौर्यों द्वारा तमिल प्रदेश की विजय का विवरण सुरक्षित है। निःसन्देह चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में हुई होगी। यही उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त जैन तथा तमिल परम्पराओं को अनेक विद्वान ऐतिहासिक नहीं मानते। अतः इनमें हम बहुत अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

3.9 चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार

इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार सम्पूर्ण भारत में फैल गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि 'उसने छः' लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला और उस पर अपना अधिकार कर लिया। जस्टिन के विवरण से भी पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत उसके अधिकार में था। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की जो परम्परा बिम्बिसार के समय से प्रारम्भ हुई थी, चन्द्रगुप्त के समय में वह पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उसका विशाल साम्राज्य उत्तर पश्चिम में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था। पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तथा सोपारा तक का सम्पूर्ण प्रदेश उसके साम्राज्य के अधीन था। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार हिन्दुकुश पर्वत भारत की वैधानिक सीमा थी। यूनानी लेखक इसे पैरापेनिसस अथवा इण्डियन काकेशस कहते थे। यही चन्द्रगुप्त तथा सेल्युकस के साम्राज्यों की सीमा थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस को हराकर भारत की उस वैधानिक सीमा पर अधिकार कर लिया था जिसे प्राप्त करने के लिए मुगल तथा अंग्रेज शासक व्यर्थ का प्रयास करते रहे। पाटलिपुत्र इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी।

3.10 चन्द्रगुप्त मौर्य का अन्त

चन्द्रगुप्त एक महान विजेता साम्राज्य निर्माता एवं कुशल प्रशासक था। एक सामान्य कुल में उत्पन्न होते हुए भी अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर वह एक सार्वभौम सम्राट के पद पर पहुँच गया। उसने देश में पहली बार एक सुसंगठित शासन व्यवस्था की स्थापना की और वह व्यवस्था इतनी उच्चकोटि की थी कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श स्वरूप बनी रही। वह एक धर्म-प्राणयन व्यक्ति था। जैन परम्पराओं के अनुसार अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह जैन हो गया। भद्रबाहु की शिष्यता ग्रहण कर ली। चन्द्रगुप्त मौर्य न केवल एक महान विजेता था बल्कि एक कुशल शासन प्रबन्धक भी था। जिस शासन व्यवस्था को उसने स्थापित किया वह मौर्य वंश के अन्त तक शासन का मुख्य आधार बनी रही। उसके उत्तराधिकारियों में से सम्राट अशोक ने राज्य के कर्तव्यों की व्याख्या को विस्तृत करके सम्राट और उसके शासनाधिकारियों के दृष्टिकोण को उदार

सहनशील और विस्तृत अवश्य बनाया परन्तु शासन के मूल ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया। चन्द्रगुप्त के शासन को जानने के मुख्य साधन कौटिल्य का ग्रन्थ अर्थशास्त्र और यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के विवरण हैं। उनसे हमें न केवल चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था का ही बोध होता है अपितु उस समय के राजनीतिक सिद्धान्त, राज्य और राजा के अधिकार तथा कर्तव्य, जन-जीवन और विभिन्न राज्यों के पारम्परिक सम्बन्धों के आदर्श आदि का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

3.11 राज्य सिद्धान्त

मौर्य युग तक राजा का अधिकार वंशानुगत बन चुका था और दैवी-सिद्धान्त के आधार पर उसका सर्वाधिकार माना जाने लगा था। इस कारण राजा के अधिकारों में असाधारण वृद्धि हो गयी थी। परन्तु राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उसके अधिकारों में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके कर्तव्यों में भी वृद्धि हुई थी। इसी कारण राजा की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। राजा के अधिकार उसके मंत्रियों और उसके स्वयं के सार्वजनिक उत्तरदायित्वों द्वारा सीमित होते थे। राज्य का प्रधान होने के नाते राजा का कर्तव्य राजव्यवस्था को स्थापित रखना था। राजा का कर्तव्य राजधर्म की स्थापना था। जिसका अर्थ राज्य के सभी नागरिकों की सर्वाधिक उन्नति करना था। इस दृष्टि से व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों में भी अंतर नहीं किया जाता था। प्रत्येक कार्य जो व्यक्ति की भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक था उसकी पूर्ति करना और कराना राज्य का कर्तव्य माना जाता था। इसके अन्तर्गत एक परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को ठीक बनाये रखने से लेकर व्यापार और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण तक का अधिकार और उत्तरदायित्व राज्य का था। एक राजा का कर्तव्य था कि वह अपने राज्य की समृद्धि और शक्ति का विस्तार करे तथा उसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद में से किसी भी एक अथवा इनमें से प्रत्येक को अपनाए। ऐसी स्थिति में विभिन्न राज्यों के सम्बन्ध केवल शत्रुता के ही हो सकते थे। कौटिल्य के अनुसार 'एक राज्य के दूसरे राज्य से सम्बन्ध केवल भौतिक लाभ के आधार पर ही होने चाहिए' राज्य की इस व्यवस्था के कारण एक राजा के लिए सम्पूर्णतः प्रभुत्व सम्पन्न होना तो आवश्यक था परन्तु वह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धान्त या राज्य के सात तत्वों के सिद्धान्त का विश्लेषण किया है। ये सात तत्व स्वामिन (राजा), अमात्य (मंत्री), जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र हैं। उसकी सर्वांगीण शक्तियों का प्रयोग राज्य और राज्य की सर्वांगीण उन्नति के लिए किया जाना आवश्यक था। मौर्य सम्राटों ने इसी आधार पर अपनी शासन व्यवस्था को स्थापित किया। चन्द्रगुप्त से लेकर अशोक तक का शासन व्यवस्था का आधार यही था।

3.12 राजा अथवा सम्राट

राजा राज्य का प्रधान होता था। वह कानून बनाने, कानूनों को लागू करने और न्याय करने में राज्य का सर्वोपरि अधिकारी था। उसका अधिकार वंशानुगत था और उसके अधिकारों पर कोई सीमा नहीं थी। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से मौर्य सम्राट स्वेच्छाचारी नहीं थे वे अपने अधिकारों का प्रयोग अपने मंत्रियों की सलाह से राज्य धर्म का पालन करते हुए अपनी सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति के लिए करते थे। भविष्य में राजा बनने वाले राजकुमारों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था और उनमें से जो योग्य नहीं हो पाता था वह सिंहासन पर अपना अधिकार खो देता था। राजा अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति था। उसके रात और दिन के कार्य की पूर्ति करनी होती थी। वह राजा के धन, सेना, राज्यादेश और न्याय में स्वयं रूचि लेता था। चन्द्रगुप्त व्यस्तता एवं कठिनाई के कारण छः घण्टे सो पाता था। अपने शरीर की मालिश कराते हुए अथवा बालों की कंघी करते हुए भी वह अपने गुप्तचरों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को सुनता था और उन्हें आदेश देता था। जनसाधारण को राजा से मिलने की सुविधा प्राप्त थी। राजा का मुख्य उत्तरदायित्व अपनी प्रजा की रक्षा और भलाई करना था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है 'प्रजा की प्रसन्नता में उसकी प्रसन्नता है प्रजा के हित में उसका हित है। वह स्वयं को प्रसन्न करने वाले कार्य को उचित न मानकर उसी कार्य को ठीक एवं

करने योग्य मानेगा जो उसकी प्रजा को प्रसन्न करता है। इस कार्य की पूर्ति करने के बदले में ही प्रजा उसे कर देती थी। राज्य की आय से राजा को व्यक्तिगत दृष्टि से सभी सुख सुविधाएँ प्राप्त थी। वह विशाल महल में रहता था। चन्द्रगुप्त के महल की प्रशंसा मेगस्थनीज ने अपने विवरण में किया है। राजा के स्त्री शरीर रक्षक (अंगरक्षक) होते थे। उसके जीवन की रक्षा के लिए समुचित व्यवस्था की जाती थी, यहाँ तक कि उसके भोजन तक की भी जाँच की जाती थी। कोई उसे विष न दे दे अथवा कोई स्त्री भी उसकी हत्या न कर दे, इसका पूर्ण प्रबन्ध किया जाता था। राजा का प्रमुख कार्य सेना का सेनापतित्व और राज्य का विस्तार करना था।

3.13 मंत्रीसभा और मंत्रीपरिषद

कौटिल्य के अनुसार 'राजा को परामर्श देने के लिए दो सभाएँ थी। एक 'मंत्रीसभा' और दूसरी 'मंत्रीपरिषद' कौटिल्य का कहना था कि "सम्प्रभुता" (राजसत्ता का उपभोग) केवल उनकी सहायता से ही सम्भव है। उसका अभिप्राय था कि मंत्रियों की ये सभाएँ आवश्यक ही नहीं अपितु प्रभावपूर्ण भी होती थी। मंत्रीसभा के सदस्यों की तीन या चार तक सीमित हो सकती थी और राजा उसके सदस्यों को केवल उनकी योग्यता के आधार पर नियुक्त करता था। कभी-कभी उनमें से किसी एक को मुख्य अथवा प्रधान मंत्री भी बनाया जा सकता था। प्रत्येक मंत्री एक प्रशासकीय विभाग का प्रधान होता था परन्तु राजा को सलाह वे सम्मिलित होकर ही देते थे। प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय पर पहले मंत्रीसभा विचार करती थी। मंत्रीपरिषद एक बड़ी परिषद थी जिसमें 12, 16 अथवा 20 सदस्य होते थे। परन्तु कौटिल्य के अनुसार उसके सदस्यों की संख्या में राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप वृद्धि की जा सकती थी। संभवतः उसका स्थान वैदिक काल की सभा अथवा समिति के अनुरूप था। इसी कारण कौटिल्य ने मंत्रीसभा और मंत्रीपरिषद में अंतर किया था। मंत्रीसभा तथा मंत्रीपरिषद राजा को शासन में सलाह देने वाली समितियाँ ही न थी अपितु वे उसे शासन करने में भी सहायता देती थी। इनमें मंत्री सभी का स्थान निःसन्देह श्रेष्ठ था। यद्यपि कानूनी आधार पर राजा इनकी सलाह को मानने के लिए बाध्य न था परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उसे मंत्री सभी के निर्णयों को स्वीकार करना पड़ता था।

3.14 विभागीय व्यवस्था एवं अमात्य

मौर्य शासन व्यवस्था अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं केन्द्रित नौकरशाही पर आधारित थी। प्रशासन संचालनों के लिए केन्द्रीय शासन कई विभागों में विभक्त था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सबसे श्रेष्ठ स्तर के पदाधिकारियों को तीर्थ पुकारा है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष, महकमे को एक या दो विषय सौंपे जाते थे और प्रत्येक विभाग का संचालन और निरीक्षण एक अध्यक्ष करता था जिसे अमात्य कहा जाता था। अमात्यों, अध्यक्षों और अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं सम्राट चन्द्रगुप्त करता था। प्रशासन की यह व्यवस्था भारत सहित अनेक देशों में आज भी अपना रखी है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 18 तीर्थों का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त खानों, सिक्के ढालने, नमक बनाने, राज्य व्यापार, जंगल शस्त्रालय, नाप-तोल, चुंगी, चारागाह, कृषि, व्यापार, बन्दरगाह की देखभाल आदि के लिए अन्य अधिकारी होते थे। इन विभिन्न अधिकारियों को तीर्थ, अमात्य, अध्यक्ष आदि के पद दिये जाते थे। अध्यक्षों के अधीन कर्मचारियों को युक्त और उपयुक्त पुकारते थे। मौर्य शासन प्रणाली अपनी नौकरशाही की योग्यता और वफादारी पर निर्भर करता था। मौर्य-साम्राज्य के विशाल आधार को देखते हुए कोई असाधारण बात न थी। प्रो. के.ए. नीलकण्ठशास्त्री ने लिखा 'मौर्य कालीन नौकरशाही अत्यन्त विशाल एवं बड़ी संख्या में थी, और वह देश के प्रत्येक आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त थी।

3.15 प्रान्तीय शासन

मौर्य साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। इस कारण शासन का विकेन्द्रीयकरण करना आवश्यक हो गया था मौर्य साम्राज्य में दो प्रकार के प्रान्त थे। एक वे प्रान्त जो अधीनस्थ शासकों के राज्य थे। जिन्हें शासन के अधिकार दे दिये गये थे यद्यपि वे सम्राट नियंत्रण में थे। और दूसरे वे प्रान्त जो मौर्य-सम्राटों के राज्य को विभिन्न हिस्सों में बाँटकर शासन की इकाईयों के रूप में बनाये गये थे। अशोक के समय में चार प्रान्तों का उल्लेख मिलता है। उत्तरापथ जिसकी राजधानी तक्षशिला थी, अवन्ति राष्ट्र जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी, कलिंग प्रान्त जिसकी राजधानी तोसलि या धौली थी और दक्षिणापथ जिसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी। साम्राज्य का पाँचवा भाग प्राची था जहाँ स्वयं सम्राट राजधानी पाटलिपुत्र से शासन करता था। प्रान्तों में प्रान्तपति के रूप में अधिकांशतया राजकुमार नियुक्त किये जाते थे। उन्हें कुमार महामात्य कहकर पुकारा जाता था। अन्य प्रान्तों के प्रान्तपति को केवल महामात्र पुकारा जाता था। चन्द्रगुप्त के समय में कितने प्रान्त थे यह स्पष्ट नहीं है। परन्तु अशोक के समय में कम से कम चार प्रान्त अवश्य थे जिनकी राजधानियाँ क्रमशः तक्षशिला, तोसलि, सुवर्णगिरि, और उज्जयिनी थीं। मगध और उसके निकट का शासन सम्राट स्वयं अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से करता था। प्रान्तों के महामात्र सम्राट के आदेशानुसार प्रान्तों का शासन करते थे। प्रान्त के राट्टिक (महामात्र) को 1200 पर्ण वार्षिक वेतन दिये जाने का अर्थशास्त्र में विवरण मिलता है।

परन्तु निःसन्देह उनके विस्तृत अधिकार होंगे, यह विश्वास किया जा सकता है। उनकी सहायता के लिए भी मंत्रीपरिषद जैसी सलाहकारों की समिति अवश्य होगी। दिव्यादान के कुछ उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रान्तीय मंत्रीपरिषदों से सम्राट सीधा सम्पर्क रखता था। प्रान्तीय शासन में महामात्र की सहायता के लिए अनेक अधिकारियों की अपनी मंत्रीपरिषद होती थी। उनमें से युक्त (कर अधिकारी), राजुक (लगान अधिकारी), प्रादेशिक पटिवेदक आदि मुख्य अधिकारी थे। प्रत्येक प्रान्त शासन की सुविधा के लिए उपखण्डों अथवा जिलों में बाँटा होता था। प्रत्येक जिले का अधिकारी स्थानिक कहलाता था। स्थानिकों के नीचे 'गोप' नामक अधिकारी था। गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई था जहाँ ग्रामिक नामक एक अधिकारी होता था। ग्रामिक की सरकार द्वारा नियुक्ति की जाती थी परन्तु कहीं-कहीं उसका निर्वाचन भी होता था। वह गाँव के व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित ग्राम सभा की सहायता से गाँव का शासन करता था। ग्राम सभा गाँव की सफाई स्वच्छता शासन पुल और सड़क निर्माण कार्य आदि करने के अतिरिक्त न्याय के भी अधिकार थे।

3.16 नगर शासन

नगर शासन की बहुत अच्छी व्यवस्था थी। शासन के लिए नगर वार्डों में बाँटा होता था। वार्ड का अधिकारी स्थानिक होता था। वार्ड को भी अन्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटा जाता था और ऐसे प्रत्येक टुकड़े की जिसमें कई परिवारों के मकान सम्मिलित होते थे। गोप नामक अधिकारी देखभाल करता था। सम्पूर्ण नगर की देखभाल के लिए एक बड़ा अधिकारी होता था जिसकी सहायता के लिए म्यूनिसिपल बोर्ड की भाँति एक सभा होती थी। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र और नगर व्यवस्था का विशद वर्णन किया है। उसी प्रकार की व्यवस्था अन्य बड़े नगरों में भी होती होगी यह अनुमान किया जाता है। मेगस्थनीज के अनुसार 'पाटलिपुत्र 15 किलोमीटर लम्बा और 2.80 किलोमीटर चौड़ा नगर था। वह सोन तथा गंगा नदी के संगम पर स्थित था। उसकी रक्षा के लिए उसके चारों ओर लकड़ी की दीवार थी और दीवार के बाहर 18 मीटर चौड़ी खाई थी। दीवार में 64 दरवाजे और 570 खिड़कियाँ थी। नगर अधिकारी नगर शासन की देखभाल करती थी। नगर की स्वच्छता तथा उसे आग से बचाने का विशेष प्रबन्ध किया गया था। नगर में सड़क, पदमार्ग मंदिर, कुँए, अस्पताल, तालाब, बाग, खेलकूद के मैदान आदि सभी की उचित व्यवस्था थी। नगर निर्माण एक योजनाबद्ध तरीके से किया गया था। इस प्रकार पाटलिपुत्र एक अत्यन्त सुन्दर और अच्छे ढंग से प्रशासित नगर था।

3.17 गुप्तचर व्यवस्था

मौर्य शासकों की गुप्तचर व्यवस्था बहुत श्रेष्ठ थी। गुप्तचर दो प्रकार के थे प्रथम संख्या जो एक ही स्थान पर रहते हुए भेष बदलकर सूचनाएँ एकत्रित करते थे। दूसरे संचार जो घूम-घूमकर सूचनाएँ एकत्रित करते थे। राज्य के विभिन्न भागों से सभी सूचनाएँ सम्राट के पास पहुँचायी जाती थी। स्त्रियाँ गुप्तचर भी रखी जाती थी जिसे कूटनी कहा जाता था। विदेशी में भी गुप्तचर भेजे जाते थे। सम्राट के गुप्तचरों के अतिरिक्त राज्य के सभी प्रमुख अधिकारी अपने-अपने गुप्तचरों की नियुक्ति करते थे। कौटिल्य और चन्द्रगुप्त ने इस व्यवस्था को बहुत अधिक महत्व दिया था।

3.18 न्याय व्यवस्था

मौर्य शासकों की दण्ड व्यवस्था कठोर थी। साधारण अपराधों के लिए जुर्माना किया जाता था और व्याभिचार की सजा अंग-विच्छेद थी। परन्तु गम्भीर अपराधों के लिए जैसे शिल्पी को चोट पहुँचने अथवा बिक्री कर न देने पर मृत्यु दण्ड दिया जाता था। इस कठोर दण्ड व्यवस्था के कारण अपराध कम होते थे। न्यायालय दो प्रकार के होते थे। केन्द्रीय और स्थानीय। केन्द्रीय न्यायालयों में दो न्यायालय थे एक स्वयं सम्राट का और दूसरा मुख्य न्यायाधीश का। मुख्य न्यायाधीश की सहायता के लिए 4 या 5 अन्य न्यायाधीश होते थे। स्थानीय न्यायालय तीन प्रकार के होते थे। प्रथम प्रकार के न्यायालय किसी भी स्थान के नागरिकों द्वारा न्याय करने के लिए स्वयं बना लिये जाते थे। दूसरी प्रकार के न्यायालय संघों के होते थे और तीसरे प्रकार के न्यायालय ग्राम सभाएँ थी। फौजदारी के न्यायालयों को कण्टकशोधन और असैनिक न्यायालयों को धर्मस्थनीय पुकारते थे।

3.19 अर्थव्यवस्था

राज्य की आय का मुख्य साधन भूमिकर था। जो साधारणतया पैदावार का 1/4 भाग से 1/6 भाग होता था। परन्तु विभिन्न स्थानों पर भूमि की उर्वरता में अन्तर होने के कारण इससे कम या अधिक भी लगान लिया जाता था। राज्य लगान समूचे गाँव से नहीं बल्कि पृथक-पृथक किसानों से वसूल करता था। भूमि पर राज्य का स्वामित्व स्वीकार कर लिया गया तथा राज्य अपने और किसानों के बीच किसी अन्य व्यक्ति अथवा संस्था को स्वीकार नहीं करता था। राज्य जंगलों को साफ कराकर कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करता था और वहाँ खेती करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में बहुसंख्यक प्रदेशों से दासों को लाया जाता था। कलिंग युद्ध के पश्चात प्रायः डेढ़ लाख व्यक्तियों के वहाँ के जंगल साफ करने और नवीन भूमि पर खेती करने के लिए लाया गया था। एक व्यक्ति जब तक संतान उत्पन्न करने की स्थिति में होता था तब तक वह संयास ग्रहण नहीं कर सकता था। एक व्यक्ति यदि अपनी पत्नी और अपने ऊपर आश्रित रहने वालों को जीवन की आवश्यकताओं को उपलब्ध कराये बिना संयास ग्रहण करता था तो दण्ड का भागी होता था। कोई भी संयासी राज्य द्वारा नवस्थापित गाँवों में प्रवेश नहीं कर सकता था। निम्न श्रेणी के व्यक्तियों की समुदाय बनाने की आज्ञा नहीं थी। नवस्थापित गाँवों में गायक, नृतक, नाटककार आदि प्रवेश नहीं पा सकते थे। क्योंकि उससे गाँव व्यक्तियों का ध्यान कृषि उत्पादन से हट सकता था। कृषि उत्पादन में वृद्धि से व्यापार की भी प्रगति हुई थी। मौर्य शासन के प्रारम्भ में ही प्रचुर मात्रा में मुद्रा का प्रचलन होना बढ़ते हुए व्यापार का प्रमाण है। राज्य अपने अधिकारियों को वेतन भी सिक्कों में देता था। व्यापार की देखभाल करने वाला अधिकारी पण्थाध्यक्ष कहलाता था जो न केवल वस्तुओं की कीमतें निश्चित करता था अपितु किसी वस्तु का अभाव न हो इसका भी नियंत्रण करता था। राज्य न केवल व्यापार और उद्योगों की देखभाल करता अपितु स्वयं भी व्यापार और उद्योगों में लगा हुआ था। जो राज्य की आय का एक प्रमुख साधन था। खानों, जंगलों, नमक उत्पादन और अस्त्र-शस्त्रों को निर्माण पर राज्य का एकाधिपत्य था। ये राज्य के उद्योग और व्यवसाय दोनों ही थे। इस प्रकार कृषि, व्यापार,

उद्योग आदि सभी को राज्य की आय में वृद्धि करने का साधन बनाया गया था। इसके अतिरिक्त बिक्री-कर, खान-कर, जंगल-कर, मादक-द्रव्यों पर कर, मछली-कर, सिंचाई-कर, चुंगी-कर, लाईसेंस-कर, जुर्माने आदि भी राज्य की आय के मुख्य साधन थे। मौर्य शासकों ने आय के साधनों में अधिकतम वृद्धि की थी। राज्य अनेक कारणों से व्यक्तियों की सम्पत्ति को जब्त कर सकता था। संकट के अवसर पर राज्य प्रदर्शनी, मेले आदि का आयोजन करके भी धन एकत्र कर लेता था। सम्राट अशोक ने लुम्बिनी जिले से पैदावार का $1/8$ भाग भूमिकर के रूप में लिया था। राज्य के व्यय के साधनों में राजा और राजा के महल का व्यय, सेना, सरकारी अधिकारियों के वेतन, दान, सड़क और नहरों का निर्माण तथा अन्य सार्वजनिक हित के लिए किये जाने वाले कार्य थे।

राज्य के सभी कर्मचारियों को नकद वेतन दिया जाता था। सबसे अधिक वेतन 48000 पण वार्षिक था जो राजमाता, पटरानी, युवराज, राजपुरोहित, महामंत्री और मुख्य सेनापति को दिया जाता था। न्यूनतम वेतन 60 पण वार्षिक था जो सफाई कर्मचारी या अन्य शारीरिक श्रम मात्र करने वाले निम्न कर्मचारियों को दिया जाता था। एक पूर्ण प्रशिक्षित सैनिक लेखा-जोखा या हिसाब रखने वाले निम्नस्तर के गुप्तचर आदि को 500 पण वार्षिक तथा योग्य इंजीनियर, गुप्तचर आदि को 1000 पण वार्षिक दिये जाते थे। सरकारी सेवा करते हुए शारीरिक दृष्टि से अपाहिज हो जाने वाले तथा मृत्यु प्राप्त अधिकारी के परिवार के सदस्यों की वार्षिक पेंशन दिये जाने की व्यवस्था की गयी थी। यदि राजकोष में मुद्रा की कमी हो जाती थी तो राज्य वेतन की कमी की पूर्ति स्वेच्छा से अन्न, वस्त्र आदि देकर करता था। डॉ. डी.डी. कौसाम्बी के अनुसार 'अर्थशास्त्र में स्पष्ट निर्देश है कि राज्य किसी भी स्थिति में स्थायी आय के साधन को जैसे भूमि जंगल किसी व्यक्ति को प्रदान न करे। मौर्य शासकों ने ब्राह्मणों को भी पुरस्कार स्वरूप गाँव, भूमि आदि दान में नहीं दी। अधिक से अधिक एक सरकारी कर्मचारी को ऐसी भूमि दी जा सकती थी जो कृषि भूमि नहीं थी परन्तु जिसे कृषि योग्य बनाया जाना था। ऐसी भूमि पर भी उस कर्मचारी को नियमानुसार लगान देना होता था और उस भूमि पर उसका पैतृक अधिकार स्वीकार नहीं किया जाता था। वह भूमि राज्य की ही भूमि रहती थी।

3.20 सड़कें और सिंचाई व्यवस्था

राज्य बड़ी-बड़ी सड़कों और नहरों के निर्माण का उत्तरदायित्व लेता था। मेगस्थनीज ने उत्तर पश्चिम से लेकर पाटलिपुत्र तक आने वाली सड़क का वर्णन किया है जो प्रायः 1840 किमी. लम्बी थी। इसके दोनों ओर वृक्ष लगाये गये थे। इसकी सुरक्षा, सफाई, मरम्मत आदि की उचित व्यवस्था थी। ऐसी ही व्यवस्था अन्य राजमार्गों के लिए भी की गयी होगी यह अनुमान लगाया जा सकता है। सड़कों की देखभाल के लिए एक पृथक विभाग था। सड़कें 9.6 मीटर या उससे भी अधिक चौड़ी होती थी। मौर्य सम्राटों ने नहरों और झीलों के निर्माण के द्वारा सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था की थी। इसके लिए एक पृथक विभाग था सिंचाई कर लिया जाता था जो पैदावार का $1/5$ से $1/3$ भाग तक होता था।

3.21 स्वास्थ्य, स्वच्छता और जनगणना

नागरिकों के स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए सुविधाजनक प्रबन्ध किया जाता था और इसके लिए नियम बनाये गये थे जिनका पालन कठोरता से किया जाता था। राज्य की तरफ से अस्पतालों का प्रबन्ध किया गया था। पशुओं के लिए पृथक अस्पतालों की व्यवस्था थी। राज्य की जनगणना के लिए पृथक विभाग था तथा प्रत्येक स्थान पर जन्म और मृत्यु की गणना की जाती थी।

3.22 सैनिक-शासन

मौर्य सम्राटों की सेना विशाल और शक्तिशाली थी। सम्राट अशोक ने शान्तिप्रिय नीति को अपनाकर भी सेना की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया था और ऐसा कोई उदाहरण प्राप्त नहीं

होता जिससे यह सिद्ध हो सके कि उसने सेना की संख्या में कमी कर दी थी अथवा उसे भंग कर दिया हो। चन्द्रगुप्त ने सेना की व्यवस्था की ओर गम्भीरता से ध्यान दिया था जिसके कारण वह सेल्युकस को परास्त करने के अतिरिक्त एक विशाल साम्राज्य का निर्माण भी कर सका था। चन्द्रगुप्त मौर्य के पास एक अत्यन्त विशाल सेना थी जो चतुरंगिणी या चार अंगों वाली थी। ये अंग थे—पैदल, अश्वरोही, गज—सेना और रथ—सेना। चन्द्रगुप्त की सेना के बारे में मेगस्थनीज ने लिखा है कि उसकी सेना में 600000 पैदल सैनिक, 30000 घुड़सवार, 9000 हाथी और 8000 रथ सेना थे। सेना की देखभाल 30 सदस्यों की एक प्रसिद्ध परिषद करती थी जो पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों में बँटी हुई थी। प्रत्येक समिति सेना के निम्नलिखित छः भागों की देखभाल करती थी।

प्रथम समिति:—जल सेना और जहाजी बेड़े की व्यवस्था, प्रबन्ध और देखरेख करती थी।

दूसरी समिति:—सेना का रसद और अन्य आवश्यक सामग्री भेजने की व्यवस्था करती थी।

तीसरी समिति:—पैदल सेना की व्यवस्था का प्रबन्ध करती थी।

चौथी समिति:—अश्वरोही सेना का प्रबन्ध करती थी।

पाँचवीं समिति:—गज सेना की देखरेख करती थी।

छठी समिति:—रथों की सेना की प्रबन्ध करती थी।

रुग्ण एवं घायल सैनिकों के उपचार के लिए सेना के साथ-साथ चिकित्सा विभाग भी रहता था। शल्य चिकित्सा की व्यवस्था भी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की यह समस्त सेना स्थायी थी और उसे नियमित रूप से वेतन दिया जाता था। समस्त सेना सम्राट चन्द्रगुप्त के अधीन थे जबकि सेनाध्यक्ष सेना का प्रबन्ध करने वाला अधिकारी होता था और उसको 48000 पण वार्षिक वेतन दिया जाता था।

3.23 बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। बिन्दुसार के जीवन तथा उपलब्धियों के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है। उसकी महानता इस तथ्य में निहित है कि उसने अपने पिता से जिस विशाल साम्राज्य को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था उसे अक्षुण्ण बनाये रखा। जैन परम्पराओं में बिन्दुसार की माता का नाम दुधेरा मिलता है। यूनानी लेखक ने उसे 'अमित्रोकेडीज' कहा है। जिसका संस्कृत रूपान्तर 'अमित्रघात' (शत्रुओं को नष्ट करने वाला) होता है। यह उसकी उपाधि थी। जैन ग्रंथ उसे सिंहासन कहते हैं। इन उपाधियों से स्पष्ट है कि वह कोई दुर्बल अथवा विलासी शासक नहीं था। परन्तु अपनी किन विजयों के उपलक्ष्य में उसने उन उपाधियों को ग्रहण किया था। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। कुछ बाद के बौद्ध तथा जैन ग्रंथों से पता चलता है कि बिन्दुसार के शासन के अन्त के कुछ वर्षों तक चाणक्य विद्यमान था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने बिन्दुसार की उपलब्धियों का इस प्रकार विवरण दिया है—उसे 6 नगरों तथा उनके राजाओं को नष्ट कर पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच के सम्पूर्ण भाग पर अधिकार कर लिया।

यह वर्णन कहाँ तक सत्य है यह निश्चित कर सकना दुष्कर है। इस कथन से ऐसा लगता है कि बिन्दुसार के समय कुछ प्रदेशों में विद्रोह हुए और उसने उन्हें दबा दिया। दिव्यादान तक्षशिक्षा में होने वाले विद्रोह का वर्णन करता है कि जिसको दबाने के लिए बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को भेजा था। अशोक ने उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करते हुए वहाँ शान्ति व्यवस्था स्थापित की थी। सम्भव है कि इसी प्रकार के कुछ अन्य उपद्रव पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेशों में हुए हों बिन्दुसार ने सैनिक शक्ति द्वारा उन्हें शान्त कर दिया हो। बिन्दुसार के समय में भी भारत का पश्चिमी यूनानी राज्यों के साथ मैत्री सम्बन्ध कायम रहा। स्ट्रेबो के अनुसार सोटिया के राज एन्टियोकस ने डाइमेकस नामक अपना एक राजदूत बिन्दुसार की राज्य सभा में भेजा था। यह मेगस्थनीज के स्थान पर आया था। प्लिनी हमें बताता है कि मिश्र के राजा टॉलमी द्वितीय फिलोडेल्फस ने डाइनोसियस

नामक एक राजदूत मौर्य दरबार में भेजा था। परन्तु यह स्पष्ट पता नहीं है कि यह राजदूत बिन्दुसार के समय आया अथवा उसके पुत्र अशोक के समय, क्योंकि मिश्री नरेश इन दोनों मौर्य सम्राटों का समकालीन था। एथेनियस नामक एक अन्य यूनानी लेखक ने बिन्दुसार तथा सोटिया के राजा एन्टियोकस प्रथम के बीच एक मैत्रीपूर्ण पत्र-व्यवहार का विवरण दिया है जिसमें भारतीय शासक ने सीरियाई नरेश से तीन वस्तुओं की माँग की थी। मीठी मदिरा, सूखी अंजीर, व एक दार्शनिक। सीरियाई सम्राट ने प्रथम दो वस्तुएँ भिजवा दी परन्तु तीसरी वस्तु अर्थात् दार्शनिक के सम्बन्ध में यह कहला भेजा कि यूनानी कानूनों के अनुसार दार्शनिकों का विक्रय नहीं किया जा सकता। इस विवरण से पता चलता है कि बिन्दुसार के समय में भारत का पश्चिमी एशिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। प्रशासन के क्षेत्र में बिन्दुसार अपने पिता की व्यवस्था का ही अनुसरण किया। अपने साम्राज्य को उसने प्रान्तों में विभाजित किया तथा प्रत्येक प्रान्त में कुमार (उपराजा) नियुक्त किये। प्रशासनिक कार्यों के लिए अनेक महामात्रों की भी नियुक्ति की गयी। बिन्दुसार की सभा में 500 सदस्यों वाली एक मंत्रीपरिषद भी थी जिसका प्रधान खल्लाटक था। बिन्दुसार के शासन काल की अन्य बातें हमें ज्ञात नहीं हैं। सम्भवतः उसने 25 वर्षों तक राज्य किया और उसकी मृत्यु 273 ई. पू. के लगभग हुई। वास्तव में बिन्दुसार महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं अशोक के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है जिसने साम्राज्य को अक्षुण्य बनाए रखा।

3.24 सारांश

उपर्युक्त वृत्तान्त से बिन्दुसार के सम्बन्ध में तीन स्पष्ट निष्कर्ष निकलते हैं। वह अपने पिता से प्राप्त विशाल साम्राज्य की रक्षा करने में सफल रहा। यद्यपि इसका श्रेय बहुत कुछ चन्द्रगुप्त की सुदृढ़ शासन व्यवस्था को था। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यदि बिन्दुसार में पराक्रम एवं राजनीतिक दूरदर्शिता न होती तो उसके लिए अपने साम्राज्य की रक्षा करना असम्भव हो जाता। दूसरे उसकी नीति शान्ति की थी। उसने व्यर्थ के युद्धों में अपनी शक्ति और साधन नष्ट नहीं किए। यही नहीं उसने साम्राज्य की शासन व्यवस्था में भी किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी। वह कला, दर्शन एवं साहित्य का भी प्रेमी था इसीलिए उसने यूनानी सम्राट से एक सॉफिस्ट माँगा था इससे उसका दर्शन-प्रेम प्रकट होता है। उसके विदेशी नरेशों एवं पड़ोसी राज्यों से सौहार्द एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। वह अपनी शान्तिपूर्ण नीति द्वारा 25 वर्षों तक राज्य करने में सफल रहा।

3.25 अभ्यासार्थ प्रश्न

- 1-चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए ?
- 2-चन्द्रगुप्त मौर्य की साम्राज्य विस्तार नीति के अर्न्तगत उसकी दक्षिणी विजय का वर्णन कीजिए ?
- 3-चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए ?
- 4-बिन्दुसार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
- 5-चन्द्रगुप्त मौर्य के अधीन प्रान्तीय शासन का वर्णन कीजिए ?
- 6-चन्द्रगुप्त मौर्य के समय की अर्थव्यवस्था का वर्णन कीजिए ?

3.26 सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1-ज्ञा, एवं श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी मा. का. नि. नई दिल्ली
- 2-एल.पी. शर्मा, प्राचीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा,
- 3-डॉ. दीनानाथ, प्राचीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली
- 4-के. सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद
- 5-बिपिन बिहारी सिन्हा, भारत का इतिहास (प्राचीन काल से 1526 ई. तक) ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली
- 6-प्रो. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का इतिहास

अशोक

- 1.1 परिचय
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 मौर्यवंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 1.4 चन्द्रगुप्त मौर्य (321–297 ई.पू.)
- 1.5 बिन्दुसार (297–273 ई.पू.)
- 1.6 अशोक (270–232 ई.पू.)
- 1.7 अशोक का राज्यारोहण
- 1.8 स्रोत
- 1.9 कलिंग का युद्ध
- 1.10 अशोक और बौद्ध धर्म
- 1.11 अशोक का धम्म (धर्म)
- 1.12 अशोक का प्रशासन
- 1.13 अशोक की मृत्यु और उत्तराधिकारी
- 1.14 सारांश
- 1.15 संदर्भ ग्रन्थ और अनुसंसित पुस्तकें
- 1.16 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.1 परिचय

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के दौरान मगध महाजनपद (आजकल के बिहार, झारखण्ड, ओडिसा, पश्चिम बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बांग्लादेश और नेपाल के कुछ भू-भाग इस महाजनपद में शामिल थे) ने स्वरूप लेना शुरू किया, लेकिन नन्दों और मौर्यों के आगमन के साथ इस महाजनपद के विकास में तेजी आई। मगध मौर्यों की शक्तिशाली राजनीतिक सत्ता का केन्द्र होने के कारण इतिहासकारों का ध्यान इस ओर गया। अशोक के शासन के दौरान मौर्य साम्राज्य का विस्तार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा।

1.2 उद्देश्य

- मौर्य वंश विशेषकर अशोक के बारे में अध्ययन के लिए इतिहासकारों द्वारा उपयोग किये गए स्रोतों की जानकारी हासिल करना।
- अशोक से पहले के मौर्य शासकों के राजनीतिक इतिहास के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना।
- अशोक के सत्ता में आने के बाद राज्याभिषेक से लेकर कलिंग युद्ध तक और धम्म नीति सहित उसके जीवनकाल के दौरान घटनाक्रमों का पता लगाना।

1.3 मौर्य वंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मौर्यकाल के बारे में जानकारी के मुख्य स्रोत मेगस्थनीज़ की **इण्डिका**, **अर्थशास्त्र** और अशोक के **शिलालेख** हैं। पुराणों में भी मौर्यों का उल्लेख आया है, लेकिन इनमें केवल नाम के

तौर पर और क्षत्रिय-हत्यारों तथा निम्न जाति के नन्दों से इन्हें जोड़ते हुए शूद्रों से इनकी उत्पत्ति बताई गई है। यह ब्राह्मणवादी मूल-पाठ कहता है कि नन्द के दरबार में 'मुरा' नाम की एक शूद्र महिला के गर्भ से चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ था। यह महिला नन्द राजा की पत्नी तथा चन्द्रगुप्त की मातामही (दादी) थी। ग्रीक इतिहासकार मौर्यों को 'मोरिएस' जनजाति से सम्बन्धित बताते हैं। कुछ इतिहासकार इन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय बताते हैं। बौद्ध स्रोत कुछ अलग ही कहते हैं और इन्हें भगवान बुद्ध के अवशेषों में अपना हिस्सा मांगने वाले पिप्पलीवाहन के मोरिया शासक वंश से जोड़ते हैं। रोमिला थापर के अनुसार चन्द्रगुप्त शूद्र वर्ण के नहीं थे, बल्कि वैश्य समुदाय से थे। इस प्रकार मौर्यों की उत्पत्ति के बारे में अलग-अलग मत हैं और हम किस पर विश्वास करें, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

अनेक बौद्ध लिपियों में अशोक और धम्म का उल्लेख मिलता है। 19वीं सदी के प्रारम्भ तक बौद्ध धर्म को न तो भारत के एक मूल धर्म के रूप में माना जाता था, और न ही इसका कोई ऐतिहासिक महत्व था। सन् 1837 में जेम्स प्रिन्सेस द्वारा ब्राह्मी लिपि का अर्थ निकाल लिए जाने और अशोक के शिलालेखों को पढ़े जाने के बाद इस धारणा में बदलाव आया। उसने लेखों का अर्थ निकाला और बताया कि इनमें राजा को देवानामपियदस्सी (देवताओं का प्रिय) कहा गया है। बाद में देश के अनेक भागों में अलग-अलग शिलालेख भी मिले, लेकिन इन्हें अशोक से नहीं जोड़ा जा सका। लेकिन सन् 1915 में एक शिलालेख मिला, जिसमें किसी अशोक प्रियदस्सी का उल्लेख था। सीलोनी (श्री लंका) लिपि **महावंश** से इसकी और आगे पुष्टि हुई तथा सिद्ध हो गया कि अशोक मौर्य ही शिलालेखों का देवानामपियदस्सी है।

इन स्रोतों के साथ बहुत सी समस्याएँ हैं। उदाहरण के लिए मेगस्थनीज़ की **इंडिका** के कुछ टुकड़ों में बँटे अनुच्छेद (पैराग्राफ) उपलब्ध हैं। कौटिल्य, जिसकी चाणक्य के रूप में पहचान की गई है, का **अर्थशास्त्र** बहुत बाद में संकलित किया गया है और कहा जाता है कि इसमें अनेक तत्कालीन विचारकों के लेख शामिल हैं तथा अन्य पुरुष के रूप में लिखित स्रोत सामग्री केवल अशोक के बारे में ही उपलब्ध है न कि अन्य सभी मौर्य शासकों के बारे में। अन्य स्थानों पर यदि खुदाई की जाती, तो और ज्यादा जानकारी प्राप्त होती, लेकिन दुर्भाग्य से पाटलीपुत्र के क्षेत्र पर भीड़-भाड़ भरे आधुनिक शहर बस जाने से यह जानकारी पहुँच से बाहर हो गई है।

मौर्य शासकों के मामले में लिखित मूल-पाठ (लिपियों एवं शिलालेखों) की तुलना में भौतिक अवशेष (इमारतों आदि के भग्नावशेष) कम उपलब्ध हैं। इसके अलावा रोमिला थापर का मत है कि शिलालेखों के रूप में उपलब्ध भौतिक अवशेषों का अर्थ भी पाण्डु-लिपियों की मदद से ज्ञात किया गया है। शिलालेखों में मूल-पाठ का प्रवर्तक देवानामपियदस्सी राजा को बताया गया है, जिसकी पहचान बौद्ध लिपियों के साथ तुलना के आधार पर अशोक के रूप में की गई है। ये बौद्ध ग्रंथ उसे धर्मपरायणता के आदर्श प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, लेकिन उसकी यह छवि उसके शिलालेखों में नज़र नहीं आती। रोमिला थापर कहती हैं कि यह दुर्भाग्य है कि अशोक के जीवन के बारे में कालक्रमानुसार जानकारी प्राप्त करने के लिए धार्मिक स्रोतों को तथा इनके अनुपूरक के रूप में अशोक के अपने शिलालेखों को विश्वसनीय मानना पड़ा है।

यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि अशोक का व्यक्तित्व 20वीं शताब्दी में ही प्रकाश में आया। भारत सरकार ने अशोक स्तम्भ से लिये गए 24 शलाकाओं वाले चक्र को भारतीय ध्वज के केन्द्र में स्थान दिया तथा अशोक स्तम्भ (तीन मुख वाले सिंह और चक्र) को राज्य के प्रतीक चिह्न के रूप में अंगीकार किया एवं उसके आदर्शों को आधुनिक राजनीतिक

विचारधारा से जोड़ा। 20वीं शताब्दी में अशोक में अभिरुचि गांधीवादी अहिंसात्मक राष्ट्रवाद के उत्थान का परिणाम थी।

1.4 चन्द्रगुप्त मौर्य (321 – 297 ई.पू.)

मौर्य वंश का पहला शासक चन्द्रगुप्त मौर्य था। यह माना जाता है कि 321 ई.पू. में उसने अन्तिम नंदवंशी शासक को सत्ताच्युत करके मगध के राजसिंहासन पर कब्जा किया था। यह भी माना जाता है कि चाणक्य अथवा कौटिल्य नाम के एक ब्राह्मण ने उसे शासक के रूप में गद्द पर बिठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यही कौटिल्य बाद में मौर्य साम्राज्य का प्रधानमंत्री बना था। नंद वंश की अलोकप्रियता का फायदा उठा कर चन्द्रगुप्त ने मगध पर कब्जा कर लिया तथा अपने राज्य का विस्तार करना शुरू कर दिया। उसने गंगा की घाटी को अपने नियंत्रण में लेकर उत्तर-पश्चिम, जहाँ ग्रीक शासकों का शासन था, की ओर कूच किया। 305 ई.पू. में चन्द्रगुप्त ने ग्रीक शासक सिकन्दर (अलेग्जेंडर) के सेनापति सेल्यूकस निकटोर को हराया। दोनों के बीच शान्ति संधि हुई और पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा सिंधु नदी का पश्चिमी क्षेत्र चन्द्रगुप्त के नियंत्रण में आ गया।

1.5 बिन्दुसार (297 – 273 ई.पू.)

चन्द्रगुप्त के शासन के बाद उसके पुत्र बिन्दुसार ने गद्दी सम्भाली। तिब्बती बौद्ध सन्यासी तारानाथ के अनुसार बिन्दुसार ने दो सागरों के बीच की भूमि, जिसे द्वीपीय भारत (पेनिन्स्युला इण्डिया) का क्षेत्र कहा गया है, पर कब्जा कर लिया था। के.ए. नीलकंठ शास्त्री का मत है कि यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता कि बिन्दुसार (अथवा अमृतघट-शत्रु विनाशक) ने कोई भू-भाग जीता था, लेकिन यह तय है कि उसने अपने पिता के साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा था। इसके विपरीत रोमिला थापर का तर्क है कि बिन्दुसार ने दक्षिण में युद्ध अभियान चलाया होगा। तथापि वह आगे कहती हैं कि इसका मतलब यह नहीं है कि उसने पूरे दक्षिण क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। बल्कि कुछ राज्यों, सम्भवतः मैसूर क्षेत्र तक के कुछ राज्यों को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया होगा। उसने कलिंग (वर्तमान ओड़िसा) को छोड़ कर महाद्वीपीय भारत के अनेक राज्यों को युद्ध में पराजित किया था।

1.6 अशोक (273 – 232 ई.पू.)

अशोक मौर्य साम्राज्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा था। वह मौर्य शासक बिन्दुसार और उसकी पत्नी शुभद्रांगी का अथवा धर्मा का पुत्र था। ब्रिटिश इतिहासकार एच.जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'आउटलाइन ऑफ हिस्ट्री' में अशोक के बारे में लिखा है – "इतिहास के स्तम्भ पर उत्कीर्ण हजारों शासकों के नाम, उनके प्रताप, उनकी उदारता और निरभ्रता तथा शाही महिमा और ऐसे ही विशेषणों के बीच अकेले अशोक का नाम एक आभायुक्त तारे के समान दैदीप्यमान है।"

अशोक का साम्राज्य वास्तव में विशाल था। यह कश्मीर से लेकर दक्कन और दक्षिण तक तथा पश्चिम में कन्धार तक फैला हुआ था। दक्षिण में उसके साम्राज्य विस्तार के सबूत उसके शिलालेखों में मिलते हैं। इन शिलालेखों में दक्षिण के राजवंशों पाण्ड्य, सत्यपुत्र और केरलापुत्र आदि का उल्लेख मिलता है। उसके पिता बिन्दुसार को कलिंग पर विजय पाने में सफलता नहीं मिली थी, लेकिन अशोक ने कलिंग राज्य को भी जीत लिया था।

1.7 अशोक का राज्यारोहण

बौद्ध लिपि **दिव्यवदन** में उल्लेख है कि अशोक को सत्ता प्राप्त करने के लिए अनेक विद्रोहों का दमन करना पड़ा था। इसके मूल पाठ के अनुसार 272 ई.पू. में बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए अनेक युद्ध हुए थे। यह माना जाता है कि बिन्दुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र सुशिमा को गद्दी सौंपना चाहता था, लेकिन राज्य के मंत्री इस निर्णय के पक्ष में नहीं थे। बिन्दुसार के शासनकाल में अशोक को पहले तक्षशिला में विद्रोह दबाने के लिए भेजा गया और बाद में उसने उज्जैन के राजा के तौर पर शासन किया। **अशोकवदन** लिपि को संस्कृत मूल-पाठ में राधागुप्त नाम के एक मंत्री की भूमिका का जिक्र आया है। उसने मगध की सत्ता प्राप्त करने में अशोक की सहायता की थी। **दीपवंश** और **महावंश** में उल्लेख है कि अशोक ने अपने 99 भाइयों की हत्या करने के बाद सत्ता पर कब्जा किया। उसने केवल अपने सबसे छोटे भाई वितअशोक अथवा तिस्सा को जीवित छोड़ा था। लेकिन हमें इस उल्लेख के समर्थन में कोई सबूत नहीं मिले हैं और न ही उसके शिलालेखों में इन घटनाओं का कोई उल्लेख है। रोमिला थापर का तर्क है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के जीवन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव दर्शाने के लिए इन लिपियों में बौद्ध धर्म अपनाने से पहले उसका जीवन पापमय और भ्रष्ट दर्शाया गया है तथा बौद्ध धर्म अपनाने के बाद उसका स्वभाव धर्मपरायण दर्शाया गया है। दरअसल यदि हम उसके पाँचवे शिलालेख का अध्ययन करें, तो अपने 99 भाइयों की हत्या करने की इस घटना को आसानी से नकारा जा सकता है। इस शिलालेख में अशोक ने अपने भाइयों, बहनों और परिवारों तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों के कल्याण हेतु व्यवस्था करने का उल्लेख है।

1.8 स्रोत

वस्तुगत स्रोत व साहित्यिक स्रोत दोनों का ही उद्देश्य मनुष्य के इतिहास (विगत) पर प्रकाश डालना है, लेकिन अन्तर केवल लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में है। वस्तुगत स्रोत पुरातत्व विज्ञान का सहारा लेते हैं और साहित्यिक स्रोत मूल पाठ्यगत स्रोतों का सहारा लेते हैं। प्राचीन इतिहास के प्रारम्भिक काल के बारे में बहुत कम स्रोत प्राप्त हैं, लेकिन मौर्यकाल के बारे में प्रचुर मात्रा में जानकारी उपलब्ध है। तथापि मौर्य शासकों के मामले में बेहतर होता कि हम आंशिक तथ्यों वाले धार्मिक साहित्य स्रोतों, जिनके समर्थन में कोई वस्तुगत सबूत नहीं हैं, स्वीकार करने के बजाय अस्पष्ट पुरातात्विक रिकॉर्डों पर विश्वास करते और इन्हें स्वीकार करते।

जेम्स प्रिन्सेप द्वारा ऐतिहासिक लिपियों का अध्ययन किये जाने से पहले इतिहासकारों का ध्यान अशोक की तरफ नहीं गया था। सन् 1784 में एशियाटिक सोसायटी के गठन के बाद भारत के प्राचीन इतिहास के बारे में खोजबीन शुरू हुई और इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सन् 1861 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण बनाया गया। जॉन मार्शल और अलेक्जेंडर कर्मिंघम भारतीय पुरावशेषों में गहरी रुचि रखते थे। इन्हीं के प्रयासों से मौर्यकाल के पुरातात्विक स्रोतों को खोजने में मदद मिली।

अशोक के शिलालेखों की खोज से पहले उसके जीवन और शासनकाल से जुड़ी जानकारी **अशोकवदन** के मूल-पाठ और पाली लिपि में रचित कृति **दीपवंश** और **महावंश** पर आधारित थी। पहली शताब्दी ई.पू. में रचित **महावंश** के मूल-पाठ में बौद्ध धर्म के संरक्षक के तौर पर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अधिकारियों और मिशनरियों की नियुक्ति में उसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है और साथ ही उसे बौद्धों के शाक्य पंथ से भी जोड़ा गया है। **अशोकवदन** में अन्य मूल-पाठों की तुलना में राजनीतिक प्रभाव कम दिखाई देता है और इसमें बौद्ध धर्म की चमत्कारी भूमिका का ज्यादा उल्लेख किया गया है। इसमें भ्रष्ट चन्द-अशोक का

धर्मपरायण धम्म-अशोक के रूप में परिवर्तित होने का ज्यादा विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि अशोक ने बौद्ध के धर्मावशेषों के संरक्षण के लिए 84,000 स्तूप बनवाये थे और अपना राज्य संघ को सौंप दिया था।

अशोक के राज्यादेश 33 अभिलेखों का संकलन हैं, जिन्हें स्तम्भों, शिलाखण्डों और गुफाओं की दीवारों पर उत्कीर्ण किया गया है। ये भारत और पाकिस्तान के बहुत बड़े भू-भाग में फैले हैं। इन शिलालेखों की भाषा मागधी है। यह तत्कालीन मगध साम्राज्य की राजभाषा रही होगी, लेकिन गिरनार और शाहबाजगढ़ी के शिलालेखों में कुछ स्थानीय बोलियों का प्रभाव भी नजर आता है। इसके अलावा शाहबाजगढ़ी और मनशेरा के शिलालेखों में खरसोली वर्णमाला का उपयोग किया गया है, जो दायें से बायें ओर ओर लिखी जाती है। अन्य सभी ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। साथ ही येर्रागुडी में मिला एक छोटा शिलालेख दुतरफा शैली (एकान्तर रूप में दाँये से बाँये और बाँये से दाँये क्रमशः) में उत्कीर्ण है।

ये राज्यादेश इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म के पहले ठोस सबूत हैं और एक सर्वाधिक शक्तिशाली शासक द्वारा प्राप्त संरक्षण पर प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा इन शिलालेखों की अवस्थिति अशोक के साम्राज्य की सीमा भी दर्शाती है। लेकिन प्रतीत होता है कि बड़े शिलालेखों और स्तम्भ लेखों की शिल्पकारी के बीच समय अन्तराल है। हालांकि विषय-वस्तु और मूलभाव के तौर पर दोनों में समानता है, लेकिन सदृश्यता में बदलाव देखा जा सकता है।

सन् 1929 में खोजे गए 14 प्रमुख बड़े शिलालेख कालशी, मनशेरा, शाहबाजगढ़ी, गिरनार, सोपारा, येर्रागुडी, धौली और जागुड़ा में अवस्थित हैं। लघु शिलालेख और अभिलेख बैराट, रूपनाथ, सहसराम, ब्रह्मगिरी, गावीमठ, जटिंगा-रामेश्वर, मस्की, पलकीगुण्डु, राजुला-मन्दागिरी, सिद्धपुरा, येर्रागुडी, गुजरा और झांसी में अवस्थित हैं। सात स्तम्भ लेख इलाहाबाद, दिल्ली-तोपरा, दिल्ली-मेरठ, लौरिया-अरराजा, लौरिया-नन्दगढ़ और रामपुरवा जैसे स्थानों में अवस्थित हैं।

नीलकण्ठ शास्त्री ने अशोक के शासनकाल में जारी राज्यादेशों के शिलालेखों की कालक्रम के अनुसार सूची उपलब्ध कराई है, जो इस प्रकार है -

1. बाराबर में दो भित्तिलेखों में, अशोक के राज्याभिषेक के 12वें वर्ष में आजीविकास्वर गुफाओं को उपहार स्वरूप दिये जाने का विवरण दर्ज है।
2. उत्तर भारत में बैराट (जयपुर), रूपनाथ (मध्यप्रदेश), सहसराम (बिहार) और ब्रह्मगिरी, दक्षिण भारत में गावीमठ (हैदराबाद), जटिंगा-रामेश्वर, सिद्धपुर, येर्रागुडी (कुर्नूर जिला) में प्राप्त लघु शिलालेख। ऐसा प्रतीत होता है कि ये शिलालेख अशोक के राज्यारोहण के तेरहवें वर्ष में जारी किये गये थे।
3. भाबरा राज्यादेश, जिसे बैराट शिलालेख भी कहा जाता है, बौद्ध संघ को सम्बोधित था।
4. कालसी, मनशेरा, शाहबाजगढ़ी, गिरनार, सोपारा, येर्रागुडी, धौली और जौगंडा में पाये गये चौदह शिलालेख। ये शिलालेख अशोक के राज्याभिषेक के चौदह वर्ष बाद जारी किये गये थे।
- 4.(क) धौली और जौगंडा में अवस्थित "अलग शिलालेख" अथवा दो कलिंग शिलालेख। 14 संकलित शिलालेखों में इनका क्रम ग्यारहवाँ है। हो सकता है कि ये राज्यादेश अन्य शिलालेखों के साथ या फिर कुछ समय बाद जारी किये गये होंगे।
5. तीसरा बाराबर गुफा भित्तिलेख, जिसे अशोक के राज्याभिषेक के उन्नीसवें वर्ष में जारी किया गया था।

6. लुम्बिनी में रुम्मिदेई और निगलीसागर स्तम्भ-लेख, इन्हें अशोक के राज्याभिषेक के 20 वर्ष बाद जारी किया गया होगा।

7. सात स्तम्भ लेख – इनका कालक्रम अशोक के राज्याभिषेक के 26वें और 27वें वर्ष के बीच का रहा होगा। पहले छः स्तम्भ लेख दिल्ली-तोपरा, दिल्ली-मेरठ, लौरिया-अरराजा, लौरिया-नन्दगढ़ और इलाहाबाद-कोसम स्तम्भ हैं। सातवां स्तम्भ लेख सबसे लम्बा है। इसमें दो छोटे-छोटे राज्यादेश उकेरे गए हैं। इसका पहला राज्यादेश एक अनोखा रिकॉर्ड है। इसे रानी का राज्यादेश कहा जाता है और दूसरा कौशाम्बी राज्यादेश कहा जाता है, जो अन्य राज्यादेशों से अलग है।

8. सांची और सारनाथ में भी लघु स्तम्भ लेख मिले हैं, जिन्हें अशोक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में जारी किया गया होगा, जो सात स्तम्भ राज्यादेशों के बाद रहा होगा।

स्रोतों की एक और श्रेणी है, जो अपने आप में बिल्कुल अलग है। ये स्रोत अशोक के शासनकाल का ब्यौरा तो देते हैं पर उसके शासनकाल के कई सदियों बाद के हैं। इसमें 12वीं सदी में रचित कल्हण की **राजरंगिणी** प्रमुख है। इस कृति में कल्हण ने कश्मीर में अशोक की भूमिका का वर्णन किया है। कल्हण ने विभिन्न स्थानीय अभिलेखों और परम्पराओं के माध्यम से अशोक का इतिहास बुना है। इसमें अशोक का उसके नाम से ही उल्लेख किया गया है और उसे पूरी पृथ्वी के विजेता के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें कहा गया है कि अशोक ने अपनी राजधानी के रूप में श्रीनगर बसाया था और अनेक बौद्ध स्तूपों का जीर्णोद्धार किया था तथा ब्राह्मणवादी ढांचे को पुनः स्थापित किया था।

और कई अन्य स्रोत भी हैं जो अशोक के शासनकाल पर अप्रत्यक्ष रूप से या किसी घटनावश दृष्टिपात करते हैं। कर्नाटक में सुनति के समीप कनगनहल्ली स्थित बौद्ध स्तूप के आलेख में अशोक का जिक्र आया है, जो राजा अशोक के संदर्भ में माना जा सकता है। रोमिला थापर का मत है कि इस अभिलेख से पता चलता है कि अशोक के लिए किसी उपाधि का उपयोग नहीं किया गया है। अतः अशोक को समकालीन सातवाहन शासकों के समकक्ष माना गया है।

अशोक के प्रशासन का आधिकारिक रिकॉर्ड मौर्य शासकों के बाद के काल से प्राप्त होता है। रुद्रदमन के गिरनार स्थित शिलालेख में उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासक (गवर्नर) ने सौराष्ट्र के सुदर्शनलेक में एक बाँध बनाया था। बाद में अशोक के प्रशासक ने और उसके बाद रुद्रदमन के प्रशासक ने इसका जीर्णोद्धार किया। तदोपरान्त पाँचवीं शताब्दी में गुप्त राजा स्कन्दगुप्त ने इसकी मरम्मत कराई।

स्व-मूल्यांकन के प्रश्न

क. अशोक के बारे में अध्ययन के स्रोतों पर एक टिप्पणी लिखें।

ख. अशोक के चरित्र-चित्रण से सम्बन्धित साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों के बीच क्या प्रमुख अन्तर है ?

1.9 कलिंग का युद्ध

जब अशोक ने गद्दी सम्भाली, कलिंग राज्य मौर्य शासन के नियंत्रण में नहीं था। यह राज्य सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। दक्षिण भारत और दक्षिण-पूर्व के भू-मार्ग और सामुद्रिक मार्ग इसके नियंत्रण में थे। तेरहवें शिलालेख में उल्लेख है कि अशोक के अभिषेक के आठ वर्ष बाद, अर्थात् 260 ई.पू. के आसपास कलिंग के साथ घोर युद्ध हुआ। युद्ध की भयावहता

अशोक के इस वक्तव्य में नजर आती है – “एक लाख पचास हजार लोग बेघर हो गए थे, एक लाख सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये और अनेक लोग बेमौत मारे गए” ।

कुछ विद्वानों का मानना है कि अशोक युद्ध की निरर्थकता से आहत हो गया था और उसने बौद्ध धर्म अपना लिया, लेकिन उसके शिलालेख एक अलग तस्वीर दिखाते हैं और बताते हैं कि अशोक ढाई वर्ष बाद ही बौद्ध धर्म का प्रबल अनुयायी बन गया था। लेकिन इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इतिहास कलिंग के युद्ध से अशोक को याद करता है और यह कि उसने दिग्विजय के द्वारा जीत की नीति त्याग कर धर्मविजय के द्वारा जीत की नीति को अपनाया था।

1.10 अशोक और बौद्ध धर्म

रोमिला थापर का सुझाव है कि उसके शिलालेखों को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। छोटे शिलालेखों में संघ में बौद्ध धर्म के साधारण शिष्य के रूप में राजा की घोषणाएं निहित हैं। इनसे अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने और संघ से उसके रिश्ते का पता लगता है। उसमें कुछ शिलालेखों से संकेत मिलते हैं कि वह बौद्ध धर्म का निष्ठावान अनुयायी था। उसके एक शिलालेख में कहा गया है कि संघ में किसी भी प्रकार के विरोध को सहन नहीं किया जायेगा और उसे संघ व्यवस्था से निष्कासित कर दिया जायेगा। एक अन्य शिलालेख में उल्लेख है कि राजा चाहता है कि प्रत्येक अच्छे बौद्ध-धर्मी को बौद्ध धर्म ग्रन्थों का ज्ञान होना चाहिये। बड़े समूह में शामिल शिलालेख ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। इनमें आमतौर पर जनसाधारण के लिए राज्यादेश (उद्घोषणायें) निहित हैं। इनमें बड़े और छोटे शिलालेख तथा स्तम्भलेख शामिल हैं। इनमें अशोक की धम्म नीति का वर्णन किया गया है।

दीपवंश में तीसरी बौद्ध परिषद का प्रारम्भिक लेखा-जोखा निहित है। इसके अनुसार अशोक के शासनकाल में बौद्ध संघ का पुनर्गठन किया गया था और परम्परा से संकेत मिलते हैं कि उसने मोगालिपुत्त तिस्सा की अध्यक्षता में 250 ई.पू. में पाटलीपुत्र में तीसरे बौद्ध परिषद की बैठक बुलाई थी, लेकिन सातवें स्तम्भ में इस परिषद का कोई जिक्र नहीं है। इसलिए इतिहासकार तीसरे परिषद की कहानी से सहमत नहीं हैं, परन्तु सातवें स्तम्भ राज्यादेश के बाद और अशोक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में जारी इलाहाबाद स्तम्भ का कौशाम्बी रूपान्तर तीसरी परिषद होने के बारे में कुछ सकारात्मक संकेत देता है।

यह माना जाता है कि परिषद की बैठक के बाद अशोक ने भारत, श्रीलंका, बर्मा और अन्य देशों में बौद्ध दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए मिशनरियाँ भेजी थी। शास्त्री ने इन मिशनरियों और इनके द्वारा भ्रमण किये गये स्थानों की एक सूची उपलब्ध कराई है, जो इस प्रकार है –

- | | | | |
|----|-----------------------|---|-------------------------------------|
| 1. | मज्झान्तिका | – | कश्मीर और गान्धार |
| 2. | महादेव | – | महिषमण्डल (मैसूर) |
| 3. | मज्झिमा | – | हिमालय देश |
| 4. | रक्खिता | – | वाराणसी (उत्तरी कनारा) |
| 5. | महारक्खिता | – | यवन और ग्रीक देश |
| 6. | योन धम्मरक्खिता | – | अपरान्तक (बॉम्बे तट का उत्तरार्द्ध) |
| 7. | महाधम्मरक्खिता | – | महाराट्ट |
| 8. | सोना और उत्तरा | – | सुवर्णभूमि (बर्मा) |
| 9. | महेन्द्र और संघमित्रा | – | लंका (सीलोन) |

1.11 अशोक का धम्म

धम्म संस्कृत शब्द “धर्म” का प्राकृत शब्द है, जिसे धार्मिक कर्तव्य, नैतिकता, धर्मपरायणता आदि के रूप में समझा गया है। तेरहवें शिलालेख और कुछ लघु शिलालेखों में व्यावहारिक धम्म की विभिन्न आचार संहितायें और कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं। ये माता-पिता, वृद्धों और गुरुओं के सम्मान, सन्यासियों, ब्राह्मणों और श्रमणों, सम्बन्धियों, दासों, आश्रितों और अनाथों के साथ उचित व्यवहार, प्राणियों पर दया करने, प्राणियों को आहत न करने, सभी के लिए दान, हृदय की पवित्रता, सत्य वाचन और अहिंसा जैसे सद्गुणों पर प्रकाश डालते हैं। अशोक अंधविश्वास के नाम पर अनावश्यक अनुष्ठानों और बलि प्रथा के खिलाफ था। वह न तो किसी वर्ण या जातिगत ढांचे का उल्लेख करता है और न ही किसी प्रकार की जाति व्यवस्था का हवाला देता है।

व्या अशोक के धम्म की बौद्ध धर्म से समानता की जा सकती है। अशोक का अध्ययन करने वाले प्रारम्भिक इतिहासकारों ने अशोक के धम्म की बौद्ध धर्म के समनुरूप के तौर पर व्याख्या की है जिसके चलते उन्होंने यह माना कि बौद्ध धर्म राज्य का धर्म बन गया था। अशोक का धम्म चार उत्तम सत्यों अथवा अष्ट-वल्य पथ, जो कि बौद्ध धर्म के अभिन्न अंग हैं, का उल्लेख नहीं करता। इसलिए अशोक ने जिस धम्म का प्रचार किया वह मूलतः बौद्ध धर्म था। इस तथ्य पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता, लेकिन यह कह कर हम इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते कि अशोक पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव था। हमें यह ध्यान रखना होगा कि अशोक बौद्ध-धर्मी था और उसके धम्म ने एक ऐसे सिद्धान्त का कार्य किया, जिसका कोई भी परिवार या अशोक जैसा बौद्ध धर्म का साधारण शिष्य भी अनुकरण कर सकता था।

तथापि, रोमिला थापर का मत है कि हालांकि अशोक बौद्ध धर्म का प्रबल अनुयायी था, लेकिन उसकी धम्म नीति लोगों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए प्रभावित करने के प्रयास मात्र की तुलना में सामाजिक दायित्व ज्यादा थी। या यूँ कहा जाये कि यह एक आचार संहिता थी, जो समाज से नैतिकता अपनाने की अपेक्षा रखती थी। यह प्राणिमात्र के प्रति मानवीय व्यवहार पर आधारित थी। थापर का सुझाव है कि “अशोक का धम्म उस समय मौजूद किसी भी धर्म की धार्मिक नीतियों के अनुरूप नहीं था। इस दृष्टिकोण के समर्थन में एक सबसे पुख्ता सबूत धम्म महामातृ जैसे अधिकारियों का नियुक्त किया जाना है।” उनका तर्क है कि यदि धम्म पूरी तरह से धार्मिक होता, तो ऐसे अधिकारियों की आवश्यकता नहीं होती। यदि धम्म पूरी तरह से एक धर्म होता, तो भिक्षु और समर्पित अनुयायी ही धम्म के प्रचार-प्रसार के लिए पर्याप्त होते।

मौर्यकाल में सामाजिक नियंत्रण का विस्तार हुआ। अशोक के शासनकाल के दौरान तो संस्कृति जैसा तत्व भी, जो आर्यकालीन भारत में नियंत्रण से परे था, साम्राज्यिक नियंत्रण में आ गया। इस प्रकार एक ऐसी जटिल राजनीतिक स्थिति का निर्माण हुआ, जिसका इससे पहले कभी सामना नहीं करना पड़ा था। धम्म ने राज्य की मौजूदा समस्याओं के समाधान के रूप में कार्य किया। अशोक ने इसके द्वारा विविधता को एकरूपता में ढालने और सभी को एक पंथ के तहत लाने का प्रयास किया। अशोक के विशाल साम्राज्य में राजनीतिक परिस्थिति को भलीभांति तभी सम्भाला जा सकता था, जब अलग-अलग क्षेत्र के लोग एक ही प्रकार के नियमों, कानूनों का पालन करें। अतः धम्म नीति से पंथिक विवादों और सामाजिक तनावों को समाप्त करने और विविधतापूर्ण साम्राज्य में शान्ति और सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता मिली।

तथापि, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अशोक का धम्म के विकास में कोई व्यक्तिगत रुझान नहीं था। अशोक के व्यक्तिगत विश्वासों और पारिस्थितिक माहौल ने उसकी नीतियों को ढालने में प्रमुख भूमिका निभाई होगी। हम इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकते कि मौर्य शासकों ने ब्राह्मणवादी आचार-संहिता को नहीं अपनाया। अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य जैन पंथ के अनुयायी थे और पिता बिन्दुसार ने आजीविकों को संरक्षण दिया। उसके दोनो पूर्ववर्ती गैर-रूढ़िवादी पंथों के अनुयायी थे और अशोक ने बौद्ध धर्म का चयन कर के उनके उदाहरण का अनुकरण किया।

छठवाँ स्तम्भ बताता है कि राजा ने विश्व के कल्याण और खुशहाली के लिए धम्म का प्रतिपादन किया था। यह लेख बताता है कि राजा सभी पंथों को अलग-अलग तरह से सम्मान देता है तथा व्यक्तिगत रूप से इनका दर्शन करना यानि ज्ञान प्राप्त करना सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।

स्व-मूल्यांकन के प्रश्न

- क. अशोक की धम्म नीति समझायें।
- ख. क्या हम अशोक के धम्म को बौद्ध धर्म के समान कह सकते हैं ? इस कथन पर टिप्पणी दें।

1.12 अशोक का प्रशासन

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान मगध राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र थी, जो अशोक के शासनकाल में भी बनी रही। अशोक के शिलालेखों में उल्लेख है कि कौशाम्बी, उज्जयनी, सुवर्णगिरी-इसिला., तोसाली और समापा प्रान्तीय प्रशासन के केन्द्र थे। शिलालेख में तोसाली और उज्जयनी के उप-राजा (वॉयसरॉय) के लिये "कुमार" शब्द का उपयोग किया गया है तथा सुवर्णगिरी के उप-राजा (वॉयसरॉय) को "अयपुत" सम्बोधित किया गया है। इससे यह पता चलता है कि ये प्रतापी शाही परिवार के राजकुमार रहे होंगे।

स्तम्भ लेख पहले, चौथे और पांचवे में "राजुका" (ग्रामीण अधिकारी) शब्द का उपयोग हुआ है। इन्हें गाँवों का कल्याण तथा खुशहाली बढ़ाने का दायित्व सौंपा गया था। अशोक ने यह कोई नया पद या कार्यालय नहीं बनाया था, क्योंकि **अर्थशास्त्र** और **इण्डिका** में भी इस शब्द का जिक्र आया है। शास्त्री का मानना है कि अशोक ने "राजुका" पद का केवल पुनर्गठन किया होगा। इन ग्रामीण प्रभारियों को राजा ने आज्ञा दी दे रखी थी। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण प्रशासन इनके हाथ में था, अर्थात् उन्हें पुरस्कार और दण्ड देने का अधिकार प्राप्त था। स्तम्भ लेख IV में उल्लेख है कि इन राजुकाओं को निरन्तर राजा के सम्पर्क में रहना होता था और यह कार्य राजा के अनुचर (एजेण्ट) सुनिश्चित करते थे। इन अनुचरों को "पुरुष" (पुलिस) कहा जाता था। इन राजुकाओं को धम्म के प्रचार-प्रसार का कार्य समर्पण भाव से करना होता था और लोगों को खुशहाल बनाने के लिए उनका मार्गदर्शन करना होता था। उन्हें अपने अधीन तैनात जनपदों और रथिकों की भी सहायता करनी होती थी ताकि वे धम्म के प्रसार में तत्परता से जुटे रहें।

पदानुक्रम में एक और महत्वपूर्ण पद "महामातृ" था। धम्म-महामातृ के पद भी थे। अशोक के राज्यारोहण के तेरह वर्ष बाद ये पद सृजित किये गये थे। पांचवे शिलालेख में उल्लेख है कि इनका कार्य धम्म का प्रसार करना और साथ ही धम्म के प्रति समर्पित लोगों की खुशहाली को बढ़ावा देना था। केवल धम्म के प्रचार-प्रसार के अलावा इनके लिए कई अन्य कर्तव्य भी

निर्धारित किये गये थे। उन्हें अधिकार दिया गया था कि वे अनुचरों और स्वामियों, ब्राह्मणों और वैश्यों तथा अनाथों और वृद्धों को मुसीबत के दौरान मदद पहुँचायें। वे निष्पक्ष न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से न्यायालयों के आदेशों की समीक्षा भी करते थे और उन हालातों, इरादों, उकसावों या अपराधी की उम्र आदि पर विचार करते थे, जो अपराध का कारण बने थे। वे रनिवासों, राजा के रिश्तेदारों के परिवार, भाइयों और बहनों के कल्याण का कार्य भी सम्भालते थे। स्तम्भलेख VII में अशोक कहता है कि ये धम्ममहामातृ सभी पंथों के सन्यासियों और परिवारों की सहायता करेंगे। इस स्तम्भलेख में अशोक का कथन है कि “मैंने कुछ लोगों को आदेश दिया है कि वे संघ के कार्यों में रत रहें। इसी प्रकार कुछ अन्य लोगों को मैंने आदेश दिए हैं कि वे ब्राह्मणों और आजीविकों के साथ व्यस्त रहें एवं कुछ अन्य को मैंने अन्य पंथों के साथ व्यस्त रहने के आदेश दिये हैं।” शिलालेख V यह भी उल्लेख करता है कि उन्हें स्थानीय प्रजा और विदेशियों को दान स्वरूप उपहार देने का कार्य और साथ ही साम्राज्य की नैतिकता को भी विनियमित करना होता था।

अन्य प्रकार के महामातृ “नगर-व्यवहारक” कहलाते थे। इन्हें बड़े नगरों में नियुक्त किया जाता था। शास्त्री इनकी तुलना कौटिल्य के पुराव्यवहारकों से करते हैं। जिस प्रकार राजुका ग्रामीण क्षेत्रों का दायित्व सम्भालते थे, उसी प्रकार ये भी शहरी क्षेत्रों में न्याय प्रदान करने का कार्य करते थे।

इसी प्रकार अम्त-महामातृ भी थे, जिन्हें सीमान्त क्षेत्रों का प्रभारी बनाया जाता था। इन्हें सीमावर्ती क्षेत्रों की जनजातियों में धम्म के प्रचार-प्रसार का दायित्व सौंपा गया था। हालांकि इन सीमान्त जनजातियों पर अशोक का पूर्ण नियंत्रण नहीं था, लेकिन इनके साथ भी उसने दयालुता की नीति अपनाई थी।

“स्त्री अध्यक्षा-महामातृ” की भी नियुक्ति की गई थी, लेकिन हमें उनके कार्य किस प्रकार के थे, इसकी जानकारी नहीं है। अनुमान है कि इन्हें महिलाओं के कल्याण और उनमें धम्म के प्रचार-प्रसार के लिए नियुक्त किया गया होगा।

कुछ अन्य प्रकार के अधिकारी भी थे, जिन्हें “युक्त” कहा जाता था। ये लेखा विभाग का कार्य देखते थे। ये कर्मी महामातृ के अधीन कार्य करते थे। महामातृ युक्तों द्वारा रखे गये व्यय और राजस्व के हिसाब-किताब की जाँच करते थे।

शिलालेख में “प्रदेशिका” नाम से एक और अधिकारी का उल्लेख है। सम्भव है यह **अर्थशास्त्र** का “प्रदेशत्रा” हो और जिला कलेक्टर के रूप में कार्य करता हो। शिलालेख III में उल्लेख है कि इन सभी उच्च पदाधिकारियों को प्रशासनिक और मिशनरी कार्यों का जायजा लेने के लिए तीन से पाँच वर्ष के अन्दर शाही दौरों पर जाना होता था। अशोक ने अधिकारियों का एक और वर्ग बनाया था, जिन्हें ‘प्रतिवेदक’ कहा जाता था। इन्हें राज्य के विभिन्न भागों में तैनात किया गया था। ये राजा को राज्य के हालात के बारे में रिपोर्ट देते थे। ये किसी भी समय राजा से सम्पर्क करने के लिए स्वतंत्र थे। राजा के व्यस्त समय में भी इन्हें उनसे मिलने की अनुमति दी गई थी।

अशोक ने अपनी प्रशासनिक नीतियों में सुधार कर के इन्हें और अधिक मानवतावादी बनाया तथा मौजूदा स्वरूप (पैटर्न) में बदलाव किये। शिलालेख I में उल्लेख है कि पशु बलि को प्रतिबंधित कर दिया गया था और शाही रसोई के लिए भी पशुबध सीमित करके प्रतिदिन एक हिरण और दो मोर कर दिया गया था।

स्तम्भलेख V में कैदियों को मानवीय आधार पर सजावधि से पहले रिहा करने का उल्लेख है। दरअसल मृत्युदण्ड प्राप्त कैदियों को तीन दिन की मोहलत दी जाती थी, ताकि यदि अपराधी अपने आपराधिक कृत्य के लिए पश्चाताप करता है, तो सजा में संशोधन किया जा सके, अथवा अपने जीवन का अंत निश्चित मान कर उपवास और प्रार्थना द्वारा अगले जन्म में बेहतर जीवन की कामना कर सके।

शिलालेख II में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि अशोक लोक-कल्याण के लिए तत्पर रहता था। उसने मनुष्यों और पशुओं दोनों के लिए अस्पताल बनवाए। उसने औषधीय वनस्पतियों में अनुसंधान के लिए वनस्पति उद्यानों को प्रोत्साहन दिया। इसमें यह भी बताया गया है कि अशोक ने यात्रियों और पशुओं के लिए सड़क के किनारे वृक्ष लगाने और कुँए खोदने के आदेश भी दिये। शिलालेख VII भी अशोक द्वारा प्रारम्भ किये गये लोक कार्यों की पुष्टि करता है। इन कार्यों में पीपल और आम जैसे छायादार वृक्षों का रोपण, प्रत्येक सड़कों के किनारे आधा किलोमीटर की दूरी पर कुँओं की खुदाई, यात्रियों के लिए विश्रामगृहों का निर्माण और मनुष्यों और पशुओं के लिए पानी हेतु जगह-जगह प्याऊ की व्यवस्था शामिल है।

1.13 अशोक की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारी

पूरे उपमहाद्वीप में फैले अशोक के शिलालेख उसके विशाल साम्राज्य की ओर इशारा करते हैं। ये शिलालेख सीमान्त क्षेत्रों से लेकर सुदूर दक्षिण तक फैले हैं। इन शिलालेखों की भाषा प्राकृत है, जिसे आम लोग समझते थे। अशोक ने यह सुनिश्चित किया कि ये शिलालेख उसके साम्राज्य के अलग-अलग भागों, विशेषकर धार्मिक स्थलों और बाजारों, जैसे सार्वजनिक स्थलों पर लगाये जायें।

उसके नियंत्रण में शामिल क्षेत्रों के अलावा उसके साम्राज्य विस्तार को "विजित भू-भाग (विजिता), शाही भू-भाग (राजाविषय) और सीमान्त भू-भाग (प्रत्यन्त) के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। दरअसल अशोक के शिलालेख ऐसी पहली सुस्पष्ट अभिव्यक्ति हैं, जो राजा की संरक्षण व्यवस्था पर प्रकाश डालती हैं। महत्वपूर्ण बात यह थी कि ये शिलालेख सोच-समझ कर नदी एवं जमीनी मार्गों को जोड़ने वाले व्यापारिक रास्तों पर लगाए गए थे।

अशोक के शासनकाल के दौरान मगध साम्राज्य अपनी भौगोलिक चर्मोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। मगध साम्राज्य ने उत्कर्ष, युद्ध के द्वारा नहीं, बल्कि राज्य के अद्वितीय अहिंसा के सिद्धान्त तथा सामाजिक अनुभव के बल पर हासिल किया था। यह अद्वितीय नीति भारत के राजनीतिक इतिहास में फिर कभी नहीं दोहराई गई। कुछ विद्वान मानते हैं कि अशोक के शान्तिवाद ने मौर्य साम्राज्य की सैन्यशक्ति की कमर तोड़ दी थी, जिसके कारण अशोक की मृत्यु के पचास वर्ष के अन्दर ही मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया। शक्तिशाली शासक और शासक की पारम्परिक छवि अशोक की अहिंसा की नीति के कारण धूमिल होने लगी। विद्वान यह भी मानते हैं कि अशोक की अहिंसा की नीति ने नहीं, बल्कि इस नीति के आर्थिक परिणामों ने मौर्य शासकों की सैन्यशक्ति को कमजोर किया था। उनका तर्क है कि विशाल सेना, जिसका उपयोग केवल परेड जैसे अवसरों पर किया जाता था, अनेक प्रशासनिक अधिकारी बौद्ध भिक्षुओं को अपव्ययी दान तथा जन कल्याण के विभिन्न कार्यों से राजकोष का बोझ बढ़ा।

तथापि अन्य विद्वानों का मानना है कि शान्तिवाद के प्रभाव को बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त किया गया है। यह समझना होगा कि अशोक का अहिंसा पर बल देने का मतलब यह नहीं है कि हिंसा का पूर्णतया त्याग किया जाए। उदाहरण के लिए परेशानियाँ पैदा करने वाली वन्य

जन-जातियों के मामले में, अशोक यदि जरूरी हो तो हिंसा की सम्भावना से इन्कार नहीं करता। अशोक के धम्म के बारे में शिलालेखों के उल्लेखों को एक प्रकार से बौद्ध धर्म के सामान्य मूल्यों अथवा राजनीतिक और नैतिक आदेशों के रूप में लिया जाना चाहिये। दरअसल, ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक चूंकि विजय को अपरिहार्य मानता है, इसलिए वह अपने राज्यादेशों में जब अपनी भावी पीढ़ी से और ज्यादा दयालु होने का आग्रह करता है, तो वह एक दूरदृष्टा की तरह प्रतीत होता है।

अतः इतिहासकारों की कुछ कृतियों में अशोक के केवल दयालु पहलू पर ही ध्यान दिया गया है, तथापि वे इस पहलू की अनदेखी करते नजर आते हैं कि अशोक अपने इस अद्वितीय सिद्धान्त के बल पर ही आदर्श तरीके से अपने साम्राज्य को नियंत्रित कर सका, अन्यथा इसे प्रशासित करना मुश्किल होता।

यह माना जाता है कि अशोक के शासन के अन्तिम वर्षों में शाही नियंत्रण कमजोर हो चला था। धम्म की नीति सामाजिक तनावों को नियंत्रित करने में पर्याप्त रूप से सफल नहीं रही थी। बिन्दुसार के शासन के दौरान अधिकारियों के कुशासन के खिलाफ शिकायत करने वाले तक्षशिला ने दमनकारी नीतियों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। सन् 232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु के बाद साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया और अन्ततः मौर्य साम्राज्य दो भागों में बँट गया। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी भाग पर कुणाल और उसके बाद सम्प्रति का शासन रहा। उत्तर-पश्चिम भाग में बैक्टिरियन ग्रीकों से तनाव का सामना करना पड़ा और सन् 180 ई.पू. में यह भू-भाग इनके कब्जे में चला गया। दक्षिण में आन्ध्र अथवा सातवाहन समस्याएं खड़ी कर रहे थे। साम्राज्य के पूर्व में अशोक के उत्तराधिकारियों का शासन था। बृहदरथ मौर्य शासकों की मुख्य धारा का अन्तिम शासक रहा होगा, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसकी सन् 180 ई.पू. के आस-पास ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा हत्या कर दी गई थी, जिसने अपने वंश के शासन की नींव रखी।

1.14 सारांश

हालिया वर्षों में अशोक की विचारधारा और कार्य तथा इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण राजत्व और सामाजिक मूल्यों की अवधारणा का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। हम नहीं जानते कि विगत में इन विचारों की क्यों अनदेखी की गई या कहीं राजनीतिक प्रयोजनों के लिए इन विचारों को उपयुक्त या विवादित तो नहीं बनाया जा रहा है। प्रारम्भ में अशोक के बारे में केवल यही धारणा थी कि वह एक बौद्ध-धर्मी था, लेकिन अब उसे प्राचीनकाल के एक ऐसे प्रशासक के रूप में देखा जा रहा है, जिसने एक मजबूत साम्राज्य पर शासन किया था। प्राचीन साम्राज्यों के निर्माण की तरह ही उसने भी साम्राज्य स्थापित करने के लिए हिंसा और युद्ध-विजय का सहारा लिया। लेकिन उसने शासन प्रणाली में कुछ संशोधन किये, जिससे सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में बदलाव आये तथा विजय और प्रतिरोध का तरीका भी बदला।

उसका साम्राज्य अनेक भागों को मिल कर बना था और विविधतापूर्ण था। ऐसे साम्राज्य को एकजुट रखने में कठिनाइयाँ आई होंगी। साम्राज्य की विशालता शासक के सीधे राजनीतिक नियंत्रण के लिए एक चुनौती थी। इसके अलावा अलग-अलग नस्ली समूह भी एक और चुनौती बने होंगे। ऐसी परिस्थितियों में अशोक की धम्म नीति राज्य में सामाजिक तनाव का समाधान और साथ ही लोगों को एकजुट करने का एक मंच बनी होगी। अशोक की नीतियों की सफलता और असफलता के बारे में अलग-अलग मत हैं। लेकिन महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इतिहास के

पन्नों में दर्ज अनेक नामों में से अशोक ही एक ऐसा नाम है, जो भूतकाल में उदित हो कर वर्तमान को प्रकाशित कर रहा है। यही उसके प्रतापी व्यक्तित्व का सबूत है।

1.15 संदर्भ ग्रन्थ और अनुशंसित पुस्तकें

- एलन, चार्ल्स, *अशोक : दी सर्च फॉर इण्डियाज़ लास्ट एम्परर*, हेसेट डिजिटल, 2012।
- भण्डारकर, डी.आर., *अशोक*, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969।
- लाहिड़ी नयनजोत, *अशोक इन एनशियेंट इण्डिया*, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015।
- मुखर्जी, बी.एन., *दी कैरेक्टर ऑफ दी मौर्यन एम्परर*, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2000।
- रायचौधरी, एच.सी., *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशियेंट इण्डिया : फ्रॉम दी एक्सेशन ऑफ परीक्षित टू दी एक्सटिंक्शन ऑफ गुप्त डाइनेस्टी*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता प्रेस, 1927।
- शास्त्री, के.ए., *नीलकंठ, एज ऑफ दी नन्दाज़ एण्ड मौर्याज़*, मोतीलाल बनारसी दास, 1966 (1952)।
- शर्मा, आर.एस., *आस्पैक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियल एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एनशियेंट इण्डिया*, मोतीलाल बनारसी लाल पब्लिशर्स, 1996 (1959)
- सिंह, उपिन्दर, *गवर्निंग दी स्टेट एण्ड दी सेल्फ : पॉलिटिकल फिलॉसफी एण्ड प्रैक्टिस इन दी एडिक्ट्स ऑफ अशोक*, साउथ एशियन स्टडीज़, 28:2, 131–145, 2012।
- थापर, रोमिला (एड.), *रीसेन्ट पर्सपेक्टिव ऑफ अर्ली इण्डियन हिस्ट्री*, पॉपुलर प्रकाशन प्रा०लि०, 1995।
- थापर, रोमिला (एड.), *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया*, वॉल्यूम-I, पेंगुइन बुक्स, 1990 (1966)।
- थापर, रोमिला (एड.), *अशोक एण्ड डिक्लाइन ऑफ दी मौर्याज़*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012 (1973)।

1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अशोक की अहिंसा की राज्य नीति के बारे में आपकी क्या राय है ?
2. अशोक के जीवन काल के बारे में कालक्रमानुसार जानकारी प्राप्त करने में शिलालेख कितने महत्वपूर्ण हैं ?
3. अशोक के प्रशासनिक सुधारों पर चर्चा करें।

मौर्य कालीन प्रशासन, कला और स्थापत्य तथा साम्राज्य का पतन

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 मौर्यो का प्रशासन
 - 2.3.1 राजा
 - 2.3.2 मंत्रिपरिषद
 - 2.3.3 नगर प्रशासन
 - 2.3.4 सेना
 - 2.3.5 गुप्तचर
 - 2.3.6 न्याय एवं दण्ड
 - 2.3.7 राजस्व प्रणाली
 - 2.3.8 प्रान्तीय प्रशासन
 - 2.3.9 जनपद एवं ग्राम प्रशासन
- 2.4 कला एवं वास्तुकला
 - 2.4.1 शैल (पत्थर) स्तम्भ
 - 2.4.2 विशाल प्रतिभाएं
 - 2.4.3 मिट्टी से बनी मूर्तियाँ
 - 2.4.4 शैल-शिल्प
 - 2.4.5 स्तूप
 - 2.4.6 मृद माण्ड (पॉटरी)
- 2.5 मौर्य साम्राज्य का पतन
- 2.6 सार-संक्षेप
- 2.7 संदर्भ एवं अनुशंसित ग्रन्थ
- 2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य की अवधि 325 से 185 ई०पू० तक माना जाती है। यह विशाल साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान, पश्चिम में काठियावाड़ से पूर्व में उड़ीसा और दक्षिण में कर्नाटक तक विस्तृत था। इसे भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे बड़े साम्राज्य के रूप में माना जाता है। चन्द्रगुप्त मौर्य इस साम्राज्य का संस्थापक था और उसके पौत्र अशोक ने इस साम्राज्य को विस्तार और मजबूती प्रदान की। तथापि, अशोक की मृत्यु के बाद यह ज्यादा नहीं टिका और शुंग वंश ने इस साम्राज्य का अन्त कर दिया।

मेगस्थनीज का ग्रीक भाषा में इस साम्राज्य का वृत्तान्त और कौटिल्य का अर्थशास्त्र कुछ ऐसे स्रोत हैं, जो इस साम्राज्य पर प्रकाश डालते हैं। तथापि मेगस्थनीज की "इण्डिका" अलग-अलग हिस्सों में उपलब्ध है और बाद के ग्रीक लेखकों ने संक्षिप्त रूप में और उद्धरणों के रूप में इसे संकलित किया है, अतः इसकी भी अपनी कुछ खामियाँ हैं। अर्थशास्त्र की मूल विषय-वस्तु राज्य का प्रशासन और प्रबन्धन है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें समाज को बनाए

रखने के लिए आवश्यक नियम और कानूनों तथा राज्य के हित में राजा के स्पष्ट कर्तव्यों को प्रमुखता दी गई है। इस ग्रन्थ के समय-काल और लेखक के मुद्दे पर भी अलग-अलग मत हैं। ऐसा भी मत है कि इस ग्रन्थ का समय-काल मौर्य और गुप्त वंश के बीच कहीं है। ऐसा भी कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने मूल रूप से इस ग्रन्थ की रचना की है और बाद की शताब्दियों में अलग-अलग लेखकों ने इस मूल-पाठ में परिवर्तन किए और अपनी टीका टिप्पणियाँ जोड़ी हैं। हालांकि “दिव्यदान” और “मुद्राराक्षस” बाद के काल की साहित्यिक कृतियाँ हैं, लेकिन ये भी मौर्य पर घटनागत प्रकाश डालते हैं। अशोक के शिलालेख इस काल के बारे में सूचना के बहुमूल्य स्रोत हैं। ईसा पूर्व 150 सिरका में रुद्रदमन के गिरनार शिलालेख भी अपने आप में महत्वपूर्ण हैं।

इस यूनिट में हम इस विशाल साम्राज्य को प्रशासित करने की मौर्यों की योग्यता, मौर्यकाल में कला, स्थापत्य और मौर्य साम्राज्य के विखण्डन तथा अन्त में पतन के कारणों का अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

- मौर्य राज्य के स्वरूप और इसके प्रशासन को समझना।
 - मौर्य काल की कला और स्थापत्य का ज्ञान प्राप्त करना।
 - मौर्य साम्राज्य के पतन से सम्बन्धित विभिन्न मतों के बारे में जानना।
-

2.3 मौर्यों का प्रशासन

रोमिला थापर का तर्क है कि यह साम्राज्य स्पष्ट रूप से तीन जोन में बँटा था, (क) महानगर (महाजनपद), (ख) केन्द्रीय भाग और (ग) सीमान्त क्षेत्र। मगध महानगर था क्योंकि यह सत्ता का केन्द्र था और यहीं से विजय अभियान और साम्राज्य विस्तार की पहल की जाती थी। केन्द्रीय भू-भाग (गंगा के मैदान में अवस्थित) वे क्षेत्र थे, जहाँ राज्य के मिश्रित समाज बसे थे जो साम्राज्य के पतन के बाद स्वतंत्र राज्यतंत्र बन सकते थे। सीमान्त क्षेत्रों में साम्राज्य की सीमा पर बसे भू-भाग शामिल थे। यह माना जाता है कि मौर्यों का राज्यतंत्र अत्यन्त केन्द्रीयकृत साम्राज्य था, अर्थात् केन्द्र से जारी प्रत्येक नीति और फैसले सीमान्त क्षेत्रों सहित सम्पूर्ण साम्राज्य पर एक-समान लागू होते थे। केन्द्रीय प्रशासन को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) राजा, (ख) मंत्रिपरिषद, (ग) नगर प्रशासन, (घ) सेना, (ङ) गुप्तचर तंत्र, (च) विधि और न्याय तथा (छ) लोक कल्याण।

2.3.1 राजा

अर्थशास्त्र में राजा को सर्वोच्च स्थान पर रखा गया है। वह कार्यकारी निकाय के प्रमुख के रूप में कर्तव्य निर्वहन करता है। कौटिल्य के अनुसार, “राजा का कर्तव्य प्रजा की खुशहाली सुनिश्चित करना है, न कि अपनी। प्रजा की भलाई से ही राजा की भलाई होगी।” अशोक ने इस आदर्श को और विस्तार दिया। उसने घोषणा की कि सभी लोग उसके बच्चे हैं। विशाल भू-भाग का अधिपति होने के बावजूद मौर्य शासकों ने “राजा” जैसी साधारण उपाधि धारण की। राजा ने शासन करने का दैवीय अधिकार प्राप्त होने का कोई दावा नहीं किया, बल्कि स्वयं को पिता के रूप में प्रजापालक माना। सभी महत्वपूर्ण अधिकारी सीधे राजा द्वारा नियुक्त किए जाते थे और वो शासक के प्रति जवाब-देय थे।

2.3.2 मंत्रिपरिषद

“अर्थशास्त्र” और “अशोकन” शिलालेखों में मंत्रिपरिषद का उल्लेख आया है, जो राजा की सहायता करती थी। तथापि, “अर्थशास्त्र” में स्पष्ट किया गया है कि मंत्रिपरिषद के सदस्य और मंत्रिन दोनों अलग-अलग हैं, क्योंकि मंत्रिपरिषद के सदस्यों की तुलना में मंत्रिन को 4800 पण मिलते थे। अतः मंत्रिपरिषद के सदस्य का दर्जा पूर्ण मंत्रिन की तुलना में निम्न रहा होगा। “अर्थशास्त्र” में आगे मंत्रियों की नियुक्ति हेतु मानदण्ड निर्धारित किया गया है। इसके अनुसार मंत्री पद के लिए चयनित व्यक्ति “सर्वोपद शुद्ध” अर्थात् सबसे पवित्र होना चाहिए। इससे तात्पर्य यह है कि उसे धन-सम्पदा का लोलुप नहीं होना चाहिए और किसी भी प्रकार के दबाव में नहीं आना चाहिए, आदि।

अर्थशास्त्र उल्लेख करता है कि प्रशासन का दायित्व विभाग प्रमुख, जिसे “अध्यक्ष” कहा जाता था, को सौंपा जाना चाहिए। लेकिन यह शब्द अशोकन शिलालेखों में नहीं मिलता और अशोक के अधीन इन्हें “पुलिस/पुरुष” के नाम से व्यक्त किया गया है। अशोक के शिलालेख-5 में उल्लेख है कि राजा की अनुपस्थिति में नीतियों, संशोधन सम्बन्धी सुझावों और राजा द्वारा उन्हें सौंपे गए महत्वपूर्ण मामलों के बारे में राजा की अनुपस्थिति में विचार-विमर्श किया जा सकता है, लेकिन निर्णय लेने का अन्तिम अधिकार राजा को ही होगा, जो कि निष्पादक प्राधिकारी है। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि बहुमत के फैसले को स्वीकार किया जाए, लेकिन राजा सर्वोच्च सत्ता है और वह अपने विवेक से निर्णय ले सकता है।

अर्थशास्त्र में केन्द्र सरकार के 18 विभागों अथवा “तीर्थों” का संदर्भ आया है। इनकी सूची इस प्रकार है :-

1.	मंत्रिन	—	प्रधान आमात्य (मंत्री)
2.	पुरोहित	—	प्रधान पुजारी
3.	सेनापति	—	कमाण्डर-इन-चीफ
4.	युवराज	—	क्राउन प्रिंस
5.	दौवारिक	—	चैम्बरलेन (प्रबन्धक)
6.	प्रसस्त्रि	—	महानिरीक्षक कारावास
7.	सम्हर्ता	—	महा समाहर्ता (कलेक्टर जनरल)
8.	पौर —		नगर प्रशासक (गवर्नर ऑफ दी सिटी)
9.	कर्मान्तिक	—	उद्योग प्रभारी
10.	अन्तरवंशिका	—	राजा की सुरक्षा का प्रभारी
11.	सन्निधित	—	राजकोष प्रमुख (खजान्ची)
12.	प्रदेशत्रि	—	सम्भागीय प्रमुख
13.	मंत्री	—	परिषद अध्यक्ष
14.	नायक	—	नगर-सिपाही
15.	व्यवहारिक	—	मुख्य न्यायाधीश
16.	दण्डपाल	—	पुलिस प्रमुख
17.	द्वारपाल	—	गृह, रक्षा प्रमुख
18.	अन्तपाल	—	सीमा सुरक्षा प्रमुख

कुछ महत्वपूर्ण महामात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार है :-

1.	वहारिक महामात्र —	न्यायिक अधिकारी
----	-------------------	-----------------

2.	सेनानय महामात्त	—	सैन्य अधिकारी
3.	धम्म महामात्त	—	धम्म प्रसार—अधिकारी
4.	अन्त महामात्त	—	सीमान्त क्षेत्र का प्रभारी—अधिकारी
5.	रतिञ्जक महामात्त	—	महिलाओं का प्रभारी—अधिकारी

कुछ महत्वपूर्ण अध्यक्षों का वर्गीकरण इस प्रकार है :-

1.	पण्याध्यक्ष	—	वाणिज्य प्रभारी
2.	संस्थाध्यक्ष	—	बाजार प्रभारी—अधिकारी
3.	पोत्वाध्यक्ष		माप—तोल अधिकारी
4.	नवाध्यक्ष	—	पोत प्रभारी—अधिकारी
5.	सुल्काध्यक्ष	—	पथ कर अधिकारी
6.	अकराध्यक्ष	—	खान प्रभारी—अधिकारी
7.	लोहाध्यक्ष	—	लौह प्रभारी—अधिकारी
8.	सवर्णिका	—	स्वर्ण प्रभारी—अधिकारी
9.	सिताध्यक्ष	—	राज—भूमि अधिकारी
10.	पातालाध्यक्ष	—	लेखा प्रभारी—अधिकारी
11.	रथाध्यक्ष	—	रथ प्रभारी—अधिकारी
12.	हस्ताध्यक्ष	—	हाथियों का प्रभारी—अधिकारी
13.	आयुधाध्यक्ष	—	अस्त्र—शस्त्रों के अनुरक्षण का प्रभारी—अधिकारी
14.	कोषाध्यक्ष	—	कोषागार प्रभारी—अधिकारी
15.	कोष्ठगणाध्यक्ष	—	भण्डारगृह प्रभारी—अधिकारी
16.	कुप्याध्यक्ष	—	वन उत्पाद प्रभारी—अधिकारी
17.	मणाध्यक्ष	—	माप प्रभारी—अधिकारी
18.	मुद्राध्यक्ष	—	पासपोर्ट प्रभारी—अधिकारी
19.	पत्तनाध्यक्ष	—	बंदरगाह (पत्तन) प्रभारी—अधिकारी
20.	गणिकाध्यक्ष	—	गणिकाओं का प्रभारी—अधिकारी
21.	देवातध्यक्ष	—	धार्मिकसंस्थानों का प्रभारी—अधिकारी
22.	लक्षाध्यक्ष	—	टकसाल का प्रभारी—अधिकारी

2.3.3 नगर प्रशासन

मेगस्थनीज के वृत्तान्त में नगर प्रशासन का विवरण दिया गया है। नगर प्रशासन के लिए छः समितियाँ थीं और प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य थे, लेकिन अर्थशास्त्र में इन समितियों का जिक्र नहीं है। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि नगर प्रशासन का प्रमुख “नागरिक” होता था, जिसकी सहायता के लिए “स्थानिक” और “गोप” होते थे। प्रजा की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार पुलिस अर्थात् “रक्षि” थी। इन समितियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. प्रथम समिति उद्योग और शिल्प का दायित्व सम्भालती थी।
2. दूसरी समिति विदेशियों से सम्बन्धित कार्य सम्भालती थी।
3. तीसरी समिति जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण का दायित्व सम्भालती थी।

4. चौथी समिति के जिम्मे व्यापार और वाणिज्य, माप-तौल तथा बाजार नियंत्रण का कार्य था।
5. पाँचवी समिति निर्मित सामान का निरीक्षण करती थी।
6. छठी समिति बेचे गए सामान पर कर वसूलती थी।

2.3.4 सेना

सेना का आकार विशाल था। मेगस्थनीज के अनुसार सेना को छः समितियों में बाँटा गया था और प्रत्येक समिति में 5 सदस्य और कुल मिलाकर 30 सदस्य थे। प्लिनी के अनुसार मौर्य सेना में 6,000 पैदल सैनिक, 30,000 घुड़सवार और 9,000 हाथी थे। हालांकि यह संख्या बढ़ा-चढ़ा कर बताई गई हो, लेकिन इससे मौर्यों की सैन्य शक्ति और सैन्य इकाइयों का संकेत अवश्य मिलता है। कौटिल्य ने “चतुरंग बल” का हवाला दिया है। इसमें पैदल सेना (पदाति), घुड़सवार सेना, रथ और हस्ति सेना जैसे सेना के अहम अंग शामिल हैं। मेगस्थनीज के वृत्तान्त में युद्ध पोतों के दस्ते का भी हवाला मिलता है। हो सकता है कि यह आधुनिक नौ-सेना का प्रारम्भिक स्वरूप हो। प्रतीत होता है कि अधिकारियों को नगद धनराशि दी जाती थी। उदाहरण के लिए, सेनापति को 48,000 पण्य दिये जाते थे और नायक को 18,000 पण्य मिलते थे। मुखियाओं को 8,000 पण्य और अध्यक्ष को 4,000 पण्य दिये जाते थे। अस्त्र-शस्त्र निर्माण और अनुरक्षण पर नजर रखने के लिए एक अलग विभाग था, जिसका प्रमुख आयुधगाराध्यक्ष होता था। सेना से सम्बन्धित अन्य अध्यक्ष थे – रथाध्यक्ष अर्थात् रथ का अध्यक्ष और हस्ताध्यक्ष, जो हस्ति सेना का दायित्व सम्भालता था।

2.3.5 गुप्तचर

मौर्यों को एक संगठित गुप्तचर व्यवस्था का विकास करने का श्रेय दिया जा सकता है। इन गुप्तचरों का कार्य गुप्त सूचनायें जुटाना, मंत्रियों और सरकारी अधिकारियों पर नजर रखना तथा जरूरत पड़ने पर सीधे राजा को रिपोर्ट देना, लोगों की राय के बारे में जानकारी एकत्र करना, विदेशी शासकों के रहस्य जानना और राज्य में मौजूद किसी संदिग्ध तत्व को छल-बल से खत्म करना आदि था। अर्थशास्त्र में गुप्तचरों (गूढ़ पुरुषों) को दो श्रेणियों में बाँटा गया है, पहले वो, जो यहाँ-वहाँ भ्रमण (संचार) करते रहते थे, दूसरे वो, जो एक जगह स्थाई (समस्थ) रहते थे। इन्हें और आगे अन्य श्रेणियों में बाँटा गया है। गुप्तचर आम आदमियों से सूचनायें एकत्र करने के लिए अपना रूप और पेशा बदलने में माहिर थे।

2.3.6 न्याय और दण्ड

प्रशासन सुचारू रूप से चले और कानून व्यवस्था बनी रहे, इसके लिए एक समुचित कानून व्यवस्था की आवश्यकता थी। अर्थशास्त्र में दो प्रकार के न्यायालयों का वर्णन किया गया है, (1) धर्मस्थय अर्थात् व्यक्तिगत मामलों को देखने वाला न्यायालय, जिसका प्रमुख धार्मिक (पवित्र) कानूनों को जानने वाला होता था और इसमें तीन “आमात्य” होते थे, तथा (2) कण्टक-शोधन, अर्थात् व्यक्ति और राज्य से सम्बन्धित मामलों को देखने वाली अदालत। इसके प्रमुख तीन प्रदेशों या आमात्य होते थे। इन दोनों न्यायालयों में क्या अन्तर था, यह स्पष्ट रूप से नहीं समझाया गया है। इसलिए ऐसी स्थिति में हम केवल यह कह सकते हैं कि धर्मस्थय दीवानी न्यायालय की तरह रहा होगा या छुट-पुट विवादों को निपटाता होगा, जबकि कंटक-शोधन व्यक्तिगत मामलों के साथ-साथ आपराधिक मामलों को भी निपटाता होगा। ग्रामीण स्तर पर

ग्रामिकाएँ थीं, जो न्यायालय की तरह कार्य करती थी और जनपद स्तर तथा केन्द्रीय स्तर पर भी न्यायालय थे। तथापि, राजा को सर्वोच्च शक्ति और धर्म का रखवाला माना जाता था।

कौटिल्य ने कानून के तीन स्रोत बताए हैं – (1) धर्म, (2) व्यवहार अर्थात् मौजूद कानूनी संहिताएँ, (3) चरित्र अर्थात् प्रथाएँ और (4) राजासन अर्थात् राजा के आदेश (शाही फरमान)। विवाह कानूनों का उल्लंघन, व्यभिचार, सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद, दुरुपयोग, मार-पीट, हिंसा, चोरी, कम तोलना, जुआ आदि अपराध की श्रेणी में आते थे। अपराध के अनुसार दण्ड का भी प्रावधान था। इसमें जुर्माना, कारावास, कोढ़े मारना और यातना या बिना यातना मृत्यु प्रदान करना आदि शामिल था। इसके अलावा ये दण्ड वर्ण-क्रम पर भी आधारित थे, अर्थात् एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण, जो वर्ण क्रम में सबसे ऊपर है, को शूद्र, जो कि वर्ण क्रम में सबसे नीचे है, की तुलना में कठोर सजा दी जायेगी।

2.3.7 राजस्व प्रणाली

कौटिल्य ने राज्य के खजाने (राजकोष) के लिए राजस्व उगाही के अनेक स्रोतों की जानकारी दी है। राजकोष के प्रभारी अधिकारी को “सन्निधता” कहा जाता था। वह राजस्व के निम्नलिखित सात स्रोतों से सम्हर्ता को (सामान्य कर उगाहने वाले अधिकारी) कर उगाही की सिफारिश करता है।

1. किलेनुमा शहरी केन्द्र (दुर्ग), यहाँ से 21 प्रकार के कर वसूले जा सकते हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्र (राष्ट्र)
3. खानें (खनि)
4. सिंचाई परियोजनायें (सेतु)
5. वन (वन)
6. चारागाह (व्रज)
7. व्यापार मार्ग (वैकपथ)

उपरोक्त सभी कर अलग-अलग रूप में वसूल किये जाते थे। ये कर जुर्माना, बिक्रीकर, उत्पाद शुल्क, आयकर के रूप में संग्रहित किये जाते थे। खानें राज्य के नियंत्रण में थीं और राजस्व का नियमित स्रोत थीं। इनके अलावा राजभूमि (सिता) से प्राप्त राजस्व, किसानों से भू-राजस्व (भाग), नौघाटों (नावों के घाट) पर प्रभार, सड़क अथवा जलमार्गों से यात्रा करने वाले व्यापारियों पर कर, बागानों पर कर, आयात-निर्यात पर कर आदि राजकोष के स्रोत थे। ऐसे भी कुछ कर थे, जो सीधे शाही खजाने में जमा होते थे। इसके अलावा राज्य में आपात स्थिति के दौरान कर लगाए जा सकते थे। ये सभी कर राज्य के कुशल संचालन तथा सेना, प्रशासन, वेतन और राजा के व्यय के लिए आवश्यक थे।

2.3.8 प्रान्तीय प्रशासन

प्रान्तीय प्रशासन के प्रमुख शाही खानदान के राजकुमार थे, जिन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा जाता था। ये प्रमुख प्रान्त राजा की प्रभुत्व का प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यपुत्र शाही वारिस थे और इनका दर्जा कुमार की तुलना में ऊँचा रहा होगा। जिन प्रान्तों का उल्लेख किया गया है, उनमें से कुछ उज्जयनी, तक्षशिला, सुवर्णगिरी, तोसाली आदि हैं। कुमारों को महामात्य और मंत्रिपरिषद की सहायता से (विशेष रूप से अशोक के काल में) कार्य करना होता था। ये मंत्री स्वभाव से शक्तिशाली होते थे और कुमारों के कार्यकरण पर सख्ती से नजर

रखते थे तथा सीधे राजा से सम्पर्क रखते थे। वरिष्ठ अधिकारियों में महामात्र और आमात्य शामिल थे और इनकी नियुक्ति राजा और कुमारों द्वारा की जाती थी।

2.3.9 जनपद एवं ग्राम प्रशासन

मौर्यों के प्रशासन को और आगे जनपद एवं ग्राम स्तर के प्रशासन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जनपद स्तर के प्रमुख अधिकारी प्रदेश, राजुका और युक्ता कहलाते थे और राजा इन अधिकारियों के साथ सीधे सम्पर्क में रहता होगा। इन्हें भूमि सर्वेक्षण तथा मूल्यांकन, निरीक्षण, राजस्व संग्रहण और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने जैसे कार्य करने होते थे। पदानुक्रम में प्रदेश की शक्तियाँ सबसे ज्यादा थी, जबकि मुक्ता अन्य दो की शक्तियों में नियंत्रण एवं संतुलन की भूमिका निभाता था।

अशोक के राजाज्ञा लेख ग्राम स्तर के प्रशासन पर ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं कराते, लेकिन अर्थशास्त्र में इस प्रशासन के बारे में कुछ संदर्भ नजर आते हैं। अर्थशास्त्र के विषय उद्धरण से संकेत मिलते हैं कि ग्राम स्तर के अधिकारी "ग्रामिका" कहलाते थे और स्थानीय लोग ही होते थे, जिन्हें ग्रामवासी नियुक्त करते थे और इन्हें सहयोग देते थे। यह प्रशासन व्यवस्था स्थान विशेष में व्याप्त परिस्थितियों के आधार पर अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग रही होगी। हमें "गोप" और "स्थानिक" जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है। ये शायद वो लोग होंगे, जो जनपद और ग्राम के बीच मध्यस्थ की तरह कार्य करते होंगे।

मौर्यों के राजतंत्र से एक सुगठित प्रशासन प्रणाली की झलक मिलती है। राज्य का केन्द्रीयकृत स्वरूप मुख्यतया अर्थशास्त्र पर आधारित है। तथापि कुछ इतिहासकारों ने प्रशासन के इस केन्द्रीयकृत स्वरूप पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाए हैं। रणधीर चक्रवर्ती के अनुसार, "यह स्वीकार करना मुश्किल है कि केवल राजनीतिक सत्ता के केन्द्र द्वारा जारी आदेशों के अनुसार ही एक-समान रूप से प्रशासन चल रहा होगा।" जी. फ्यूसमैन की दलील है कि "न केवल विशाल मौर्य साम्राज्य ही विकेन्द्रीकृत था, बल्कि प्रान्तों में भी प्रशासनिक असमानता थी।" दरअसल ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य प्रशासन ने विशाल साम्राज्य की क्षेत्रीय विभिन्नता को स्वीकार कर लिया था, अशोक के आदेश-लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है। अशोक के शिलालेखों में उल्लेख है कि उसके अधिकारी क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के अनुसार केन्द्रीय आदेश के मूलपाठ में संशोधन कर तदनुसार आदेश जारी कर सकते हैं। चक्रवर्ती की राय है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब अशोक ने स्थानीय विशेषताओं को वरीयता दी है। ग्रीक और अरामिक भाषा में जारी आदेश इसके उदाहरण हैं। वहीं दूसरी तरफ ऐसे भी उदाहरण हैं कि द्विपीय भारत में आदेश जारी करने में ब्रह्मी लिपि और प्राकृत भाषा को ही वरीयता दी गई, जो प्रशासन की एकसमान नीतियों की ओर इशारा करती है। तथापि द्विपीय भारत से प्राप्त वास्तु शिल्प सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर एच.पी. राय जैसे विद्वानों का मत है कि द्विपीय भारत में अशोक की भूमिका धम्म के नैतिक मूल्यों का प्रचार करने वाले बौद्ध उपासक जैसी है।

2.4 कला एवं स्थापत्य

मौर्यकालीन कला चौथी से दूसरी शताब्दी ई०पू० के दौरान सृजित कला की प्रतिछाया प्रतीत होती है। यह एक ऐसी खास अवधि थी, जब काष्ठ पर उकेरी जाने वाली कला प्रस्तर कला की ओर अग्रसर हो रही थी। मौर्यकालीन कला के अवशेष कला विशेषज्ञ इतिहासकारों के बीच अलग-अलग मतों की बाजीगरी का विषय रहे हैं। जहाँ एक गुप मौर्यकालीन कलाकृतियों को पर्शियन शिल्पकला की देन मानता है, तो वहीं दूसरा गुप इसे पूरी तरह स्वदेशी बताता है। यह

भी मत व्यक्त किया गया है कि मौर्यकाल तक शिल्प एवं स्थापत्य परिपक्व हो चुका था। आनन्द के कुमारस्वामी के अनुसार, “मौर्यकालीन कला को तीन मुख्य चरणों में बाँटा जा सकता है – (1) मौर्यों से पहले की परम्परा जारी रहना, जिसे अब वैदिक देवताओं के चित्रण में कहीं-कहीं देखा जा सकता है, (2) अशोक की दरबारी कला, जिसे अशोक के राज्यादेशों से उत्कीर्ण प्रस्तर (पत्थर) स्तम्भों में देखा जा सकता है और इनमें विदेशी (ईरानी) प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, तथा (3) ईंटों और पत्थरों से निर्मित वास्तुशिल्प, जैसे कि सांची का स्तूप, सांची स्थित पत्थर के जंगले और बाराबर पहाड़ियों पर लोमश ऋषि की गुफा।” ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के व्यक्तिगत धर्म ने भी इस काल की शिल्पकला को प्रभावित किया होगा। बौद्ध परम्परा में अशोक द्वारा निर्मित 84,000 स्तूपों का जिक्र आता है, लेकिन हमें इसका केवल शाब्दिक भाव नहीं लेना चाहिये। बौद्ध तथा जैन धर्म की लोकप्रियता की वजह से इस काल में बड़े पैमाने पर स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ था, लेकिन इससे केवल यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिये कि ब्राह्मणवादी देवताओं की प्रतिमाएँ नहीं गढ़ी गई थी।

निरंजन रॉय का तर्क है कि मेगस्थनीज, अरिअन और स्ट्राबों जैसे प्राचीन लेखकों के वृत्तान्त में पाया गया है कि हालांकि नगर भवनों और शाही महलों के नियोजन और निर्माण का श्रेय चन्द्रगुप्त को दिया जा सकता है, लेकिन विशाल कक्षों, विशेषकर स्तम्भों पर बने कक्षों पर बाद के शासकों, बिन्दुसार, विशेषकर अशोक का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। वह कहते हैं कि मौर्य कला के जीते जागते उत्कृष्ट नमूनों में “(1) शाही महल और पाटलीपुत्र नगर के अवशेष, (2) सारनाथ में पत्थर का जंगला, (3) बोधगया में चार स्तम्भों पर टिका बोधि मण्ड या वेदी, (4) बाराबर और गया के नागार्जुन पहाड़ियों में उत्खनित चैत्य कक्ष और आवासीय गुफा, सुदामा गुफा, जिसका निर्माण काल अशोक के शासन का बारहवाँ वर्ष माना जाता है, इसमें शामिल हैं, (5) राज्यादेश युक्त तथा बिना राज्यादेश वाले स्तम्भ, (6) स्तम्भ शीर्षों पर पशुओं की प्रतिमाएँ तथा फूल-पत्तियाँ उकेर कर सजाए गए स्तम्भों के शीर्ष फलक और (7) उड़ीसा के धौली में चट्टान को तराश कर बनाई गई हाथी की गोलाकार अर्द्ध प्रतिमा शामिल है।

तथापि, और भी ऐसी प्रतिमाएँ और वास्तुशिल्प के अवशेष मिले हैं, जिन्हें शिल्प शैली के आधार पर मौर्य काल से जोड़ा गया है, जैसे कि अर्जुनपुर मथुरा की जालीदार चारदीवारी, स्तूपों के प्राचीनतम भाग, सांची और सोनार से चैत्य कक्षों की बुनियाद, पटना में यक्ष प्रतिमाएँ, मथुरा से प्राप्त लाल बलुआ-पत्थर से बनी प्रतिमाएँ, सारनाथ से प्राप्त कुछ प्रतिमाएँ, दीदारगंज और राजगीर से प्राप्त चंवरधारी यक्ष प्रतिमा, अन्य स्थानों से मिली मिट्टी की कलाकृतियाँ आदि।

2.4.1 शैल स्तम्भ

ऐसा नहीं था कि मौर्यकाल में शैल स्तम्भों के निर्माण का ज्ञान नहीं था। बहुधा मौर्यकालीन स्तम्भों की तुलना अचमेनियन साम्राज्य के स्तम्भों से की जाती है, लेकिन इनकी शैली में अन्तर है। मौर्यकालीन स्तम्भ एक शिलाखण्ड को तराश कर बनाए गए हैं, जबकि अचमेनियन स्तम्भ अनेक छोटे-छोटे शिलाखण्डों को तराश कर और जोड़कर बनाए गए हैं। उकेरे गए लेखों से युक्त शिला स्तम्भ साम्राज्य के सभी स्थानों पर स्थापित किये गये थे। हो सकता है कि राज्य की सत्ता को दर्शाने, विजय स्मारक के रूप में और राजा के धार्मिक उपदेशों को प्रचारित करने के लिए इन्हें लगाया गया होगा। रोमिला थापर का मत है कि ये स्तम्भ या तो मथुरा क्षेत्र से प्राप्त छींटदार लाल-सफेद बलुआ-पत्थरों या चुनार (वाराणसी) क्षेत्र की खदानों से निकाले गए बारीक बजरी से बने बलुआ-पत्थरों से तराशे गए थे। अशोक के समय के कला-अवशेष ज्यादातर

शिलालेखों के रूप में हैं, जो सामरिक महत्व के स्थलों, पवित्र स्थानों या कस्बों और बाजारों के समीप लगाए गए थे। ये लेख शिला-खण्डों को तराश कर बनाए गए स्तम्भों पर उत्कीर्ण किये गए हैं। स्तम्भ के शीर्ष भाग पर वृषभ (बैल), सिंह, हाथी आदि की मूर्ति उत्कीर्ण की गई है। ये स्तम्भ वर्गाकार या वृत्ताकार आधार, जिसे फलक कहा जाता है, पर खड़े किये गए हैं। इन फलकों को खूबसूरती के लिए कमल पुष्पों की आकृति उत्कीर्ण की गई है। इन स्तम्भों में काफी समानता है। इससे संकेत मिलता है कि शायद इन स्तम्भों को बनाने वाले शिल्पकार एक ही क्षेत्र से थे। सारनाथ का स्तम्भ, रम्पुरवा का वृषभ स्तम्भ तथा लौरिया नन्दनगढ़ का सिंह स्तम्भ इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

सांची में मिला शीर्ष स्तम्भ, जिसे सिंह स्तम्भ भी कहा जाता है, मौर्यकालीन शिल्प कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसे राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में भी अपनाया गया है। इसमें वृत्ताकार चबूतरे पर दहाड़ते सिंह की प्रतिमा तराशी गई है। वृत्ताकार चबूतरे पर सिंह, अश्व, हाथी और वृषभ (बैल) के चित्र उकेरे गए हैं। अशोक ने सारनाथ में बुद्ध के प्रथम ऐतिहासिक प्रवचन (धम्म चक्र प्रवर्तन) की स्मृति में यह सिंह स्तम्भ बनवाया था।

2.4.2 विशाल प्रतिमाएँ

इस क्षेत्र से मिली अनेक प्रतिमाओं से पता चलता है कि उस काल में यक्ष पूजा की प्रथा प्रचलित रही होगी। यह इस तथ्य की ओर भी इशारा करता है कि बौद्ध और जैनों के धार्मिक स्मारकों में यक्ष पूजा मूर्ति निरूपण का एक लोकप्रिय भाग रहा होगा। पटना, विदिशा और मथुरा में यक्ष और यक्षिणियों की विशाल प्रतिमाएँ मिली हैं। ये प्रतिमाएँ खड़ी मुद्रा में हैं और चमकदार सतह से इनकी पहचान की जा सकती है।

यक्षिणी की प्रतिमा का उत्कृष्ट उदाहरण पटना में दीदारगंज से मिला है। यह प्रतिमा पटना के संग्रहालय में रखी है। बलुआ-पत्थर से तराशी गई यह प्रतिमा खड़ी मुद्रा में है। इसका सुन्दर आनुपातिक अंग विन्यास और सुचिककण सतह मौर्यकाल की विकसित और परिष्कृत शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

2.4.3 मिट्टी की मूर्तियाँ

विभिन्न स्थलों से मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ भी मिली हैं। रोमिला थापर का तर्क है कि अहिच्छत्र में मिली मूर्तियों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मौर्यकाल में भी मातृकाओं (मातृ देवी) की परम्परा प्रचलन में थी। वो आगे कहती हैं कि अधिकांश मूर्तियाँ सुसज्जित एवं उन्नत स्वरूप की हैं और इन्हें बहुत सुन्दर तरीके से गढ़ा गया है तथा इनका अलंकरण सुस्पष्ट है। इनमें से कुछ मूर्तियों को सांचे की सहायता से ढाला गया है। तक्षशिला से मिली आकृतियों में आदिम मूर्तियाँ, देवताओं की मूर्तियाँ, खिलौने, पासे, आभूषण, मनके आदि शामिल हैं।

2.4.4 चट्टानों से तराशा गया वास्तु शिल्प

धौली, उड़ीसा में चट्टान से तराशी गयी हाथी की प्रतिमा रैखिक सामंजस्य के साथ वृत्तीय गढ़ाई का उत्कृष्ट प्रतिमान है। इसी परिसर में अशोक के राज्यादेश भी उत्कीर्ण हैं। यह तराशे गए हाथी के केवल अग्रभाग को दर्शाती है। रोमिला थापर की दलील है कि सिंह स्तम्भ बनाने वाले किसी विशेषज्ञ ने नहीं, बल्कि स्थानीय शिल्पकारों ने ही यह हस्त प्रतिमा चट्टान से तराशी होगी। तथापि, वह आगे कहती हैं कि चट्टान से उभरती यह हस्त प्रतिमा बहुत भव्य है और यह परिसर में मौजूद शिलालेखों की ओर ध्यान आकर्षित करने के प्रयोजन से गढ़ी गई होगी। चट्टानों में तराशे गए वास्तुशिल्प का एक और उल्लेखनीय उदाहरण बिहार में गया के समीप बाराबर और

नागार्जुन पहाड़ियों में निर्मित सात गुफाएँ हैं। जैन और बौद्ध भिक्षु इन गुफाओं को विहार के रूप में उपयोग करते थे और ज्यादातर गुफाएँ मौर्यकालीन शासकों द्वारा दान स्वरूप प्रदान की गई थीं। साधारण विन्यास (प्लान) वाली इन गुफाओं की अत्यन्त सपाट अन्दरूनी दीवारें तथा अलंकृत मुख्य द्वार इनकी विशेषता है। बाराबर पहाड़ियों पर स्थित लोमश ऋषि की गुफा मौर्यकालीन वास्तुशिल्प का शानदार उदाहरण है। गुफा के अग्रभाग में प्रवेश द्वार पर अलंकृत अर्द्धवृत्ताकार चैत्य का मेहराव है, जिसे हाथियों की चित्रवल्ली से सजाया गया है। इस गुफा का अन्दरूनी कक्ष आयताकार है और इसके पीछे एक वृत्ताकार प्रकोष्ठ है। अशोक ने विशेष रूप से यह गुफा आजीविक पंथ को भेंट की थी।

2.4.5 स्तूप

स्तूप (पवित्र स्मृति अवशेष एवं भस्म रखने के गोलाकार टीले), विहार (भिक्षुओं के आवास) और चैत्य (स्तूप युक्त प्रार्थना कक्ष) जैन और बौद्ध दोनों की स्थापत्य कला का अंग हैं, लेकिन मौर्यकाल में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के फलस्वरूप अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ। इस काल के दौरान राजगृह, कपिलवस्तु, वैशाली, अल्लकप्पा, रामग्राम, वाथदीप, पावा, कुशीनगर और पिप्पलाविना जैसे अनेक स्थलों पर बुद्ध के स्मृति अवशेषों के लिए स्तूपों का निर्माण किया गया। तथापि, जातक परम्परा में अवन्ती तथा गान्धार जैसे अन्य स्थानों पर भी स्तूपों के निर्माण का उल्लेख आया है। मूलतः ये स्तूप ईंटों से बनाए जाते थे और लकड़ी की चारदीवारी से इनका घेरा बनाया जाता था, लेकिन बाद में लकड़ी की जगह पत्थर का इस्तेमाल होने लगा। बाद के काल, अर्थात् ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में स्तूपों के निर्माण के साथ-साथ इसके परिसर के चारों ओर रैलिंग सहित गोल घेरदार रास्ता भी बनाया और मूर्तिकला से सजाया जाने लगा।

इस प्रकार के स्थापत्य के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण राजस्थान के बैराट में हैं। गोलाकार गुम्बद वाले इन विशाल स्तूपों के चारों ओर वृत्ताकार रास्ता बनाया गया है। अशोक के शासनकाल में ईंटों से बना सांची का स्तूप इसका एक और उदाहरण है। इस स्तूप को बाद में पत्थरों तथा अन्य सहायक सामग्री से मढ़ दिया गया था। रोमिला थापर के अनुसार, सांची का स्तूप अपने आप में एक परिपूर्ण शैली है, क्योंकि यह किसी स्मारक को पवित्र मान कर उसका सम्मान करने में किसी समुदाय विशेष की भूमिका का प्रतिनिधित्व करता है।

ये स्तूप दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता पर प्रकाश डालते हैं। इन स्तूपों के मामले में, संरक्षण की एक अलग प्रवृत्ति नजर आती है। इन स्तूपों के संरक्षक श्रद्धालु भी हैं और गृहपतियों से लेकर शाही वंश भी हैं। इस प्रकार समाज में विभिन्न वर्गों ने इन स्तूपों के संरक्षण में भूमिका निभाई।

2.4.6 मृद माण्ड (मिट्टी के बर्तन)

मौर्यकाल की एक खासियत यह थी कि इस काल में अनेक प्रकार के बर्तनों का उपयोग देखने को मिलता है, लेकिन इस काल में नॉर्डन ब्लैक पॉलिश (एन.बी.पी.) वाले बर्तनों के निर्माण की उच्च तकनीक में महारत हासिल हो चुकी थी। एक खास प्रकार का काला रंग, उच्च क्वालिटी की पॉलिश, आभा और चमक इस तकनीक को और तकनीकों से अलग करती है। यह तकनीक ज्यादातर थालियाँ और तश्तरियाँ तथा बड़े कटोरे बनाने में उपयोग की जाती थी। गंगा की घाटी में ये बर्तन आम थे, लेकिन ये बर्तन अन्य प्रकार के बर्तनों से महंगे थे।

2.5 मौर्य साम्राज्य का पतन

पुराणों में संकेत मिलते हैं कि 187 ई०पू० में मौर्य साम्राज्य का अन्त हो गया था। इसके अंतिम शासक वृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने हत्या कर के सत्ता हथिया ली थी। पुष्यमित्र शुंग द्वारा वृहद्रथ को अपदस्थ किये जाने और शुंग वंश की नींव रखने की इस घटना की पुष्टि सातवीं शताब्दी में बाणभट्ट के ग्रंथ “हर्षचरित” से भी होती है। यह स्पष्ट नहीं है कि अशोक के बाद मौर्यवंश में कितने शासक हुए थे, लेकिन अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य शासकों की श्रृंखला आधी सदी से भी कम समय में ध्वस्त हो गई थी। हालांकि पौराणिक और बौद्ध साहित्य में अशोक के बाद के कुणाल और सम्प्रान्ति जैसे शासकों का जिक्र आया है, लेकिन इनके बारे में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। बाद के शासकों में सर्वाधिक ऐतिहासिक शासक दशरथ का नाम आता है, जिसने एक शिलालेख जारी किया था।

रोमिला थापर के अनुसार अशोक के शासन के बाद साम्राज्य का विभाजन हो गया होगा और साम्राज्य का यही विभाजन इसके दिन-पर-दिन कमजोर होने का कारण बना होगा। एच.सी. रायचौधुरी और बी.एन. मुखर्जी का तर्क है कि चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक द्वारा खड़ा किया गया विशाल साम्राज्य अशोक के उपरान्त एक के बाद एक कमजोर शासकों के कारण ध्वस्त हुआ होगा। तथापि, रणबीर चक्रवर्ती का मानना है कि हालांकि राजनीतिक सत्ता को मजबूत करने में महान हस्तियों की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती। साम्राज्यों का निर्माण और पतन एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया को केवल शक्तिशाली शासकों की व्यक्तिगत क्षमता या कम क्षमतावान शासकों की कमजोरी का उल्लेख करके नहीं समझाया जा सकता। वह आगे कहते हैं कि मौर्य साम्राज्य को दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से नव उदीयमान शक्तिशाली बैक्टिरियन ग्रीक, जो उत्तर-पश्चिम से होते हुए गंगा की घाटी में आए होंगे, के हमलों का सामना करना पड़ा होगा और मौर्यों को अपना साम्राज्य एकजुट रखना मुश्किल हो गया होगा।

मौर्य राजकुमारों के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को भी साम्राज्य के कमजोर होने का एक कारण बताया जाता है। प्रान्तों में नियुक्त कुमारों ने केन्द्रीय सत्ता के खिलाफ विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और सम्प्रभुता की माँग करने लगे। इसी प्रकार अशोक की मृत्यु के बाद प्रान्तों के शक्तिशाली राजकाओं अर्थात् मंत्रियों ने अपने-अपने प्रान्तों में संप्रभु अधिकार हासिल कर लिए और शक्तिशाली बन गए। वे अपने आप को केन्द्रीय सत्ता से आजाद होने की घोषणा करने लगे और अशोक के कमजोर उत्तराधिकारी इनसे नहीं निपट सके। इनमें से कुछ अधिकारी पाटलीपुत्र स्थित मौर्य सत्ता को चुनौती देने के लिए यवनों से हाथ मिलाने लगे।

हरप्रसाद शास्त्री ने तो साम्राज्य के तेजी से पतन के लिए अशोक की ही आलोचना कर डाली है। उनके अनुसार अशोक की धम्म नीति बौद्ध धर्म के समान थी और उसने जानबूझ कर समाज में ब्राह्मणों का दर्जा नीचे गिराया। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक ब्राह्मणों के प्रति सहिष्णु था, लेकिन अंधविश्वासी पशु-बलियों और कर्मकाण्डों को निन्दनीय ठहराने वाली उसकी नीतियों से ब्राह्मणों की आजीविका, सम्मान और हितों को नुकसान पहुँचाने लगा। अतः उनका तर्क है कि ब्राह्मण समुदाय की नाराजगी केन्द्र में सत्ता पलट का कारण बनी। इस सैन्य विद्रोह का नेतृत्व ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने किया। तथापि यह ध्यान में रखा जाना चाहिये कि अशोक अपने धम्म के प्रति धर्मान्ध था, लेकिन कभी भी उसने बौद्ध धर्म को राज्य धर्म घोषित नहीं किया। इसके अलावा अशोक के राज्यादेशों से पता चलता है कि सभी धार्मिक समूहों बौद्धों, जैनियों, आजीविकों और ब्राह्मणों को एक समान सम्मान प्राप्त था। चक्रवर्ती का तर्क है कि यदि ब्राह्मणों के प्रति भेदभाव किया जाता, तो पुष्यमित्र शुंग मौर्यों का सेनापति नहीं होता। इसलिए उनका मत है कि

पुष्यमित्र का ब्राह्मण होना और उसके द्वारा सत्ता पलट केवल एक संयोग था। एच.सी. रायचौधुरी ने शास्त्री के तर्क की आलोचना की है और साथ ही अशोक के धम्म सिद्धान्त में वे खामियाँ भी देखी हैं, जिसने सेना का स्वरूप (चरित्र) और युद्ध नीति को आमूल-चूल बदल दिया। उनके अनुसार अशोक ने सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया और यह अशोक के बाद के शासकों के लिए समस्या बन गया तथा वे यवन-आक्रामकों का मुकाबला नहीं कर सके, लेकिन चक्रवर्ती का तर्क है कि अशोक के राज्यादेशों में कहीं भी कलिंग युद्ध के बाद सेना के विघटन का उल्लेख नहीं है। दरअसल उसके राज्यादेशों में उल्लेख है कि किसी व्यक्ति को केवल एक सीमा तक क्षमा किया जा सकता है। उसने अपने उत्तराधिकारियों को सलाह दी कि जब तक अपरिहार्य या अनिवार्य न हो, हिंसा का सहारा न लें। अतः उसने कहीं भी यह नहीं कहा कि अहिंसा का पूर्ण परित्याग करें। इसके अलावा बौद्ध धर्म का अनुयायी होने के बावजूद अशोक ने अपराध के लिए मृत्युदण्ड के प्रावधान को कभी भी खत्म नहीं किया। ये सभी साक्ष्य संकेत देते हैं कि अशोक की उदार धम्म नीतियों के कारण मौर्य साम्राज्य के विघटन के लिए उसे जिम्मेदार ठहराना सही नहीं है।

ऐसा लगता है कि कुछ इतिहासकारों ने धम्म की भूमिका पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण होगा कि उदार आदर्शों और लक्ष्यों वाली धम्म नीतियाँ समाज में अपनी जड़ जमा सकी थीं या नहीं। धम्म किस सीमा तक जनसाधारण के जीवन में प्रवेश कर सका था और धम्म विविधतापूर्ण समाज और सांस्कृतिक जीवन वाले साम्राज्य की एकजुटता सुनिश्चित करने में कितना सफल रहा। यह मुद्दा इतिहासकारों के वाद-विवाद का विषय रहा है।

विशाल मौर्य साम्राज्य अशोक के शासनकाल में भी समस्यायें पैदा करता रहा था। अशोक ने अपने राज्यादेश में स्वयं स्वीकार किया है कि कई बार उसके अनुदेश न तो अधीनस्थों तक पहुंचे थे और न ही उन अधिकारियों ने ठीक से इनका महत्व समझा था। उसने अपने राज्यादेश में कहा है कि वह प्रान्तों में दमन के बारे में चिन्तित है, इसलिए उसने अपने महामात्रों को आदेश दिया कि अकारण नगरवासियों को यातनायें न दें। “दिव्यदान” ग्रन्थ में भी दुष्ट प्रशासकों (दुष्ट मात्य) के कुशासन से तक्षशिला में व्याप्त नाराजगी का उल्लेख किया गया है। विशेष रूप से प्रान्तीय अधिशासकों ने दमनकारी कार्य किये, जिससे जनसाधारण को विद्रोह करना पड़ा। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस विशाल साम्राज्य के प्रबन्धन की समस्या केवल बाद के कम सक्षम मौर्य शासकों के काल में ही नहीं उभरी थी, बल्कि अशोक जैसे शक्तिशाली शासक को भी अपने शासनकाल में इस समस्या का सामना करना पड़ा था।

सुदृढ़ और विशाल सेना तथा बहुसंख्य अधिकारियों के रख-रखाव से कृषक वर्ग पर बहुत दबाव पड़ा होगा। रोमिला थापर का कहना है कि मौर्य कृषि क्षेत्र का विस्तार नहीं कर पाए और बहुत से क्षेत्रों में जरूरत से अधिक उत्पादन नहीं हुआ। डी.डी. कौशाम्बी का तर्क है कि मौर्यों के पतन का कारण केवल अर्थव्यवस्था में गिरावट है। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को उदारता के साथ विशाल मात्रा में दान दिये जाने से मौर्य साम्राज्य को नुकसान हुआ, जिसका बोझ अन्ततः राजकोष पर पड़ा। अशोक के बाद के शासकों को वित्तीय आपदा झेलनी पड़ी और इसकी वजह से जनसाधारण पर करों का बोझ बढ़ा। पतंजलि का “महाभाष्य” भी मौर्यों को संदिग्ध तरीकों से स्वर्ण बटोरने वालों की संज्ञा देता है। वह आगे कहता है कि इसके लिए देवताओं की भयभीत करने वाली प्रतिमाएँ स्थापित की जाती थी और प्रजा को देवताओं को प्रसन्न करने के लिए दान देने हेतु प्रोत्साहित किया जाता था और बाद में गुप्तचर इस सम्पत्ति को

गुप्तचरों की सहायता से खजाने में पहुँचा दिया जाता था। एक मत यह भी है कि बाद के मौर्य शासकों ने स्वर्ण प्रतिमाओं को गलवा दिया था।

1.6 सार—संक्षेप

मौर्य साम्राज्य अशोक के काल तक सहज रूप से चलता रहा। साम्राज्य के संगठन अधिकारियों के पदानुक्रम पर आधारित थे। प्रत्येक को कुछ खास कर्तव्य सौंपे गए थे। नगर, जनपद और ग्राम स्तर पर एक वास्तविक विशाल प्रशासन तंत्र राज्य के कार्यों के कारगर प्रबन्धन का संकेत देते हैं। विभिन्न संसाधनों से सृजित करों से राज्य के स्थायित्व और इसके प्रशासन के अनुरक्षण में सहायता मिली। तथापि अशोक की मृत्यु के बाद प्रशासनिक व्यवस्था ध्वस्त होने लगी और इसका कारण कुमारों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा तथा प्रान्तीय अधिकारियों का मौर्य सत्ता से स्वयं को आजाद घोषित करना रहा। इसके अलावा कमजोर शासक, दूरदृष्टि की कमी और अशोक की धम्म नीति भी विशाल साम्राज्य के पतन के कारणों के रूप में चर्चा का विषय बनी। मौर्यकालीन प्रशासन केन्द्रीयकृत था या विकेन्द्रीकृत, इस बारे में विभिन्न इतिहासकारों के बीच भी लम्बा वाद—विवाद हुआ है। इसी प्रकार मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण भी बहस का मुद्दा रहे हैं। इसके बावजूद इन सबका कोई एक निर्णायक उत्तर नहीं मिला है। मौर्य काल में कला के पोषण के अनेक उदाहरण, शानदार स्तम्भों, चट्टानों से तराशे गए स्थापत्य शिल्प, स्मारक और स्तूप हैं, किन्तु इन कलाकृतियों पर ईरानी प्रभाव पर बहुधा वाद—विवाद हुआ है। इन प्रश्नों का उत्तर कुछ भी हो, लेकिन तथ्य यह है कि मौर्यों को एक ऐसे प्रथम शासक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिन्होंने सही मायने में एक साम्राज्य स्थापित किया था, जिसे वे विस्तारित भी कर सके और नियंत्रित भी कर सके।

1.7 संदर्भ एवं अनुशंसित पुस्तकें

- चक्रवर्ती, रणबीर, *दी मौर्याज़ इन, दिलीप के चक्रवर्ती एण्ड मखन लाल (सम्पा0), हिस्ट्री ऑफ एनशिएन्ट इण्डिया, वॉल्यूम III, दी टैक्स, पॉलिटिकल हिस्ट्री एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन टिल 200 बी0सी0*, आर्यन बुक इन्टरनेशनल, नई दिल्ली, 2014।
- कुमारस्वामी, आनन्द के0, *इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट, थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, मद्रास, 1923।*
- कौशाम्बी, डी.डी., *दी कल्चर एण्ड सिविलाइज़ेशन ऑफ एनशिएन्ट इण्डिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन*, विकास पब्लिशिंग हाउस, 1997 (1966)।
- मुखर्जी, बी.एन., *दी करेक्टर ऑफ दी मौर्यन एम्पायर, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2000।*
- रॉय, हिमांशु पी., *इन्टरप्रेटिंग दी मौर्यन एम्पायर, सेन्ट्रलाइज़्ड एण्ड मल्टीपल सेन्टर्स ऑफ कन्ट्रोल इन ग्रांट पार्कर एण्ड कार्ला सिनोपोली (सम्पा0) एनशिएन्ट इण्डिया इन दी वाइडर वर्ल्ड*, युनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2008, पीपी—1351।
- रायचौधुरी, एच.सी., *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशिएन्ट इण्डिया, फ़ॉर्म दी एक्सेशन ऑफ परीक्षित टू दी एक्सटिक्शन ऑफ दी गुप्त डायनेस्टी*, युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता प्रेस, 1927।

- शास्त्री, के.ए., नीलकान्त (सम्पा0) ऐज ऑफ दी नन्दाज एण्ड मौर्याज, मोती लाल बनारसी दास, 1996 (1952)।
- शर्मा, आर.एस., आसपेक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एनशिएन्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, 1996।
- थापर, रोमिला, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम-I, पेंगुइन बुक्स, 1990 (1996)।
- थापर, रोमिला, अशोक एण्ड डिक्लाइन ऑफ दी मौर्याज, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2012 (1973)।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मौर्य प्रशासन का विस्तार से वर्णन करें।
2. मौर्यकाल की कला और स्थापत्य की व्याख्या करें।
3. मौर्यकालीन कला के किसी एक उदाहरण पर टिप्पणी करें।
 4. मौर्य शासन के पतन से सम्बन्धित विवादित मुद्दे क्या हैं ? इनके बारे में आपकी क्या राय है ?

संगमकालीन दक्षिण भारत तथा संगम साहित्य

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 परिचय
- 3.3 संगम साहित्य के ज्ञात राजनैतिक इतिहास
 - 3.3.1 चोल
 - 3.3.2 चेर
 - 3.3.3 पाण्ड्य
- 3.4 शासन व्यवस्था
- 3.5 सांस्कृतिक व्यवस्था
 - 3.5.1 सामाजिक व्यवस्था
 - 3.5.2 आर्थिक व्यवस्था
 - 3.5.3 धार्मिक व्यवस्था
 - 3.5.4 कला एवं स्थापत्य
- 3.6 संगम साहित्य
 - 3.6.1 प्रथम संगम
 - 3.6.2 द्वितीय संगम
 - 3.6.3 तृतीय संगम
 - 3.5.4 उपलब्ध संगम साहित्य
- 3.7 सारांश
- 3.8 प्रस्तावित पुस्तक
- 3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 परिचय

संगमकालीन दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड है जो ई० पू० तीसरी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक के इतिहास को अपने में समाहित किये हुए है। सुदूर दक्षिण भारत के कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के बीच के क्षेत्र को तमिल प्रदेश कहा जाता है। इस प्रदेश में अनेक छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था जिसमें चोल, चेर एवं पाण्ड्य प्रमुख था।

दक्षिण भारत के इस प्रदेश में तमिल कवियों द्वारा सभाओं तथा गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। इन गोष्ठियों में विद्वानों के मध्य विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता था। इसे ही संगम के नाम से जाना जाता

है। 100 ई० से 250 ई० के मध्य दक्षिण भारत में तीन संगमों का आयोजन किया गया। इस युग को ही इतिहास में संगम युग के नाम से जाना जाता है। सर्वप्रथम इन गोष्ठियों का आयोजन पाण्ड्य राजाओं के राजकीय संरक्षण में किया गया था। जिसकी राजधानी मदुरई थी।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य मुख्य रूप से संगमकालीन दक्षिण भारत का इतिहास के विभिन्न विचार बिंदुओं को समझना है। संगम साहित्य के ज्ञात संगमकालीन संस्कृति यथा-सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था, कला एवं साहित्य के साथ-साथ संगम साहित्यों का विस्तृत वर्णन करना है।

1.3 संगम साहित्य से ज्ञात राजनैतिक इतिहास

1.3.1 चोल

संगम युगीन राज्यों में सर्वाधिक शक्तिशाली चोलों का राज्य था। इसके अंतर्गत चित्तूर, उत्तरी अर्काट, मद्रास से चिंगलपुत तक का भाग, दक्षिणी अर्काट, तंजौर, त्रिचनापल्ली का क्षेत्र सम्मिलित था। संगम काल का सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण शासक करिकाल था। इसने चेर तथा पाण्ड्य राजाओं को परास्त कर कावेरी नदी घाटी तक अपनी विजय पताका लहराया। यह ब्राह्मण मतानुयायी था तथा उसने इस धर्म को राजकीय संरक्षण भी दिया। वह स्वयं एक विद्वान, विद्वानों का आश्रयदाता, महान निर्माता, प्रजावत्सल्य के साथ एक महान विजेता भी था। पुहार पतन का निर्माण इसी के समय में हुआ। कावेरी नदी पर बांध का निर्माण इसी के समय में हुआ। कावेरी नदी पर बांध का निर्माण कर इसने सिंचाई के लिए नहरें निकलवाईं। चोलों का प्रारंभिक राजधानी उरैयूर था किंतु कालांतर में कावेरीपत्तनम बन गया।

करिकाल की उपलब्धियों का अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण हमें प्राप्त होता है। बताया गया है कि उसने हिमालय तक सैनिक अभियान किया तथा वज्र, मगध और अवन्ति राज्यों को जीत लिया। इसी प्रकार कुछ अनुश्रुतियों में उसकी सिंहल विजय का वृत्तान्त मिलता है। बताया गया है कि करिकाल ने सिंहल से 12000 युद्ध बन्दियों को लाकर पुहार के समुद्री बन्दरगाह के निर्माण में लगा दिया था। किन्तु इस प्रकार के विवरण काल्पनिक प्रतीत होते हैं तथा इन्हें पुष्ट करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

करिकाल के पश्चात् चोलों की शक्ति निर्बल पड़ने लगी। उसके तीन पुत्र थे- नलंगिली, नेडुमुदुक्किलि तथा मावलत्तान। इनमें नलंगिली के सम्बन्ध में हमें कुछ पता है। ऐसा लगता है कि इस समय चोल वंश दो शाखाओं में विभक्त हो गया। नलंगिली ने करिकाल के तमिल राज्य पर शासन किया। उसकी एक प्रतिद्वन्दी शाखा नेडुनगिल्ली के अधीन संगठित हो गयी। दोनों के बीच एक दीर्घकालीन गृहयुद्ध छिड़ा। अन्तोगत्वा कारियारु के युद्ध में नेडुनगिल्ली पराजित हुआ तथा मार डाला गया। इस युद्ध का विवरण मणिमेकलै में प्राप्त होता है। इन दो राजाओं का एक अन्य समकालीन कलिवलवन् था जो उरैयूर में राज्य करता था। वह एक शक्तिशाली शासक था जिसने चेरों को हराकर उनकी राजधानी करूर के ऊपर अधिकार जमा लिया।

उपर्युक्त शासकों के अतिरिक्त संगम साहित्य में चोल वंश के कुछ राजाओं के नाम भी प्राप्त होते हैं- कोप्परुन्जोलन, पेरुनरकिल्लि, कोञ्चेगणन् आदि। इनके सम्बन्ध में जो विवरण सुरक्षित है, उनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। उनकी उपलब्धियाँ काव्य का विषय हैं, इतिहास की नहीं। संगम युगीन चोल शासकों ने तीसरी-चौथी शती तक शासन किया। तत्पश्चात् उरैयूर के चोलवंश का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो जाता है। नवीं शताब्दी के मध्य विजयालय के नेतृत्व में पुनः सत्ता का उत्थान हुआ।

1.3.2 चेर

संगम युग का दूसरा राज्य चेर था जो आधुनिक केरल में स्थित था। इसके अंतर्गत कोयम्बटूर का कुछ भाग एवं सलेम (प्राचीन कोंगू जनपद) भी सम्मिलित थे। इस वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक उदियंजीरल (लगभग 130 ई०) हुआ। इसका प्रमुख एवं प्रतापी शासक सेनगुट्टवन था जो आदन् के पुत्रों में से एक था। इसके यश का गान संगम युग के सुप्रसिद्ध कवि परिणर ने किया है। वह एक वीर योद्धा के साथ-साथ कुशल सेनानायक भी था।

उसके पास घोड़े, हाथी एवं नौसैनिक बेड़ा थी था। इसने अधिराज की उपाधि ग्रहण की थी। उसने पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के बीच अपना राज्य विस्तृत किया वह साहित्य एवं कला का उदार संरक्षक था। इसने पत्तिनी नामक धार्मिक संप्रदाय को समाज में प्रतिष्ठित किया एवं पत्तिनी देवी की पूजा प्रारंभ करवाई। चेरों की राजधानी करूरु अथवा बाजीपुर थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि सेनगुट्टुवन के बाद चेरवंश कई उप-शाखाओं में बँट गया। उसके बाद के महत्वपूर्ण चेर शासक अन्दुवन् तथा उसका पुत्र वाली आदन थे। तत्पश्चात् अय और पारि राजा बने। इन सभी ने अल्पकाल तक शासन किया। वे ब्राह्मण धर्म तथा साहित्य के संरक्षक थे। ये सभी उपशाखा के शासक प्रतीत होते हैं।

चेरवंश की मुख्य शाखा में सेनगुट्टुवन का पुत्र पेरुञ्जीरल इरुमपौरै (लगभग 190 ई०) शासक बना। वह महान् विजेता था। उसके विरुद्ध सामन्त अडिगैमान ने चोल तथा पाण्ड्य राजाओं को मिलाकर एक मोर्चा तैयार किया। किन्तु इरुमपौरै ने अकेले ही तीनों को पराजित कर दिया तथा तगदूर नामक किले पर अपना अधिकार जमा लिया। बाद में अडिगैमान उसका मित्र बन गया। चेरवंश का अगला राजा कडक्को इलंजीराल इरुमपौरै हुआ। उसने भी चोल तथा पाण्ड्य राजाओं के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। संगम काल का अन्तिम चेर शासक सेईयै (लगभग 210 ई०) हुआ। उसके समकालीन पाण्ड्य शासक नेडुंजेलियन ने उसे पराजित कर चेर राज्य की स्वाधीनता का अन्त कर दिया।

1.3.3 पाण्ड्य

संगम युग का तीसरा राज्य पाण्ड्यों का था। यह राज्य कावेरी के दक्षिण में स्थित था। इसमें आधुनिक मदुरा तथा तिन्नेवल्ली के जिले और त्रावणकोर का कुछ भाग शामिल था। इसकी राजधानी मदुरा थी।

संगम साहित्य में पाण्ड्य राजाओं का जो विवरण प्राप्त होता है वह अत्यन्त भ्रामक है तथा उसके आधार पर हम उनके इतिहास का क्रमबद्ध विवरण नहीं जान सकते। इस वंश का प्रथम महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली राजा नेडुंजेलियन (लगभग 210 ई०) हुआ। पूर्ववर्ती तीन राजाओं के नाम संगम साहित्य से ज्ञात होते हैं— नेडियोन् पलशालै, मुदुकुडमै तथा नेडुंजेलियन्। किन्तु इनके शासन काल की घटनाओं के विषय में कुछ भी पता नहीं है। उनका काल भी ठीक ढंग से निर्धारित कर पाना कठिन है।

राजगद्दी प्राप्त करने के समय नेडुंजेलियन अल्पायु था। उसके सम्मुख एक भारी विपत्ति आई। चेर, चोल तथा पाँच अन्य राजाओं ने मिलकर उसके राज्य को जीता था राजधानी मदुरा को घेर लिया। किन्तु नेडुंजेलियन अत्यन्त वीर तथा साहसी था। उसने अपने शत्रुओं को राजधानी से खदेड़ दिया। वह उनका पीछा करते हुए चोल राज्य की सीमा में घुस गया जहाँ तलैयालनगानमे (तंजोर जिला) के युद्ध में सभी को बुरी तरह परास्त किया। चेर शासक शेय को उसने बन्दी बनाकर अपने कारागार में डाल दिया। इसके अतिरिक्त मिल्लै तथा मुतुरु नामक दो प्रदेशों पर भी उसने अधिकार कर लिया। इस प्रकार अल्पकाल में ही उसने न केवल अपने पैतृक राज्य को सुरक्षित किया, अपितु उसका विस्तार भी कर दिया।

महान् विजेता होने के साथ-साथ नेडुंजेलियन विद्वान् तथा विद्वानों का आश्रयदाता, उदार प्रशासक एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। संगम युगीन कवियों ने उसकी उदारता एवं दानशीलता की प्रशंसा की है। वह वैदिक धर्म का पोषक था तथा उसने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करवाया था। उसकी राजधानी मदुरा तत्कालीन भारत की अत्यन्त प्रसिद्ध व्यापारिक एवं सांस्कृतिक नगरी बन गयी थी।

नेडुंजेलियन् के पश्चात् कुछ समय के लिए पाण्ड्य राज्य का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो गया। सातवीं शताब्दी में पाण्ड्य सत्ता का पुनः उत्कर्ष हुआ।

1.4 शासन व्यवस्था

संगमकालीन साहित्यों के अनुसार इस समय वंशानुगत राजतंत्र का ही प्रचलन था। जो ज्येष्ठता पर आधारित था। राजा का चरित्रवान, प्रजापालक, निष्पक्ष तथा संयमी होना अनिवार्य था। राजा की शक्ति सर्वोच्च होती थी। उसके अधिकार तथा शक्तियाँ असीमित थी। वह सैद्धांतिक रूप से निरंकुश होते हुए भी व्यवहारिक रूप से

प्रजावत्सल्य था। उसे उसके बुद्धिमान मंत्री तथा दरबारी कविगण उसे निरंकुश होने से बचाते थे। मंत्रियों को अमाइच्चार अथवा अमाइच्चर कहा जाता था। राजसभा को मनडाय कहा जाता था। जहाँ राजा द्वारा न्याय का कार्य किया जाता था। राजा अपने जीवन काल में ही युवराज का चुनाव कर देते हैं। युवराज को कोमहन तथा अन्य पुत्रों को इलेंगों कहा जाता था। राजा के निःसंतान मरने पर मंत्रियों तथा प्रजा द्वारा राजा का चुनाव किया जाता था। राजा का जन्मदिन इस युग में एक महोत्सव की तरह मनाया जाता था। राज्याभिषेक का प्रचलन नहीं था किंतु राजा के सिंहासनारूढ़ होने के समय उत्सव का आयोजन किया जाता था। दरबार में कवियों एवं विद्वानों का स्थान सम्मानजनक था।

राजा अपने परामर्शदाताओं की सहायता से शासन कार्य का संचालन करते थे। मुख्य परामर्शदाता थे – पुरोहित, वैश्य, ज्योतिष एवं मंत्रीगण। परामर्शदाताओं की सभा के पंचवारक कहा जाता था। राजा शासन कार्य के संचालन में गुप्तचरों की भी सहायता लिया करता था। गुप्तचरों को ओर्टर कहा जाता था। इस समय दंड व्यवस्था अत्यंत कठोर थी। मृत्युदंड, कारावास, आर्थिक जूर्माना आदि विविध रूपों में दंड प्रदान किये जाते थे। अपराधी को कभी-कभी भीषण यातनाएं भी जाती थी। न्यायाधीश को निष्पक्ष न्याय देने की आशा की जाती थी। राजा सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था तथा मनडाय अर्थात् राजसभा राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय होता था तथा मन्तरम न्याय की सबसे छोटी इकाई थी।

इस युग की शासक युद्ध प्रेमी थे। वे चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा रखते थे। युद्ध में वीरगति पाना अत्यंत शुभ कार्य माना जाता था। राजा की सेना में पेशेवर सैनिक हीं होते थे। राजा के पास चतुर्गिणी सेना अर्थात् अश्व सेना, रथ सेना, हस्ति सेना, एवं पैदल सेना होती थी। सैनिकों द्वारा जिन शस्त्रों का मुख्यतया प्रयोग किया जाता था, वे थे – वेल (भाला), विल (धनुष), कोल (वाण), वाल(खड्ग) तथा कवच आदि। शहीद सैनिकों की याद में शिविर लगाये जाते थे। वीरगति प्राप्त योद्धाओं की पाषाण मूर्तियाँ बनाकर देवताओं की तरह उनकी पूजा की जाती थी। सेनाओं के लिए एक विशेष समारोह का आयोजन किया जाता था जिसमें सेनापतियों को एकाडि की विशेष उपाधि प्रदान की जाती थी। नगर एवं ग्राम प्रशासन की मुख्य इकाईयाँ थी, जहाँ का प्रशासन स्थानीय जनप्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता था। उर नाम की संस्था द्वारा नगर प्रशासन का संचालन किया जाता था। ग्राम प्रशासन मन्तरम, पोदइल, अम्बलय तथा अपै के निर्देशन में संभाला जाता था।

1.5 सांस्कृतिक व्यवस्था

संगमयुगीन सांस्कृतिक जीवन की प्रमुख विशेषता है आर्य तथा आर्योत्तर सांस्कृतिक तत्वों का समन्वय। दक्षिण की संस्कृति में उत्तर भारत की संस्कृति के अनेक तत्व पाए जाते हैं, तथा उत्तर भारतीय संस्कृति का प्रभाव संगम साहित्य में स्पष्ट देखा जा सकता है।

1.5.1 सामाजिक व्यवस्था

संगम साहित्यानुसार हमें तमिल देश की सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है। इस समय तक सुदुर दक्षिण का आर्यीकरण हो चुका था। यह साहित्य हमारे सामने आर्य तथा द्रविड़ संस्कृतियों के समन्वय का चित्र प्रस्तुत करता है। प्राचीन तमिल समाज का स्वरूप मूलतः जनजातीय था परन्तु कृषि क्षेत्र धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था। धीरे-धीरे पुरानी नातेदारी व्यवस्था टूट कर वैदिक वर्ण स्थापित हो रही थी किन्तु संगम युग में कही भी स्पष्टतः वर्ण विभाजन देखने को नहीं मिलता है। इसके बावजूद भी समाज को ब्राह्मणों को सम्मान जनक स्थान प्राप्त था। इस युग में केवल ब्राह्मण ही यज्ञोपवीत धारण कर सकते थे।

समाज के अन्य वर्गों के लोगों को उनके प्रातीय मूल के नाम से जाना जाता था। यथा पर्वतीय क्षेत्र के लोगों को **कुटिन्जी**, समुद्रतटीय क्षेत्र के लोगों को **नैडल** आदि नामों से जाना जाता था इस काल की प्रमुख जातियों के विषय में **तोलकत्पियम** नामक ग्रंथ में विस्तार से जानकारी दी गई है। इस ग्रंथ के अनुसार इस काल की प्रमुख जातियाँ थी टुडियान, परैयान, कादम्बन, पानन आदि ब्राह्मणों के अतिरिक्त संगम साहित्य में समाज के चार वर्गों में विभाजन की जानकारी मिलती है, ये चार वर्ग थे

1. अरसर—राजपरिवार से जुड़ा व्यक्ति ←शासक वर्ग
2. बेनिगर—वणिक वर्ग
3. बल्लाल—बड़े पृथक वर्ग, जो कि प्रतिष्ठित थे
4. बेल्लार—मजदुर कृषक वर्ग

संगम युग में हमें तीव्र सामाजिक विषमता का बोध होता है। धनी लोग ईट और सुरखी के मकानों में और गरीब लोग झुग्गी-झोपड़ी में रहते थे। समाज में अस्पृश्यता तो थी किन्तु दास प्रथा नहीं थी। कुछ विशेष पेशों में आने वाले लोगों में **कोल्लम** (लोहार), **तच्चन** (बढ़ई), **कवन** (नमक का व्यापारी) **कुलवा** (अनाज का व्यापारी), वैवानिकम (वस्त्रों का व्यापारी) और **पोन, वाणिकम** (स्वर्ण व्यापारी)। बाद में व्यापारी वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत आ गए। निम्न वर्गों के लोगों के स्थिति अत्यंत सामान्य थी।

इस युग में विवाह को एक संस्कार माना जाता था और प्राचीन काल के समान ही **आठ प्रकार** के समाज में विवाह का प्रचलन था। तमिल देश में स्त्री और पुरुष के प्रणय को पाँच तिन्निई कहा जाता था। एक पक्षीय प्रेम को **कविकन** कहा जाता था। औचित्यहीन प्रेम को **पेरुन्दिणे** कहा जाता था। संगम कालीन समाज के मातृसतात्मक होने का संकेत मिलता है। यद्यपि उच्च वर्गों में **सती-प्रथा** का संकेत मिलता है, इस समाज में **मुरुगन** की उपासना सबसे प्राचीन थी। इसकी उपासना में किया जाने वाला नृत्य **बेलनाडन** कहलाता था, संगम समाज में **कौआ** शुभ पक्षी के रूप में माना जाता था क्योंकि इसका संबंध अतिथि आगमन से था।

समाज में स्त्री का स्थान पुरुषों की अपेक्षा अत्यंत निम्न/ दयनीय था। कन्या का जन्म अशुभ माना जाता था। स्त्रियों को सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था। वह शिक्षा ग्रहण करती थी, सामाजिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी, राजा के अंगरक्षक के रूप में न्युक्त होती थी। पत्नि को घर में आदरणीय स्थान प्राप्त था। नृत्य करने वाली स्त्री घरेलु स्त्री के लिए अशुभ मानी जाती थी। विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। परिवार पितृसतात्मक था। निम्न वर्ग को स्त्रीयों खेतों में कम करती थी। विधवाओं की स्थिति इतनी दयनीय थी कि वे स्वेच्छा से सती होना पसन्द करती थी। स्वैच्छिक सती का प्रचलन संगम कालीन समाज में था। इस समाज में गणिकाओं एवं नर्तकियों के रूप में क्रमशः **परत्तियर** व **कणिगैचर** का उल्लेख मिलता है। ये वेश्यावृत्ति द्वारा जीवनयापन करती थी।

संगम युग में समाज के सभी वर्गों में शिक्षा का प्रचलन था, जो कि तत्कालीन युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। साहित्य, विज्ञान, गणित, व्याकरण आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षकों को **कणक्काटम्** तथा विद्यार्थियों को **पिल्लै** कहा जाता था। मंदिर शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के तथा इस युग में **गुरुदक्षिणा** का प्रचलन था। चित्रकला, मूर्तिकला का भी विकास इस युग में हो गया था। स्त्री शिक्षा का प्रचलन भी इस समाज में था। उच्च वर्ग की कुछ स्त्रियाँ जैसे—**ओवैयर** एवं **नच्चेलियर** ने एक सफल कवयित्री के रूप में अपने को स्थापित किया। शिकार खेलना, कुश्ती लड़ना, धूत, गोली खेलना, कविता, नाटक, नृत्य, संगीत आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। इस युग में प्रमुख वाद्य यंत्र के रूप में **याल** जो तारयुक्त होता था, प्रयोग किया जाता था?

1.5.2 आर्थिक व्यवस्था

संगमकालीन साहित्यानुसार हमें इस काल की आर्थिक व्यवस्था का अपेक्षाकृत अधिक जानकारी प्राप्त होती है। इस समय यह प्रदेश आर्थिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध थी। इसकी समृद्धि का मूलाधार था—कृषि एवं व्यापार वाणिज्य। उपहार के द्वारा आर्थिक पुनर्वितरण होता था। समृद्ध और शक्तिशाली वर्ग में तीन प्रकार के लोग थे—वेतर, वेलिट एवं वेल्लार।

कृषि देश की आर्थिक स्थिति की मूलाधार थी। चावल, राई, गन्ना, कपास आदि की खेती की जाती थी। नदियों तथा तालाबों के द्वारा सिंचाई की व्यवस्था थी। साहित्यों में फसल काटने, अनाजों को सुखाने, गन्ने से शक्कर तैयार करने आदि का रोचक वर्णन मिलता है। किसानों को **वेल्लार** तथा इनके प्रमुखों को **वेलिर** कहा जाता था। काले तथा लाल मिट्टी के बर्तनों एवं लोहों के आविष्कार का श्रेय **वेलिर** लोगों को ही दिया जाता है। संगम

साहित्य से पता चलता है कि समाज के निम्न वर्ग की महिलाएँ ही मुख्यतः कृषिकार्य किया करती थी जिसे **कडैसिवर** कहा गया है,

भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख साधन था, जो उपज का 1/6 भाग बसूल किया जाता था। भूमिकर को **कराई** कहा जाता था। उस समय **पारी** नामक राज्य कटहल और शहद तथा **चेर राज्य** कटहल, काली मिर्च एवं हल्दी की खेती के लिए विख्यात थे। अन्य कर के रूप में सम्पत्ति कर, बंदरगाह कर तथा लूट के धन पर भी कर की उगाही की जाती थी। सामंतों द्वारा दिया जाने वाला कर एवं लूट द्वारा प्राप्त धन **दुराई** कहलाता था। आवश्यकतानुसार प्रजा से अधिक कर भी बसुला जाता था जिसे **इरावु** कहा जाता था। कृषि के अतिरिक्त कपड़ा बुनना प्रमुख उद्योग था उरैयार तथा मदुरई वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे। वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त रस्सी बाँटना, हाथी दांत की वस्तुएँ बनाना, जहाज निर्माण, सोने के आभूषण बनाना तथा समुद्र से मोती निकालने का कार्य भी किया जाता था, जो राज्य के आर्थिक आधार को सशक्त बनाता था।

इस समय आंतरिक तथा बाह्य व्यापार की दशा उन्नत थी। आंतरिक व्यापार मुख्यतया वस्तु विनिमय के द्वारा होता था। वस्तु विनियम प्रणाली में ऋण व्यवस्था नहीं किसी वस्तु के बदले निश्चित ऋण प्राप्त किया जा सकता था किंतु उसे उसी मात्रा में लौटाया भी जाना था। यह प्रथा **कुरीटिरपरई** कहलाती थी। धान और नमक दो ही ऐसी वस्तु थी, जिसकी निश्चित विनिमय दर थी। धान की समान मात्रा के बराबर नमक दिया जाता था।

उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के बीच व्यापार की चर्चा 4 थी ई.पू. से ही ज्ञात होती है। जिस मार्ग से व्यापार होती थी वह गंगा घाटी से गोदावरी घाटी तक जाता था। यह मार्ग **दक्षिणापथ** के नाम से माना जाता है। कौटिल्य ने दक्षिण मार्ग को अनेक नाम गिनाएँ हैं। उत्तर और दक्षिण के बीच अधिकांश व्यापार के मुद्दे भोग-विलास की वस्तुएँ थी जैसे-स्वर्ण, मोती, अन्य रत्न आदि। उत्तम वस्त्रों के साथ-साथ उत्तरी काली मृदभांड जो सुदूर दक्षिण में लोकप्रिय था, का भी व्यापार होता था।

पेरीप्लस के अनुसार **टिंडिस**, **मुजरिस**, **नेलसिंडा** आदि पश्चिमी समुद्रतट पर महत्वपूर्ण बंदरगाह थे। पेरीप्लस **अरगूडु** या **उरैयुर** नामक स्थान की भी चर्चा करता है। यहाँ से **अरगटिक** नामक मलमल का निर्यात होता था। इस समय तमिल देश का व्यापार पश्चिम में मिस्त्र तथा अरब के यूनानी राज्य से तथा पूर्व में मलय द्वीप-समूह तथा चीन के साथ होता था। कालीमिर्च, हाथीदाँत, मोती मलमल, रेशम आदि प्रचुर मात्रा में यहाँ मिलते थे जिनकी माँग पश्चिमी देशों में काफी थी। चोल राज्य में **पुहार** (कावेरीपत्तनम), पाण्ड्य युग में **शालीयूर** और चेर राज्य में **बंदर** नामक प्रमुख बंदरगाह थे। चेरों की प्राचीन राजधानी करुयुर (बंजीपुर) से रोमन समाग्री प्राप्त होती है। मुजरिस में रोमन सम्राट अगस्त्य का मंदिर रोमनों के द्वारा बनाया गया था जो विदेशी व्यापार का संकेत अर्थात् विदेशियों से संपर्क का संकेत देते हैं। **विरुक्काम्पालिया** नामक स्थान चोल, चेर एवं पाण्ड्य राज्य के संगम स्थल के रूप में है। इस समय व्यापारिक (स्थल मार्ग) कारवां का नेतृत्व करने वाले सार्थवाह को **वासातुस्वा** एवं समुद्री सार्थवाह मानानिकम कहा जाता था।

व्यापारिक गतिविधि में सिक्को के प्रमाण भी मिले हैं। इस समय तमिल साहित्यों के अनुसार— **काशु**, **कनम**, **पोन** और **बेनपोन** आदि सिक्के की जानकारी मिलती है। आहत सिक्के भी प्राप्त होते हैं, दशकारों को अपने उत्पादों पर शुल्क देना पड़ता था जिसे **कारुकारा** कहा जाता था,

भूमि निर्वतन के अनुसार मापी जाती थी। सुदूर दक्षिण में **मा** और **वेली** भूमि के माप थे। यहाँ कर देने के लिए अनाज को अम्बानम् में तौला जाता था। संभवतः यह बड़ा तौल था। छोटे तौल के रूप में **नालि**, **उलाकू** और **अलाक** प्रचलित थे।

1.5.3 धार्मिक व्यवस्था

संगमकालीन साहित्यानुसार हमें इस समय धार्मिक व्यवस्था एवं रीतियों की जानकारी प्राप्त होती है। इस युग ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म का प्रचलन दिखाई देता है। अनुश्रुतियों के अनुसार दक्षिण में वैदिक संस्कृति को उत्तर भारत ले जाने का श्रेय **अगस्त्य ऋषि** को दिया जाता है। आज भी दक्षिण में अगस्त्य पूजा का व्यापक रूप से

प्रचलन है। साथ ही साथ **कौंडिन्य ऋषि** का भी दक्षिण से पर्याप्त संबंध रहा है। यहाँ के अनेक मंदिर **अगस्तेश्वर** नाम से प्रसिद्ध है जहाँ शिव की मूर्तियाँ स्थापित हैं। एक परंपरा के अनुसार पाण्ड्य राजवंश के पुरोहित अगस्त्य वंश के पुरोहित होते थे। ऐसा ही एक परंपरा अनुश्रुतियों के अनुसार तमिल भाषा तथा व्याकरण की उत्पत्ति अगस्त्य ऋषि ने की। महाभारत एवं पुराणा में भी दक्षिण में कृषि के विस्तार से अगस्त्य का संबंध जोड़ा जाता है।

दक्षिण भारत में सबसे प्रमुख देवता **मुरुगन** थे। बाद में इनका नाम **सुब्रमण्यम** हो गया और **स्कन्द कार्तिकेय** से इस देवता का एकीकरण हो गया। मुरुगन का एक अन्य नाम बेल्लन भी है जिसका संबंध **बेल** से है। यह इस देवता का प्रमुख अस्त्र था। जैनधर्म तथा बौद्ध धर्म का समाज में नाम मात्र ही प्रचलन था। इस समय मुख्य उपास्य देवता थे— **विष्णु, शिव, श्री कृष्ण, बलराम**, आदि इसके अतिरिक्त **वीर पूजा** तथा **सतीपूजा** का भी प्रचलन था। किसान लोग **मरुडम** (इन्द्र) की पूजा करते थे। पुहार के वार्षिक उत्सव में इन्द्र की विशेष प्रकार की पूजा होती है, **कौईलै** विजय की देवी थी। स्कंद कार्तिकेय को शिव-पार्वती के पुत्र के रूप में माना जाता है, तमिल प्रदेश में **मुरुगन** का प्रतीक **मूर्गा** (कुक्कुट) को माना गया है जिसे पर्वत शिखर पर कीड़ा करना पसन्द है। इस काल में **बलि-प्रथा** का भी प्रचलन था। देवताओं की पूजा अर्चना के लिए मंदिरों की व्यवस्था थी, जिन्हें नागर, कोट्टम, पुराई या कोसी कहा जाता था। यद्यपि मंदिर अपने अस्तित्व में थे तथापि धार्मिक कार्यों का अधिकांशतः आयोजन खुले वृक्षों के नीचे किया जाता था।

1.5.4 कला एवं स्थापत्य

संगम साहित्य से तमिल प्रदेश में कला एवं स्थापत्य के विकास के विषय में भी कुछ जानकारी मिलती है। धनी वर्गों के घर ईंट और चूने से बनाए जाते थे, जबकि निर्धन वर्ग फूस की झोंपड़ियों में रहता था। दीवारों पर सुंदर भित्ति चित्र बनाए जाते थे। नगर-निर्माण सुनियोजित ढंग से होता था। नगर-निर्माण की प्रचलित परंपराओं का पालन किया जाता था। नगरों की सुरक्षा के लिए प्राचीर का निर्माण किया जाता था। उसके चारों ओर गहरी खाइयाँ खोदी जाती थीं। पुहार नगर का विशद वर्णन संगम साहित्य में मिलता है। नगर दो भागों में बसा हुआ था। समुद्रतटीय भाग में व्यापारियों, कारीगरों तथा यवनों की बस्तियाँ, दुकाने एवं बाजारें थीं। नगर के भीतरी भाग में सुंदर आलीशान, उद्यानों से घिरे महल सदृश मकान थे। वातायनों, शयनागारों, गलियारों, तोरण द्वारों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मंदिर एवं बलि-वेदियाँ भी बनाई जाती थीं। ललित कलाओं और दस्तकारी के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। इस प्रकार संगम साहित्य सुदूर दक्षिण के आरंभिक इतिहास और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है।

1.6 संगम साहित्य

ऐतिहासिक युग के प्रारंभ में दक्षिण भारत का क्रमबद्ध इतिहास हमें जिस साहित्य से प्राप्त होता है उसे **संगम साहित्य** कहते हैं। इस साहित्य में दक्षिण भारत के जनजीवन की झांकी मिलती है, इस साहित्य से हमें तमिल प्रदेशों के तीन राज्यों **चोल, चेर** एवं पाण्ड्य का विवरण प्राप्त होता है। इनमें चेर का सबसे अधिक उल्लेख है। यह सबसे प्राचीन वंश था।

संगम शब्द का अर्थ है— संघ, परिषद, गोष्ठी अथवा संस्थान। वास्तव में संगम तमिल कवियों विद्वानों आचार्यों, ज्योतिषियों एवं बुद्धिजीवियों की एक परिषद थी। तमिल भाषा में लिखे गये प्राचीन साहित्य को ही **संगम साहित्य** कहा जाता है। प्रत्येक कवि अथवा लेखक अपनी रचना को संगम के समझ प्रस्तुत करता था तथा इसकी स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद ही किसी भी रचना का प्रकाशन संभव था।

संगम साहित्य की रचना कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के दक्षिण भू-भाग में स्थित प्राचीन तमिलकम प्रदेश में हुई। संगम साहित्य तमिल भाषा का प्राचीनतम अंश माना गया है। संगम साहित्य की रचना की वास्तविक तिथि विवादास्पद है। इस साहित्य में वर्णित परंपराओं एवं अनुश्रुतियों के आधार पर यह साहित्य अत्यंत प्राचीन प्रतीत होता है, किंतु इस पर विश्वास करना कठिन है। सामान्यतः इस साहित्य का विकास ईसा की प्रथम शताब्दी से तीसरी शताब्दी (110—150 ई०) माना जाता है।

परंपरा के अनुसार अतिप्राचीन समय में पाण्ड्य शासको के संरक्षण में कुल तीन संगम आयोजित किये गए। जिनमें संकलित साहित्य को संगम साहित्य की संज्ञा दी जाती है। प्रथम संगम मदुरा में, द्वितीय संगम कपाटपुरम में तथा तृतीय संगम उत्तरी मदुरा में आयोजित किया गया। इन तीनों संगमों की कुल अवधि 9950 वर्ष मानी जाती है जिसे 197 पाण्ड्य राजाओं ने संरक्षण प्रदान किया एवं इसमें 8598 कवियों ने साहित्यिक रचनाएं की। इन तीनों साहित्यों का उल्लेख 8वीं शताब्दी के ग्रंथ इरैयनार अगगपोरुप में हुआ है। इस ग्रंथ के अनुसार जो विवरण प्रस्तुत होता है वह कपोलकल्पित प्रस्तुत होता है। इस पर पुरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता है। यह विवरण संगम साहित्य को प्राचीनता प्रदान करने के लिए दिया गया है। इस विवरण में ऐतिहासिक तथ्यों से अधिक कल्पना का सहारा लिया गया है।

1.6.1 प्रथम संगम

इसका आयोजन पाण्ड्यों की प्राचीन राजधानी मदुरा (जो अब समुद्र में विलीन हो गया है) में हुआ था। इसकी अध्यक्षता ऋषि अगस्त्य ने की थी। इन्हें उत्तर भारत की आर्य संस्कृति को दक्षिण में लाने का श्रेय दिया जाता है। इस संगम में 1549 विद्वानों ने भाग लिया एवं इस संगम को 89 पाण्ड्य शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस संगम के कार्यकाल में 4455 विद्वानों को अपनी रचनाएं प्रकाशित करने की अनुमति दी गई। यह संगम 4400 वर्षों तक चला। इसमें रचित प्रमुख ग्रंथ—अकट्टियम् (अगस्त्यम्), परिदाल, मदुनारै, मुदुकुरुकु तथा कलरि आविरै आदि थे। दुर्भाग्यवश इनमें से कोई भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इस संगम में सदस्यों में प्रमुख थे—तिरिपुरमेरिय, मुरुगवल तथा मुदिनागरायर आदि।

1.6.2 द्वितीय संगम

मदुरा के पतन के बाद पाण्ड्य शासको के संरक्षण में दुसरा संगम का आयोजन कपाटपुरम् (अलैवाई) में किया गया। आरंभ में इसकी अध्यक्षता का श्रेय भी अगस्त्य ऋषि को जाता है किंतु बाद में इनका स्थान इनका शिष्य तोलपियर ने ले लिया। इस संगम में कुल 49 सदस्य ने भाग लिया। इसे 59 पाण्ड्य शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस संगम ने 3700 कवियों को अपनी रचना प्रकाशित करने की अनुमति प्राप्त हुई। यह संगम लगभग 3700 वर्षों तक चला। इस संगम के दौरान रचित कुछ प्रमुख ग्रंथ—अक्कितयम्, (अगस्त्यकृत), 'तोल्लकापियम्' मापुरानम्, इसै—नुनुक्कम्, भूतपुरानम्, केलि, कुरुकु, वेन्दालि एवं व्यालमलय आदि थे। दुर्भाग्यवश इस संगम में रचित सिर्फ एक ही ग्रंथ—'तोल्लकापियम्' ही अवशिष्ट है जिसकी रचना अगस्त्य ऋषि के शिष्य तोलकापियर को दिया जाता है। यह ग्रंथ तमिल भाषा का प्राचीन व्याकरण का ग्रंथ है। इसके तीन भाग हैं—

(क) इलुथु – वर्ग विचार

(ख) सोस – काव्य विचार

(ग) पोरूल – वस्तु

ऐसी मान्यता है कि प्राचीन मदुरा के समान द्वितीय संगम का केन्द्र कपाटपुरम भी समुद्र में विलीन हो गया है। विद्वानों ने उपर्युक्त दोनों संगमों की ऐतिहासिकता पर संदेह व्यक्त किया है।

1.6.3 तृतीय संगम

इस संगम का आयोजन उत्तरी मदुरा में हुआ एवं इसकी अध्यक्षता का श्रेय नक्कीरर को जाता है। यह संगम 1850 वर्षों तक चली जिसे 89 पाण्ड्य शासको का संरक्षण प्राप्त हुआ। इसमें संकलित कविताएं आज भी उपलब्ध है। इसकी संख्या 49 थी एवं इसमें 449 कवियों को उनकी रचनाओं के प्रकाशन की अनुमति प्रदान किया। इस संगम द्वारा संकलित उत्कृष्ट रचनायें—नेदुन्थोकै, कुरुन्थोकै, नत्रिनई, एन्कुरुन्नूरु, पदित्रुप्पट, नूत्रैम्बथु, परि—पादल, कूथु, वरि, पेरिसै तथा मित्रिसै आदि हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश नष्ट हो गये हैं इसके बावजूद आज जो भी तमिल साहित्य बचा हुआ है, वह इसी संगम से संबंधित है। तोलकापियम सहित तीसरे संगम के अवशिष्ट

सभी ग्रंथों का संपादन **तिन्नेवेल्ली** की 'साउथ इंडिया शैव सिद्धांत पब्लिकेशन सोसायटी' के द्वारा किया गया है। तोल्लकापियम में 8 प्रकार के विवाह का उल्लेख किया गया है।

तिरुवकाम्पुलियर चेर, चोल व पाण्ड्य तीनों राज्यों का संगम स्थल था। तमिल संगम का सर्वप्रथम उल्लेख **अगगपोरुल** (8वीं सदी) के भाष्य की भूमिका में मिलता है, संगम साहित्य से ज्ञात होता है कि दक्षिण में आर्य सभ्यता का विस्तार **ऋषि अगस्त्य** एवं **कौडिन्य** ने किया। संगम साहित्य का काल रामचरण शर्मा के अनुसार 300-600 ई. के बीच था।

उपलब्ध संगम साहित्य का विभाजन तीन भागों में किया जा सकता है—

1. पत्थुप्पातु
2. इत्थुथोकै
3. पदिनेन कीलकन्क्कु

संगम साहित्य की दो मुख्य विषय वस्तु हैं—

1. अहूम—इसका संबंध प्रेम से हैं।
2. पूरम—यह युद्ध के बारे में हैं।

पत्थुप्पातु जो तीसरे संगम के दौरान लिखा गया, इसमें 10 कविताओं का संग्रह है। ये 10 कविताएँ अलग-अलग लेखकों के द्वारा लिखी गई हैं। इन पदों का समय द्वितीय शदी ई. का है, इनमें चोल शासक **करिकाल** एवं पाण्ड्य शासक **नेदुगोलियन** के विवरण भी मिलते हैं। **इत्थुथोकै** में 8 कविताएँ हैं। इनमें संगमकालीन राजाओं के नामावली के साथ-साथ तत्कालीन समय के जन-जीवन एवं आचार-विचार का विवरण भी प्राप्त होता है। इसकी अधिकांश कविताएँ चेर शासकों की प्रशस्ति में लिखी गई हैं, **पदिनेन कीलकन्क्कु** 18 गीतों का एक लघु संग्रह है, जो सभी उपदेशात्मक है। इसमें **तिरुवल्लुवर** का **कुशल** सर्वोत्कृष्ट है जिसे तमिल बाईबिल की संज्ञा दी गई है। नीलकण्ठशास्त्री के अनुसार यह 5 वीं सदी की रचना है।

संगम काल में महाकाव्य की रचना की गई है। यद्यपि ये ग्रंथ संगम साहित्य के अंतर्गत नहीं आते तथापि इनसे तत्कालीन जन-जीवन के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस काल की 5 प्रसिद्ध महाकाव्य एवं उसके लेखक इस प्रकार हैं—

महाकाव्य	—	लेखक
1. शिल्पादिकारम	—	इतंगो आदिगल → जैन
2. मणिमेखलै	—	सीतल सतनार → बौद्ध
3. जीवकचिंतामणि	—	तिरुन्तक देवर → जैन
4. तोल्लकापियम	—	तोल्लकापियर
5. वलयपति व कुडलकेशि	—	

इनमें प्रथम तीन ही उपलब्ध हैं। **शिल्पादिकारम** और **मणिमेखलै** को महाकाव्य— 1 एवं महाकाव्य— 2 की संज्ञा दी गई है अर्थात् शिल्पादिकारम में कहानी जहाँ समाप्त होती है वहीं मणिमेखलै में इसके आगे की कहानी प्रारंभ होती है, ये दोनों महाकाव्यों की कहानी प्रेम पर आधारित है। **शिल्पादिकारम** के नायक **कौवलन** एवं नायिका कण्णगी की प्रेम कहानी है, इसमें खलनायक की भूमिका राजदरबार की एक नर्तकी जिसका नाम **माधवी** है, माधवी के प्रेम में पागल होकर कोवसन अपनी सारी संपत्ति बर्बाद कर देता है, नर्तकी के ठुकराएँ जाने पर वह पुनः अपनी पत्नी के पास आता है, तत्पश्चात् कोवल और कण्णगी मदुरा के लिए खाना होते हैं। मदुरा में कोवलन पर रानी के एक पायल चुराने के झुठा आरोप में उसे मृत्युदंड दे दिया जाता है। कण्णगी अपने पति को निर्दोष साबित करती है। निर्दोष कोवलन को मृत्युदंड देने की ग्लानि में राजा की मृत्यु हो जाती है तथा कण्णगी के शाप से मदुरा जलकर राख हो जाता है, शिल्पादिकारम के लेखक जैन है,

मणिमेखलै की रचना शिल्पादिकारम के कुछ समय बाद हुई। इस ग्रंथ पर शिल्पादिकारम के ही प्रभाव दिखाई देता है। इसकी रचना मदुरा के व्यापारी **सीतलैसतसार** अथवा **सीतल सतनार** ने की थी जो एक बौद्ध था। यह ग्रंथ शिल्पादिकारम की कहानी को आगे बढ़ाता है, इस महाकाव्य की नायिका **मणिमेखलै**, कोवलन और नर्तकी माधवी से उत्पन्न पुत्री है, माधवी अपने पूर्व प्रेमी की मृत्यु का समाचार सुनकर बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है, राजकुमार **उदयकुमारन** मणिमेखलै से प्रेम करने लगता है, और उसे हर हाल में प्राप्त करना चाहता है किंतु मणिमेखलै अपनी सतीत्व को बचाती हुई बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है, इस ग्रंथ की कहानी दार्शनिक एवं शास्तार्थ हेतु बनायी गई है, इसका महत्व मुख्यतः धार्मिक है।

जीवकचिंतामणी संगम काल के बहुत बाद की रचना है, इसकी रचना का श्रेय जैन भिसु **तिरुत्तक्कदेवर** के दिया जाता है। यह एक आदर्श नायक की कथा है जो युद्ध एवं शांति दोनों कलाओं में निपूण है। युवावस्था में यह अनेक साहसिक कार्य करता है, एवं एक विशाल समाज्य का स्वामी बन जाता है। वह अपने प्रत्येक सैन्य अभियान में एक नई रानी लाता है, इस प्रकार वह 8 पत्नियों का आनंद लेता है। अंततोगत्वा वह सांसारिक जीवन के मुक्त हो जाता है। वर्तमान रूप में इस काव्य में 3154 छंद हैं। इस पुस्तक को **विवाह की पुस्तक** भी कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रंथ भी हैं जिससे संगम काल के इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी मिलती है। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय उत्तर एवं दक्षिण की संस्कृतियों का समन्वय हो चुका था। संगम साहित्य की निश्चित तिथि के बारे में इतिहासकारों में काफी मतभेद है। सामान्यतः इसकी रचना 100–250 ई. तक मानी जाती है किंतु श्रीनिवास आयंगर ने तीनों संगमों की अवधि एक हजार वर्ष के लगभग (500 ई० पू०–500 ई०) बताई है।

1.7 सारांश

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि संगमकाल के साहित्य से हमें तत्कालीन दक्षिण भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं संस्कृति का ज्ञान होता है। संगम साहित्य ने जिस प्रकार दक्षिण भारत के आम जन-जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है उतना किसी अन्य साहित्यों से प्राप्त नहीं होता है। इस साहित्य ने भारतीय साहित्य के न केवल धरोहर में वृद्धि की है बल्कि तत्कालीन समाज का सही चित्रण करके भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम किया है। इन कवियों की रचनाएं साहित्यिक दृष्टिकोण से भी बहुत प्रौढ़ एवं जीवंत है। इन साहित्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस समय उत्तर एवं दक्षिण संस्कृति का समन्वय हो चुका था और इस मिली जूली संस्कृति का प्रभाव वर्तमान समय में दृष्टिगोचर होता है।

1.8 प्रस्तावित पुस्तक

1. दक्षिण भारत का इतिहास – डॉ० नीलकंठ शास्त्री
2. दक्षिण भारत का वृहत इतिहास – डॉ० एच० एन० दुबे
3. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति – डॉ० वी० के० पाण्डेय
4. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के० सी० श्रीवास्तव
5. द अर्ली हिस्ट्री आव द आन्ध्र कन्ट्री (मद्रास 1941) – के० गोपालाचारी

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. संगमकालीन दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास के बारे में बताएं।
2. संगमकालीन दक्षिण भारत की सांस्कृतिक व्यवस्था की समीक्षा कीजिए।
3. संगम साहित्य से अपना परिचय दें।

शुंग एवं कण्व वंश

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 शुंग वंश की उत्पत्ति का इतिहास
 - 1.3.1 शुंगों की उत्पत्ति
 - 1.3.1.1 शुंग पारसीक थे
 - 1.3.1.2 शुंग मौर्य थे
 - 1.3.1.3 शुंग ब्राह्मण थे
- 1.4 राजनीतिक संघर्ष: विदर्भ युद्ध
- 1.5 यवनों का आक्रमण
- 1.6 पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी
- 1.7 शुंग कालीन धार्मिक स्थिति
- 1.8 शुंगकालीन भाषा साहित्य व कला
- 1.9 शुंग कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति
- 1.10 पुष्यमित्र की उपलब्धियाँ
 - 1.10.1 अश्वमेघ यज्ञ
 - 1.10.2 धर्म सहिष्णुता
 - 1.10.3 राज्यविस्तार
 - 1.10.4 साहित्यिक उपलब्धियाँ
 - 1.10.5 पुष्यमित्र का मूल्यांकन
- 1.11 कण्व वंश की उत्पत्ति
- 1.12 कण्व वंश की धार्मिक नीति
- 1.13 सहायक ग्रन्थ सूची
- 1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इतिहास सदैव इस बात का गवाह रहा है कि किसी भी मनुष्य की महत्वाकांक्षा ही उसे विजय दिलाती है। 184 ईसा पूर्व प्रसिद्ध मौर्य शासक अंतिम शासक वृहद्रथ की जीवन लीला को समाप्त कर शुंग वंश को जिस महत्वाकांक्षी योद्धा ने स्थापित किया उसे पूष्यमित्र शुंग के नाम से प्राचीन इतिहास में जाना जाता है। विदर्भ व यवनो पर विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त पूष्यमित्र द्वारा भारत के पश्चिमी भागों पर भी विजय प्राप्त की गई। शुंगकाल में ही यवन शासक हेलियोडोरस ने भागवत धर्म से प्रेरित होकर गरुड़ स्तंभ का निर्माण कराया (विदिशा म. प्र.) शुंग शासन में मध्य भारत में शांति व सुव्यवस्था देखने को मिलती हैं इन्होंने विकेन्द्रीकरण को कुछ समय तक रोकने का प्रयास किया शुंग वंश के शासक वेदिक धर्म के अनुयायी थे। भरहुत का लेख शुंग की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते है। शुंग साम्राज्य मध्य गंगा घाटी तथा चम्बल नदी के मध्य तक ही सीमित था, जिसमें अयोध्या, पाटलिपुत्र, विदिशा आदि प्रमुख नगर थे।

पुराण हर्षचरित, मालविकाग्निमित्र आदि सभी ग्रंथों में पुष्यमित्र को सेनानी के रूप में ही उल्लेख किया गया है। जिस समय पुष्यमित्र शुंग सिंहासन पर बैठा देश आन्तरिक एवं बाह्य संकटों के दौड़ से गुजर रहा था। पुष्यमित्र शुंग को यवन आक्रमणकारियों से भी सामना करना पड़ा। महाभाष्य, गार्गी मालविकाग्नि आदि साक्ष्यों से पता चलता है कि यवन आक्रमणकारी बिना किसी अवरोध के पाटलिपुत्र के अत्यंत निकट आ गये। धार्मिक दृष्टि से भी पुष्यमित्र का शासन बहुत महत्वपूर्ण था। चूँकि मौर्यों के संरक्षण के कारण बौद्ध धर्म की काफी प्रगति हुई किंतु वैदिक धर्म उपेक्षित होता गया। पुष्यमित्र ने ब्राह्मण धर्म में प्राण फूकने का कार्य किया इसलिए इसका काल हिन्दू धर्म के अभ्युत्थान का काल माना जाता है। वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना हेतु ही अशोक के समय से निषिद्ध यज्ञादि क्रियाएँ पुनर्जीवित की जिसके फलस्वरूप पशु वध का एक नया दौर शुरू हुआ। महाभाष्य, मालविकाग्निमित्रम् तथा धनदेव के अयोध्या लेख आदि से ज्ञात होता है कि उसने स्वतः दो अष्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किया। यवनों से इसका संघर्ष हुआ। जहाँ एक ओर पुष्यमित्र को ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धारक माना गया है वही बौद्ध ग्रन्थों में विशेषतः दिव्यवदान तथा तारानाथ के विवरणों में उसे बौद्ध धर्म का उत्पीड़क बताया गया है। दियावदान के अनुसार उसने अशोक द्वारा निर्मित 84000 स्तूपों को नष्ट करने की प्रसिद्धि पाने का निश्चय किया। सम्भवतः बौद्ध समर्थित मौर्य वंश का अंत करने वाले पुष्यमित्र को बौद्ध अनुयायी बर्दाश्त न किये होंगे। उन्होंने इस प्रतिक्रिया में राजद्रोह जैसा निन्दनीय कार्य किया। जिसके कारण पुष्यमित्र को ऐसे षडयंत्रकारियों के खिलाफ यह सख्त कार्यवाही करनी पड़ी होगी। इस प्रकार पुष्यमित्र ने 184 ई.पू. से 148 ई. पू. तक लगभग 36 वर्षों तक शासन किया। मौर्य वंश के अयोग्य उत्तराधिकारियों द्वारा जर्जरित सम्पूर्ण भारत को वह भले ही न बचा पाया हो किन्तु मगध केन्द्र द्वारा संचालित तत्कालीन साम्राज्य की सुरक्षा में उसने प्राणपथ से प्रयास किया। उसने महान विजेता और निर्माता दोनों ही गुणों का देश को स्वस्थ एवं सुगठित बनाने में परिचय दिया।

जिस प्रकार पुष्यमित्र ने अपने सम्राट की हत्या करके राज्य प्राप्त किया उसी प्रकार शुंग वंश के अंतिम शासक देवभूति की हत्या करके कण्व वंश की स्थापना वासुदेव द्वारा की गई शुंग के अमत्य वसुदेव ने रानी के वेश में देवभूति की दासी की पत्नी द्वारा स्त्री प्रसंग में कामदेव के वशीभूत देवभूति की हत्या कर दी थी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जानेंगे

- 1 शुंग वंश की उत्पत्ति व संक्षिप्त इतिहास
- 2 शुंग वंश की वंशावली
- 3 शुंग वंश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्थिति
- 4 शुंग वंश की उपलब्धियाँ
- 5 कण्व वंश की उत्पत्ति
- 6 कण्व वंश का इतिहास

1.3 शुंग वंश की उत्पत्ति का इतिहास

शुंग काल के विषय में विविध स्रोतों से ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय धार्मिक एवं धर्मोत्तर तथा विदेशी साहित्यिक ग्रंथ, अभिलेख व अन्य पुरातात्विक स्रोत मिलकर इस काल की ऐतिहासिकता को सिद्ध करते हैं।

अन्तिम मौर्य शासक वृहद्रथ को ब्रह्मण सेनापति ने मारकर शुंग वंश की नींव रखी ब्रह्मण ने हर्षचरित में उल्लेख किया है कि सेनापति पुष्यमित्र ने सेना का प्रदर्शन करने का आयोजन किया तथा वृहद्रथ जो कि राजा था उसे आमंत्रित किया और समय की उपयोग्यता देखकर उसका वध कर दिया,

पतंजलि ने महाभारत में यवनों से युद्ध की चर्चा की है। दिव्यदान बौद्ध ग्रंथ में भी पुष्यमित्र को मौर्य शासन का सेनापति बताया है। मालविकाग्नि मित्र के अनुसार पुष्यमित्र का राज्य नर्मदा तक था एवं पाटलिपुत्र अयोध्या व विदिशा उसके राज्य के प्रमुख नगर थे।

शुंग शासकों के विषय में कलिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक से महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इस नाटक में पुष्यमित्र का यवनों से युद्ध व अग्निमित्र से का विर्दभ के राजा यज्ञसेन के साथ हुए युद्ध का वर्णन मिलता है। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' व पतंजलि के महाकाव्य में भी शुंग राजाओं का वर्णन मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यदान तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के वर्णन में भी शुंग-काल का महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

1.3.1 शुंगों की उत्पत्ति

शुंग कौन थे? यह एक अत्यंत विवादास्पद प्रश्न है। शुंगों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तीन मत निम्नलिखित हैं—

1.3.1.1 शुंग पारसीक थे

इस मत के प्रतिपादक श्री हरिप्रसाद शास्त्री थे। अपने मत के समर्थन में वे तर्क देते हैं कि शुंग राजा अपने नाम के साथ 'मित्र' शब्द (पुष्यमित्र, अग्निमित्र, वसुमित्र आदि) लगाते थे तथा मित्र (सूर्य) की उपासनी चूँकि पारसीक राजा करते थे तथा कालांतर में स्वयं हरिप्रसाद शास्त्री ने भी स्वयं अपनी भूल स्वीकारते हुए शुंगों को ब्रह्मण ही माना।

1.3.1.2 शुंग मौर्य थे

कुछ इतिहासकारों ने 'दिव्यदान' नामक ग्रन्थ के आधार पर शुंगों को मौर्य ही माना है, क्योंकि दिव्यदान में पुष्यमित्र को मौर्य ही कहा गया है। किन्तु इस मत को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस तथ्य के अनेक प्रमाण हैं कि बृहद्रथ ही मौर्य-वंश का अन्तिम शासक था।

1.3.1.3 शुंग ब्राह्मण थे

अधिकांश विद्वान शुंगों को ब्रह्मण ही मानते हैं। क्योंकि ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि शुंग ब्रह्मण थे। कालिदास की रचना 'मालविकाग्निमित्र' के अनुसार शुंग बैम्बिक-वंश के थे। बैम्बिक-वंश का सम्बन्ध कुछ इतिहासकारों सम्राट बिम्बिसार कुछ के कपिपय शिलालेखों में उत्कीर्ण बिम्बिका नदी से स्थापित किया है, किन्तु ऐसा मानना तर्कसंगत नहीं है। बोधायन-श्रौत सूत्र से ज्ञात होता है कि बैम्बिक कश्यप गोत्रीय ब्रह्मण थे। इस तथ्य की पुष्टि हरिवंश से भी होती है।

अश्वालायन-श्रौत सूत्र के अनुसार शुंग लोग आचार्य थे। हर्षचरित से भी ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र शुंग ब्रह्मण था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ पुष्यमित्र को 'एक राजकुल का पुरोहित' और ब्रह्मण राजा कहता है। कीथ भी शुंगों को ब्रह्मण मानते थे।

नोट — विद्यार्थी को अधिक जानकारी के लिए इनके समकालीन राजवंश जैसे खारवेल व मौर्योत्तर काल का भी अध्ययन करना चाहिए।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि शुंग ब्रह्मण थे, किन्तु उनका गौत्र कौन सा था, इस विषय में पुनः विद्वानों में मतभेद है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कुछ विद्वान शुंगों को बैम्बिक-वंश का ब्रह्मण अर्थात् कश्यप गोत्र का मानते हैं। इसके विपरीत, भगवतशरण उपाध्याय तथा अनेक विद्वान शुंगों को भारद्वाज गोत्र के मानते हैं। अपने मत के समर्थन में इतिहासकार पाणिनि व अश्वालायन सूत्र को अद्वैत करते हैं। यह कहना कठिन है कि शुंग कश्यप गोत्र के थे अथवा भारद्वाज, किन्तु इतना निश्चित है कि वे ब्रह्मण थे।

शुंग वंश के नाम के अंत में मित्र शब्द को देखकर यह कहा जाता है कि ये मिथ्र या सूर्य के उपासक थे। पुराण पुष्यमित्र को शुंग कहते हैं। शुंग वंश को महर्षि पाणिनी ने भारद्वाज गोत्र का ब्रह्मण बताया है। मालविकाग्निमित्र में इसके पूत्र को बौद्धिक मूल से संबन्धित बताया है। वृहदारण्यक उपनिषद में शौगीपूत्र नामक एक आचार्य का उल्लेख है। इस प्रकार शुंग ब्रह्मण पुरोहित ही थे।

पुष्यामित्र के पूर्वज मौर्य शासक के यहाँ पुरोहित का कार्य करते थे। मौर्य शासकों द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने पर शुंगों ने समय को देखते हुए शस्त्र धारण कर लिये। मनुस्मृति में आवश्यकता होने पर ब्रह्मणों को शस्त्र उठाने की बात कही गयी है। छठी शताब्दी ई.पू. के प्रथम चरण में इसी प्रकार भारत को बाहरी आक्रमणों से आशंक्ति लिये पुष्यामित्र ने भी शस्त्र उठाया।

1.4 राजनीतिक संघर्ष: विदर्भ युद्ध

विदर्भ का प्रांत मौर्य अमात्य यज्ञसेन के नेतृत्व में स्वतंत्र हो गया वहाँ यज्ञसेन द्वारा नये राज्य की नींव डाली गई थी। वह मौर्य शासक बृहद्रथ का साला था। वह पुष्यमित्र का विरोधी था। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र द्वारा जरासेन के चचेरे भाई माधवसेन से मिलकर षडयंत्र के तहत यज्ञसेन के अन्तपाल ने माधवसेन को पकड़ लिया इस पर अग्निमित्र ने वीरसेन को जरासेन के विरुद्ध भेजा और वीरसेन ने जरासेन को हरा दिया, इस पर उस को अपने राज्य का कुछ भाग माधवसेन को देना पड़ा। इस प्रकार विदर्भ राज्य को पुष्यमित्र का अधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। मालविकाग्निमित्र का नायक युवराज अग्निमित्र है।

पुष्यमित्र शुंग एक महान योद्धा था। अतः अपने साम्राज्य को संगठित करने के पश्चात उसने अपने साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया। इस दिशा में उसकी प्रथम उपलब्धि विदर्भ पर विजय थी। मालविकाग्निमित्र नामक नाटक से ज्ञात होता है कि मौर्य शासक बृहद्रथ के शासनकाल में ही राजसभा दो दल में बटी हुई थी। एक दल का नेता पुष्यमित्र शुंग था व दूसरे का मंत्री। इस मंत्री का पुत्र यज्ञसेन मौर्यकाल में विदर्भ का गवर्नर था। पुष्यमित्र शुंग द्वारा मौर्य –साम्राज्य पर अधिकार कर लेने पर यज्ञसेन ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस प्रकार यज्ञसेन ने पुष्यमित्र की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तथा विदर्भ का स्वतंत्र शासक बन गया। पुष्यमित्र ने बृहद्रथ की हत्या करने के पश्चात यज्ञसेन के पिता को बन्दी बना लिया था तथा यज्ञसेन के एक संबंधी माधवसेन को अपने पक्ष में कर लिया था किन्तु एक बार अवसर मिलने पर यज्ञसेन ने माधवसेन को बन्दी बना लिया। पुष्यमित्र ने यज्ञसेन से माधवसेन को मुक्त करने को कहा किन्तु यज्ञसेन ने यह शर्त रखी कि पहले वह उसके पिता को मुक्त करे। इसी बात पर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध का संचालन पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने किया तथा विजय प्राप्त करने में वह सफल हुआ। इस विजय के परिणामस्वरूप, माधवसेन मुक्त हो गया तथा विदर्भ-राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। एक भाग का शासक माधवसेन बना व दूसरे का शुंगों की अधीनता स्वीकार करने पर यज्ञसेन को शासक बनाया गया। दोनों भागों के मध्य वर्धा नदी ने सीमारेखा का कार्य किया। खारवेल से युद्ध- कुछ विद्वानों का विचार है कि कलिंग शासक खारवेल व पुष्यमित्र शुंग में युद्ध हुआ था जिसमें खारवेल की विजय हुई। इन विद्वानों में स्मिथ व जायसवाल प्रमुख हैं। स्मिथ के अनुसार कलिंग के शासक खारवेल ने पुष्यमित्र के शासनकाल में दो बार मगध पर आक्रमण किया। पहला आक्रमण 165 ई.पू. व दूसरा 161 ई. पू. में हुआ था। दूसरे आक्रमण में खारवेल को अधिक सफलता मिली। पुष्यमित्र को खारवेल की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी व खारवेल ने मगध के राज्यकोष पर अधिकार कर लिया। डॉ. जायसवाल ने भी हाथीगुम्फा षिलालेख के आधार पर स्मिथ के मत का समर्थन किया। इस षिलालेख के आधार पर खारवेल ने मगध के शासक वृहस्पतिमित्र पर आक्रमण कर उसे परास्त किया था। वृहस्पति व पुष्य पर्यायवाची शब्द है, अतः जायसवाल का विचार है कि खारवेल ने पुष्यमित्र को ही हराया

था तथा इस युद्ध में पराजित होने के पश्चात ही पुष्यमित्र ने दूसरा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था। सत्यकेतु विद्यालंकार ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि यवन आक्रमण से लाभ उठाकर खारवेल ने यदि पुष्यमित्र को परास्त किया हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। किन्तु अन्य विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी व डॉ. आर. एस. त्रिपाठी आदि इतिहासकारों का विचार है कि खारवेल पुष्यमित्र का समकालीन नहीं था। अतः खारवेल द्वारा पुष्यमित्र को परास्त किए जाने का प्रश्न ही नहीं है। इन विद्वानों के अनुसार खारवेल का काल प्रथम शताब्दी ई. पू. के तृतीय चरण में था जबकि पुष्यमित्र की 148 ई. पू. में ही मृत्यु हो गई थी। अतः खारवेल द्वारा पराजित शासक पुष्यमित्र नहीं वरन कोई अन्य रहा होगा।

1.5 यवनो का आक्रमण

यह युद्ध पंजाब व सिंध नदी के तट पर हुआ और पुष्यमित्र के पोते व अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने इसमें यवनों को हराया, यवनों का भारतीय अभियान असफल हुआ तथा तथा वसुमित्र ने अश्वमेध व अश्व को छुड़ाया। मालविकाग्नि मित्र में उल्लेखित दूसरा यवन संघर्ष उस समय हुआ जब पूष्यमित्र वृद्ध हो गया था उसके पोत्र ने सेनाएँ युद्ध के लिये भेजी। इस यवन युद्ध का संबंध पूष्यमित्र के अश्वमेध से हैं। पूष्यमित्र ने दो अश्वमेध युद्ध किये थे, यवनो पर विजय प्राप्ति के दौरान जो अश्वमेध संपन्न हुआ इसका उल्लेख मालविकाग्निमित्र में आया जो उसके राज्य में संपन्न हुआ। पतंजलि ने महाभारत में 'इंत पूष्यमित्रं याजयामः' अर्थात् हम पूष्यमित्र के लिये यज्ञ करते हैं का उल्लेख किया है। पतंजलि को पुष्यमित्र का समकालीन माना जाता है। पतंजलि ने घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है:— **अरुणद्यवनः साकेतम्** अर्थात् यवनों ने अयोध्या पर आक्रमण किया और **अरुणद्यवन माध्यमिकाम्**, अर्थात् माध्यमिका पर यवनों ने 'आक्रमण को स्वीकार करते हैं। मालविकाग्निमित्र में उल्लेखित दूसरा यवन संघर्ष उस समय हुआ जब पुष्यमित्र वृद्ध हो चला था। उसका पौत्र भी इतना बड़ा था कि उसके नायकत्व में राजकीय सेनाएँ युद्ध जिसका सम्बन्ध पुष्यमित्र के 'अश्वमेध' से है निश्चित रूप से उसके शासन के अंतिम भाग में हुआ प्रतीत होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न —

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1. पतंजलि का महाभाष्य किस भाषा में लिखा गया है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न —

1. "शुंग मौर्य थे" इस पर टिप्पणी करिये।
2. शुंग का इतिहास जानने के कोई दो स्रोत के नाम लिखिए।

शुंग वंश की वंशावली—

पुष्यमित्र शुंग (185—149) ई.पू., अग्निमित्र (149—141) ई.पू., वसुज्येष्ठ (141—131) ई.पू., वसुमित्र (131—124) ई.पू., अन्धक (124—122) ई.पू. पुलिन्दक (122—119) ई.पू. घोष शुंग वज्रमित्र, भगभद्र, देवभूति (88—73) ई.पू.

1.6 पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

पुराणों में पूष्यमित्र के बाद 9 अन्य शुंग राजाओं का उल्लेख से मिलता है। अग्निमित्र का नाम रुहेलखंड से प्राप्त सिक्को पर मिला है वसुमित्र का उल्लेख मालविकाग्नि मित्र से मिलता है व उसने यवनों को पराजित किया। विलासप्रिय होने के कारण मित्रदेव ने नृत्य के आनन्द के समय उसकी मृत्यु कर दी इसके बाद के शासकों की उपलब्धि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हैं भगभद्र के शासन में यवन राजदूत हेलियोडोरस विदिशा स्थित दरबार में आया तथा गरुड़ स्तम्भ की स्थापना कर भागवत धर्म ग्रहण कर लिया

तब अंतिम नेरश देवभूति था जिसे अमात्य वसुदेव ने मारकर कण्व वंश की स्थापना की। परन्तु अग्निमित्र के प्रयास से यरासेन पराजित हुआ तथा वधी नदी दोनों राज्यों की सीमा मान ली गई। इस प्रकार विदर्भ को दो भागों में विभाजित कर राजनीतिक स्थिति को पुष्यमित्र ने मजबूती प्रदान की। पुष्यमित्र ने पंजाब से जालंधर व स्यालकोट पर विजय प्राप्त की मेरुतुंगा के विवरण से पुष्यमित्र द्वारा अवन्ति पर अधिकार की भी प्राप्ति का उल्लेख मिलता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पुष्यमित्र शुंग को बौद्ध उत्पीड़क क्यों कहा है स्पष्ट करिये।

2. शुंग राजवंश के यवन आक्रमण पर प्रकाश डालिए।

1.7 शुंग कालीन धार्मिक स्थिति

धार्मिक दृष्टि कोण से भी शुंग की स्थिति महत्वपूर्ण थी। मौर्य के संरक्षक के कारण बौद्ध धर्म की प्रगति हुई थी। परन्तु वेदिक धर्म उपेक्षित होता गया। पुष्यमित्र ने वेदिक धर्मोत्थान के लिये बहुत प्रयास किये इसलिए इसके काल को अभ्युत्थान का काल भी कहा जाती है। उसके द्वारा यज्ञीय क्रियाएँ पूर्णजीवित की गई जिसके अर्न्तगत स्वतः उसके द्वारा दो अश्वमेघ किये गये। उल्लेख मिलता है कि कुछ बौद्ध ग्रन्थ में (दिव्यदान)

पुष्यमित्र अशोक की तरह सहिष्णुता का पोषक भी था जहां उसने भारतीय संस्कृति के गौरव का प्रतीक अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किये वही उसने सांची की वेदिकाएँ बनाकर बौद्ध धर्म का भी सम्मान किया। दिव्यदान में उल्लेख मिलता है कि उसने कुछ बौद्ध व्यक्ति को मंत्री नियुक्त किया था। अन्य शुंग शासकों ने भी पुष्यमित्र की धर्म सहिष्णु नीति को अपनाकर भी भरपूर बोधगया व सांची के स्तूपों को नया रूप प्रदान किया।

1.8 शुंगकालीन भाषा साहित्य व कला

इस काल में संस्कृत को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला तथा संस्कृत भाषा लोकभाषा के रूप में परिणत हो गयी। महर्षि पतंजलि द्वारा महाभाष्य व अश्वमेघ पर्व भी परिवर्धक हुआ।

शुंग कालीन काला व स्थापत्य— शुंग कालीन कला में बौद्धिक मानसिक व सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्ब की छांव देखने को मिलती है। शुंग कालीन कलाकारों द्वारा पाषाणों का प्रयोग किया गया है। विदिशा का गरुडध्वज, भाजाका चैत्य व विहार नासिक तथा काले के चैत्य व मथुरा की यज्ञ व यक्षिकी की मूर्तियां शुंग कला के उत्कृष्ट उदाहरण को प्रस्तुत करते हैं।

भरतदूत स्तूप को 1977 में कनिधम ने खोजा था। इसमें 80 स्तम्भ तथा 40 तोरणद्वार में यह स्तूप अत्यधिक कलावृत्तियों से सुज्जित है।

सांची के तोरण द्वार पर अत्य अलंकरण व इसके अंडभाग में एक वंरडिस मिलती है व इसे इसलिये त्रिमेधि स्तूप कहते हैं। सांची को स्तूप तोरणद्वार पर बौने हाथी व बैल की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई है, स्तम्भों के निर्मल भाग के में द्वारपाल व यज्ञों की मूर्तियां व शालभंजिका की आकर्षक मूर्तिया भी अंकित हैं। सांची के शुंगकालीन स्तूप स्थापत्य कला के बेहतर नमूने के रूप में अपना स्थान रखते हैं।

बोधगया की वेदिका पर हीनयान संबंधी कथानक अंकित है भरदूत की वेदिका पर एक लेख में उल्लेख मिलता है कि यह शुंग कालीन शासन में बनाया गया है।

शुंग कला के सर्वोत्तम स्मारक उपरोक्त स्तूप ही है।

सांची को स्तूप तोरणद्वार पर बौने हाथी व बैल की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई है, स्तम्भों के निर्मल भाग के में द्वारपाल व यज्ञों की मूर्तियां व शालभंजिका की आकर्षक मूर्तिया भी अंकित हैं। सांची के शुंगकालीन स्तूप स्थापत्य कला के बेहतर नमूने के रूप में अपना स्थान रखते हैं। उसके समय में संस्कृत

भाषा और साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई। महाभाष्य, मनुस्मृति तथा महाभारत के कुछ अंश इसी काल की देन हैं।

1.9 शुंग कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति

शुंग कालीन समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। परन्तु चार वर्ग ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के अतिरिक्त समाज में अन्य जातियों भी थी जो अन्तर्वर्णीय विवाह से उत्पन्न हुई थी। आश्रम में संस्कार का भी विधान था तथा इन्हें न पालने वाले प्रात्य या संकर कहे गये। नारीयों की दशा अच्छी थी। विवाह के आठ प्रकार प्रचलित थे (ब्रह्मण, देव, आर्य, प्रजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस व पिशाच) समाज में सती प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता है।

जीविकोपार्जन के दो प्रमुख स्तंभ थे। कृषि व पशुपालन, श्रम विभाजन भी व्यवस्था का विधान था, व्यवसाय अनुवांशिक होते थे। प्रमुख व्यापारियों व व्यवसायियों की श्रेणियाँ थी 18 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है व्यापार उन्नति पर था।

पुष्यमित्र शुंग जब सिंहासन पर बैठा तब देश आंतरिक व बाह्य संकटों से गुजर रहा था। पुष्यमित्र को यवन आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। क्योंकि वे बिना किसी बाधा के पाटलिपुत्र के निकट आ गये थे। गार्गी संहिता में उल्लेख मिलता है, कि यवनो ने सांकेत, पांचाल, मथुरा को जीत कर अपने कदम पाटलिपुत्र तक बढ़ी लिये थे। प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण वे मध्यप्रदेश में नहीं रुक सके। पुष्यमित्र के समय में दोनों यवन आक्रमणकारी मिनेमण्डर व डियोद्रियस थे। पुष्यमित्र ने जिस दृढ़ता से युद्ध किया वह तारीफ के योग्य है, क्योंकि उसने जीवन के प्रारम्भ में ही युद्ध का सामना किया मौर्य सम्राट की हत्या की प्रतिक्रिया में यज्ञसेन विदर्भ नरेश ने स्वयं के स्वतंत्र होने की घोषणा कर दी। शुंग शासन में प्रशासन तदानुसार ही चलता रहा, अग्निमित्र को विदिशा का शासक बताया। वसुमित्र के अश्वमेघ अश्व की सुरक्षा में तैनात होने की जानकारी मिलती है। अमात्य परिषद की प्रभावपूर्ण भूमिका का आलेख मिलता है। वीरसेन के समक्ष अपना आदेश पहुचाने के लिए अग्निमित्र ने मंत्रीपरिषद को निर्देशित किया था, विदर्भ में नवीन राज्य व्यवस्था की प्रस्तावना हेतु मंत्रीपरिषद द्वारा राजा को महत्वपूर्ण सलाह दिये जाने का बोध होता था। पतंजलि ने राजा का उल्लेख किया है। विदेश नीति से संबन्धित समस्या आने पर मंत्रीपरिषद से मंत्रणा की जाती थी। पतंजलि ने पुष्यमित्र की सभा का जिक्र किया है। युवराज भी उचित निर्णय हेतु परिषद् का सहयोग लेते थे। विदेश नीति से सम्बन्धित कोई जटिल समस्या आने पर मन्त्रिपरिषद् से मंत्रणा की जाती थी।

1.10 पुष्यमित्र की उपलब्धियाँ

कहा जाता है कि पुष्यमित्र का इतिहास रक्त रंजित है सेना से घनिष्ठता होने के कारण उसने स्वयं को सेनापति भी कहलाया।

साम्राज्य का संगठक— बृहद्रथ की हत्या के पश्चात उसके सम्मुख सर्वप्रथम समस्या साम्राज्य के संगठन की थी क्योंकि कलिंग महाराष्ट्र व आंध्र स्वतंत्र हो चूके थे। इससे यूनान खतरा बढ़ रहा था। प्राची को सलवत्स व अवन्ति जो कि मगधा के अधीन थे पर अपनी सत्ता को मजबूत बनाया विदिशा को दूसरी राजधानी बनाकर केन्द्र को शक्तिशाली बनाया। पुष्यमित्र ने अन्तिम मौर्य शासक बृहद्रथ की जब हत्या की थी तब मगध—साम्राज्य की स्थिति अत्यन्त षोचनीय थी। सम्भवतः पुष्यमित्र को बृहद्रथ की हत्या करने के लिए राज्य की तत्कालीन स्थिति ने भी प्रेरित किया होगा। बृहद्रथ की हत्या करने के पश्चात जब वह स्वयं उस कमजोर एवं जर्जरित राज्य का शासक बना तब उसके सम्मुख सर्वप्रमुख साम्राज्य को संगठित करने की थी। ऐसी परिस्थितियों में सर्वप्रथम पुष्यमित्र ने साम्राज्य की आन्तरिक स्थिति को सुधार कर उसे दृढ़ता प्रदान की। प्राची, कोसल, वत्स व अवन्ति, आदि राज्य जो मगध के अधीन थे पुष्यमित्र ने उन पर अपनी

सत्ता की मजबूत बनाया। अवन्ति का राज्य मगध से दूर होने के कारण पाटलिपुत्र से उस पर पूर्ण अधिकार बनाए रखना कठिन हो रहा था, अतः पुष्यमित्र ने विदिशा को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। विदिशा में उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को राज्य प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया। इस प्रकार उसने साम्राज्य को संगठित किया तथा केन्द्र को शक्तिशाली बनाया।

1.10.1 अश्वमेघ यज्ञ

पुष्यमित्र ने प्रथम अश्वमेघ विदर्भ विजय के पश्चात किया दुसरा अश्वमेघ शासनकाल के अंतिम दिनों में किया। विजयी पुष्यमित्र ने दो अश्वमेघ कर अपनी विजय घोषित की। एक और तो यह मौर्य साम्राज्य के ध्वंस पर नए साम्राज्य के उत्थान को व्यक्त करता है, दूसरे इससे ब्राह्मणधर्म के नवीन आंदोलन का संकेत मिलता है। पुराणों के अनुसार राजा जनमेजय के बाद राजा पुष्यमित्र ने ही अश्वमेघ यज्ञ किया था। हरिवंश के अनुसार, कलियुग में अश्वमेघ का पुनःप्रसारण करनेवाला कश्यप द्विज था। गोसुंड़ी के शिलालेख में उसे सर्वतात का शंकर्षण तथा वासुदेव का पुजारी और अश्वमेघ यज्ञ करनेवाला भी कहा गया है।

1.10.2 धर्म सहिष्णु

यद्यपि ब्राह्मण धर्म का संरक्षक व उत्साही था, परन्तु बौद्ध स्तूप व वेदिका का निर्माण उसके शासनकाल में हुआ जो शुंग कालीन पुष्यमित्र की सहिष्णुता बौद्ध धर्म के प्रति उजागर करते थे। विदिशा के निकट भरहुत में उसने दान द्वारा अनेक बौद्धस्तूपों का निर्माण होने दिया। यह उसकी धार्मिक सहिष्णुता का ही परिचायक है। भरहुत के एक सुगनम् राज शिलालेख में लिखा है कि ये स्तूप शुंगों के राज्य में थे।

1.10.3 राज्यविस्तार

शुंग कालीन साम्राज्य पश्चिम में स्यालकोट तक दक्षिण में विदर्भ वन्दक्षिक पूर्व में उसके राज्य की सभा कलिंग तक थी। कौशल भी उसके साम्राज्य का हिस्सा था पाटलिपुत्र उसकी राजधानी थी।

1.10.4 साहित्यिक उपलब्धियाँ

पुष्यमित्र ने वैदिक धर्म को राजधर्म घोषित किया तथा संस्कृत को राजभाषा का रूप प्रदान किया। इसके फलस्वरूप पतंजलि का महाभाष्य व मनु स्मृति की हुई जो साहित्य के क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

शुंग वंश के शासकों ने 112 वर्ष तक शासन किया तथा शुंग काल में भारतीय इतिहास में राजनैतिक, सांस्कृतिक व कला के दृष्टिकोण से समृद्ध माना गया। इस काल में शुंग ने मगध की रक्षा की यवन आकलन से वैदिक धर्म ने अपना वैभव प्राप्त किया तथा इसके साथ भागवत धर्म का भी विकास हुआ। मध्य भारत के इतिहास से पुष्यमित्र वंशीय राजाओं का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी काल में गुप्तवंशीय स्वर्णकाल जैसे पुनरुत्थान भी लहर देखने को मिलती हैं।

1.10.5 पुष्यमित्र का मूल्यांकन

पुष्यमित्र की गणना भारत के महान शासकों में होती है। उसने भारत की सेवा उस समय की, जब देश पर निरंतर यवनों का आक्रमण हो रहा था। यवनों ने कुछ प्रदेशों पर अधिकार भी कर लिया था। उसने यवनों के प्रभाव से देश को मुक्त किया। ब्राह्मण धर्मावलंबी होते हुए भी वह उदार धार्मिक नीति का समर्थक था। वह उच्चकोटि का सैनिक और सेनापति था। अपनी योग्यता के बल पर उसने नए राजवंश की स्थापना की और साम्राज्य के विस्तार में पूर्ण सफलता पाई। वह एक योग्य शासक था। उसने साम्राज्य का दृढ़ संगठन किया और मगध— साम्राज्य के वैभव का विस्तार भी। ब्राह्मणधर्म की पुनःस्थापना का श्रीगणेश उसी के समय हुआ, जिसका चरमोत्कर्ष हमें बाद में देखने को मिलता है। पतंजलि और कालिदास ने

शुंगकाल में परिषद होने की चर्चा की है, परंतु यह परिषद कैसी थी इसका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है। न्यायपरिषद या मंत्रिपरिषद का रूप क्या था यह कहना कठिन है। मालविकाग्निमित्रम के अनुसार राज-व्यवस्था के अंतर्गत मंत्रिपरिषद एक महत्वपूर्ण संस्था थी। यह संस्था युवराज की सहायता भी करती थी। विदेश-नीति से संबद्ध जटिल समस्याओं पर मंत्रिपरिषद या अमात्यपरिषद में विचार भी होता था।

लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1 शुंग वंश की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये?
- 2 शुंग वंश के यवन आक्रमणों पर संक्षिप्त टिप्पणी करिये?
- 3 शुंग वंश के सांस्कृतिक स्रोत का वर्णन कीजिए?

1.11 कण्व वंश की उत्पत्ति

विष्णु पुराण में उल्लेख मिलता है कि शुंग वंश के राजा देवभूति को उसका अमात्य ही कण्व वसुदेव मारकर पृथ्वी पर शासन करेगा। वसुदेव द्वारा जिस राज्य की नींव डाली गई वह कण्वायन नाम से इतिहास में जाना गया। चूंकि देवभूति दुर्व्यसनी तथा जनता में अलाकप्रिय था।

वसुदेव ने 200 नौ वर्ष तक राज किया जो पुराणों के उल्लेख में मिलता है। उसके पश्चात् तीन राजाओं का उल्लेख मिलता है। जिन्हें भूमिमित्र, नारायण तथा सुशर्मा के नाम से जानते हैं, जिनके शासनकाल निम्न प्रकार से हैं—

- भूमिमित्र — 14 वर्ष
 नारायण — 12 वर्ष
 सुशर्मा — 10 वर्ष

कण्व वंश का शासन मगध एवं आसपास तक ही सीमित थी परंतु मगध के शासन होने से इस वंश के शासकों को सम्राट की उपाधि प्रदान की गई।

1.12 कण्व वंश की धार्मिक नीति

पुराणों में उल्लेख मिलता है कि इस वंश के राजा सत्य व न्याय के साथ शासन करेंगे व पड़ोसियों का दमन करेंगे, इनके शासक भी ब्रह्मण थे। अतः उन्होंने भी ब्रह्मण धर्म के लिए प्रयत्न किये होंगे। वैदिक धर्म में संस्कृति संरक्षक की जो परम्परा शुंग ने प्रारम्भ की उसे कण्व वंश ने भी आगे बढ़ाया। ये कण्व ऋषि के वंशज भी माने जाते हैं।

कण्व वंश का अंतिम शासक सुशर्मा अयोग्य व दूर्बल था इसकी वजह से मगध क्षेत्र संकुचित होने लगा। अनेक प्रांतों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। सुशर्मा को आन्ध्र के शिमुक ने मारकर कण्व वंश का अंत कर दिया।

पुराणों में उल्लेख मिलता है कि कण्व राजाओं को शुंग भृत्य कहा गया। वासुदेव कण्व ने यदि अपनी राज गतिविधियाँ शुंग के अधीनस्थ शासकों के रूप में आरम्भ की होंगी तो इस नाम का संगत कारण दिखाया जा सकता है।

1.13 सहायक ग्रन्थ सूची

- 1 भारतीय इतिहास का आदिकाल — रणवीर चक्रवर्ती
- 2 प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर — डा० वासुदेव उपाध्याय
- 3 प्राचीन भारत — आलोक कुमार पाण्डेय
- 4 प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास— डा० ए० के० मित्तल
- 5 प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास— राधाकृष्ण चौधरी

- 6 भारतीय इतिहास का आदिकाल – रणवीर चक्रवर्ती
- 7 प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर – डा० वासुदेव उपाध्याय
- 8 प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय
- 9 प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा० ए० के० मित्तल
- 10 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – पी० एल० गौतम
- 11 प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन– वात्मज मित्र
- 12 भारतीय इतिहास का आदिकाल– रणवीर चक्रवर्ती प्राचीनतम पर्व से 600 ईस्वी तक ब्लैकस्वॉन
ISMN- 978 81 250 47056
- 13 प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE LIMITED
ISBN – 978-0-07-070544-9
- 14 प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन– वातात्मज मित्र,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE
LIMITED ISBN – 978-0-07-066010-6
- 15 भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास– डा० ए० के० मित्तल साहित्य भवन पब्लिकेशन,ISBN-
81-7288-323-4
- 16 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति–पी० एल० गौतम,TATA MCGROW HILL EDUCATION PARIVATE
LIMITED ISBN – 978-9-35-134180-4
- 17 प्राचीन भारतीय स्तूप,गूहा एवं मंदिर– डा० वासुदेव उपाध्याय बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

- 1 शुंग वंश की उपलब्धियों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
- 2 शुंग कालीन राजनैतिक गतिविधियों पर प्रकाश डालिए
- 3 कण्व वंश की पृष्ठभूमि पर टिप्पणी डालिए।
- 4 कण्व वंश की वंशावली को काल क्रमानुसार स्पष्ट करिये।
- 5 कण्व वंश की प्राचीन भारतीय इतिहास में महत्ता स्पष्ट करे।

आन्ध्र या सातवाहन वंश तथा दक्षिणापथ की राजनैतिक स्थिति

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 संस्थापक
- 2.4 आन्ध्र सातवाहन की उत्पत्ति ई०पू०
- 2.5 विस्तार
- 2.6 सातवाहन का मूल स्थान
- 2.7 सातवाहनों की जाति
 - 2.7.1 अनार्य
 - 2.7.2 आर्य
 - 2.7.3 ब्राह्मण
- 2.8 सातवाहन शासक
 - 2.8.1 कृष्ण
 - 2.8.2 शातकर्णि
 - 2.8.3 शातकर्णि प्रथम
 - 2.8.4 गोतमी पुत्र शातकर्णी
 - 2.8.5 वशिष्ठपुत्र पुलुमावी
 - 2.8.6 यज्ञ श्री शातकर्णि(145-194)
- 2.9 राजतत्व व प्रशासनिक व्यवस्था
- 2.10 आर्थिक एवं सामाजिक जीवन
- 2.11 सांस्कृतिक स्थिति
- 2.12 दक्षिणापथ की राजनीतिक स्थितियाँ—शक—सातवाहन संघर्ष
- 2.13 शातकर्णी (गौतमीपुत्र की उपलब्धियाँ)
- 2.14 सातवाहन वंश का पतन
- 2.15 सहायक ग्रन्थ सूची
- 2.16 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

दक्षिण के राजनीतिक इतिहास में सातवाहन राजवंश की भूमिका उल्लेखनीय है सातवाहन ने शासन व्यवस्था को संगठित किया इस मूल में अनेक प्रतापी राजा हुए हैं। जिन्होंने भारत के बड़े भू-भाग में साम्राज्य स्थापित किया इनके समय में देश में शान्ति बनी रही सातवाहनों ने 3 शताब्दियों तक दक्षिण की राजनीति में स्वयं को केन्द्र बनाया इनकी सत्ता का केन्द्र महाराष्ट्र था पुराणों में इस वंश के संस्थापक सिमुक को आन्ध्र भृत्य या आन्ध्र जातीय कहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययन के पश्चात् आप जानेंगे

- 1 आन्ध्र सातवाहन की उत्पत्ति के संबंध में
- 2 मूल स्थान
- 3 सातवाहन की जाति
- 4 सातवाहन की वंशावली
- 5 आन्ध्र सातवाहन की सुदृढ़ राजनीतिक व्यवस्था
- 6 धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था
- 7 सांस्कृतिक स्थिति
- 8 दक्षिणापथ की राजनीतिक स्थिति

- 9 गोतमी पूत्र शातकर्णी की उपलब्धियाँ
10 सातवाहन वंश का अवसान

2.3 संस्थापक

पुराणों में आन्ध्र वंश के संस्थापक का नाम सिमुक मिलता है इसकी पुष्टि अभिलेखिय साक्ष्य से भी होती है। सिमुक ने कण्वों व बची हुई शुंग शक्ति को समाप्त कर सातवाहन के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की स्वतंत्र शासक बनने से पूर्व वह सामन्त के रूप में शासन करता था। सिमुक ने विदिशा जो परवर्ती शुंगों की राजधानी थी उसे विजित किया, सिमुक के लिए वृषलका सम्बोधन भी मिलता है। जो सम्भवतः सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक था। दक्षिण में सातवाहन सम्राटों ने वैदेशिक सत्ता से रक्षा के साथ-साथ साहित्यिक कला एवं व्यापार-वाणिज्य आदि को भी संरक्षण प्रदान किया। सातवाहन के इतिहास रचना के लिए साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों ही साक्ष्य मिल जाते हैं। पुराणों के अतिरिक्त गुणाढ्यकृत बृहत्कथा मंजरी, कथासरित्सागर बृहत्कथाकोष से इसके इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

2.4 आन्ध्र सातवाहन की उत्पत्ति ई०पू०

प्रथम शताब्दी में विन्ध्य के दक्षिण में आन्ध्र सातवाहन व चेंदि दो राजनीतिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण में इन्होंने 3 शताब्दियों तक दक्षिण की राजनीति में स्वयं को केन्द्र बनाया। पुराणों में इनके बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। पुराणों में इस वंश के संस्थापक सिमुक को आन्ध्र जातीय कहा है, जबकि अभिलेखों में इन राजाओं ने स्वयं को सातवाहन भी कहा है। सातवाहन अभिलेखों में इन्हें दक्षिणाधिपति कहा गया है। इनके लिये आन्ध्र शब्द जातिबोधक है कि तथा सातवाहन शब्द मूल बोधक है।

प्रथम शासक सिमुक जो कि ब्राह्मण था ने ब्रह्मण धर्म की रक्षा के लिये शस्त्र धारण किया उसने विदिशा के पास के क्षेत्रों को शुंग व कण्व से जीत लिया तथा 23 वर्षों तक शासन किया।

पुराणों में इसे आंध्र कहा गया तथा अभिलेखों में सातवाहन कहा गया। इसलिये इसे आंध्रसातवाहन कहा जाता है। सिमुक सामंत था इसलिये इस व्यवस्था को प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रथम सामन्ती अर्थव्यवस्था भी कहा गया।

2.5 विस्तार

महाराष्ट्र के कुछ हिस्से व आंध्र के कुछ भागों में इनका विस्तार था। महाराष्ट्र की प्रतिष्ठान नामक जगह मूल स्थान था तथा अंतिम समय तक राजधानी बनी रही। शक व कलिंग राजा खारवेल से इनके संघर्ष बराबर बने रहें। इनके शासन के विस्तार को दक्षिण के शासक कहा जाता है तथा इन्हें इतिहास में दक्षिणाधिपति के नाम से भी अभिहित किया जाता है। कुछ उल्लेखनीय अभिलेख जो सातवाहन वंश की पुष्टि करते हैं।

नयीनिका का नानाघाट लेख

गोतमी पूत्र शातकर्णी के नासिक से प्राप्त दो गुहा लेख

वशिष्ठ पूत्र पुलुमामी का कार्ले गुहालेख

यज्ञ श्री शातकर्णी का नासिक गुहालेख

2.6 सातवाहन का मूल स्थान

सातवाहन नरेश की अधिकांश मुद्राएँ महाराष्ट्र से उपलब्ध हुई हैं। प्राप्त अभिलेखों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ। खारवेल के हाथीगुफा अभिलेख में शातकर्णी के राज्य का कलिंग से पश्चिम दिशा में होने का विवरण मिलता है। आधुनिक विदर्भ के अकाल जिले के तरहल नामक स्थान से तथा आधुनिक विदर्भ के पश्चिमी महाराष्ट्र के सांगली जिले के वेटगांव से सिक्के मिले हैं आन्ध्र वास्तव में द्रविड़ जाति के ही लोग थे। सातवाहन मूल रूप से कहां के निवासी थे, इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। प्रो. मिराशी का विचार है कि सातवाहनों का मूल-स्थान बरार (विदर्भ) था। अपने मत का प्रमाण वे वहां पर सातवाहनों की मुद्राओं का मिलना मानते हैं, परन्तु बरार में गौतमीपुत्र शातकर्णी से पूर्व की कोई मुद्रा नहीं मिलती, अतः यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। जायसवाल, बार्नेट, आदि विद्वानों ने, आंध्रदेश की सातवाहनों को मूल निवास-स्थान माना है किन्तु वासिष्ठीपुत्र पूलूमावी से पूर्व किसी सातवाहन राजा के यहां शासन करने के प्रमाण नहीं मिलते, अतः स्पष्ट है कि आंध्रदेश में सातवाहन बाद में पहुंचे होंगे व उनका मूल निवास-स्थान कोई अन्य रहा होगा। डा. सुवर्धकर के मत में सातवाहन बेलारी (मद्रास) में रहते थे, किन्तु वहां से सातवाहनों के लेखों में मुद्राओं का न मिलना इस मत को भी अस्वीकार करने के

लिए विवश करता है। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि सातवाहन मूलतः महाराष्ट्र के निवासी थे, किन्तु शकों द्वारा प्ररास्त किए जाने पर वे कृष्णा व गोदावरी नदियों के मध्य आंध्रदेश में बस गए थे। इसी कारण इन्हें 'आंध्र' भी कहा जाने लगा। सातवाहनों का मूल निवास-स्थान महाराष्ट्र मानने वाले विद्वान निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं :-

- (1) सातवाहनों की अधिकांस मुद्राएं व लेख महाराष्ट्र में भी मिलते हैं।
- (2) सातवाहन लेखों में महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रयोग किया गया है।
- (3) सातवाहन काल की गुफाएं (नासिक, कार्ले आदि) महाराष्ट्र में ही स्थित हैं।

2.7 सातवाहनों की जाति

सातवाहन शासक किस जाति के थे, इस विषय में विद्वानों मतभेद हैं। सातवाहनों की जाति के विषय में तीन प्रमुख विचारधाराएं हैं—

2.7.1 अनार्य

कुछ विद्वानों के विचार है कि सातवाहन अनार्य थे। इन विद्वानों में आयंगर प्रमुख हैं। सातवाहनों को अनार्य मानने वाले विद्वान अपने मत के समर्थन में तर्क देते हैं कि अनेक सातवाहन राजाओं के नाम अनार्य थे, जैसे सिमुक हाल, पुलमावी। इसके अतिरिक्त, अनार्यों के समान सातवाहन राजाओं ने अपने नाम अपनी माताओं के नाम पर रखे। उदाहरणार्थ, गौतमीपुत्र, वसिष्ठीपुत्र आदि। सातवाहन राजाओं ने अनार्यों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए तथा सबसे प्रबल तर्क यह है कि पुराण उन्हें आंध्रजातीय बताते हैं तथा आंध्रजाति अनार्य थी।

यद्यपि विद्वानों ने इस मत के समर्थन में उपर्युक्त तर्क दिए हैं, किन्तु इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इन तर्कों का सफलता पूर्वक खण्डन किया जा सकता है। दक्षिणी भारत का आर्यीकरण विलम्ब से हुआ था, इसी कारण सातवाहना राजाओं के नाम पर अनार्य प्रभाव दिखाई देता है। यही तर्क अपनी मां के नाम पर अपने नाम रखने का तर्क दिया जा सकता है। यह सर्वविदित है कि सातवाहन-कालीन समाज मातृप्रधान था। जहां तक अनार्यों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की बात है, अन्तर्जातीय विवाह प्रत्येक काल में हुए हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी राजकुमारी से विवाह किया था, इस आधार पर उसे यूनानी नहीं माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, पुराणों में सातवाहनों को यदि आंध्र कहा गया है तो इससे तात्पर्य उनकी जाति से नहीं वरन् उनके निवास स्थान से है। अतः सातवाहनों को अनार्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

2.7.2 आर्य

अधिकांस विद्वानों का विचार है सातवाहन आर्य थे, किन्तु वे ब्रह्मण थे अथवा नहीं, इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। जो विद्वान सातवाहनों को ब्रह्मण विद्वान नहीं मानते उनमें गोपालाचारी व भण्डारण, आदि प्रमुख हैं। ये विद्वान अपने समर्थन के मत में तर्क देते हैं कि नासिक अभिलेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि की तुलना राम, अर्जुन व भीम से की गई है, अतः वह क्षत्रिय रहा होगा। किन्तु इस आधार पर सातवाहनों को क्षत्रिय स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि तुलना का आधार उनकी जाति नहीं वरन् वीरता एवं साहस था।

2.7.3 ब्राह्मण

आधुनिक विद्वानों का विचार है कि सातवाहन ब्राह्मण थे। इस मत के समर्थन में सेनार्ट, ब्यूलर व त्रिपाठी प्रमुख हैं। हेमचन्द्र राय चौधरी भी उन्हें ब्रह्मण ही मानते हैं परन्तु उनका विचार है कि सातवाहनों में नाग (वंश) के रक्त का भी मिश्रण था। सातवाहनों को ब्रह्मण स्वीकार करने वाले विद्वान अपने मत के समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं:

- (1) नासिक लेख में गौतमीपुत्र को 'परशुराम-सा पराकमी ब्राह्मण' कहा गया है।
- (2) नासिक लेख में ही एक अन्य स्थाना पर उसे क्षत्रिय का दर्प और मान चूर करने वाला कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि वह क्षत्रिय न था, ऐसी स्थिति में वह ब्राह्मण ही रहा होगा।
- (3) गौतमीपुत्र व वासिष्ठीपुत्र नाम ब्राह्मण गौत्र गौतम व वसिष्ठी पर आधारित हैं। अतः स्पष्ट है कि सातवाहन ब्राह्मण रहे होंगे।

2.8 सातवाहन शासक

सिमुक प्रथम संस्थापक शासक था जो कि सामंत होने के कारण सामतवादी विचारधारा का था। अतः उसने प्रशासनिक कार्य की जगह धार्मिक कार्यों को बढ़ावा दिया, जैन व बौद्ध धर्म को संरक्षक दिया।

बौद्ध चैत्य की स्थापना की परन्तु अंतिम समय में दुराचारी व अत्याचारी होने की वजह से लोगों के द्वारा वध कर दिया। मुलतः वह ब्राह्मण जाति का ही था जिसने ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए शस्त्र धारण किया क्योंकि बड़ी संख्या में क्षत्रियों द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के कारण वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा गिर गयी थी। वायु पुराण से विदित होता है उसने के आसपास का क्षेत्र शुंगों और कण्वों से जीत लिया। पुराणों से ज्ञात होता है कि उसने 23 वर्षों तक शासन किया। नाना घाट चित्रफलक अभिलेख में उसका उल्लेख मिलता है।

2.8.1 कृष्ण

इस वंश का दूसरा सम्राट सिमुक का भाई कृष्ण था। नासिक गुहा लेखों में कृष्ण (कण्ह) का उल्लेख आया है। इस लेख में स्थानीय श्रमणों के आवास हेतु गुहा निर्मित किए जाने का विवरण भी मिलता है कृष्ण ने 18 वर्ष शासन किया। नानाघाट गुहा चित्र फलक अभिलेख में सिमुक के साथ शातकर्णि, नायनिका तथा कृष्ण के अंकन से स्पष्ट होता है कि वह (शातकर्णि) सम्भवतः सिमुक का पुत्र था, न कि कृष्ण का।

इसका उल्लेख नासिक से प्राप्त शिलालेख में मिलता है। इसका अल्पकालीन शासक रहा।

2.8.2 शातकर्णि

पुराणों में जानकारी मिलता है कि कृष्ण (कान्ह) के बाद शातकर्णि (ईसा पूर्व 27-17) गददी पर बैठा। इसका उल्लेख सांची के स्तूप तोरण लेख, नायनिका, नानाघाट गुहालेखों एवं नानाघाट गुहा चित्र फलक लेख में आया है। हाथि गुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसकी पूर्वी सीमा कलिंग शासक खारवेल की पश्चिमी सीमा से लगी हुई थी।

शातकर्णि को सातवाहन वंश की वृद्धि करने वाला कहा है। उसने अंगीय या अंतिम वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए नायनिका के साथ विवाह किया। अंगीय कुल शासक 'महारठी त्रणकवि' कहा गया है। शातकर्णि के दो पुत्र थे 'शक्ति-श्री' व 'वेदश्री'। शातकर्णि की मृत्यु के बाद नायनिका ने इनकी अभिभाविका के रूप में शासन संचालन किया था।

2.8.3 शातकर्णि प्रथम

यह कण्व पुत्र था तथा इसे दक्षिणपथ का स्वामी कहा जाता है। यह प्रथम शक्तिशाली राजा था जिसका उल्लेख पेरिप्लस ऑफ द इरिथियन सी में मिलता है इसका वैवाहिक संबन्ध नायनिका की राजकुमारी से हुआ। नायनिका राजकुमारी ने नानाघाट में अभिलेख खुदवाया, शातकर्णि का राज्य विस्तार पश्चिमी मालवा, अनुप प्रदेश व विदर्भ तक था। शातकर्णि के राज्य में मालव शैली की मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। नानाघाट अभिलेख में प्रथम बार उल्लेख मिलता है कि बौद्ध व ब्राह्मणों को भूमिदान में देने का। श्री शातकर्णि सिंहासनारूढ़ हुआ जो सातवाहन उपाधिधारि प्रथम शासक होने के कारण शातकर्णि प्रथम के रूप में जाना जाता है। उसने क्षहरात वंश के शक क्षत्रपों को पश्चिमी दक्कन से भगा दिया। उसका साम्राज्य पश्चिमी मालवा, अनुप(नर्मदा घाटि) विदर्भ के क्षेत्र तक फैल गया था। खारवेल के हाथी गुम्फा लेख से पता चलता है कि उसे कलिंग नरेश खारवेल का भी सामना करना पड़ा। सम्भवतः खारवेल को विजय नहीं प्राप्त करने दिया अन्यथा खारवेल की प्रशस्ति में इस विजय का अतिरंजित उल्लेख मिलता। उसने दो अश्वमेघ यज्ञ किये तथा पत्नी के नाम पर रजत मुद्राएँ उत्कीर्ण करवाई। उसने 'दक्षिणापति' तथा 'अप्रतिहत चक्र' उपाधि धारण की। उसकी मृत्यु के बाद सातवाहन काल अंधयुग का शिकार हो गया। सम्भवतः पश्चिमी भारत को शकों के क्षहरात शाखा ने सातवाहनों से जीत लिया।

2.8.4 गोतमी पुत्र शातकर्णी

गौतमीपुत्र शातकर्णि(106 ई.) आंध्र सातवाहन वंश का प्रतापी शासक कहलाता है। इसकी कई उपलब्धियों का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे— वेककटक विन्ध्य नरेश, त्रिसमुद्र, राजाराज, अद्वितीय प्रथम भी कहा गया है। इसने शकशासक नहपान को हराया था। स्वयं को कृष्ण एवं बलराम व संकर्षक की उपाधि से अभिजित करता था।

प्रारंभिक राजाओं द्वारा महाराष्ट्र में स्थापित राज्य दुसरी शदी के आरम्भ में शक वंश के क्षत्रप नरेश नहपान के उदभव के साथ कुछ समय के लिए समाप्त हो गया था। नहपान का समय 119 ई0 से 125 ई0 के मध्य माना जाता है। महाराष्ट्र सातवाहनों का मूल प्रदेश था, किन्तु उन्हें क्षहरातों के दबाव से दक्षिण विस्थापित होना पड़ा। गोतमीपुत्र शातकर्णी के नासिक गुहा लेख से जानकारी मिलती है कि

महाराष्ट्र गोतमीपुत्र शातकर्णी के अधीन था उसने क्षहरात्रों को बाहर किया नासिक से प्राप्त सिक्कों की निधि जिसे शातकर्णी ने दुबारा ढलवाया। उसके राज्यारोहण से पूर्व सातवाहन को शको ने आघात पहुंचाया परंतु गोतमीपुत्र ने इनकी शक्ति को नष्ट किया तथा सातवाहन वंश को पूर्णजीवित करने का कार्य किया। सर्वप्रथम उसने क्षहरात्रों पर आक्रमण कर अपनी खोई राजलक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए अभियान किया। इस सैनिक अभियान में क्षहरात नरेश नहपान तथा ऊषावदात न केवल परास्त हुए वरन् वीरगति को प्राप्त हुए। उसने नहपान की मुद्राओं को पुनरांकित कराया। क्षहरात्रों का विनाश गोतमीपुत्र की ऐसी महान सफलता थी जिसके फलस्वरूप सातवाहनों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में अकस्मात् वृद्धि हुई। इस सफलता से उत्साहित होकर उसने विशाल क्षेत्र पर विजय अभियान किया उनमें ऋषिक, अस्मक, मुलक, सुराष्ट्र, कुकुर, अपरान्ह, अनूप, विदर्भ, आकर, अवन्ति आदि स्थलों पर पुनः सातवाहन सत्ता स्थापित हुई।

2.8.5 वशिष्ठपुत्र पुलुमावी

पुलुमावी—ने दक्षिण पथेश्वर, महाराष्ट्र अंध्राप्रदेश को विजित किया प्रथम आंध्र सम्राट कहा गया जिसने अधिकांस क्षेत्रों को विजित किया, अमरावती के स्तूप में वैष्णवी का निर्माण किया। दो बार रुद्रदामन ने वशिष्ठ पुलुमावी को हराया। इसी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने दक्षिणापथ के स्वामी शातकर्णी को दो बार परास्त किया किन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण इसका वध नहीं किया। कान्हारी लेख से ज्ञात होता है कि पुलुमावी का अनुज वासिष्ठी पुत्र शातकर्णी रुद्रदामन का दामाद था। सम्भवतः पुलुमावी ने कार्दमक वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसके द्वारा जीते हुए प्रदेशों में कुछ को प्राप्त करने का प्रयास किया होगा।

शातकर्णी के बाद पुलुमावी उत्तराधिकारी बना उसने 28-29 वर्षों तक शासन किया नासिक कार्ले तथा अमरावती से उसके अभिलेख मिलते हैं उसके शासन में पश्चिमी भारत में कार्दमक शाखा में शको का पुनः बोलबाला हो गया शको ने वशिष्ठ पुत्र को परास्त करके सातवाहन साम्राज्य के अनेक प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया उसके शासन में कुकुर, सुराष्ट्र मरु आकर अवन्ति पर शकों ने पुनः कब्जा कर लिया सातवाहनों की शक्ति पुनः कमजोर हो गई चूंकि स्थानिय शासकों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। नासिक, कार्ले तथा अमरावती से उसके अभिलेख मिले हैं। उसके शासन काल में पश्चिमी भारत में कार्दमक शाखा के शकों का पुनः अधिकार कर लिया उसके समकालीन शक शासक चष्टन तथा रुद्रदामन थे। उसके शासन काल में कुकुर, सुराष्ट्र, मरु, आकर, अवन्ति आदि प्रान्त शकों ने पुनः छीन लिया किन्तु उसने दक्षिण की ओर विस्तार किया। पुलुमावी पहला सातवाहन राज्य था जिसका अभिलेख अमरावती से मिला है। सिक्कों तथा अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कृष्णा नदी के मुहाने वेलारी, आंध्रप्रदेश आदि पर उसने अधिपत्य कायम करके 'दक्षिणापथेश्वर' की उपाधि धारण की। उसके सिक्कों पर "दो पतवारों वाले जहाज" के चित्र से उसकी शक्तिशाली नौ सेना का भी प्रमाण मिलता है।

2.8.6 यज्ञ श्री शातकर्णी(145-194)

वाशिष्ठपुत्र के पश्चात् सातवाहन वंश का अंतिम प्रतापी शासक यज्ञश्री शातकर्णी हुआ। यह आंध्र का अंतिम शासक था। जिसने 165 ई.से 195 ई तक शासन किया। रुद्रदामन की मृत्यु के बाद इसने उनके द्वारा जीते गये सभी को अपने राज्य में मिला लिया इसके सिक्कों पर जलयान की आकृति मिलती है उसकी मुद्राओं पर तोप मत्स्य व जिसका अर्थ है कि समुद्री व्यापार को बढ़ावा दिया अरब सागर व बंगाल की खाड़ी से व्यापारिक संबंध थे। शातकर्णी दुर्बल शासक थे जिसके शासन काल में कोई उपलब्धि का उल्लेख नहीं मिलता। यज्ञ श्री की मृत्यु के बाद सातवाहन साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई यज्ञ के बाद जो भी सिंहासन पर बैठे उसमें से कोई भी सातवाहन शासक की चहु ओर की राजनीतिक उथल-पूथल की प्रक्रिया को रोकने में सक्षम नहीं था। शातकर्णी अत्यन्त शक्तिशाली शासक था तथा इसने सम्भवतः शकों पर भी विजय प्राप्त की थी। उसकी मुद्राएं गुजरात, काठियावाड़, पूर्वी मालवा व मध्यप्रदेश में मिलती हैं जिनसे इन प्रदेशों का उसके राज्य में होना प्रमाणित होता है। उसका साम्राज्य मुख्यतः महाराष्ट्र एवं आंध्र देश तक विस्तृत था यज्ञश्री शातकर्णी के कुछ मुद्राओं पर जहाज व शंख के चिन्ह अंकित होने के ऐसा प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य—तट तक फैला हुआ है।

2.9 राजतत्व व प्रशासनिक व्यवस्था

सातवाहनों ने अपने लंबे शासनकाल के फलस्वरूप शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संगठित किया। राजा ही केन्द्रिय सत्ता का मूल एवं देवी उत्पत्ति के सिद्धांत में विश्वास रखने वाला होता था। इनकी विशेषता राजाओं के मातृ प्रधान होने की हैं कभी रानीयों ने भी शासन सम्भाला होगा। राजाओं की सहायता अमात्य करता था और सेनापति सैन्य दल का प्रधान होता था। उत्तरी सातवाहन में महारथी तथा कोकण में महाभोज राज्य प्रतिनिधि थे। इनका सिद्धांत मृदु सिद्धांत पर आधारित था।

अशोक की तरह प्रशासनिक व्यवस्था का काम मिलता है इसके अतिरिक्त गायदान भिक्षुओं की कर मुक्ति, भूमिदान, सामान्तिक लक्षण भी वहां की राजनीतिक व्यवस्था में देखने को मिलता है। सातवाहनकालीन शासन व्यवस्था का बोध नासिक अभिलेखों से होता है। सातवाहनों का शासन दक्षिणी भारत एवं दक्कन के बड़े भाग में था। इस वंश के शासकों ने छोटे-छोटे राजाओं से सामंती सम्बंध स्थापित किए। इक्ष्वाकु सातवाहनों के अधीनस्थ शासक कहे गए हैं। दूसरे शब्दों में स्थानीय शासन सामंतों के जिम्मे था जिन पर सम्राट द्वारा पदाधिकारियों के समान नियंत्रण रखा गया। अधीनस्थों शासकों की सामान्यतः तीन कोटियों की जानकारी मिलती है। प्रथम जो नाम से सिक्के ढलवाते उन्हें राजा कहा गया। महाभोज एवं महारथी का दर्जा सम्भवतः ऊंचा था। महारथियों ने सातवाहन शासकों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी कायम किए। दक्कन के कुछ परिवारों को ही यह पद प्राप्त था। महाभोज सम्भवतः सेनापति वर्ग की एक श्रेणी थी। कुछ महासेनापति सीमावर्ती प्रान्तों के प्रभारी थे एवं कुछ केन्द्रीय विभागों में थे। राज्य अहारों (प्रशासनिक विभागों) में विभक्त था। प्रत्येक विभागों एक मंत्री (अमात्य) के अधीन रहा। भूमिदान के क्रम में अमच्च(अमात्य) महास्वामी तथा प्रतिहार जैसे अधिकारियों का जिक्र आया है। अन्य अधिकारियों में कोषपाल, प्रशासक (महामात्र) मुद्रा निर्माता, कारिन्दे, स्वर्णकार, अभिलेखपाल, राजदूत, प्रवेशक के नाम मिलते हैं। ग्राम प्रशासन ग्रामिक के अधीन था। नासिक अभिलेख से जानकारी मिलती है कि राजा लोग भूमिदान देते समय किन-किन विशेषाधिकारियों का त्याग करते थे। सातवाहनों ने ब्राह्मणों एवं बौद्ध श्रमणों को प्रशासनिक कर्तव्यों से मुक्त भूमि प्रदान करने की शुरुआत की जिससे केन्द्रीय सत्ता क्षीण हुई। प्रारम्भ में दान भूराजस्व से ही मुक्त था लेकिन धीरे-धीरे दान प्राप्तकर्ताओं के अधिकारों में इजाफा हुआ। राजाओं ने दी गई भूमि से प्रशासनिक नियंत्रण हटा लिया फलस्वरूप धीरे-धीरे राज्य के भीतर अर्द्धस्वतंत्र सत्ता विकसित होने लगी। आगे जाकर इस तरह सामन्ती व्यवस्था का विकास हुआ।

2.10 आर्थिक एवं सामाजिक जीवन

इनके काल में आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ। जीवन कृषि कार्य पर आश्रित था। खाद्यान में धान, गेहू, जौ का उत्पादन होता था। सातवाहनों के अभिलेख में धार्मिक उद्देश्य से राजकीय आदेश पत्र जारी कर भूमिदान करने की प्रथा की जानकारी मिलती है। वर्ण व्यवस्था में संकर जाति व्यवस्था को समाप्त किया।

आर्थिक स्थिति— विदेशी सिक्के प्राप्त हुए हैं। रोमन में भी इनके शासन के सातवाहन सिक्के मिले हैं शीशे, तांबा, कांसा, चांदी के सिक्के चलायमान थे। भड़ौच प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय बंदरगाह था।

2.11 सांस्कृतिक स्थिति

दक्कन की चैत्य विहार व कार्ले की गुफाएँ इसी काल की देन हैं। प्राकृत भाषा का प्रचलन था तथा लिपि भाषा का प्रयोग किया जाता था। शैव, वैष्णव धर्म का प्रभाव व बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय का विकास चरम पर था।

2.12 दक्षिणपथ की राजनीतिक स्थितियाँ—शक—सातवाहन संघर्ष

ई०पू० 117 से 190 ई० तक शक सातवाहन संघर्ष भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इनके आक्रमण में आकर्षण का केन्द्र दक्षिण पथ की भूमि थी इनका प्रारम्भ भूमक के समय से शुरु हुआ। गोतमीपूत्र के बाद पुलुमावी ने शक से संघर्ष जारी रखा यज्ञ शातकर्णी के समय से संघर्ष पुनः प्रारम्भ हुआ इसके सिक्कों कृष्णा, गोदावरी, बरार उत्तरी कोकण से प्राप्त हुए हैं इससे प्रतीत होता है कि इन क्षेत्रों पर इन्होंने अधिकार प्राप्त कर लिया। यह सातवाहन संघर्ष का अंतिम चरण था। इसके बाद किसी संघर्ष का उल्लेख नहीं मिलता है। ये दोनों ऐसे उलझे कि इनकी दक्षिणापथपति बनने की महत्वाकांक्षा समाप्त हो गई इन दोनों की जर्जर शक्ति ही संघर्ष समाप्ति का नियामक है।

इसमें सातवाहन शासक प्रतिष्ठा को केन्द्र मानकर सत्ता विस्तार का प्रमुख प्रयत्न कर रहे थे वही पश्चिम में शक प्राणपण से अपनी शक्ति स्थापित करने में लगे थे। इन दोनों राजनैतिक शक्तियों के

आकर्षण का केंद्र दक्षिणापथ की भूमि थी। पश्चिमी भारत में शासन करने वाले शक शासक मेम्बरस से शक सातवाहन संघर्ष का श्रीगणेश होता है। 'पेरीप्लस' से सातवाहनों से इसके संघर्ष की जानकारी मिलती है। पेरीप्लस के अतिरिक्त मेम्बरस या उसके कुल के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। उसके बाद पश्चिमी भारत में क्षहरातों का शासन प्रारम्भ हुआ।

इनका संघर्ष प्रारम्भ भूमक के समय हुआ उसने सातवाहन को परास्त करके मालवा, गुजरात कण्ठियावाड़ आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया, भूमक समकालीन सातवाहन नरेश के विषय में पुराणों में शिवस्वाति का उल्लेख मिलता है। क्षहरात शक शाखा का दूसरा शासक नहपान था। उसने भी सातवाहनों के प्रदेशों की जीता था उसने सातवाहनों को मालवा अपरान्त तथा महाराष्ट्र से बाहर कर दिया। शातकर्णी प्रथम के बाद संक्रमण दौर पर उसने सातवाहनों को पराभूत किया। नहपान के नेतृत्व में शकों के अभ्युदय के पश्चात सातवाहनों की स्थिति में परिवर्तन हुआ, जब शातकर्णी जैसा सुयोग्य व प्रतिभाशाली शासक मिला उसने नहपान व दामाद को मार दिया तथा उपरान्त अनूप सुराष्ट्र पर अधिकार कर लिया।

पुलुमावी ने भी इस संघर्ष को जारी रखा जो कि चट्टन कार्दिक शाखा से था वहाँ से संघर्ष प्रारम्भ हुआ। चट्टन ने उज्जैन सातवाहनों से छीन ली चट्टन के पुत्र रुद्रदामन ने तो जूनागढ़ प्रशस्ति के अनुसार अवन्ति, अनूप आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया इस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने शातकर्णी को दो बार परास्त किया, पुलुमावी ने कार्दिक वंश से विवाह कर कुछ प्रदेशों को प्राप्त करने का प्रयास किया होगा। पुलुमावी के बाद शिव श्री शातवर्णी तथा शिव स्कंद शातकर्णी के शासन काल में सातवाहनों द्वारा शको से खोये क्षेत्र को प्राप्त करने का प्रयास किया होगा या नहीं इसमें कोई प्रमाण नहीं है। दक्षिणापथ की राजनीति का दूसरा दौर यज्ञ श्री शातकर्णी के समय प्रारम्भ हुआ शकों से अपना राज्य प्राप्त करने के लिए उसने आक्रमण किया, इसके सिक्के कृष्णा, गोदावरी, बरार व सोराष्ट्र से प्राप्त हुए अपरान्त से प्राप्त से उसके अधिकारों की पुष्टि होती है। यज्ञ श्री से शक का यह अंतिम चरण था इसके बाद कोई उल्लेख संघर्ष का नहीं मिलता है।

यज्ञ श्री के बाद दोनों की शक्तियाँ अपने निजी समस्याओं में ऐसी उलझ गयी कि दक्षिणापथ पति बनने की महत्वाकांक्षा समाप्त हो गई लगभग एक शताब्दी तक चलने वाले इस संग्राम ने दोनों ही राजवंशों को कमजोर कर दिया जिससे क्षेत्रीय शक्तियाँ मुखर होने लगी तथा दोनों की जर्जर शक्ति ही इनके संघर्ष समाप्ति का कारण था।

2.13 शातकर्णी (गौतमीपुत्र की उपलब्धियाँ)

विभिन्न स्रोतों से ज्ञात होता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णी एक योग्य, कुशल एवं दूरदर्शी शासक होने के साथ ही जनता में लोकप्रिय एवं आदर का पात्र था। गुणी होने के साथ ही वह अत्यंत रूपवान तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी था। वह बलिष्ठ शरीर एवं लम्बी भुजाओं वाला व्यक्ति था। अपनी माता का अत्यंत आदर करता था। साहसी एवं शक्तिशाली होने के साथ ही वह अत्यंत दयालु शासक भी था। नासिक अभिलेख से उसके द्वारा दिए गए दानों के विषय में पता चलता है। गौतमीपुत्र एक प्रजावत्सल शासक था तथा उसी के अनुरूप वह कार्य करता था। प्रजा की खुशी के लिए वह उत्सव एवं समाज भी करवाता था। गौतमीपुत्री ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था तथा उसके विकास के लिए उसने प्रयत्न भी किए। गौतमीपुत्र यद्यपि ब्राह्मण-धर्म का अनुयायी था किन्तु वह धार्मिक क्षेत्र में असहिष्णु था। गौतमीपुत्र ने विन्ध्यपति व राजराजा, आदि उपाधियां धारण की थीं। उसकी मृत्यु 130 ई. में हुई।

(3) विजय एवं साम्राज्य विस्तार— गौतमीपुत्र शातकर्णी सातवाहन वंश का सबसे प्रतापी शासक था। वह साम्राज्यवादिता में विश्वास रखता था, अतः विभिन्न परिणामस्वरूप उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं को दूर-दूर तक विस्तृत किया। गौतमीपुत्र शातकर्णी के शासक बनने से पूर्व शकों ने सातवाहनों के अनेक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। गौतमीपुत्र शकों का परास्त करके न केवल खोए हुए प्रदेशों को प्राप्त किया वरन् अपने साम्राज्य का विस्तार भी किया। शकों को परास्त करने से उसका गुजरात, सोराष्ट्र, पश्चिमी राजपूताना, मालवा, बरार तथा उत्तरी कोंकण पर अधिकार हो गया। नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि गौतमीपुत्र शकों, यवनों, पल्लवों एवं क्षहरातों का विनाश कर सातवाहनों की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित की। नासिक अभिलेख में गौतमीपुत्र द्वारा जीते हुए प्रदेशों की सूची भी दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि उसने क्षहरातों का विशेष रूप से नाश किया था। नासिक से चांदी के सिक्कों में जो भाण्ड मिला है, उसमें नहपान (क्षहरात शासक) के ऐसे भी सिक्के हैं जिनको गौतमीपुत्र ने अपनी राजमुद्रा से पुनः अंकित किया है। अतः क्षहरातों पर इसकी विजय प्रमाणित हो जाती है।

नासिक के गुहालेख में गौतमीपुत्र शातकर्णिक की विजयों का उल्लेख करते हुए कहा गया है, "उसके वाहनों ने तीन समुद्रों का जल पिया..... उसका राज्य ऋषिक (गोदावरी नदी का तटवर्ती प्रदेश), मूलक (पैठन का निकटवर्ती क्षेत्र) कुकुर (उत्तरी काठियावाड़), अपरान्त, अनूप, विदर्भ, अवन्ति तक विस्तृत था। इस प्रकार स्पष्ट है कि अपनी विजयों के द्वारा उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। गौतमीपुत्र का साम्राज्य पूरब में बरार से लेकर पश्चिम में कोंकण तक तथा उत्तर में सौराष्ट्र एवं मालवा से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक विस्तृत था।

वह प्रजा के सुख में सुखी व दुःख में दुःखी होता था।

पौर जननिविसेस सम दुःख दुःखस

- निर्भिकता उसकी विशेषता थी
- बड़ो के प्रति व माँ के प्रति विनम्र व आज्ञाकारी था
- गौतमीपुत्र को तीन समुद्रों का स्वामी कहा है
- उसने अपराजित लोगों को पराजित किया है
- उसे दाताओं का दाता व शत्रु के प्रति उदार रहने वाला बताया

शातकर्णिक क्षत्रिय— हाथी गुफा अभिलेख में शातकर्णिक का उल्लेख मिलता है, साथ ही राजशेखर द्वारा रचित काव्यमीमांस तथा वात्सायन के काम सूत्र में भी वर्णन मिलता है।

हाल— यह आंध्र सातवाहन का वंशावली के क्रम में 19 वें नम्बर का शासक था, इसने गाथा सप्तसदी की रचना की जो एक प्रेम गाथा है। इसका सेनापति विजयानंद था जो कि लंका व्यापार के लिये जाता था वहां की राजकुमारी लीलावती के बारे में हाल को बताता है तथा हाल उससे विवाह कर लेता है।

2.14 सातवाहन वंश का पतन

किन कारणों से सातवाहन वंश का पतन हुआ, यह कहना कठिन है, किन्तु यह निश्चित है कि शासकों की दूर्बलता, आन्तरिक संघर्ष व ब्राह्म आक्रमणों का इस वंश के पतन में प्रमुख योगदान रहा। आभीर—वंश के शासकों ने महाराष्ट्र तथा पल्लवों इक्ष्वाकु—वंश ने पूर्वी दक्षिणापथ पर अधिकार करके सातवाहन की शक्ति को अत्यंत क्षीण कर दिया। इस प्रकार तीसरी शताब्दी तक सातवाहन—वंश विलुप्त हो गया।

2.15 सहायक ग्रन्थ सूची

भारतीय इतिहास का आदिकाल – रणवीर चक्रवर्ती

प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर – डा० वासुदेव उपाध्याय

प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय

प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास— डा० ए० के० मित्तल

भारतीय इतिहास का आदिकाल— रणवीर चक्रवर्ती प्राचीनतम पर्व से 600 ईस्वी तक ओखित ब्लैकस्वॉन, ISMN- 978 81 250 47056

प्राचीन भारत – आलोक कुमार पाण्डेय, TATA MCGROW HILL EDUCATION PRIVATE LIMITED

ISBN – 978-0-07-070544-9

प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन— वातात्मज मित्र, TATA MCGROW HILL EDUCATION PRIVATE LIMITED

ISBN – 978-0-07-066010-6

भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास— डा० ए० के० मित्तल साहित्य भवन पब्लिकेशन

ISBN- 81-7288-323-4

प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – पी० एल० गौतम, TATA MCGROW HILL EDUCATION PRIVATE LIMITED, ISBN – 978-9-35-134180-4

प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर— डा० वासुदेव उपाध्याय बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

1 सातवाहन वंश की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये?

2 सातवाहन कालीन उपलब्धियों पर विस्तार से वर्णन कीजिए?

पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप

- 1.1 परिचय
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 स्रोत
 - 1.3.1 साहित्यिक
 - 1.3.2 पुरातात्विक
- 1.4 उत्पत्ति एवं प्रसार
- 1.5 शको का भारत में आगमन
- 1.6 शको का भारत में राज्य
- 1.7 पश्चिम भारत के क्षत्रप
 - 1.7.1 महाराष्ट्र के शक-क्षत्रप
 - 1.7.2 उज्जैन के शक-क्षत्रप
- 1.8 सारांश
- 1.9 प्रस्तावित पुस्तक
- 2.0 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 परिचय

शको को चीनी साहित्य में सई (sai) अथवा सई-वांग (Sai-wang) कहा गया है। आरंभ में शक एक घुमक्कड़ (खानाबदोश) एवं बर्बर जाति थी, जो सीर नदी के उत्तरी किनारे पर रहती थी। भेड़-बकरियाँ चराने वाले ये लोग निरंतर अपना स्थान बदलते रहते थे। शकों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया का सरदरिया नामक स्थान था। भारतीय साहित्यों में शको के प्रदेश को शकद्वीप अथवा शकस्थान कहा गया है।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य शको की उत्पत्ति एवं प्रसार, उनके जानने के स्रोत, भारत में उनका आगमन के साथ-साथ मुख्यतः पश्चिमी शक-क्षत्रप के शासन एवं उनके कार्यों की विशद व्याख्या कर उनके विभिन्न विचार बिंदुओं को समझाना है।

1.3 स्रोत

शको के इतिहास की जानकारी के लिए हमारे पास पुरातात्विक एवं साहित्यिक दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं। साहित्य के रूप में मुख्यतः चीनी साहित्य शी-की एवं पान-कू कृत सीन-हान-शू अर्थात् प्रथम हान वंश का इतिहास तथा फान-ए-कृत हाऊ-हान-शू अर्थात् परवर्ती हान वंश का इतिहास उल्लेखनीय है। इनके अध्ययन से यू-ची, हूण तथा पार्थियन जाति के साथ शको के संघर्ष तथा उनके प्रसार का ज्ञान होता है।

1.3.1 साहित्यिक स्रोत

चीनी साहित्य के अतिरिक्त भारतीय साहित्यों से भी शको के बारे में पता चलता है। भारतीय महाकाव्य—रामायण एवं महाभारत में यवन, पहल्व, आदि विदेशी जातियों के साथ शको का उल्लेख है। मनुस्मृति में भी विदेशी जातियों जैसे—पारद, द्रविड़, पहल्व के साथ शको का उल्लेख है। कात्यायन एवं पंतजलि भी शको से परिचित थे। पुराणों में भी शक, मुरुण्ड, यवन आदि जातियों का उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त कई अन्य भारतीय ग्रंथ जैसे 'गार्गीसंहिता', 'विशाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्तम', वाण कृत 'हर्षचरित' राजशेखर कृत 'काव्यमीमांसा' आदि में भी शको का उल्लेख है। जैन स्रोतों में शको के विषय में विस्तृत विवरण दिया गया है। जैन ग्रंथ 'कालकाचार्य कथानक' में उज्जयिनी के उपर शको का आक्रमण तथा विक्रमादित्य द्वारा उनके पराजित किये जाने का विवरण सुरक्षित है। भारतीय साहित्यों में शको के प्रदेश का 'शकद्वीप' अथवा 'शकस्थान' कहा गया है।

1.3.2 पुरातात्विक स्रोत

भारत में शासन करने वाले शक शासकों के इतिहास उनके लेखों तथा उनके द्वारा जारी किये गये सिक्कों से प्राप्त होता है। अभिलेख के रूप में—राजवुल का मथुरा सिंह—शीर्ष स्तम्भ लेख, शोडास का मथुरा दानपात्रलेख, नहयानकालीन नासिक के गुहालेख, उषावदात के नासिक गुहालेख, नहपानकालीन जुन्नार का गुहालेख, रुद्रदामन् का अन्धौ (कच्छ की खाड़ी) का लेख, रुद्रदामन् के गिरनार (जूनागढ़) का लेख एवं गोनडोफर्नीज का तख्ते—वाही (पेशावर के युसुफजई क्षेत्र में स्थित) का लेख आदि। सातवाहन राजाओं के लेखों से शको के साथ उनके संबंधों का ज्ञान होता है। इन लेखों के अतिरिक्त पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तर प्रांत से प्राप्त भारी मात्रा में शको के सिक्कों से भी शको की सूचना प्राप्त होती है। कनिष्क के लेखों से भी पता चलता है कि कुछ शक—क्षत्रप तथा महाक्षत्रप उसकी अधीनता में देश के कुछ भागों में शासन करते थे।

1.4 उत्पत्ति एवं प्रसार

चीनी ग्रंथों से ज्ञात होता है कि मंगोलिया के समीप रह रही यू—ची जाति पर 175 ई०पू० के आस—पास एक अन्य जाति हूंग—नू ने आक्रमण किया तथा उन्हें भागने पर विवश कर दिया। यू—ची जाति परास्त होने के पश्चात् नवीन प्रदेशों की खोज में पश्चिम की ओर चली व उसने सरदरिया में रह रहे शको पर आक्रमण किया परिणामस्वरूप शक परास्त होकर अपने मूल निवास स्थान को छोड़ने पर विवश हो गए। शको ने सीरदरिया पार कर बल्ख (बैक्ट्रिया) पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ पर रह रहे यवनो को परास्त कर भगा दिया किन्तु यू—ची जाति ने वहाँ भी उनका पीछा किया फलतः दोनों के बीच युद्ध हुआ और शक पुनः पराजित हुए। पराजित शक जाति दो शाखाओं में विभक्त हो गयी तथा कि—पिन (कपिशा) पर अधिकार कर लिया। दूसरी शाखा पश्चिम में ईरान की ओर आयी। वहाँ उसे शक्तिशाली पार्थियन सम्राटों से युद्ध करना पड़ा। शको ने दो पार्थियन राजाओं फ्रात द्वितीय (128 ई०पू०) तथा आर्तवान (123 ई०पू०) को पराजित कर पूर्वी ईरान तथा एरियाना के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया किन्तु पार्थियन राजा मिथ्रिडेटस द्वितीय (123—88 ई०पू०) ने शको को बुरी तरह परास्त कर ईरान के पूर्वी प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया। परिणामस्वरूप शको को वहाँ से भी भागना पड़ा। इसके पश्चात् वे पूर्व की ओर अग्रसर हुए एवं हेलमण्ड घाटी (दक्षिणी अफगानिस्तान) पर अधिकार कर यहीं बस गए और उनका नाम 'शकस्थान' रख दिया जो अब 'सीस्तान' कहलाता है।

1.5 शकों का भारत में आगमन

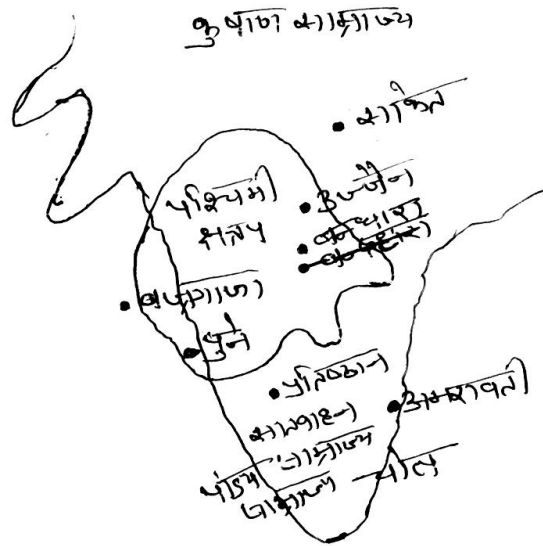
शकस्थान से भी शको को दक्षिण-पूर्व की ओर भागना पड़ा, क्योंकि वहाँ पहलवों (पार्थियनों) ने उन्हें पराजित कर दिया। तत्पश्चात् शक काबूल की घाटी की ओर अग्रसर हुए किन्तु उधर ग्रीको के शक्तिशाली राज्य थे। इसलिए शक ब्लूचिस्तान होते हुए बोलन दर्रे के रास्ते सिन्ध में आ गए कहा जाता है कि 'जैन कालकाचार्य' ने उन्हें भारत आने के लिए प्रेरित किया। भारत में सिन्ध नदी की घाटी में शको की बस्ती 'शक-द्वीप' या 'इंडो-सीथिया' (Indo-Scythia) कहलाई। इस प्रकार शक भारत में पूर्वी ईरान से होकर आये थे। भारतीय भूमि पर शको का यह पहला अवतरण था और इसी आधार से उन्होंने अपने अनेक राजकुलों की नींव डाली।

1.6 शकों का भारत में राज्य

डॉ० सत्यकेतु विद्यालयकार ने लिखा है कि कालक के साथ शक लोग सिन्ध में प्रविष्ट हुए और वहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। उसके बाद उन्होंने सौराष्ट्र को जीतकर उज्जयिनी पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा गर्दभिल्ल को पराजित किया। भारत में शकों की मुख्य राजधानी 'मीननगर' थी। भारत के अन्य प्रदेशों के शक राजा स्वयं को 'क्षत्रप' कहते थे जो फारसी शब्द 'क्षत्रपवन' (जिसका अर्थ है, प्रांतीय शासक), से बना है। भारत में शकों के प्रमुख राज्य थे—

- 1 तक्षशीला के शक-क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी तक्षशीला थी।
- 2 मथुरा का शक-क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी मथुरा थी।
- 3 महाराष्ट्र का शक-क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी नासिक थी।
- 4 उज्जैन का शक-क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

इनमें प्रथम दो उत्तरी क्षत्रप एवं अन्तिम दो पश्चिमी क्षत्रप कहलाते थे।



भारतीय शक-राजाओं में संभवतः पहला शासक मोआ था जिसे यूनानी इतिहासकारों ने 'मावेज' (Maues) कहा है। यह एक शक्तिशाली शासक था। तक्षशीला से प्राप्त ताम्रपत्र में उसे 'महाराय' कहा गया है। इसका राज्य काबुल घाटी व पूर्वी पंजाब में फैला हुआ था। सिन्ध सीमाप्रांत, गंधार व पश्चिमी पंजाब पर भी उसका अधिकार

था। मावेज के शासनकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ई०पू० प्रथम शताब्दी के अंतिम चरण में शासन किया था।

मावेज के पश्चात् एजेज प्रथम शासक बना तथा मावेज के साम्राज्य को ने केवल अक्षुण्य रखा वरन् उसने पूर्वी पंजाब में अपना साम्राज्य विस्तृत किया। मावेज व एजेज के बीच क्या संबंध था अर्थात् क्या रिश्ता था, इस विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। एजेज प्रथम के पश्चात् एजेज द्वितीय शासक बना, किन्तु इसके विषय में कोई उल्लेखनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है।

1.7 पश्चिमी भारत के क्षत्रप

पश्चिमी भारत में दो शक वंशों के अस्तित्व मिलते हैं जो इसप्रकार है—

- 1 महाराष्ट्र का शक—क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी नासिक थी।
- 2 उज्जैन का शक—क्षत्रप कुल, जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

1.7.1 महाराष्ट्र का शक—क्षत्रप

शकों की एक शाखा का नाम क्षहरात था। इस शाखा के लोग सिन्ध व गुजरात को पार करके दक्षिण पश्चिम भारत में पहुँच गए थे। सातवाहनों से युद्ध के पश्चात् क्षहरात विजयी हुए एवं महाराष्ट्र पर शासन प्रारंभ किया। महाराष्ट्र शक—क्षत्रप कुल का प्रथम शासक **भूमक** था। उसके सिक्के गुजरात, काठियावाड़ तथा मालवा के क्षेत्र से मिलते हैं। सिक्कों पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में लेख खुदे हैं। खरोष्ठी लिपि के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी राजपुताना तथा सिन्ध के कुछ भागों पर थी उसका अधिकार था। इस वंश का शासन संपूर्ण महाराष्ट्र, लाट तथा सुराष्ट्र प्रदेश पर था। भूमक का कोई अभिलेख नहीं मिलता। इसके सिक्कों की बनावट तथा उसपर लिखे लेख से यह स्पष्ट पता चलता है कि भूमक नहपान का पूर्ववर्ती शासक था।

नहपान क्षहरात वंश का सबसे प्रमुख एवं प्रतापी शासक था। भूमक व नहपान में क्या रिश्ता था, यह ठीक से ज्ञात नहीं है। नहपान अत्यंत वीर एवं प्रतापी शासक था। उसने 'राजन' व 'क्षत्रप' की उपाधिधारण की थी। जैन साहित्य, अभिलेखों एवं उसकी हजारों मुद्राओं से अनुमान लगता है कि इसने सातवाहनों से महाराष्ट्र को विजित किया था और उसका राज्य भड़ौच, काठियावाड़, अजमेर एवं पुष्कर तक फैला था। पेरीप्लस में वर्णित **नैम्बेरस** का भी समीकरण भी नहपान से किया जाता है, नहपान के शासन काल के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है किन्तु इसके सिक्के सन् 119 ई. से 124 ई. तक महाराष्ट्र में पाये गए हैं जिसके आधार पर यह अल्पावधि उसके शासन काल को माना गया है।

इसके सिक्के अजमेर से नासिक तक के क्षेत्र में मिले हैं। ये चाँदी एवं ताँबे के हैं, सिक्के निश्चित मानक के हैं, उसके समय में काषार्पण (सोने तथा चाँदी के सिक्के) की विनिमय दर 1:35 के अनुपात में थी। नासिक के एक लेख में 70,000 काषार्पणों का मूल्य 2000 स्वर्ण मुद्रा में दिया गया है, सिक्कों पर वह 'राजन्' की उपाधि धारण किए हुए हैं।

नहपान की **पुत्री दक्षमित्रा** का विवाह **उषावदात** के साथ हुआ था। उषावदात को **ऋषभदत्त** के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने अपने श्वसुर की युद्धों में तथा दान—पुण्य आदि कार्यों में बड़ी सहायता की थी। उषावदात के गुहालेख नासिक एवं कार्ल (पूना) से मिले हैं। नहपान के अमात्य आर्यमन का एक अभिलेख जुन्नार (पूना) से

मिले हैं। उषावदात (ऋषभदत्त) नहपान के समय में उसके दक्षिणी प्रांत— गोवरधन (नासिक) तथा मामल्ल (पूना) का वायसराय था।

नहपान द्वारा राज्य विस्तार हेतु किये गये युद्धों के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है, किन्तु मालवो पर विजय के विषय में नासिक अभिलेख से प्रकाश पड़ता है, इस अभिलेख के अनुसार नहपान ने अपने दायद उषावदात को अपने मित्र उत्तमभद्रो की मालवो के विरुद्ध सहायता के लिए भेजा था। इस युद्ध में उषावदात की विजयी हुई। विजय के पश्चात् उसने पुष्कर तीर्थ में स्नान किया एवं ब्राह्मणों को गौओं और स्वर्ण आदि का दान दिया। इस प्रकार नहपान का अजमेर तक का अधिकार प्रमाणित होता है, परन्तु यह मालव कौन थे? इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है।

नासिक और पूना जिला को उसने सातवाहनों से जीता था। नासिक के पास एक गुफा की दीवार पर उषावदात का एक लेख खुदा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि काठियावाड़, महाराष्ट्र और कोंकण क्षत्रप नहपान के राज्य में सम्मिसित था। इसप्रकार उसका राज्य उत्तर में अजमेर से लेकर दक्षिण में उत्तर महाराष्ट्र तक विस्तृत था। पेरीप्लस के अनुसार उसकी राजधानी **मीननगर** (भड़ौच तथा उज्जैन के बीच स्थित) थी।

क्षहरातो द्वारा सातवाहनो की पराजय को सातवाहन भूल नहीं पाये थे और वे गौतमीपुत्र शातकर्णि (सातवाहन शासक) के नेतृत्व में नहपान से युद्ध किए। युद्ध काफी भीषण हुआ किन्तु परिणामस्वरूप सातवाहनों ने अपनी पराजय का बदला लिया और अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया। वे अपनी सभी प्रदेश जो नहपान द्वारा विजित किये गये थे, पुनः प्राप्त किये।

जैन ग्रंथों के अनुसार जब शातकर्णि दो वर्ष तक घेरा डालकर भी नहपान की राजधानी को जीत नहीं सका, तब उसने चालाकी से अपने अमात्य को नहपान के पास भेजकर उसे दान—पुण्य में धन खर्च करने को प्रेरित किया और जब उसका राजकोष खाली हो गया, तब आक्रमण करके सरलता से उसे हरा दिया। संभव है कि इस युद्ध में गौतमीपुत्र शातकर्णि ने नहपान को पराजित कर उसे मार डाला।

नहपान ने लगभग 119 ई०— 125 ई० तक शासन किया। जोगलथम्बी से प्राप्त नहपान के बहुसंख्यक सिक्के गौतमीपुत्र शातकर्णि के द्वारा पुनर्कित किसे गये हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमपुत्र ने नहपान के जोगलथम्बी स्थित कोषागार पर अधिकार कर लिया। नहपान के पश्चात् शकों की शक्ति कुछ समय के लिए क्षीण हो गई। डॉ० राधाकुमूद मुखर्जी ने लिखा है कि 'नहपान' के निधन पर उसके वंश का राज्य समाप्त हो गया। नहपान के उत्तराधिकारी के विषय में हमें ज्ञात नहीं हैं।

1.7.2 उज्जैन का शक—क्षत्रप कुल

सुराष्ट्र एवं दक्षिणी गुजरात के बाद शको ने मालवा पर अधिकार कर लिया और वहाँ एक अलग राज्य की स्थापना की परिणामस्वरूप एक नवीन वंश भारतीय इतिहास में प्रकाशमान हुआ जो कार्दमक वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पश्चिमी भारत में इस नए वंश को स्थापित करने का श्रेय क्षत्रप यसामोतिक का पुत्र **चस्टन** को जाता है। इसके नाम से इस वंश को **चस्टन वंश** भी कहा जाता है।

चस्टन पहले **क्षत्रप** तदोपरान्त **महाक्षत्रप** बना। यह संभवतः कुषाणों की अधीनता में पहले सिन्ध क्षेत्र का क्षत्रप था। नहपान की मृत्यु के पश्चात् उसे कुषाण साम्राज्य के दक्षिणी—पश्चिमी प्रांत का वायसराय नियुक्त किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में उसने अपने को स्वतंत्र कर महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर लिया। कुछ

विद्वानों का मत है कि सन् 78 ई० में अपने राज्यारोहन के समय उसने एक शक संवत् (शक नृप काल) चलाया। किन्तु अधिकांश विद्वान इसे असंगत मानते हैं।

वृद्धावस्था में चस्टन ने अपने पुत्र **जयदामन्** को क्षत्रप नियुक्त किया। संभवतः उसने सातवाहनों से उज्जयिनी को जीत लिया था। चस्टन के जीवन काल में ही उसके पुत्र जयदायन् की मृत्यु हो गयी और वह स्वतंत्र शासक नहीं बन पाया क्योंकि उसका उल्लेख क्षत्रप के रूप में तो है किन्तु महाक्षत्रप के रूप में नहीं। उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। चस्टन ने अपने जीवनकाल में ही अपने पौत्र **रुद्रदामन्** (जयदामन् का पुत्र) को क्षत्रप नियुक्त किया। अन्धौ (कच्छखाड़ी) अभिलेख से ज्ञात होता है 130 ई० में चस्टन अपने पौत्र रुद्रदामन् के साथ मिलकर शासन कर रहा था। चस्टन की एक पाषण प्रतिमा मथुरा से प्राप्त हुई है, जो मथुरा संग्रहालय में अभी सुरक्षित ढंग से रखी हुई है। प्रो. जोवो दुव्रुए का विचार है कि वह गौतमीपुत्र शातकर्णि का सामन्त था। बूसर तथा भण्डाकर के मतानुसार जयदामन् को सातवाहनों से पराजय का मूँह देखना पड़ा था इसलिए वह महाक्षत्रप नहीं बन सका किन्तु अन्धौ अभिलेख के अनुसार इन इतिहासकारों का मत स्पष्टतः असंगत प्रतीत होता है क्योंकि यह अभिलेख चस्टन और उसके पौत्र रुद्रदामन् को एक साथ 130 ई० में शासन करने का संकेत देता है।

चस्टन की मृत्यु के पश्चात् **रुद्रदामन्** एक स्वतंत्र शासक के रूप में सामने आता है। वह महाक्षत्रप की उपाधि धारण करता है। वह अभी तक भारत में शासन करने वाले सभी शक शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली, महान् विजेता, प्रजावत्सल्य एवं महत्वपूर्ण था। जूनागढ़ (गिरनार) से शक संवत् 72 (150 ई०) का उसका एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह प्रशस्ति के रूप में है। इसमें उसकी विजय व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवरण प्राप्त होता है, उसके महाक्षत्रप की उपाधि से संकेत मिलता है कि उसके पूर्व शको की शक्ति निर्बल पड़ गयी थी जिसे अपने बाहुबल से रुद्रदामन् ने पुनः प्रतिष्ठित किया।

जूनागढ़ अभिलेख से रुद्रदामन् के निम्नलिखित प्रदेशों पर शासन की जानकारी प्राप्त होती है,— सिन्धु (सिन्धु घाटी का पश्चिम भाग), सौवीर (सिन्धु घाटी का पूर्वी भाग), कच्छ, आनर्त (उत्तरी काठियावाड़), सुराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़), मरु (मारवाड़), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), आकर (पूर्वी मालवा) और अवन्ति (पश्चिम मालवा) आदि।

आकर-अवन्ति — इनसे तात्पर्य पूर्वी तथा पश्चिमी मालवा से है। आकर की राजधानी विदिशा तथा अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी में थी।

अनूप — नर्मदा तट पर स्थित माहिष्मती में यह प्रदेश स्थित था। इस स्थान की पहचान मध्य प्रदेश के निमाड़ जिले में स्थित माहेश्वर अथवा मान्धाता से की जाती है।

अपरान्त — इससे तात्पर्य उत्तरी कोंकण से है। इसकी राजधानी शूर्पारक में थी। प्राचीन साहित्य में इस स्थान का प्रयोग पश्चिमी देशों को इंगित करने के लिए किया गया है। महाभारत में इसे परशुराम की भूमि बताया गया है।

आनर्त तथा सुराष्ट्र — इससे तात्पर्य उत्तरी तथा दक्षिणी काठियावाड़ से है। आनर्त की राजधानी द्वारका तथा सुराष्ट्र की राजधानी गिरिनगर में थी।

कुकुर — यह आनर्त का पड़ोसी राज्य था। डी०सी० सरकार के अनुसार यह उत्तरी काठियावाड़ में स्थित था।

स्वप्न – गुजरात की सावरमती नदी के तट पर यह प्रदेश था।

मरु – इस स्थान की पहचान राजस्थान स्थित मारवाड़ से की जाती है।

सिन्धु तथा सौवीर – निचली सिन्धु नदी घाटी के क्रमशः पश्चिम तथा पूर्व की ओर ये प्रदेश स्थित थे। कनिष्क के सुई-बिहार लेख से निचली सिन्धु घाटी पर उसका अधिकार प्रमाणित होता है। ऐसा लगता है कि रुद्रदामन् ने कनिष्क के उत्तराधिकारियों को हराकर इस भूभाग पर अपना अधिकार कर लिया था।

निषाद – महाभारत में इस स्थान का उल्लेख मत्स्य के बाद मिलता है जिससे सूचित होता है कि यह उत्तरी राजस्थान में स्थित था। यही विनशन तीर्थ था। वूलर ने निषाद देश की स्थिति हरियाणा के हिसार-भटनेर क्षेत्र में निर्धारित की है।

रुद्रदामन् का सातवाहन नरेश के साथ युद्ध में इतिहासकारों में मतभेद की स्थिति है। कुछ विद्वानों का मानना है कि रुद्रदामन ने दक्षिणापथ के स्वामी गौतमीपुत्र शातकर्णि को दो बार पराजित किया, किन्तु संबंध में निकटता के कारण उसका वध नहीं किया किन्तु कतिपय विद्वानों का यह मत असंगत प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों जैसे-रैप्सन आदि के अनुसार रुद्रदामन् से पराजित होने वाला सातवाहन नरेश वासिष्ठीपुत्र पुलमावी था। नासिक अभिलेख से पता चलता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा विजित प्रदेशों जैसे-असिक, अस्मक, मूलक, सुराष्ट्र, कुक्कुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर तथा अवन्ति आदि में से अधिकांश प्रदेशों को उसकी मृत्यु के पश्चात् रुद्रदामन ने जीत लिया था। रुद्रदामन का यह विजय कि किस सातवाहन नरेश के साथ युद्ध किया था, विवाद का विषय हो सकता है किन्तु यह निर्विवाद साबित हो चुका है कि इस विजय के पश्चात् रुद्रदामन का साम्राज्य अत्यंत विस्तृत हो गया था। सिन्धु तथा सौवीर को उसने कनिष्क के उत्तराधिकारियों से जीता होगा। संभवतः उत्तर से आक्रमण करने वाले स्वाभिमानी एवं अदम्य यौद्धेयों को भी उसने पराजित किया। यौद्धेय गणराज्य पूर्वी पंजाब में स्थित था। इसकी पुष्टि जूनागढ़ अभिलेख करता है। यौद्धेय अत्यंत वीर एवं स्वाधीनता प्रेमी थे। पाणिनी ने उन्हें 'आयुधजीवी संघ' अर्थात् 'शस्त्रों के सहारे जीवित रहने वाला कहा है।

रुद्रदामन एक महान विजेता के साथ-साथ प्रजापालक सम्राट भी था। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित सुदर्शन झील जिसे अशोक ने भी मरम्मत कराकर उससे नहरें निकलवायी थी, वह झील दैवीय प्रकोप का शिकार हो गया था। उसकी बाँध भारी वर्षा के कारण टूट गया था। प्रजा को उसके कारण कृषि-कार्य में बाधा पहुँच रही थी। फलस्वरूप रुद्रदामन ने उसे पुनर्निर्मित कराया एवं पहले से तिगुना अधिक मजबूत बाँध बनवा दिया। हालांकि इस बाँध की मरम्मत के लिए उसके मंत्रीपरिषद की सहमति नहीं थी। इसके बावजूद भी रुद्रदामन ने अपने व्यक्तिगत कोष से सुविशाख के द्वारा इसे बनवाया। इस कार्य हेतु रुद्रदामन ने अपनी प्रजा से किसी प्रकार का अतिरिक्त कर नहीं लगाया एवं नहीं किसी प्रकार से पहले के करो में वृद्धि की। वह एक उदार शासक था जिसने न तो अपनी प्रजा से कभी अनुचित धन वसूला और न ही बेगार (विष्टि) तथा प्रणय (पुण्यकर) ही लिया। उसका कोष स्वर्ण, रजत, हीरे एवं बहुमूल्य धातु से परिपूर्ण था।

रुद्रदामन का साम्राज्य अत्यंत विशाल एवं विस्तृत था। उसका साम्राज्य प्रांतों में विभक्त था। प्रत्येक प्रांत का शासक योग्य तथा विश्वासपात्र अमात्य (राज्यपाल) के अधीन रखा गया था। आनर्त सुराष्ट्र प्रान्त का शासक सुविशाख था। अन्य प्रादेशिक शासकों के बारे में हमें ज्ञात नहीं है। उसकी एक मंत्रीपरिषद् थी जिसमें दो प्रकार के मंत्री होते थे—**मतिसचिव** जो उसके व्यक्तिगत सलाहकार होते थे एवं दूसरा **कर्मसचिव**, जो कार्यकारी मंत्री तथा

कार्यपालिका के अधिकारी होते थे। इन्हीं में से राज्यपाल, कोषाध्यक्ष, अधीक्षक आदि की नियुक्ति की जाती थी। रुद्रदामन् प्रशासनिक कार्य अपनी मंत्रीपरिषद् की परामर्श से करता था तथा शक्ति सम्पन्न होते हुए भी वह निरंकुश नहीं था। जूनागढ़ अभिलेख में उसे 'भ्रष्ट-राज-प्रतिष्ठापक' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त की तरह उसने भी पराजित राजाओं के राज्य को लौटा दिया था। संभवतः ये वे राजा थे जिसे गौतमीपुत्र शातकर्णि ने हराया था। नासिक अभिलेख में रुद्रदामन् को क्षत्रिय राजाओं के मान-दर्शन करने वाला कहा गया है।

रुद्रदामन् एक महान् विजेता के साथ-साथ एक विद्वान् एवं विद्या प्रेमी भी था। उसके समय में उज्जयिनी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। वह एक वैदिक धर्मानुयायी था फलतः उसने संस्कृत भाषा को राज्याश्रय दिया। उसका शिलालेख अपनी शैली की रोचकता, भाव-प्रवणता एवं हृदयावर्जन के लिए प्रसिद्ध है। वस्तुतः वह एक छोटा गद्य-काव्य ही है। इससे पता चलता है कि रुद्रदामन् व्याकरण, राजनीति, संगीत तथा तर्क विद्या में प्रवीण था। उसे गद्य एवं पद्य दोनों रचनाओं में निपुण बताया गया है। विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा गया उसका अभिलेख प्राचीनतम अभिलेखों में से एक है तथा इससे उस समय संस्कृत भाषा के पर्याप्त रूप से विकसित होने का संकेत मिलता है। इसके समय तक शक भारतीय समाज में पूर्णतया धुलमिल गये थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रुद्रदामन् एक महान् विजेता, साम्राज्य निर्माता, प्रजावत्सल्य, उदार एवं लोकोपकारी शासक होने के साथ बहुमुखी प्रतिभा का भी धनी था। वह हिन्दु धर्म एवं संस्कृति का महान् उन्नायक था। सामान्यतः उसका शासन काल 130 ई० से 150 ई० तक स्वीकार किया जाता है। 150 ई० के गिरनार अभिलेख के पश्चात् हम उसका नाम नहीं सुन पाते हैं। उसकी मृत्यु अथवा उसका अंत किन परिस्थितियों में एवं कैसे हुआ यह हमें ज्ञात नहीं है। निःसंदेह उसका शासनकाल पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति के चरमोत्कर्ष को इंगित करता है।

रुद्रदामन् की मृत्यु के पश्चात् उज्जयिनी में शको की शक्ति एवं प्रभुत्व में क्रमशः क्षीणता आती गयी। इसके पश्चात् इसका पुत्र दामयसद क्षत्रप तदोपरांत महाक्षत्रप हुआ। इसने कुछ वर्षों तक शासन किया। इसके बाद उसका पुत्र जीवदामन् महाक्षत्रप बना। इसके बाद लगभग 2 वर्षों तक महाक्षत्रप का पद रिक्त रहा। तत्पश्चात् रुद्रसिंह प्रथम-पुनः जीवदामन् क्षत्रप से महाक्षत्रप बना। इनके बीच में समय-समय पर महाक्षत्रप का पद 2-2 वर्ष तक रिक्त रहा फलतः आभीरों की शक्ति प्रबल हुआ। तत्पश्चात् थोड़े उतार-चढ़ाव के बाद पुनः रुद्रसिंह प्रथम-पुनः जीवदामन्-रुद्रसेन प्रथम ईश्वरदत्त (आभीर)-यशोदामन्-दामसेन-संघदामन् आदि ने क्षत्रप तदोपरांत महाक्षत्रप बने। हालाँकि इनके बीच में कुछ वर्षों लिए महाक्षत्रप का पद रिक्त भी रहा। अल्टेकर के अनुसार मालावा में शक-क्षत्रपों के सिक्के 250 ई० के बाद नहीं मिलते। उनके विचार से वाकाटक नरेश विन्ध्यशक्ति ने मालावा को शको से छीन लिया।

1.8 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि शक सत्ता का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। हालाँकि रुद्रदामन् के मृत्यु के पश्चात् भी लगभग 200 वर्षों तक चष्टन वंश शासन करता रहा। रुद्रदामन् के उत्तराधिकारी दुर्बल एवं अयोग्य थे व उनके शासनकाल की कोई उल्लेखनीय घटना उपलब्ध नहीं है। इस वंश का अंतिम शासक रुद्रसेन (रुद्रसिंह)

तृतीय हुआ जिसे गुप्त शासक चंद्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटको से वैवाहिक संबंध स्थापित कर मार डाला अर्थात् शको का पूर्णरूपेण उन्मूलन कर दिया एवं शको का राज्य विशाल गुप्त साम्राज्य में विलीन हो गया।

1.9 प्रस्तावित पुस्तक

प्राचीन भारत का इतिहास – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

प्राचीन भारत का इतिहास – मोहन लाल गुप्ता

भारत का प्राचीन इतिहास – रामशरण शर्मा

प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति – के० सी० श्रीवास्तव

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति – डॉ० वी० के० पाण्डेय

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शक कौन थे? पश्चिमी भारत में उनके शासन एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।
2. नहपान की उपलब्धियों पर प्रकाश डालें।
3. रुद्रदामन् की उपलब्धियों पर प्रकाश डालें।
4. भारत में रुद्रदामन् किस प्रकार शको का सबसे महत्वपूर्ण शासक के रूप में उभरा, समीक्षा कीजिए।

कुषाणों का उदय

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 स्रोत
- 1.4 कुषाणों की उत्पत्ति
 - 1.4.1 प्रारम्भिक इतिहास
 - 1.4.2 दो शाखाओं में विभाजन
 - 1.4.3 पाँच भागों में विभाजन
 - 1.4.4 संगठित रूप
- 1.5 कुजुल कैडफिसेस
- 1.6 विम कैडफिसेस
- 1.7 कनिष्क
- 1.8 परवर्ती कुषाण शासक
 - 1.8.1 वासिष्क
 - 1.8.2 हुविष्क
 - 1.8.3 कनिष्क द्वितीय
 - 1.8.4 वासुदेव
- 1.9 उत्तरवर्ती कुषाण शासक
 - 1.9.1 कनिष्क तृतीय
 - 1.9.2 वासुदेव द्वितीय
- 1.10 कुषाण साम्राज्य का पतन
- 1.11 शासन व्यवस्था
- 1.12 सामाजिक व्यवस्था
- 1.13 आर्थिक व्यवस्था
- 1.14 धर्म
- 1.15 स्थापत्य
- 1.16 कला
 - 1.16.1 गौंधार कला
 - 1.16.2 मथुरा कला

1.16.3 विद्वानों को आश्रय

1.17 संदर्भ ग्रंथ

1.1 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य के अवसान के पश्चात भारत की केन्द्रीयकृत राजनैतिक शक्ति का भी लोप हो गया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर देश के पश्चिमोत्तर मार्गों से अनेक विदेशी आक्रांताओं ने आकर अपनी शक्ति के बल पर देश के अनेक भागों में अपनी सत्ता की प्रतिस्थापना की। विदेशी नेतृत्व में अनेक राज्यों की स्थापना हुई। इस का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि इस युग में मध्य-एशिया से भारत के प्रत्यक्ष सांस्कृतिक, आर्थिक सम्बन्ध स्थापित हुए। इस इकाई में हम इस काल में भारत में कुषाणों के उदय के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम कुषाणों की उत्पत्ति, साम्राज्य विस्तार, राजाओं के कार्य एवं उपलब्धियाँ तथा शासन व्यवस्था के सम्बन्ध जाकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 स्रोत

कुषाणकालीन इतिहास चीनी स्रोतों, बौद्ध ग्रन्थों, संस्कृत ग्रन्थों, चीनी यात्रियों-फाह्यान तथा ह्वेनसांग के विवरणों, तिब्बती स्रोतों, तत्कालीन प्रमुख स्थानों मथुरा, तक्षशिला, कौशाम्बी, सुई विहार आदि से प्राप्त अभिलेखों तथा कुषाण शासकों द्वारा जारी किए गए ताँबे व सोने के सिक्कों आदि से ज्ञात किया जा सकता है।

1.4 कुषाणों की उत्पत्ति

प्रारम्भिक कुषाणों के मूल स्थान एवं उनकी राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद का अभाव मिलता है। 'कुषाण' शब्द के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मानना है कि यह कुषाणों के मूल पुरुष के नाम से सम्बद्ध है जो कि इस वंश का संस्थापक रहा होगा। जबकि अनेक विद्वानों का मत है कि 'कुषाण' शब्द कबीले अथवा कुल का प्रतीक है। कुषाणों की राष्ट्रीयता को कुछ विद्वानों ने हूणों, मंगोलों शकों आदि से जोड़ा है जो कि अभी भी विवेचनाधीन है।

1.4.1 प्रारम्भिक इतिहास

कुषाण 'यू-ची' जाति के लोग थे जो उत्तर-पश्चिमी चीन में 'कान्सू प्रांत' और 'निग-सिया' प्रांत के मूल निवासी थे। लगभग 165 ई० पू० में उनके निकट निवास करने वाली एक अन्य तुर्की खानाबदोश जाति हुंगु (ह्युग-नू) ने उनपर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया और

उन्हें अपने मूल निवास स्थान को छोड़ने पर विवश कर दिया। तब यू-ची जाति दक्षिण- पश्चिम की ओर अभिगमन कर गई। वहां उसका सामना इली नदी घाटी क्षेत्र में निवास करने वाली जाति वु-सुन (Wu-Sun) से हुआ। इस युद्ध में वु-सुन जाति का सरदार 'नयन-ताऊ-मी' मारा गया। तब वु-सुन जाति ने भागकर उत्तर में स्थित 'हुंग-नु' (हूण) राज्य में शरण ली। इस युद्ध के पश्चात भी 'यू-ची' जाति ने पश्चिम की ओर अपना अभिगमन जारी रखा।

1.4.2 दो शाखाओं में विभाजन

'वु-सुन' जाति से संघर्ष के पश्चात, 'यू-ची' जाति दो शाखाओं में विभाजित हो गयी। इनमें से अपेक्षाकृत छोटी शाखा दक्षिण में जाकर तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्रों में बस गयी। जबकि दूसरी बड़ी शाखा ने दक्षिण-पश्चिम दिशा में आगे बढ़ते हुए सीर-दरया घाटी के उत्तर में निवास करने वाले शकों पर भीषण आक्रमण करके उन्हें खदेड़ दिया और स्वयं वहां बस गई। परन्तु यू-चीयों का यह बसेरा भी अल्पकालिक ही सिद्ध हुआ। क्योंकि पराजित वु-सुन जाति ने अपने नए सरदार 'क्वेन-मो' के नेतृत्व में अपने आश्रयदाता 'ह्युग-नू' (हूण) की सहायता से लगभग 140 ई0पू0 में 'यू-चीयों' पर हमला करके उन्हें सीर-दरिया घाटी से खदेड़ दिया। तब यू-ची जाति 'वक्षु की घाटी' में और वहाँ के शांतिप्रिय निवासियों को जिन्हें चीन के लोग ताहिया (बौक्द्रियन) पुकारते थे, उन्हें बड़ी आसानी से पराजित करके उन्हें अपने अधीन कर लिया। तत्पश्चात आक्सस की घाटी के उत्तरी भाग में स्थित सोग्नियाना (बोखरा) पर अधिकार करके उसे अपनी राजधानी घोषित कर दिया। चीनी इतिहासकार-पान-कू (Pan-Ku) के विवरणानुसार पहली सदी ई0पू0 के आरम्भ तक यू-ची जाति ने खानाबदोश जीवन का त्याग करके स्थायी निवास बना लिया था।

1.4.3 पाँच भागों में विभाजन

यू-ची जाति अब अपने इन स्थायी बसेरों में पाँच भागों में विभाजित हो गयी। यहाँ पाँच प्रदेश थे-

1. हियू-मी- हिंदूकुश और पामीर के पठार के मध्य का वाकहान प्रदेश।
2. कुआँग-मो-हिंदूकुश के दक्षिण का चित्राल प्रदेश।
3. कुएई-चुआंग (कुषाण)- चित्राल और पंजशिर के प्रदेशों के मध्य का भाग।
4. हि-थुन- पंजशिर का परवान प्रदेश।
5. काओफू- इसका साम्य काबुल से किया जाता है।

1.4.4 संगठित रूप-

हानवंश के परवर्ती इतिहास से ज्ञात होता है कि इस विभाज्य के प्रायः एक सदी के बाद कुएई-चुआंग (कुषाण) के प्रमुख सरदार (यवुग) 'क्यू-त्सीओ-किओ' ने अन्य चारों प्रदेशों पर

विजय प्राप्त कर ली थी। इसके पश्चात उसने एक संगठित व शक्तिशाली राज्य की नींव डाली। वह स्वयं इस संगठित राज्य का राजा (वाँग) बन गया। इस राजा (वाँग) की साम्यता कुषाणकालीन सिक्कों पर अंकित कुजुल कडफाइसिस के साथ स्थापित की गई है।

1.5 कुजुल कडफाइसिस

कुजुल कडफाइसिस के इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी पान-कू के ग्रंथ 'हाऊ-हान-शू' से मिलती है। साथ ही इसके द्वारा जारी किये गए सिक्कों से भी इस विषय में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसकी इतिहास में प्रसिद्धि 'कडफिसेस प्रथम' नाम से भी है। इसके सिक्कों से ज्ञात होता है कि काबुल घाटी में इसकी शक्ति के विस्तार के कारण यूनानी शक्ति धीरे-धीरे समाप्त होती चली गई। कुजुल के एक प्रकार के सिक्कों में एक ओर काबुल में शासन कर रहे ग्रीक शासक हर्मियस का नाम ग्रीक में अंकित है जबकि उसके दूसरी ओर कुजुल कडफाइसिस का नाम खरोष्ठी लिपि में अंकित है। इस पर कुजुल की उपाधियाँ भी अंकित हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में दोनों राज्यों के मध्य मित्रता रही होगी। किन्तु बाद के सिक्कों पर यूनानी शासक का नाम नहीं मिलता है और साथ ही इन सिक्कों पर कुजुल की उपाधि –'महाराजस' अर्थात् 'महाराज' अंकित है। इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाद में कुजुल कैडफिसिस ने ग्रीकों की सत्ता से मुक्ति प्राप्त कर ली थी और स्वतंत्र शासक बन बैठा था। ग्रीक शासक हर्मियस के पश्चात पहलवो (पार्थियन) ने किपिन (काबुल) पर अधिकार कर लिया था। इससे सम्भवतः प्रतीत होता है कि कुषाण शासक कुजुल कैडफिसिस ने (किपिन) काबुल एवं दक्षिणी अफगानिस्तान पर विजय पार्थियनों को परास्त करके ही प्राप्त की थी। कुजुल कैडफिसिस ने पार्थियनों पर यह विजय अपने शासन काल के अंतिम समय में प्राप्त की होगी जब सबसे प्रसिद्ध शासक गोडोफरनिस की मृत्यु हो चुकी होगी। क्योंकि 'तख्तेबही' लेख के अनुसार पहलव राजा गोडोफरनिस 45 ई० में पेशावर पर शासन कर रहा था।

किपिन (काबुल), दक्षिणी अफगानिस्तान के हिस्सों पर अधिकार हो जाने से कुजुल कडफाइसिस का पश्चिम के साथ सम्पर्क स्थापित हो गया। चीनी स्रोतों के अनुसार कुजुल कडफिसेस अस्सी वर्ष की आयु तक जीवित रहा। इस आधार पर इतिहासकारों ने उसका शासनकाल 15 ई० से 65 ई० के मध्य स्थित किया है।

1.6 विम कैडफाइसिस

चीनी स्रोतों से पता चलता है कि कुषाण सम्राट कुजुल कैडफिसेस की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र 'यन-काओ-चेन' सम्राट बना। इसके सिक्कों पर 'महाराज उवियम कवथिस' अंकित है जिसका साम्य विम कैडफिसिस से किया गया है। चीनी ग्रंथ 'हाऊ-हान-यू' में उल्लेख मिलता है कि विम कैडफिसिस ने 'तियन-चिओ' की विजय की थी और उसने अपने प्रतिनिधि के

रूप में अपने एक सेनापति की नियुक्ति वहां की थी। विद्वानों द्वारा 'तियन—चिओ' विजय का समीकरण भारतीय क्षेत्रों की विजय से लगाया गया है सम्भवतः यह सिंधु क्षेत्र में पंजाब के इलाके थे।

इससे स्पष्ट होता है कि भारत की प्रमुख भूमि क्षेत्रों में कुषाण स्वतंत्रता की स्थापना विम कैडफिसेस द्वारा की गई थी। विम कैडफिसेस द्वारा चलाए गए सिक्कों में महाराज, राजाधिराज आदि उपाधियाँ मिलती हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह एक स्वतंत्र सत्ताधारी शासक था। विम कैडफिसेस के सिक्कों पर उत्कीर्ण शिव और नंदी की आकृतियाँ तथा 'माहेश्वर की उपाधि से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने हिन्दु धर्म अपना लिया था तथा वह हिंदू देवता शिव का अनन्य उपासक था।

विम कैडफिसेस द्वारा स्वर्ण एवं ताम्र के सिक्कों का प्रचलन किया गया था। उसके सिक्कों पर रवरोष्ठी व ग्रीक लिपियों में लेखन किया गया था। सिक्कों का विस्तृत क्षेत्रों में पाये जाने के आधार पर विद्वानों का मत है कि विम कैडफिसेस के साम्राज्य का विस्तार आक्सस घाटी क्षेत्र से लेकर सिंधु घाटी क्षेत्र तक विस्तृत था। यद्यपि उसके सिक्के अल्प मात्रा में कौशाम्बी (इलाहाबाद) और बसाढ़ (बिहार) से भी बरामद हुए हैं।

विम कैडफिसेस द्वारा जारी किए गये स्वर्ण सिक्कों से उसके राज्य की उन्नत आर्थिक स्थिति का पता चलता है। विम कैडफिसेस के कारण व्यापार वाणिज्य के क्षेत्रों में प्रगति हुई थी। उसके काल में भारत का व्यापार पश्चिम में रोम तक फैला हुआ था। उसके काल में चीन—भारत में मध्य व्यापार के क्षेत्र में उन्नति हुई थी।

कुषाण काल की एक मूर्ति उत्तर प्रदेश के मथुरा के मॉट नामक स्थान से प्राप्त हुई है। यह राजसिंहांसन पर बैठी हुई एक विशाल प्रतिमा है। इस मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख के आधार पर इतिहासकार काशी प्रसाद जासवाल ने इसका साम्य कुषाण सम्राट विम कैडफिसेस से किया है। इसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि विम कैडफिसेस का साम्राज्य विस्तार सम्भवतः मथुरा तक विस्तृत था।

1.7 कनिष्क

विम कैडफिसेस के पश्चात कुषाण साम्राज्य की गद्दी पर सम्राट कनिष्क बैठा। सम्राट कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी शासक था। वह महान विजेता एवं बौद्ध धर्म को संरक्षण देने वाला था। इस दृष्टि से उसके व्यक्तित्व में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की सैनिक योग्यता एवं सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म के प्रति समर्पण का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।

सम्राट कनिष्क के काल के अनेक अभिलेखों, उसके द्वारा निर्गत ताम्र व स्वर्ण सिक्कों व बौद्ध साहित्य आदि के आधार पर हम उसके काल के इतिहास को जानते हैं। कनिष्क

कालीन अल्प ज्ञात स्रोतों के आधार पर सम्राट कनिष्क के आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य का आभाव दिखाई देता है। कनिष्क के पूर्व के कुषाण शासकों कुजुल कैडफिसियस व विम कैडफिसेस से उसका वास्तविक रूप में क्या सम्बन्ध था, अभी यह भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों जैसे स्टेनकाइनों आदि का मत है कि कनिष्क प्रथम यू-ची जाति की छोटी शाखा से सम्बन्ध रखता था और उसका आगमन खोतान से हुआ था। परन्तु यह भी असत्य प्रतीत होता है क्योंकि चीनी स्रोतों में कनिष्क प्रथम के वंशज वासुदेव को ता-यू-ची (बड़ी यू-ची) का राजा उल्लेखित किया गया है। कनिष्क के सिंहासनारूढ़ होने की तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों के अनेक मत हैं।

विस्तृत कुषाण साम्राज्य क्षेत्र में अनेक स्थानों यथा-काशी, गोरखपुर जिले में स्थित गोपालपुर स्तूप व काबुल के समीप बेग्राम नामक स्थानों पर सम्राट विम कैडफिसेस व सम्राट कनिष्क के सिक्के साथ-साथ प्राप्त हुए हैं। दोनों के ही सिक्कों की बनावट मूल रूप से समान प्रदर्शित होती है। वे आकार में चतुष्कोणिक हैं व उनकी तौल व बनावट एक समान है। इन सिक्कों की एक समान एक रूपता एवं तक्षशिला स्थित पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर विम कैडफिसेस व कनिष्क के कालों में अत्यंत समीपता प्रदर्शित होती है। वस्तुतः कनिष्क सम्राट विम कैडफिसेस का उत्तराधिकारी था।

कुषाण सम्राट कनिष्क के राज्यारोहण का वर्ष वस्तुतः 78 ई० ही था। यद्यपि फ्लीट आदि विद्वानों का मानना था कि सम्राट कनिष्क का राज्यारोहण दोनों कैडफिसेस सम्राटों से पूर्व हुआ था। फ्लीट के अनुसार कनिष्क का राज्यारोहण 58 ई० पूर्व हुआ था। कनिष्क ने इस अवसर पर एक सम्वत् भी प्रारम्भ किया था जो कि कालान्तर में विक्रमी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ परन्तु तक्षशिला से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों में कैडफिसेस शासकों के सिक्के खुदाई में निचली सतहों पर मिले हैं जबकि कनिष्क के सिक्के इससे ऊपरी सतह पर प्राप्त होते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि कैडफिसेस शासक कनिष्क के पूर्ववर्ती थे। साथ ही चीनी स्रोतों में भी कैडफिसेस शासक पूर्ववर्ती ही माने गए हैं। अतः यह मत सत्य प्रतीत नहीं होता है।

वही डा० आर० सी० मजुमदार कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 248 ई० में मानते हैं जबकि आर०सी० भंडारकर कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 278 ई० मानते हैं। लेकिन सम्राट कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि के तृतीय शताब्दी तक मानने के पर्याप्त स्रोत व प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

अतः इस मत भिन्नता के बावजूद भी कनिष्क की राज्यारोहण की तिथि 78 ई० में ही ठीक प्रतीत होती है। 78 ई० में प्रचलित शक सम्वत् ही कनिष्क के राज्यारोहण की अधिक प्रमाणित तिथि है। इस संवत् पर आधारित गणना पद्धति कनिष्क के उत्तराधिकारियों द्वारा भी

प्रयुक्त की गई थी। बाद में यह संवत् भारत के शक राजाओं द्वारा भी वृहद रूप में प्रयुक्त हुआ था जिससे यह शनैः शनैः शक सम्वत् के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

1.8 परवर्ती कुषाण शासक

1.8.1 वासिष्क

कुषाण सम्राट कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् वासिष्क उसका उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल अत्यंत अल्पकालीन प्रतीत होता है। उसके शासनकाल के दो अभिलेखों मथुरा से प्राप्त कनिष्क संवत् 24 (102 ई0) का अभिलेख व सांची से प्राप्त कनिष्क संवत् 28 (106 ई0) का अभिलेख से उसका शासनकाल मात्र चार वर्ष का ही प्रतीत होता है। इसके आधार पर कुषाण शासक वासिष्क के साम्राज्य का विस्तार मथुरा से पूर्वी मालवा तक प्रतीत होता है। इसके विषय में अन्य जानकारियाँ अत्यंत कम हैं।

1.8.2 हुविष्क

वासिष्क का उत्तराधिकारी कुषाण सम्राट हुविष्क बना। उसका शासनकाल कनिष्क संवत् 28 (106 ई0) से कनिष्क संवत् 62 (140 ई0) तक प्रतीत होता है। कुषाण सम्राट हुविष्क भी कुषाण वंश एक प्रतापी शासक था। उसने सम्राट कनिष्क के विस्तृत साम्राज्य को अपनी प्रतिभा से संभालने रखा। उसके स्वर्ण एवं तांबे के सिक्के उसके विशाल साम्राज्य क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। उसका साम्राज्य उत्तर में कपिशा से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक विस्तृत रहा होगा। उसकी सत्ता काबुल, कश्मीर, पंजाब, मथुरा, पूर्वी उत्तर प्रदेश तक अवश्य ही विस्तृत रही थी। अफगानिस्तान में काबुल के निकट वर्दक नामक स्थान से भी उसका एक लेख प्राप्त हुआ है। इससे भी उसका अफगानिस्तान तक साम्राज्य विस्तार की पुष्टि होती है। सम्राट हुविष्क एक सहिष्णु शासक था। उसके सिक्कों पर ब्राह्मण धर्म के प्रमुख देवता स्कंद, शिव आदि अंकित मिलते हैं। इससे अनुमान लगाया जाता है कि उसका झुकाव ब्राह्मण धर्म की ओर अधिक था। यद्यपि बौद्धों व जैन मतावलंबियों के प्रति भी वह दयालुता का भाव रखता था। सम्राट हुविष्क के सिक्कों पर हिराक्लीज, सारापीज, मिथ्र, फर्रो आदि देवताओं की भी आकृतियां मिलती हैं। यद्यपि उसके सिक्कों पर महात्मा बुद्ध की आकृति का सर्वथा आभाव मिलता है लेकिन वह बौद्ध के प्रति भी सहिष्णु था। अनुश्रुतियों के अनुसार उसने मथुरा में बौद्धों भिक्षुओं के लिए एक बौद्ध विहार बनवाया था। सम्राट हुविष्क के सिक्के कला की दृष्टि से भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन पर उत्कीर्ण आकृतियाँ अत्यंत सजीव प्रतीत होती हैं। मथुरा उसके साम्राज्य का एक प्रमुख केन्द्र बनकर उभरा। वह एक नगर निर्माता भी था। उसने कश्मीर में अपने नाम से एक नगर जुष्कपुर या हुविष्कपुर भी बसाया।

1.8.3 कनिष्क द्वितीय

हुविष्क के बाद उसका उत्तराधिकारी कनिष्क द्वितीय हुआ। उसका काल कनिष्क संवत् 62 (140 ई०) से कनिष्क संवत् 67 (145 ई०) तक माना जाता है। पेशावर जिले के 'आरा' नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में बाइष्क के पुत्र कनिष्क द्वारा शासन करने का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान इस कनिष्क का साम्य सम्राट कनिष्क प्रथम से भी करते हैं। परन्तु यह विचार उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर समीचीन प्रतीत नहीं होता है। निश्चय ही आरा लेख में उल्लिखित शासक कनिष्क द्वितीय ही है। इसने महाराज, राजाधिराज, देवपुत्र आदि उपाधियों के साथ-साथ रोमन शासकों के समान कैसर आदि उपाधियां भी धारण की थी।

1.8.4 वासुदेव

कुषाण वंश में कनिष्क कुल का अंतिम प्रतापी राजा वासुदेव हुआ। उसके अभिलेखों से उसका शासनकाल कनिष्क संवत् 98 (176 ई०) तक प्रतीत होता है। इसके अधिकतर अभिलेख मथुरा व इसके समीपवर्ती क्षेत्रों से ही प्राप्त हुए हैं। यद्यपि उसके सिक्के पंजाब एवं उत्तर प्रदेश से भी प्राप्त हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वासुदेव (बाजोदेओ) के पूर्वजों द्वारा शासित उत्तर-पश्चिम के प्रदेश वासुदेव के हाथों से निकल गए थे। उसका शासन अब केवल मथुरा के समीपवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया था। इसके सिक्कों की किस्मों की अल्पता उसके द्वारा शासित राज्य क्षेत्र की सीमितता को ही प्रदर्शित करते हैं। वासुदेव के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर शिव और नंदी की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार के सिक्कों के आधार पर विद्वानों ने वासुदेव को शैव मतानुयायी माना है। वासुदेव के वैष्णव नाम के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह ब्रह्मण धर्म को मानने वाला था।

इस प्रकार वासुदेव कुषाणों के कनिष्क कुल का अंतिम सम्राट सिद्ध हुआ। इस कुल के राजाओं का शासनकाल लगभग 99 वर्ष रहा। इनका विशाल साम्राज्य आक्सस की घाटी से सिंधु घाटी व गंगा घटी तक विस्तृत था। ये शासक भारतीय संस्कृति में शनैः शनैः घुलते-मिलते चले गए। ये भारतीय संस्कृति के पोषक व संरक्षक सिद्ध हुए। इनके शासन काल में राजनैतिक एकता के कारण लम्बे समय तक साम्राज्य में शांति स्थापित रही।

1.9 उत्तरवर्ती कुषाण शासक

उत्तरवर्ती कुषाण शासकों का शासन काल द्वितीय सदी के उत्तरार्ध से लेकर तृतीय सदी के पूर्वार्द्ध तक प्रतीत होता है।

1.9.1 कनिष्क तृतीय

उत्तरवर्ती कुषाण शासकों में सर्वप्रथम कनिष्क तृतीय नामक शासक के विषय में जानकारी मिलती है। इसका शासनकाल 180 ई० से 210 ई० तक रहा होगा। इसके सिक्के उत्तर पश्चिम प्रदेशों यथा बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान, पंजाब आदि क्षेत्रों से वृहद मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

मथुरा एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में इसके सिक्कों की अनुपलब्धता से स्पष्ट होता है कि उत्तरवर्ती कुषाणों के काल में सतलज के पूर्वी क्षेत्रों में कुषाणों का प्रभाव समाप्त हो चुका था। कनिष्क तृतीय के सिक्कों की विशिष्टतायें मिलती हैं कि इसके सिक्कों पर इसके द्वारा नियुक्त क्षेत्रों के नाम भी प्राप्त होते हैं यथा— 'मही' 'वासु' 'विरू'। अल्टेकर महोदय ने इन क्षेत्रों का साम्य क्रमशः महीश्वर, वासुदेव, विरूपाक्ष से किया है। उनका कहना है कि ये क्षेत्र वस्तुतः इसके भ्राता और पुत्र ही हैं। क्षेत्रों के नाम भारतीय देवताओं से साम्य रखने से निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरवर्ती कुषाण शासक ब्राह्मण धर्म का पालन करते थे और भारतीय संस्कृति में उनका आत्मसातीकरण पूर्ण हो चुका था। सिक्कों पर क्षेत्रों के नामों की उपस्थिति उनके बढ़ते हुए प्रभाव का संकेत करती है।

1.9.2 वासुदेव द्वितीय

कनिष्क तृतीय की मृत्यु के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी वासुदेव द्वितीय कुषाण साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। अल्टेकर महोदय ने इसका शासनकाल इसके सिक्कों पर अंकित तिथियों के आधार पर सम्भवतः 210 ई० से 230 ई० तक निर्धारित किया है। इसके सिक्कों पर इसका नाम 'वासु' नाम उत्कीर्ण मिलता है। जबकि इनके पृष्ठ भाग पर शिव तथा नंदी की आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। इसके आधार पर स्पष्ट होता है कि कुषाणों का भारतीयकरण पूर्ण हो चुका था। इसके सिक्के मुख्यतया बैक्ट्रिया एवं अफगानिस्तान के क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका शासन अब सिमट कर केवल इन्हीं क्षेत्रों में रह गया था। वासुदेव द्वितीय की सैनिक शक्ति की कमजोरी का लाभ उठाकर उसके क्षेत्रों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी एवं अनेक अन्य जातियों ने भी अपने-अपने क्षेत्रों में अपना प्रभाव व शासन स्थापित कर लिया था। यौधेय, मालव आदि अनेक राजवंशों के अतिरिक्त नागवंशी शासकों ने प्रमुख रूप से अपना स्वतंत्र शासन स्थापित कर लिया था। भारत के उत्तर-पश्चिम सीमाओं पर ईरान आदि से आक्रान्ताओं ने अनेक आक्रमण किये और सीमावर्ती क्षेत्रों में अपना प्रभाव स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था।

इन सब कारणों से कुषाण साम्राज्य का अंत सुनिश्चित हो गया था। उत्तरवर्ती प्रमाणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि ईरान के ससैनियन आक्रमण में पराजित कुषाण नरेश वासुदेव द्वितीय ही था न कि कुषाण नरेश प्रथम। वासुदेव द्वितीय के सिक्के वासुदेव प्रथम के सिक्कों से भिन्न प्रकार हैं। वासुदेव द्वितीय के सिक्कों की शुद्धता में कमी आई। इन पर अस्पष्ट यूनानी

देवताओं के चित्र व क्षेत्रों के नामों का उल्लेख इसके सिक्कों को अपने पूर्ववर्ती से भिन्न कर देता है। ईरानी आक्राता ससैनियों द्वारा वासुदेव द्वितीय के सिक्कों के प्रकार को ग्रहण करके ससैनियनव कुषाण प्रकार के सिक्के जारी किये। इन सिक्कों पर ससैनियन व कुषाण विशेषताओं का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।

1.10 कुषाण साम्राज्य का पतन

कुषाण वंश के पतन के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद का आभाव मिलता है। इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों द्वारा अनेक मत प्रस्तुत किये गए हैं।

के०पी० जायसवाल के अनुसार कुषाणों के उत्तरी भारत, पंजाब आदि क्षेत्रों में पतन का प्रमुख कारण भारशिव नागों के अन्तर्गत शक्तिशाली राज्यों की स्थापना रहा। प्रवरसेन प्रथम के नेतृत्व में वाकाटक शक्ति के उदय से भी कुषाणों के पतन की गति और अधिक तीव्र हो गई। परन्तु सिक्कों के विश्लेषण के आधार पर अल्लेकर कुषाणों के पतन के अन्य कारण मानते हैं।

गणराज्यों का उदय भी कुषाणों के अंत का कारण बना। अल्लेकर के अनुसार यौधेयों ने संगठित रूप से कुलिन्द, अर्जुनायन आदि गणराज्यों को एक जुट करके कुषाणों पर विजय प्राप्त की और उन्हें उनके उत्तर भारत के क्षेत्रों से खदेड़ कर पंजाब में सतलज के पार सिमटने के लिए विवश कर दिया। अल्लेकर ने यौधेयों के सिक्कों पर अंकित 'यौधेयनाम जय' 'जयमंत्रधर' आदि विरुद्धों के उत्कीर्ण होने से इसका अनुमान लगाया है। परन्तु विद्वानों का मत है कि इन सिक्कों में कुषाणों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यह कहना कठिन हो जाता है कि यौधेयों की यह विजय कुषाणों के विरुद्ध ही थी या अन्य किसी के विरुद्ध।

गुप्तों के उदय को भी कुछ विद्वानों ने कुषाणों के पतन का कारण माना है। राखलदास बनर्जी के अनुसार गुप्त साम्राज्य की शक्ति के उदय एवं विस्तार के कारण कुषाण शक्ति का पराभव हो गया। परन्तु गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की विजयों से सम्बन्धित 'प्रयाग प्रशस्ति' से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तों की शक्ति के स्थापित होने से पूर्व ही कुषाण सत्ता का अवसान हो चुका था।

विदेशी आक्रमणों को भी कुषाण शक्ति के अवसान का प्रमुख कारण माना गया है। विंसेट स्मिथ के अनुसार तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तरी भारत में कुषाण सिक्कों का ईरानीकरण इस बात की ओर इंगित करता है कि कुषाण साम्राज्य का अन्त ईरानी ससैनियों के भयंकर आक्रमण के फलस्वरूप हुआ। इन आक्रमणों में से एक का उल्लेख 'फरिश्ता' ने भी किया है। ईरानी आक्रमण कुषाणों के पतन में इसलिए भी प्रमुख कारण बने कि कुषाणों की शक्ति क्षीण होने पर कुषाण साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों के सामंतों को कुषाणों की कमजोर शक्ति का लाभ उठाकर विद्रोह करके अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का सुअवर प्राप्त हो गया।

कुषाणों के पतन के कारणों के सम्बन्ध में विभिन्न किंतु अल्पमात्रा में ज्ञात प्रमाणों के आधार पर विद्वानों के विभिन्न मतों के आधार पर यह माना जा सकता है कि नागों, वाकाटकों, यौधेयों आदि के साथ-साथ अन्य भारतीय राजकुलों के उदय ने एवं ससैनियों के विदेशी आक्रमणों ने कुषाणों की सत्ता का पराभव कर दिया। इसकी परिणति गुप्तों के अन्तर्गत उत्तर भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना के रूप में हुई।

1.11 शासन व्यवस्था

कुषाणों ने एक विस्तृत साम्राज्य की नींव डाली। अपने चरम उत्कर्ष के काल में कुषाणों का शासन ऑक्सस घाटी-सिंधू घाटी-गंगाघाटी तक विस्तृत था। कुषाण सम्राट की प्रशासन में स्थिति सर्वोच्च थी। कुषाण शासकों की महाराधिराज की उपाधि से प्रतीत होता है कि अनेक छोटे-छोटे राजा उनका प्रभुत्व स्वीकार करते थे। इनकी 'देवपुत्र' उपाधि इनके राजत्व के दैवीय सिद्धांत को मानने की सूचक प्रतीत होती है। हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति से इनकी उपाधि 'षाहि-षाहानुषाहि' मिलती है। इसमें 'षाहि' से तात्पर्य इनके राज्य के सामंतों से माना जाता है जबकि 'षाहानुषाहि' से तात्पर्य इनके राज्य के सामंतों से माना जाता है। इसका अर्थ यह भी है कि कुषाण शासक अपनी शासन व्यवस्था को सामंतों व क्षत्रियों की सहायता से चलाते थे। ये शासक की निरंकुशता में विश्वास करते थे। कुषाण साम्राज्य अनेक क्षत्रपियों में विभाजित था, जिनपर महाक्षत्रप अथवा क्षत्रप के माध्यम से कुषाण शासक करते थे। 'विषय' एवं 'भुक्ति' क्षत्रपियों के अन्तर्गत 'जिला' एवं 'मण्डल' के रूप में प्रशासनिक इकाइयाँ थी। कुषाण अभिलेखों में 'मंत्रीपरिषद' के विषय में जानकारी नहीं मिलती है। 'महादण्डनायक' एवं 'दण्डनायक' सैनिक अधिकारी थे। मथुरा से प्राप्त लेख के अनुसार 'ग्रामिक' गाँव का अधिकारी था जिसका कार्य सम्भवतः कर की वसूली करके केन्द्रीय कोषागार में जमा करवाना होता था। पुरुषपुर (पेशावर), मथुरा, कोशाम्बी, सारनाथ प्रमुख नगर थे।

1.12 सामाजिक व्यवस्था

कुषाणों के आगमन का परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा। इस काल में विदेशी शक्तियों ने तलवार के बल पर भारतीय क्षेत्रों पर अपना शासन स्थापित किया था। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रियों को शासन करने का अधिकार था। तब अपने सामाजिक आधार में वृद्धि करने हेतु एवं अपनी तलवार के बल पर जीती हुई सत्ता की वैद्यता स्थापित करने हेतु इन विदेशी शक्तियों ने स्वयं को परम्परागत वर्ण व्यवस्था में स्थापित करने का प्रयास किया। धीरे-धीरे विदेशी सत्ता की भारत में स्थापना करने वाले इन कुषाण आदि आक्राताओं को 'व्रात्य क्षत्रिय' के रूप में वर्ण व्यवस्था में प्रवेश दे दिया गया।

कुषाण साम्राज्य का विस्तार आक्सस घाटी तक विस्तृत होने के कारण इस काल में पश्चिम से व्यापार में वृद्धि हुई। अनेक नगरों की स्थापना एवं विस्तार हुआ। अनेक व्यापारिक श्रेणियां बनीं। ये श्रेणियां कालान्तर में धीरे-धीरे रूढ़ता ग्रहण करती चली गईं और पेशेवर जातियों के रूप में प्रकट हुईं। व्यापारिक उन्नति के कारण भारतीय समाज के निचले वर्णों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ। वैश्य वर्ण जहां समृद्ध हुआ वहीं शूद्रों की दशा में भी सुधार हुआ।

कुषाणकाल के सिक्कों, मूर्तियों, शिल्पों से तत्कालीन वेशभूषा का आभास होता है। यद्यपि यह प्रमाण अल्प मात्रा में ही उपलब्ध है।

1.13 आर्थिक व्यवस्था

कुषाण काल में भारतका मध्य एशिया व पश्चिमी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। चीन से पश्चिम की ओर जाने वाले तीनों रेशम मार्गों पर कुषाणों ने नियंत्रण प्राप्त कर लिया था। (1) कैस्पियन सागर से होकर जाने वाला मार्ग, (2) मर्व से फरात नदी होते हुए रूम सागर तक बने बंदरगाह तक जाने वाला मार्ग, (3) भारत से लाल सागर से होकर जाने वाला मार्ग।

इस रेशम व्यापार में भारतीय व्यापारी बिचौलिए का कार्य करते थे। रोम के पार्थियनों से कटु सम्बन्ध होने के बाद अब चीन से यह व्यापार कुषाण साम्राज्य के माध्यम से ही सम्भव हो सका। रोमन-कुषाण मैत्री ने इस व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय व्यापारियों ने रेशम मार्ग के क्षेत्र में अनेक वाणिज्यिक केन्द्र एवं बस्तियां बसाईं थीं यथा-यारकंद, काश्गर, खोतान, मीरन, कूची, तुरफान इत्यादि। इस व्यापार से भारत को पश्चिम से सोना प्राप्त होता था। प्लिनी ने रोम से भारत को होने वाले इस स्वर्ण हस्तांतरण पर दुख प्रकट किया था, उसने अपने देशवासियों की इस सम्बन्ध में निंदा की थी। उसके विवरणानुसार रोम भारत से आयात होने वाले वस्तुओं के बदले में प्रतिवर्ष करोड़ों सैस्टर्स भारत को भेजता था। पेरिप्लस ने भी भारत से पश्चिम को भेजे जाने वाले सामानों-मसाले, गजदंत, मलमल, मोती, औषधियाँ, चंदन, इत्र आदि का उल्लेख किया है। निश्चित ही इनके बदले पश्चिम में रोम आदि से सोना भारत को भेजा जाता था।

कुषाणकाल में इस बढ़ते हुए व्यापार की आवश्यकताओं के अनुरूप सिक्कों का प्रचलन भी नियमित रूप से होता रहा था। कुषाणों ने स्वर्ण एवं तांबे के सिक्के चलाये। कनिष्क के काल तक आते-आते विशद मात्रा में स्वर्ण। सिक्के जारी किये गए। कुषाण काल में सिक्कों की शुद्धता अत्यधिक थी। तांबे के सिक्कों का प्रचलन भी वृहद स्तर पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि दैनिक व्यय छोटे लेन-देन हेतु तांबे के सिक्के प्रयुक्त किये जाते थे। जबकि बड़े लेन-देन एवं विशेष लेन-देन हेतु स्वर्ण सिक्कों का प्रयोग किया जाता था।

इस प्रकार कुषाण काल आर्थिक दृष्टि से समृद्धि एवं व्यापारिक उन्नति का काल था। व्यापारिक प्रगति का ही परिणाम था कि इस काल में नगरों का उदय प्रचुरता से हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रगति का एक सुफल यह हुआ था कि देश में आन्तरिक व्यापार भी खूब फूला-फला। स्थानीय स्तर पर कारीगरों, शिल्पियों, व्यवसायों ने खूब उन्नति की एवं संगठित होकर अपनी-अपनी श्रेणियाँ बनाई। कुषाण काल की आर्थिक स्थिति के उन्नयन में इन श्रेणियों की विशिष्ट भूमिका दिखाई देती है। कुषाण काल में भू-धारण-अधिकार की 'अक्षयनीवी प्रणाली' भी प्रारम्भ हुई। इसमें भूमि का दान ग्रहण करने वाले को भू-राजस्व का स्थायी रूप से दान कर दिया जाने लगा।

1.14 धर्म

कुषाणों का काल धार्मिक दृष्टि से सहिष्णुता का काल था। इस काल में सिक्कों पर यूनानी, जरथुस्ती, हिन्दू देवी-देवताओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गई थीं। बुद्ध धर्म से सम्बन्धित आकृतियाँ भी प्राप्त होती हैं। इससे प्रतीत होता है कि कुषाण राजाओं ने धार्मिक कट्टरता को नहीं अपनाया था। कुजल कैडफिसस के सिक्कों के आधार पर विद्वानों का मत है कि उसने बाद में बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। विम कैडफिसेस के सिक्कों पर अंकित उसकी उपाधि 'महीश्वर' तथा शिव व नंदी की आकृतियों के उत्कीर्णन से प्रतीत होता है कि वह शैव मतानुयायी हो गया था।

कनिष्क के सिक्कों से उसके धार्मिक विश्वास की स्पष्टता प्रकट नहीं होती है। इन सिक्कों से उसकी धार्मिक सहिष्णुता प्रकट होती है। उसके सिक्कों पर मात्र ग्रीक अक्षर में ही अभिलेख अंकित है। इनपर अनेक यूनानी, ईरानी, हिन्दू देवताओं की आकृतियाँ मिलती हैं। इन पर हिरैक्लीज, सिरापिज, मीइरो (सूर्य), अथ्रो (अग्नि), शिव आदि की आकृतियाँ अंकित हैं। यद्यपि कुछ सिक्कों पर बुद्ध की भी आकृति मिलती है। इन सिक्कों के आधार पर ही बौद्ध ग्रंथों में कनिष्क के बौद्ध होने का दावा किया जाता है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार कनिष्क अपने प्रारम्भिक जीवन में अत्यधिक निर्दयी व क्रूर था किंतु बौद्ध मत में दीक्षित होने के पश्चात् उसने इस क्रूरता का सर्वथा त्याग कर दिया था। वास्तव में इन विवरणों में बौद्ध मत की श्रेष्ठता को ही प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया प्रतीत होता है। यद्यपि पुरुषपुर (पेशावर) में प्रसिद्ध चैत्य का निर्माण, बुद्ध की अस्थियों को विशाल स्तूप में रखवाना और चतुर्थ बौद्ध संगति का आयोजन कराना भी उसका बौद्ध होना प्रमाणित करता है। कुषाणकाल में बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राज्याश्रय प्रदान किया गया था और इससे साम्राज्य की सीमाओं से बाहर चीन व मध्य एशिया में प्रचार करवाया गया था। कुषाणकाल में ही बौद्ध त्रिपिटकों को प्रमाणिक रूप से संकलित किया गया तथा विभाषाशास्त्र नामक बौद्ध ग्रन्थ का संकलन हुआ।

धर्म के ऊपर अनेक विस्तृत भाष्य सम्पादित करके उनको ताम्र की चादरों पर खुदवाकर एक स्तूप में सुरक्षित किया गया। कुषाण काल में सिक्कों पर बुद्ध की आकृतियों के अंकन से स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध मत अब अपने मूल स्वरूप से भिन्न स्वरूप अख्तियार करता जा रहा था। अब बुद्ध देवता के रूप में मान्य होने लगे थे। 'महायान' के अन्तर्गत यह स्वरूप स्थापित हो रहा था। अब यह साधारण जनता के लिए अधिक सुलभ हो गया था। इसके साथ-साथ बाहरी तत्वों के भारतीय संस्कृति के साथ समावेश होने से भी बौद्ध मत में महायान सम्प्रदाय अधिक समीचीन प्रतीत हो रहा था।

1.15 स्थापत्य

कुषाण काल में स्थापत्य कलल के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। सम्राट अशोक की ही भांति कनिष्क भी स्तूपों और नगरों का महान निर्माता था। चीनी यात्री सुंगयुन, फाहयान व हवेनसांग के विवरणों से स्पष्ट है कि कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपर (पेशावर) में 400 फीट ऊंचा 13 मंजिलों का एक टॉवर बनाया था। इसी के पास विशाल संघाराम का भी निर्माण करवाया गया था। यह संघाराम कनिष्क के नाम पर ही 'कनिष्क चैत्य' के नाम से प्रसिद्ध था। यहां उत्खनन में मिले अभिलेख के आधार पर पता चलता है कि इसका निर्माण अगिशल अथवा अगेसी-लाओस नामक यूनानी शिल्पी द्वारा किया गया था। राजतरंगिणी के विवरणानुसार कनिष्क ने कश्मीर में कानिसपोर (कनिष्कपुर) तथा तक्षशिला के समीप सिरकप नामक स्थान पर नए नगरों का निर्माण करवाया था।

1.16 कला

कुषाण शासक कला के पोषक सिद्ध हुए। इनके शासन काल में कला के क्षेत्र में गांधार कला शैली व मथुरा कला शैली का विकास हुआ।

1.16.1 गांधार कला

महायान बौद्ध मत के उदय का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि कला के क्षेत्र में एक नई शैली का जन्म हुआ जो गांधार कला शैली नाम से प्रसिद्ध हुई। सांची और भारहूत के अवशेषों से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन बौद्ध मूर्तिकला पूर्वकाल में जातक कथाओं और बुद्ध सम्बन्धी अनेक कहानियों को पत्थर पर उकेरती तो थी परन्तु स्वयं बुद्ध की मूर्ति का प्रादुर्भाव उसमें नहीं हुआ था। उनके लिए प्रतीकों यथा- बौधिवृक्ष, पद चिन्हों, रिक्त आसन अथवा छत्र आदि का प्रयोग किया जाता था। परन्तु महायान मत के प्रसार के साथ बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण किया जाने लगा। इन मूर्तियों का निर्माण का प्रारम्भिक स्थल गांधार प्रांत था, जिसका केन्द्र पुरुषपुर (पेशावर) था। अतः इस कला का नाम भी इस क्षेत्र के नाम पर गांधार कला शैली पुकारा जाता है। इस

कला को ग्रीकों रोमन कला अथवा इन्डो-हैलेनिस्टिक कला भी कहा जाता है क्योंकि इस कला की विषय वस्तु तो भारतीय है लेकिन शैली ग्रीक प्रकार की है। इसमें बुद्ध की मूर्ति यूनानी देवता अपोलो के सामन प्रतीत होती है। गांधार कला शैली में सामग्री के रूप में काले स्लेटी पत्थर, चूने एवं पकी मिट्टी का प्रयोग किया जाता था। बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण पदमासन मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा, वरद मुद्रा, अभय मुद्रा में किया जाने लगा। बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त गांधार शैली में हारिति तथा रोमा देवी की मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। 'हारिति' का साम्य मातृदेवी से किया गया है।

1.16.2 मथुरा कला

कुषाण शासन काल में कला के एक अन्य केन्द्र के रूप में मथुरा भी प्रमुख रूप से उभरा। मथुरा कला शैली की मूर्तियों की अपनी विशिष्टताएँ हैं। यह कला शैली गांधार कला शैली से सर्वथा भिन्न है। मथुरा कला-शैली के विषय बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण मत से सम्बद्ध है। यद्यपि इस कला शैली का उद्भव स्रोत मूलतः भारतीय कला है, फिर भी इस पर यूनानी-रोमन प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। मूर्तिकला में प्राकृतिक सौंदर्य, लोकोत्तर तथा आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। मूर्ति निर्माण की सामग्री सफेद चित्तिदार लाल बलूआ पत्थर है। मथुरा शैली में शारीरिक सौंदर्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। इस दृष्टि से मथुरा कला आदर्शवादी है। इस कला में कुषाण राजा और सामंतों की मूर्तियां भी बनाई गईं। मथुरा के मटगॉव से कुषाण शासकों यथा-कनिष्क, विम कैडफिसेस की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मथुरा शैली ने गुप्त शैली को प्रभावित किया था।

1.16.3 विद्वानों का आश्रय

कुषाण शासक विद्वानों के आश्रयदाता थे। उनके काल में सुप्रसिद्ध विद्वान पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष, नागार्जुन, चरक आदि आश्रय पाते थे।

1.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

- झा एवं श्रीमाली- प्राचीन भारत का इतिहास
- के. सी. श्रीवास्तव- प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
- बी.बी. सिन्हा- प्राचीन भारत का इतिहास
- की.एन.लूनिया- प्राचीन भारतीय संस्कृति

कनिष्क प्रथम एवं उसकी उपलब्धियां

2.1	प्रस्तावना
2.2	उद्देश्य
2.3	कनिष्क का राज्यारोहण
2.4	कनिष्क का विजय अभियान
2.5	कनिष्क की राजधानी
2.5:1	पूर्वी भारत की विजय
2.5:2	चीन के साथ युद्ध
2.5:3	पश्चिमोत्तर प्रदेश की विजय
2.5:4	दक्षिण भारत पर विजय
2.6	साम्राज्य तथा शासन
2.7	कनिष्क एवं बौद्ध धर्म
2.8	हीनयान तथा महायान
2.9	साहित्यिक प्रगति
2.10	कला और स्थापत्य कला
2.11	गान्धार शैली
2.12	मथुरा कला शैली
2.13	जैन मूर्तियां तथा आयागपट्ट
2.14	कनिष्क के सिक्के
2.15	कनिष्क का अंत
2.16	सारांश एवं मूल्यांकन
2.17	अभ्यासार्थ प्रश्न
2.18	सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1: प्रस्तावना

कुषाण वंश का सबसे महत्वपूर्ण प्रतापी एवं महान शासक कनिष्क प्रथम था। वह इतिहास में एक योद्धा, साम्राज्य निर्माता तथा कुशल प्रशासक के रूप में प्रख्यात है। भारतीय इतिहास में उसका महत्व इसलिए और भी बढ़ गया है क्योंकि अशोक के पश्चात् बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान करने वाला सबसे महत्वपूर्ण शासक था। उसके समय में कला, धर्म, साहित्य, विज्ञान एवं वाणिज्य-व्यापार की भी अभूतपूर्व उन्नति हुई।

2.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि,

- कनिष्क का राज्यारोहण एवं विजय अभियान।
- कनिष्क ने किस प्रकार विस्तृत राज्य को सुदृढ़ता प्रदान की।
- कनिष्क ने कला और साहित्य को किस प्रकार संरक्षण प्रदान किया।
- गान्धार और मथुरा शैली का उदय एवं विकास।
- बौद्ध धर्म का संरक्षक एवं प्राश्रयदाता के रूप में कनिष्क।

2.3: कनिष्क का राज्यारोहण

विम कडफिसेस की मृत्यु के पश्चात् कनिष्क कुषाण साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसके राज्यारोहण के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं लेकिन मतभेदों के आधार पर इतिहासकार फर्ग्यूसन, ओल्डेनबर्ग, तामस

तथा रैप्सन आदि ने निष्कर्ष निकाला है कि कनिष्क प्रथम शताब्दी ई० में हुआ और उसी ने वह संवत् चलाया जो 78 ईसवी से प्राप्त होता है। जो आगे चलकर शक संवत् से प्रसिद्ध हुआ। इस तरह 78 ई० को उसकी राज्यारोहण तिथि स्वीकार किया गया है। इस प्रकार अधिकतर इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि कनिष्क 78 ई०-101 ई० या 102 ई० तक शासक रहा।

2.4: कनिष्क की राजधानी

कनिष्क के सिंहासनारूढ़ के समय कुषाण साम्राज्य बहुत विशाल था व मध्य एशिया, अफगानिस्तान तथा पश्चिमोत्तर भारत में फैला हुआ था। इसलिए सामरिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसने पुरुषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया। यह स्थान साम्राज्य के केंद्र में स्थित था। कनिष्क ने पुरुषपुर को श्रेष्ठ स्मारकों, सार्वजनिक भवनों, प्रसादों तथा बौद्ध विहारों से सुसज्जित किया। राजधानी में उसने एक विशाल स्तंभ का निर्माण करवाया जो लकड़ी की 13 मंजिलों से निर्मित था। जिसकी ऊंचाई लगभग 400 फीट थी। उसके ऊपर लोहे का बहुत बड़ा कलश था। यह स्तंभ वास्तव में संसार के आश्चर्यों में गिना जाने योग्य था। इस स्तंभ के समीप ही एक बौद्ध विहार निर्मित किया गया था। पुरुषपुर उसके राज्य के मध्य में होने के कारण यहाँ के सारे राज्यों में नियंत्रण किया जा सकता था।

2.5: कनिष्क का विजय अभियान

कनिष्क एक योद्धा एवं महान विजेता था। उसने अपने पराक्रम एवं शक्ति से कुषाण साम्राज्य को बहुत अधिक विस्तृत किया। उसका युद्ध और विजयों का वर्णन निम्नलिखित है—:

2.5.1: पूर्वी भारत की विजय

वाराणसी के समीप सारनाथ से कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। बिहार तथा उत्तर बंगाल से उसके शासनकाल के बहुसंख्यक सिक्के मिलते हैं। "श्रीधर्मपिटकानिदानसूत्र" के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि, कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा पर आक्रमण कर उसे बुरी तरह परास्त किया तथा हर्जाने के रूप में एक बहुत बड़ी रकम की माँग की परंतु इसके बदले में वह अश्वघोष लेखक, बुद्ध का भिक्षापात्र तथा अद्भुत मुर्गा पाकर ही संतुष्ट हो गया। पटना और गया से प्राप्त सिक्के से भी स्पष्ट होता है कि, कुषाणसाम्राज्य बिहार तक स्थापित था। बिहार के बंगाल के कई स्थानों जैसे— ताम्रलुक (ताम्रलिप्ति) तथा महास्थान से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश बिहार पर निश्चितरूप से कनिष्क का अधिकार सुनिश्चित था। बलिया के खैराडी नामक स्थान पर खुदाई के परिणाम स्वरूप एक अत्यंत समृद्धशाली बस्त का पता चला है। कौशाम्बी तथा श्रावस्ती से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाओं की चरण चोटियों पर उत्कीर्ण अभिलेख से कनिष्क के शासन का उल्लेख मिलता है। कौशाम्बी से कनिष्क की एक मोहर भी मिली है। इन प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने उपर्युक्त प्रदेशों में विजय प्राप्त की थी।

2.5.2: चीन के साथ युद्ध

चीनी तुर्किस्तान (मध्य एशिया) के प्रश्न पर कनिष्क तथा चीन के बीच युद्ध छिड़ गया। चीनी स्रोतों से ज्ञात होता है कि 73 ई० से 94 ई० के बीच चीन का प्रसिद्ध सेनापति पानचाऊ अपने हनवंशी नरेश के आदेशों पर चीनी तुर्किस्तान की विजय हेतु प्रस्तुत हुआ। उसने खोतान, काशगर, कच्छ की विजय की तथा पामीर के उत्तर-पूर्व में चीनी आधिपत्य कायम किया। 88 ई० तथा 90 ई० में यू-ची-नरेश (कनिष्क) 70,000 अश्वरोहियों की एक विशाल सुंग-लिन पर्वत के पार चीनियों से युद्ध के लिए भेजी। चीनी इतिहासकार युद्ध का कारण यह बताते हैं कि कनिष्क ने चीनी सेनापति के पास अपना एक दूत भेजकर हनवंशी राजकुमारी से विवाह की माँग की। पानचाऊ ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इस पर रुष्ट होकर कनिष्क ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी परंतु कनिष्क असफल रहा और पानचाऊ ने उसकी सेना को परास्त कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, कनिष्क की इस असफलता का संकेत एक भारतीय अनुश्रुति है जिसके अनुसार उसने यह घोषित किया था कि, "मैंने उत्तर को छोड़कर अन्य तीन क्षेत्रों को जीत लिया"।

परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि, कनिष्क ने शीघ्र अपनी पराजय का बदला पानचाऊ से ले लिया। हुएनसांग हमें बताता है कि "गान्धार प्रदेश के राजा कनिष्क ने प्राचीन काल में भी सभी पड़ोसी राज्यों को जीतकर एक विस्तृत प्रदेश पर शासन किया। सुग-लिंग पर्वत के पूर्व में भी उसका अधिकार था"। यहाँ सुग-लिंग के पूर्व के प्रदेश से तात्पर्य चीनी तुर्किस्तान से ही है जिसमें यारकंद, खोतान तथा काशगर सम्मिलित थे। प्र० बैली को खोतान से एक पाण्डुलिपि मिली है जिसमें बहलक बैक्ट्रिया के शासक "चंद्र कनिष्क" का उल्लेख हुआ है। इससे भी कनिष्क का खोतान पर अधिकार प्रमाणित होता है। चीनी तुर्किस्तान के अतिरिक्त बैक्ट्रिया, ख्वारिज्म तथा बुखारा पर भी उसका अधिकार था।

2.5.3: पश्चिमोत्तर प्रदेश की विजय

कनिष्क के शासनकाल में 11वें वर्ष का अभिलेख सुईबिहार से मिला है। इससे प्रमाणित है कि अपने शासन में उसने 11वें वर्ष में निचली सिंधु घाटी को जीत लिया था। इसी वर्ष का एक लेख जेद्दा (पेशावर) से मिला है। कपिशा में कनिष्क के अधिकार की पुष्टि हुएनसांग करता है। काबुल के अधिकार के वार्दाक से संवत् 151 तिथि वाला हुविष्क का एक लेख मिलता है जो अफगानिस्तान के ऊपर कुषाण सत्ता को प्रमाणित करता है। यह विजय भी कनिष्क के समय में की होगी। कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि उसका कश्मीर पर अधिकार था। इसके अनुसार उसने यहाँ कनिष्कपुर नामक नगर बसाया था।

2.5.4: दक्षिण भारत पर विजय

साँची से कनिष्क संवत् 28 का एक लेख मिलता है। यह वासिष्क का है तथा बौद्ध प्रतिमा पर खुदा हुआ है। वासिष्क की किसी भी उपलब्धि का ज्ञान हमें नहीं है। उसका शासन मात्र चार वर्षों का था। अतः कहा जा सकता है कि यह भू-भाग कनिष्क द्वारा ही विजित किया होगा। साँची लेख में 'वासु' नामक किसी राजा का उल्लेख मिलता है। यह संभवतः कनिष्क के समय में मालवा का उपराजा रहा होगा। ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण में कम से कम विंध्य पर्वत तक कनिष्क का साम्राज्य विस्तृत था। साँची के अन्य लेख में 'वास' नामक किसी राजा का उल्लेख मिलता है। वह संभवतः कनिष्क के समय में मालवा का उपराजा था।

2.6: साम्राज्य तथा शासन

अपनी अनेकानेक विजयों के द्वारा कनिष्क ने अपने लिये एक विशाल साम्राज्य निर्माण किया। उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में विंध्यपर्वत तक तथा पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में उत्तर प्रदेश एवं बिहार तक विस्तृत था। राजतरंगिणी से जहाँ कश्मीर पर उसका अधिकार सूचित होता है। वहीं सुईबिहार तथा साँची के लेख सिंध, मालवा, गुजरात, राजस्थान के कुछ भाग तथा उत्तरी महाराष्ट्र पर उसके अधिकार की पुष्टि करते हैं। यह एक अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्य था। पुरुषपुर (पेशावर) इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी। कनिष्क के शासन प्रबंध के विषय में कम जानकारी है। वह एक शक्ति संपन्न सम्राट था। 'देवपुत्र' की उपाधि से सूचित होता है कि वह अपनी दैवी उत्पत्ति में विश्वास करता था।

कनिष्क अपने विस्तृत साम्राज्य का निरंकुश शासक था। प्रशासन की सुविधा के लिये उसने साम्राज्य को अनेक क्षत्रपियों में विभाजित किया था। बड़ी क्षत्रपी के शासक को "महाक्षत्रप" तथा छोटी क्षत्रपी के शासक को "क्षत्रप" कहते थे। उसके अभिलेखों में अनेक क्षत्रपों के प्राप्त नामों से प्रतीत होता है कि वह अपने साम्राज्य का शासन क्षत्रपों की सहायता से करता था।

उदाहरण के लिए सारनाथ से प्राप्त लेख में खरपल्लान महाक्षत्रप तथा क्षत्रप वनस्पर का उल्लेख मिलता है। क्षत्रप के पद पर अधिकतर विदेशी व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती थी जैसा कि उनके नाम से स्पष्ट है। कुछ क्षत्रप अनुवांशिक होने के साथ एक ही प्रदेश में दो क्षत्रपों के शासन करने की विचित्र प्रथा का प्रारंभ कुषाणों के समय से ही प्रत्यक्ष होता है। सामान्य नागरिकों के समान क्षत्रप भी बुद्ध प्रतिमाओं की स्थापना करते तथा दानादि देते थे। मथुरा संभवतः उसके शासन का मुख्य केंद्र तथा वाराणसी दूसरा प्रशासनिक केंद्र था।

कनिष्क के लेखों में किसी सलाहकारी परिषद का उल्लेख नहीं मिलता। कुषाण लेखों में हम पहली बार "दण्डनायक" तथा "महादण्डनायक" जैसे पदाधिकारियों का उल्लेख पाते हैं संभवतः वह सैनिक अधिकारी थे। ग्रामों के शासन में "ग्रामिक" का वर्णन मिलता है जिसका प्रमुख कार्य राजस्व वसूल करके केंद्रीय कोष में जमा करना होता था। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि, कनिष्क का शासन अधिकांशतः सैनिक शक्ति पर आधारित था और इसलिये वह स्थायी नहीं हो सका।

2.7: कनिष्क एवं बौद्ध धर्म

कुषाण साम्राज्य मध्य एशिया से पूर्वी भारत तक फैला था। ईसा पूर्व की दूसरी शती से ईसवी सन् दूसरी शती तक की अवधि में भारत के समस्त धार्मिक अवशेषों में बौद्ध धर्म सम्बन्धित अवशेषों की संख्या सर्वाधिक है। भारतीय इतिहास में कनिष्क की ख्याति मात्र उसकी विजयों के कारण ही नहीं, अपितु शाक्य मुनि के धर्म को संरक्षण प्रदान करने के कारण भी है। उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में कनिष्क के बौद्ध मत में दीक्षित होने के ही समान है।

कनिष्क के सिक्कों तथा पेशावर के लेखों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में ही बौद्ध हो गया था। कनिष्क को इस धर्म में दीक्षित करने का श्रेय सुदर्शन नामक बौद्ध आचार्य को दिया जाता है। पेशावर में प्रसिद्ध चैत्य का निर्माण करवाकर उसने इस धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। उसने बौद्ध धर्म के की महायान शाखा को राजाश्रय प्रदान कर उसका प्रचार मध्य एशिया व चीन में करवाया। कनिष्क ने मध्य एशिया में अनेक विहार, स्तूप एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया। तजाकिस्तान से मिली बुद्ध की विशालकाय मूर्तियाँ एवं अवशेष यह सपष्ट करते हैं कि कनिष्क के समय (प्रथम शताब्दी ईसवी) में बौद्ध धर्म उन प्रदेशों में विस्तृत हो चुका था। काश्गर, खोतान, कूची, यारकंद, कड़ासहर, तुर्फानर आदि अनेक विहारों में भिक्षु निवास करते थे। यहीं से बौद्ध प्रचारक चीन गये। चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश 65 ई0 में हन सम्राट मिंग ती (57ई0-75ई0) में हुआ। जो कुषाणकालीन राजाओं के समकालीन थे।

कनिष्क के शासनकाल में कश्मीर के "कुण्डलवन" नामक स्थान में बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति का आयोजन किया गया था। उसकी अध्यक्षता प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुमित्र ने की थी तथा अश्वघोष उपाध्यक्ष बनाये गये। इसी संगीति में बौद्ध त्रिपिटकों के प्रमाणिक पाठ तैयार हुए तथा "विभाषाशास्त्र" आदि बौद्ध ग्रंथों का संकलन किया गया। कनिष्क के समय बौद्ध धर्म स्पष्टतः दो संप्रदायों में विभक्त हो गया— (1) हीनयान (2) महायान। कनिष्क ने महायान शाखा को ही राज्याश्रय प्रदान किया तथा स्वदेश एवं विदेश में उसका प्रचार-प्रसार करवाया।

2.8: हीनयान तथा महायान

कुषाणकालीन समय तक बौद्ध मतानुयायियों की संख्या अधिक बढ़ने से अनेक लोग इस धर्म में नवीन विचारों एवं भवनाओं के साथ प्रविष्ट हुये थे। अतः बौद्ध धर्म के प्राचीन स्वरूप में समयानुसार परिवर्तन लाना जरूरी था। वह रूढ़िवादी लोग जो बौद्ध धर्म के प्राचीन आदर्शों के पक्षधर थे तथा किसी भी प्रकार के परिवर्तन से असहमत थे, ऐसे लोगों का सम्प्रदाय 'हीनयान' कहा गया। हीनयान का शाब्दिक अर्थ है—'निम्न मार्ग' जो केवल भिक्षुओं के लिये संभव था। 'महायान' का अर्थ है— 'उत्कृष्ट मार्ग'। इसमें परसेवा तथा परोपकार पर विशेष बल दिया गया। बुद्ध की मूर्ति के रूप में पूजा होने लगी। यह मार्ग सर्वसाधारण के लिये सुलभ था। इसके द्वारा अधिक लोग मोक्ष प्राप्त कर सकते थे।

हीनयान में जहाँ बुद्ध को महापुरुष, मोक्ष को व्यक्तिवादी धर्म, मूर्तिपूजा व भक्ति में अविश्वास, कठोर साधन पद्धति यदा भिक्षु जीवन, आदर्श "अर्हत" पद को प्राप्त करना जैसे दृष्टिकोणों का परिचय प्राप्त होता है। 'अर्हत' से अर्थ व्यक्ति की अपनी साधना द्वारा निर्वाण प्राप्त करना होता है। वहीं दूसरी ओर महायान में बोधिसत्व, परसेवा व परोपकार में बल, गृहस्थ धर्म, आदर्श बोधिसत्व जैसे दृष्टिकोण है। इसकी माह्नता का रहस्य प्राणियों की निस्वार्थ सेवा तथा सहिष्णुता है।

इस प्रकार महायान में व्यापकता एवं उदारता है। जापानी बौद्ध डी0टी0 सुजुकी के शब्दों में "महायान ने बुद्ध की भिक्षाओं के आंतरिक महत्व का खण्डन किये बिना बौद्ध धर्म के मौलिक क्षेत्र को विस्तृत कर दिया"।

यद्यपि कनिष्क बौद्ध हो गया तथापि राजा के रूप में वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। उसके सिक्कों पर बुद्ध की आकृतियों के अतिरिक्त यूनानी, एलमी, मिथ्री, जरथुस्ती तथा हिन्दु-देवी-देवताओं की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण मिलती हैं। इनमें आइशो (शिव), मिइरो (ईरानी मिश्र, सूर्य), माओ (चंद्र), नाना (सुमेरियन मातृ देवी), हेलियोस तथा सेलेनी (यूनानी सूर्य तथा चंद्र) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, यवन-कुषाण शासकों के काल में बौद्ध धर्म उत्तर-पश्चिम तथा देश के अन्य भागों में काफी लोकप्रिय हो गया।

2.9: साहित्यिक प्रगति

कनिष्क कालीन शासन साहित्य की उन्नति के लिये भी प्रसिद्ध है। वह विद्या का उदार संरक्षक था तथा उसके दरबार में उच्चकोटि के विद्वान दार्शनिक निवास करते थे। ऐसे विद्वानों में अश्वघोष सर्वप्रमुख हैं, वह कनिष्क का राजकवि था। उनकी तीन रचनाएँ प्रमुख हैं—: (1) बुद्धचरित (2) सौंदरनंद तथा (3) शारिपुत्रप्रकरण। प्रथम दो महाकाव्य तथा अंतिम नाटक ग्रंथ है। बुद्धचरित में बुद्ध के जीवन का सरल तथा सरस वर्णन मिलता है। सौंदरनंद में बुद्ध के सौतेले भाई सुंदरनंद के सन्यास ग्रहण का वर्णन है। इसमें 18 सर्ग हैं, शारिपुत्रप्रकरण नौ अंकों का नाट्य ग्रंथ है। जिसमें बुद्ध के शिष्य शारिपुत्र के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का नाटकीय विवरण प्रस्तुत किया गया है। कवि तथा नाटककार होने के साथ अश्वघोष एक महान दार्शनिक, कथाकार, नीतिज्ञ तथा संगीतज्ञ भी थे। इस प्रकार चहुमुखी प्रतिभा के कारण विद्वानों ने अश्वघोष की तुलना मिल्टज, गेटे, कान्ट तथा वाल्टेयर आदि से की है।

अश्वघोष के अतिरिक्त माध्यमिक दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन भी कनिष्क की राजसभा में निवास करते थे। उन्होंने "प्रज्ञापारमित्रासूत्र" की रचना की थी। जिसमें शून्यवाद (सापेक्षवाद) का प्रतिपादन है। अन्य विद्वानों में पार्श्व, वसुमित्र, मातृचेत, संघरक्ष आदि थे। 'विभाषाशास्त्र' की रचना का श्रेय वसुमित्र को ही जाता है। कनिष्क के ही दरबार में आयुर्वेद के विख्यात विद्वान चरक निवास करते थे। जिन्होंने "चरक संहिता" की रचना की थी। यह औषधिशास्त्र के ऊपर प्राचीनतम रचना है।

इस प्रकार कनिष्क के समय साहित्य चरम सीमा में था। महान विद्वानों को संरक्षण प्रदान करने के कारण वह और अधिक लोकप्रिय हो चुका था।

2.10: कला एवं स्थापत्य

प्रसिद्ध कुषाण शासक कनिष्क एक महान निर्माता था, अपनी राजधानी पुरुषपुर में 400 फीट ऊँचा विशाल स्तूप उसने बनवाया था। जिसकी वेदिका 150 फीट ऊँची थी। फाह्यान तथा हुएनसांग दोनों ने इसका विवरण किया है। दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में दो और मूर्तियाँ स्थापित की गयी थी। इसके निकट एक विशाल संघाराम (विहार) बना था जो 'कनिष्क चैत्य' कहा जाता था और संपूर्ण बौद्ध जगत् में प्रसिद्ध था। इसका निर्माण यवन वास्तुकार अगिलस द्वारा किया गया था। अनेक शिखर, भूमि स्तंभ आदि से अलंकृत यह विहार हुएनसांग के भारत आने के कुछ पूर्व ही यह स्तूप जलकर नष्ट हो गया था। आज केवल इसके अवशेष प्राप्त हैं।

तक्षशिला का सबसे महत्वपूर्ण स्तूप धर्मराजिका स्तूप था। अशोक के समय निर्मित इस स्तूप का आकारवर्धन कनिष्क के समय हुआ। यह ऊँचे चबूतरे में गोलाकार है। चार दिशाओं में चार सीढ़ियाँ हैं। उल्लेखनीय है कि गान्धार क्षेत्र के स्तूपों का विन्यास मध्य भारतीय स्तूप जैसा नहीं था। इनके चौकोर अधिष्ठान का कई भूमियों में निर्माण होता था जिन पर चढ़ने के लिए एक या अधिक सीढ़ियाँ बनायी जाती थी। ये स्तूप जातक कथाओं की अपेक्षा बुद्धचरित से सम्बन्धित थे। इन पर गान्धार शैली का स्पष्ट प्रभाव था।

स्तूपों के अतिरिक्त कनिष्क के समय में कनिष्कपुर तथा सिरकप (तक्षशिला) नामक स्थान पर नये नगरों का निर्माण करवाया तथा दो स्वतंत्र शैलियों का विकास हुआ।

2.11: गान्धार शैली

यूनानी कला के प्रभाव से देश के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में कला की जिस नवीन शैली का उदय हुआ। उसे गान्धार शैली कहा जाता है। इस शैली में भारतीय विषयों को यूनानी ढंग से व्यक्त किया गया है तथा रोमन

कला का स्पष्ट प्रभाव है। इसका विषय केवल बौद्ध है और इसी कारण कभी-कभी इस कला को यूनानी-बौद्ध, इण्डो ग्रीक अथवा ग्रीको रोमन कला भी कहा जाता है। इस शैली की मूर्तियाँ अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के अनेक प्राचीन स्थलों से प्राप्त हुई हैं। प्रमुख केंद्र गान्धार होने के कारण यह गान्धार कला के नाम से ही लोकप्रिय है।

इस कला के अंतर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्त्वों की मूर्तियों का निर्माण हुआ। मूर्तियाँ स्लेटी पाषाण, चूने तथा पक्की मिट्टी से बनी हैं। ये ध्यान, पदमासन, धर्मचक्र प्रवर्तन, वरद तथा अभय आदि मुद्राओं में हैं। आरंभिक बुद्ध मूर्ति पेशावर के पास शाहजी की ढेरी से प्राप्त कनिष्क चैत्य की अस्थिमंजूषा पर बनी है। प्राप्त मंजूषा के ढक्कन पर बुद्ध पदमासन में विराजमान हैं। उसके दायें तथा बाएं तरफ क्रमशः ब्रह्म तथा इंद्र की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बुद्ध के कंधों पर संघाटी तथा ढक्कन के किनारे उड़ते हुए हंसों की पंक्ति हैं। उत्कीर्ण लेख में कनिष्क तथा अगिशल नामक वास्तुकार का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार लाहौर संग्राहलय में रखी गयी एक मूर्ति संरचना एवं शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इन मूर्तियों के साथ ही साथ बुद्ध के जीवन तथा पूर्व जन्मों से सम्बन्धित विविध घटनाओं के दृश्यों जैसे-माया का सवप्न, उनका गर्भधारण करना, कपिलवस्तु से लुम्बिनी उद्यान में जाना, बुद्ध का जन्म, सिद्धार्थ का बोधिसत्व रूप, लिपि विज्ञान में सिद्धार्थ की परीक्षा, यशोधरा से विवाह, संबोधि प्राप्त के पहले विविध स्थितियाँ आदि सहित 61 दृश्यों का अंकन इस शैली में किया गया है। इससे सूचित होता है कि शिल्पी ने बुद्ध के लौकिक तथा परलौकिक जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी छोटी-बड़ी घटनाओं को अत्यंत बारीकी के साथ चित्रित किया है। इतना विशद चित्रांकन कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। तपस्यारत बुद्ध का एक दृश्य जिसमें उपवास के कारण उनका शरीर अत्यंत क्षीण हो गया है। गान्धार कला के सर्वोत्तम नमूनों में से है। बोधिसत्व में सबसे अधिक मूर्तियाँ मैत्रेय की हैं। इन्हें हाथ में कमल, पुस्तक तथा अमृकलश लिये हुए दिखाया गया है। गान्धार शैली की मूर्तियों की कुछ अलग विशेषतायें हैं जिनके आधार पर वे स्पष्टतः भारतीय कला से अलग की जा सकती हैं। इनमें वह सहजता तथा भावात्मक स्नेह नहीं है जो भारहुत, साँची, गया तथा अमरावती की मूर्तियों में प्रत्यक्ष होता है। इसी कारण यह कहा जाता है कि कलाकार के पास यूनानी का हाथ परंतु भारतीय का हृदय था।

बुद्ध तथा बोधिसत्व के अतिरिक्त गान्धार शैली की कुछ देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी मिली हैं। इनमें हारीति तथा रोमा अथवा एथिना देवी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। हारीति को मातृदेवी के रूप में पूजा जाता था तथा वह सौभाग्य तथा धन की अधिष्ठात्री थी। हिन्दू देवी-देवताओं में पंचिक कुबेर, इन्द्र, हारीति, ब्रह्म, सूर्य आदि का चित्रण इस कला में मिलता है। कपिशा (तेग्राम अफगानिस्तान) से अनेक दन्तफलक मिले हैं जो कभी श्रृंगार पेटियों अथवा रत्नमंजूषाओं के अंग रहे होंगे। इनमें शुक्र क्रीड़ा, हंस क्रीड़ा, नृत्य दृश्य, पानगोष्ठी, उड़ते हुए हंस, दर्पण निहारती आदि सुंदरियों एवं प्रसाधिकाओं की आकृतियाँ अत्युत्कृष्ट हैं। एक आकृति में बालक को गोद में लेकर स्तनपान कराती हुई नारी प्रदर्शित की गयी है। ये गान्धार शैली की मोहक आकृतियाँ हैं। जिनमें तत्कालीन समाज के कुलीन तथा सामान्य वर्ग में प्रचलित वेशभूषा की जानकारी मिलती है। इन विविध दृश्यों पर भारतीय तथा रोमन कला, दोनों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस प्रकार गान्धार कला अपने विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय कला का सौन्दर्य विहीन रूप ही प्रतीत होती है। कुमार स्वामी के शब्दों में "गान्धार की यथार्थवादी कला घोर पाखण्ड का आभास देती है क्योंकि बोधिसत्त्वों की संतुष्ट अभिव्यक्ति तथा किंचित छेलछबीली वेशभूषा एवं बुद्ध मूर्तियों की स्त्रैण और निर्जीव मुद्रायें बौद्ध विचारधारा की आध्यात्मिक शक्ति का प्रकटीकरण नहीं कर पाती है किंतु भारत के बाहर गान्धार कला का व्यापक प्रभाव रहा। इसने चीनी तुर्किस्तान, मंगोलिया, चीन, कोरिया तथा जापान की बौद्ध कला को जन्म दिया"। मार्शल के अनुसार, "गान्धार की पाषाण-कला का प्रारंभ 25ई0-60ई0 के मध्य पद्धव शासन काल में हुआ। द्वितीय शती में कुषाण काल में उसका पूर्ण विकास हुआ तथा ससैनियन आक्रमण के परिणामस्वरूप इस कला का चतुर्थ शती ईसवी के प्रारंभ में हास हो गया। कनिष्क काल ही इसके चर्मोत्कर्ष का काल रहा। इस कला के हास के साथ ही उसका स्थान अत्युत्कृष्ट गचकारी और मृण्मय कला ने ग्रहण कर लिया।

2.12: मथुरा कला शैली

कुषाण काल में मथुरा भी कला का प्रमुख केंद्र था। जहाँ अनेक स्तूपों, विहारों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। इस समय तक शिल्पकारी एवं मूर्ति निर्माण के लिए दूर-दूर तक विख्यात कला दुर्भाग्यवश आज वहाँ शेष नहीं है। प्रारंभ में यह मान्य था कि, गान्धार की बौद्ध मूर्तियों के प्रभाव एवं अनुकरण पर ही मथुरा की बौद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ किंतु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मथुरा की बौद्ध मूर्तियाँ गान्धार से सर्वथा स्वतंत्र थी तथा उनका आधार मूल रूप से भारतीय ही था। वी० ए० अग्रवाल के अनुसार इस बात के प्रमाण हैं कि, ईसा पूर्व पहली शताब्दी में मथुरा भक्ति आंदोलन का केंद्र बना गया था। जहाँ संकर्षण, वासुदेव तथा पंचवीरों (बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा साम्त्र) की प्रतिमाओं के साथ ही साथ जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं का भी पूर्ण विकास हो चुका था। कनिष्क काल में महायान को संरक्षण प्रदान हुआ। उन्हें बुद्ध को मानव मूर्ति के रूप में देखने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इसी भावना से मथुरा के शिल्पियों ने पहले बोधिसत्व तथा फिर बुद्ध की मूर्तियाँ का निर्माण किया।

मथुरा से कुछ ऐसी बोधिसत्व प्रतिमायें मिली हैं जिन पर कनिष्क संवत् की प्रारंभिक तिथियों में लेख खुदे हैं। इस प्रसंग में एक अन्य विचारणीय बात यह है कि गान्धार मूर्तियों पर जो बौद्ध प्रतिमा लक्षण के चिन्ह जैसे पद्मासन, धान आदि उनका स्रोत भारतीय ही है न कि ईरानी तथा यूनानी। स्पष्टतः गान्धार के शिल्पकारों ने इन प्रतिमालक्षणों को मथुरा के शिल्पियों से ही ग्रहण किया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्ध मूर्तियाँ सर्वप्रथम मथुरा में ही गढ़ी गयी।

मथुरा से बुद्ध एवं बोधिसत्वों की खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बनी हुई प्राप्त मूर्तियों के व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का ही आदर्श देखने को मिला है। इसमें कटरा से प्राप्त मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसे चौकी पर उत्कीर्ण लेख में "बोधिसत्व" की संज्ञा दी गयी है। इसमें बुद्ध को भिक्षु वेष धारण किये हुए दिखाया गया एवं बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान है तथा उनका दायां हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है। बुद्ध के पीछे वृत्ताकार प्रभामण्डल प्रदर्शित किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसके पूर्व की मूर्तियों में हमें प्रभामण्डल दिखाई नहीं देता। इस प्रकार समग्र रूप से यह मूर्ति कलात्मक दृष्टि से अत्यंत प्रशंसनीय है। अभयमुद्रा में आसीन बुद्ध की एक मूर्ति अनयोर से मिली है जिसे बोधिसत्व की संज्ञा दी गयी है। इस पर कनिष्क संवत् 51ई० अर्थात् 129 ई० की तिथि अंकित है।

बुद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त मैत्रेय, अवलोकितेश्वर आदि बोधिसत्व-मूर्तियाँ भी मथुरा से प्राप्त होती हैं। मैत्रेय, भविष्य में अवतार लेने वाले बुद्ध हैं। गान्धार मूर्तियों के विपरीत वे सभी आध्यात्मिकता एवं भावना प्रधान हैं। बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथायें भी स्तंभों पर मिलती हैं। जन्म अभिषेक, महामिनिष्क्रमण, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण, कुशलतापूर्वक अंकन मथुरा कला के शिल्पियों द्वारा गया है। ईरानी तथा यूनानी कला के कुछ प्रतीकों को ग्रहण कर उन पर भारतीयता का रंग चढ़ा दिया। यही कारण है कि मथुरा की कुछ बुद्ध मूर्तियों में गान्धार मूर्तियों के लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे कुछ मूर्तियों में मूँछ तथा पैरों में चप्पल दिखाई गयी है।

मथुरा शैली में शिल्पीकारी के भी सुंदर नमूने मिलते हैं। कनिष्क की एक सिरहित मूर्ति मिली है। जिस पर "महाराज राजाधिराजा देवपुत्रों कनिष्कों" अंकित है। यह खड़ी मुद्रा में है तथा 5 फुट 7 इंच ऊँची है। इस श्रेणी की दूसरी मूर्ति वेम तक्षम (विम कडफिसस) की है जो सिंहानुसीन है जिसके आगे दो सिंहों की आकृतियाँ हैं। शिल्प की दृष्टि से इसे सम्राट का यथार्थ रूपांकन कहा जा सकता है।

मथुरा शैली में हिंदू देवताओं में विष्णु, सूर्य, शिव, कुबेर, नाग, यक्ष की पाषाण प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। जो अत्यंत सुंदर एवं कलापूर्ण हैं। मथुरा तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से अब तक चालीस से भी अधिक विष्णु मूर्तियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। इन मूर्तियों में उल्लेखनीय है कि विष्णु का लोकप्रिय प्रतीक पद्म मथुरा की कुषाणकालीन मूर्तियों में नहीं मिलता। मात्र वाराह अवतार की एक प्रतिमा तथा कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित दो दृश्यांकन मिले हैं। शिव प्रतिमायें लिंग तथा मानव दोनों रूपों में मिलती हैं। शिवलिंग कई प्रकार के हैं जैसे—एक मुखी, दो मुखी, चार मुखी, पाँच मुखी आदि। शिव के साथ उनकी अर्धांगिनी पार्वती की प्रतिमा पहली बार संभवतः मथुरा में ही कुषाण कलाकारों द्वारा बनायी गयी थी। मथुरा कला में सूर्य प्रतिमाओं का भी निर्माण किया। मानव रूप में

सूर्य को लंबी कोट, पतलून तथा बूट पहने हुए दो या चार घोड़ों के रथ पर सवार दिखाया गया है। उनके सिर पर गोल तथा चपटी टोपी कंधों पर लहराते केश तथा मुँह पर नुकीली मूँछे दिखायी गयी हैं। इसी प्रकार की वेशभूषा कुषाण राजाओं में प्रत्यक्ष होती है। हिंदू धर्म के इन प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त मथुरा की कुषाणकालीन कला में कार्तिकेय, कुबेर, इन्द्र, गणेश, अग्नि आदि की मूर्तियाँ भी बनायी गयी।

2.13: जैन मूर्तियाँ तथा आयागपट्ट

मथुरा तथा उसके समीपवर्ती भाग से जैन तीर्थकरों की पाषाण प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो अत्यंत सुंदर एवं कलापूर्ण हैं। जैन मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं— खड़ी मूर्तियाँ जो कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं तथा बैठी हुई मूर्तियाँ जो पद्मासन में हैं। खड़ी मुद्रा (कायोत्सर्ग) की मूर्तियाँ पूर्णतया नग्न हैं। उनकी भुजायें घुटनों के नीचे तक फैली हुई हैं तथा भौहों के बीच केश कुंज बनाया गया है। तीर्थकर प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर “श्रीवत्स” का पवित्र मांगलिक चिन्ह अंकित है। इसके अतिरिक्त कंकाली टीला से आयागपट्ट तथा पूजापट्ट मिलते हैं जिनका कला की दृष्टि से काफी महत्व है। आयागपट्टों से प्रतीक पूजा से मूर्तिपूजा का विकास क्रम सूचित होता है।

इस प्रकार मथुरा के कलाकारों का दृष्टिकोण, असाम्प्रदायिक था और उन्होंने बौद्ध, जैन तथा हिन्दू सभी के लिये उपयोगी प्रतिमाओं को प्रस्तुत किया। अग्रवाल के शब्दों में “अपनी मौलिकता, सुंदरता और रचनात्मकता विविधता एवं बहुसंख्यक सृजन के कारण मथुरा कला का पद भारतीय कला में बहुत ऊँचा है”। यहाँ की बनी मूर्तियाँ सारनाथ, श्रावस्ती तथा अन्य केंद्रों में गयी। मथुरा की कलाकृतियाँ वैदेशिक प्रभाव से मुक्त हैं तथा इस कला में भारहुत और साँची की प्राचीन भारतीय कला को ही आगे बढ़ाया है।

2.14: कनिष्क के सिक्के

कनिष्क के बहुसंख्यक स्वर्ण एवं ताम्र सिक्के पश्चिमोत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा के विभिन्न स्थानों से प्राप्त किये गये हैं। स्वर्ण सिक्के तौल में रोमन सिक्कों (लगभग 124 ग्रैन) के बराबर हैं। स्वर्ण सिक्कों का विवरण इस प्रकार है।

मुख भाग—: खड़ी मुद्रा में राजा की आकृति है। वह लम्बी कोट, पायजामा, नुकीली टोपी पहने हुए हैं तथा दायें हाथ से वह हवन—कुण्ड में आहुति दे रहा है। ईरानी उपाधि के साथ यूनानी लिपि में ‘शाओ नानो शाओ कनिष्क कोशानो’ मुद्रालेख अंकित है। ‘शाओ नानो शाओ’ से तात्पर्य “शहंशाह” से है।

पृष्ठ भाग—: विभिन्न देवी—देवताओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। ये यूनानी, भारतीय तथा ईरानी देव समूह से लिये गये हैं। प्रत्येक सिक्के पर एक ही देवता तथा नीचे उसका नाम उत्कीर्ण है। नाम यूनानी भाषा में है, जैसा— मिइरो (सूर्य), मेओ (चंद्र), आरलेग्नो, नाना, आरदोक्षो (देवी) आदि।

ताम्र सिक्के—: यह गोलाकार हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है—:

मुख भाग—: कनिष्क की आकृति तथा मुद्रालेख “बेसिलियस बेसिलियन” उत्कीर्ण है, यह यूनानी उपाधि से तात्पर्य “राजाओं के राजा” से है।

पृष्ठ भाग—: यूनानी, ईरानी अथवा भारतीय देवी—देवताओं की आकृति तथा यूनानी भाषा में उसका नाम उत्कीर्ण है।

इस प्रकार कनिष्क के सिक्कों का प्रसार जहाँ एक ओर उसके साम्राज्य विस्तार को सूचित करता है। वहीं दूसरी ओर उन पर उत्कीर्ण देवी—देवताओं की आकृतियों से उसकी धार्मिक सहिष्णुता सूचित होती है। इस प्रकार कनिष्क ने सभी वर्गों के लोगों की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त किया था।

2.15: कनिष्क का अंत

कनिष्क के अंतिम दिनों के विषय में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद में उसकी मृत्यु सम्बन्धी जो अनुश्रुति सुरक्षित है। उससे पता चलता है कि उसकी अतिशय लोलुपता, निर्दयता तथा महत्वाकांक्षा से प्रजा में भारी असंतोष फैल गया। निरंतर युद्धों के कारण उसके सैनिक तंग आ गये तथा उसके विरुद्ध एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। एक बार जब वह उत्तरी अभियान पर जा रहा था, मार्ग में बीमार पड़ा। उसी समय उसके सैनिकों ने लिहाफ से उसका मुँह ढूँढकर मुग्दरों से पीटकर उसे मार डाला यद्यपि इस

कथा को पूर्ण रूप से सच नहीं कहा जा सकता तथापि यह निष्कर्ष निकलता है कि इस महान कुषाण सम्राट का अंत दुःखद रहा। कनिष्क ने कुल 23 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन किया। यदि हम उसके राज्यारोहण की तिथि 78 ई० मानें तो तदानुसार उसकी मृत्यु 101 ईसवी लगभग में हुई।

2.16: सारांश एवं मूल्यांकन

कुषाणकालीन राजाओं में कनिष्क की उपलब्धियों को देखते हुए भारतीय इतिहास के साथ-साथ विश्व इतिहास में भी इस सम्राट की गिनती महान सम्राटों में की जा सकती है। वह एक महान विजेता, साम्राज्य-निर्माता तथा विद्या एवं (कला-कौशल) का उदार संरक्षक था। गंगाघाटी में एक साधारण क्षत्रप के पद से उठकर उसने अपनी विजयों द्वारा सम्पूर्ण विश्व के महान राजाओं में अपना स्थान बना लिया। वह कुशल सेनानायक, सफल प्रशासक होने के साथ धर्म सहिष्णु भी था। अशोक के समान उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने साम्राज्य के साधनों को लगा दिया। उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में उसका वही स्थान है जो दक्षिणी बौद्ध परंपराओं में अशोक का। वह कभी भी धर्मान्ध अथवा धार्मिक मामलों में असहिष्णु नहीं हुआ और अन्य धर्मों का भी सम्मान किया। इस प्रकार कनिष्क में चंद्रगुप्त जैसी सैनिक योग्यता तथा अशोक जैसी धार्मिक भावना देखने को मिलती है। इस युग में गान्धार एवं मथुरा शैली के उदय एवं विकास ने कनिष्क की उपलब्धियों पर चार चाँद लगा दिये।

2.17: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कनिष्क के विजय अभियान का वर्णन कीजिए।
2. कनिष्क के कलात्मक रुचि पर एक लेख लिखिए।
3. कनिष्क के काल में साहित्य एवं कला के विकास की व्याख्या कीजिए।
4. बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए कनिष्क द्वारा किये गये कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
5. गान्धार और मथुरा शैली के उदय एवं विकास का परिचय दीजिए।

2.18: सन्दर्भ ग्रन्थ

- झा एवं श्रीमाली— प्राचीन भारत का इतिहास
- के. सी. श्रीवास्तव— प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
- बी.बी. सिन्हा— प्राचीन भारत का इतिहास
- की.एन.लूनिया— प्राचीन भारतीय संस्कृति

कुषाण साम्राज्य का विस्तार

- 3.0 प्रस्तावना
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 कुषाणों का प्रसार
- 3.3 कुजुल कडफिसस
- 3.4 विम कडफिसस
- 3.5 सोटर मेगस
- 3.6 कनिष्क
 - 3.6.1 तिथि सम्बन्धी समस्या
 - 3.6.2 पूर्वी भारत की विजय
 - 3.6.3 पार्थिया से संघर्ष तथा सफलता
 - 3.6.4 चीन से युद्ध
 - 3.6.5 पश्चिमोत्तर प्रदेशों की विजय
 - 3.6.6 दक्षिण भारत
 - 3.6.7 रोम से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध
 - 3.6.8 कनिष्क का विस्तृत साम्राज्य
 - 3.6.9 कनिष्क का अंत
 - 3.6.10 कनिष्क और सांस्कृतिक विस्तार
- 3.7 कनिष्क के उत्तराधिकारी
 - 3.7.1 वासिष्क
 - 3.7.2 हुविष्क
 - 3.7.3 कनिष्क द्वितीय
 - 3.7.4 वासुदेव
- 3.8 परवर्ती कुषाण
 - 3.8.1 कनिष्क तृतीय
 - 3.8.2 वासुदेव द्वितीय
- 3.9 सारांश
- 3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 3.11 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

कुषाणकाल भारतीय इतिहास के एक ऐसे युग-प्रवर्तककाल का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें मौर्योत्तर भारत में सर्वप्रथम एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसका प्रभाव, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के साथ-साथ मध्य एशिया तथा ईरान तक प्रसारित हुआ। अरब सागर से हिन्द महासागर तक फैला कुषाण साम्राज्य अपने उत्कर्ष काल में प्राचीन विश्व के रोम पार्थिया तथा चीन जैसे तीन बड़े साम्राज्यों के समकक्ष था। इसके अतिरिक्त मौर्य-साम्राज्य के पतन के पश्चात् हुए विदेशी आक्रमणों में कुषाणों का स्थान प्रमुख रहा। उन्होंने विदेशों से भारत के सम्बन्ध स्थापित किए और भारतीय संस्कृति को गम्भीरता से प्रभावित किया।

हूणों द्वारा पश्चिमी चीन से निकाले जाने के पश्चात् यू-ची जाति बैक्ट्रिया और ऑक्सस नदी की घाटी में बस गयी जिसको उसने शकों से जीता था। यहाँ पर रहते हुए यू-ची जाति पाँच भागों में विभक्त हो गई। इन्हीं में से एक शाखा कुषाण थी।

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे—

- कुषाण साम्राज्य और कुषाणों का प्रसार
- कनिष्क से पूर्व कुषाण वंश के शासक और उनका साम्राज्य विस्तार
- कनिष्क और उसका साम्राज्य विस्तार
- कनिष्क के उत्तराधिकारी और उनका साम्राज्य
- परवर्ती कुषाण और उनका पतन

3.2 कुषाण साम्राज्य का विस्तार

कुषाणों का प्रसार

चीनी स्रोतों से पता चलता है कि 174 तथा 165 ई0पू0 के बीच यू-ची त्सेन-होंग देश तथा कि-लियेन पर्वत अथवा तिऐनचान पहाड़ी के मध्य इसिकुल झील के दक्षिण-पूर्व चीनी तुर्किस्तान में रह रहे थे जिन्हें हूणों ने पराजित करके बहिष्कृत कर दिया। यह घटना लगभग 165 ई0पू0 की है। ये शरण स्थल की तलाश में पश्चिम की ओर बढ़े। कालान्तर में ये लोग दो जत्थों में बंट गए। इनका अल्पसंख्यक जत्था दक्षिण की ओर मुड़ा और तिब्बत की सीमा पर जाकर बस गया। इसे लघु यू-ची के नाम से प्रसिद्धि मिली। दूसरा बड़ा जत्था जिसे महान यू-ची नाम दिया गया है, पश्चिम की ओर बढ़ा और शकों पर विजय प्राप्त की। शकों को विवश होकर अपने प्रदेश छोड़ने पड़े। यू-ची का इनके प्रदेशों पर अधिकार हो गया। इसी पराजय के पश्चात् शक उत्तरी दरों के मार्ग से भारत की आरंभ बढ़े थे। इस नवविजित भू-भाग से यू-ची पश्चिम की ओर बढ़ते हुए ऑक्सस घाटी में पहुँचे। यहाँ इन्होंने इस प्रदेश के निवासियों को बड़ी आसानी से पराजित कर दिया। यहीं से इन्होंने अपना वर्चस्व ऑक्सस के दक्षिण बैक्ट्रिया पर भी स्थापित कर लिया। इनकी राजधानी ऑक्सस के उत्तर वर्तमान बुखारा (प्राचीन सोग्डियाना) में स्थापित की गयी।

बैक्ट्रिया में स्थायी रूप से बसना यू-ची जाति के लिए बड़ा कारगर सिद्ध हुआ। इससे इन्हें न केवल अपने राजनीतिक विकास का सुयोग मिला, बल्कि सांस्कृतिक विकास करने का भी उचित वातावरण मिल गया। इस प्रदेश में आने से पूर्व ये भ्रमणशील तथा अर्द्धसभ्य थे लेकिन यहाँ आने पर इन्हें बैक्ट्रिया की यूनानी सभ्यता, सुदूर पश्चिम में स्थित पार्थियन सभ्यता तथा रोमन सभ्यताओं के संपर्क में आने का अवसर मिला। इनकी अपनी कोई व्यक्तिगत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नहीं थी। अतः इन सभ्यताओं के उदीयमान तत्वों को ग्रहण एवं आत्मसात करने में इन्होंने तनिक भी संकोच न किया। परिणामस्वरूप यू ची भी एक सभ्य जाति के रूप में उभरकर सामने आए। अगले सौ वर्षों का कुषाणों का इतिहास अन्धकार के गर्त में विलीन हो जाता है। कालान्तर में कुजुल कडफिसस से ही कुषाणों का स्वतन्त्र इतिहास प्रारम्भ होता है।

3.3 कुजुल कडफिसस

यह इतिहास में कडफिसस के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसकी विजयों के विषय में यान-कू के ग्रंथ हाऊ-हान-शू तथा उसके सिक्कों से सूचना मिलती है। ज्ञात होता है उसने पार्थियनों पर आक्रमण कर किपिन तथा काबुल पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह भारत

के पश्चिमोत्तर प्रदेश का शासक बन बैठा। कुजुल के दो प्रकार के सिक्के मिलते हैं, प्रथम प्रकार के सिक्कों के मुखभाग पर काबुल के अंतिम यवन शासक हर्मियस का नाम यूनानी लिपि में तथा पृष्ठभाग पर कुजुल का नाम खरोष्ठी लिपि में खुदा हुआ है। इन पर इसकी कोई राजकीय उपाधि नहीं है। दूसरे प्रकार के सिक्कों पर उसकी राजकीय उपाधियां जैसे 'महाराजस महतसू कुषण-क्युस कफस' उत्कीर्ण है। इस आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रारम्भ में कुजुल यवन नरेश हर्मियस के अधीन शासक था। परन्तु बाद में वह स्वतन्त्र हो गया। हर्मियस के पश्चात् काबुल क्षेत्र में पल्लवों की सत्ता कायम हुई। ऐसा लगता है कि पल्लवों को परास्त कर ही कुजुल ने काबुल और कंधार पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार कुजुल के समय में कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण अफगानिस्तान तथा गंधार के प्रदेश सम्मिलित हो गए थे। साधारणतः कुजुल का शासन काल 15 ई0 से 65 ई0 के बीच माना जाता है। उसकी मृत्यु 80 वर्ष की दीर्घायु में हुई थी।

3.4 विम कडफिसस

कुजुल कडफिसस की मृत्यु के पश्चात् विम कडफिसस राजा हुआ। वह कडफिसस द्वितीय के नाम से भी जाना जाता है। चीनी ग्रंथ 'हाऊ-हान-शू' से पता चलता है कि उसने 'तिएन चू' की विजय की तथा वहाँ अपने एक सेनापति को शासन करने के लिए नियुक्त किया। 'तिएन-चू' का समीकरण सिंधु द्वारा सिंचित पंजाब क्षेत्र से स्थापित किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम विम कडफिसस के समय में ही भारत में कुषाण सत्ता स्थापित हुई थी। विम कडफिसस ने स्वर्ण तथा तांबे के सिक्के खुदवाये थे। इन पर यूनानी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों में लेख मिलते हैं। सिक्कों का विस्तार पश्चिम में ऑक्सस-काबुल घाटी से लेकर पूर्व में सम्पूर्ण सिंधु क्षेत्र तक है। कुछ सिक्के भीटा, कौशाम्बी, बक्सर तथा बसाढ़ से मिले हैं। सिक्कों की पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में 'महाराजस राजाधिराजस सर्वलोगेश्वरस महेश्वरसं विम कडफिसस त्रतरस' (महाराज राजाधिराज सर्वलोकेश्वर महेश्वर विम कडफिसस त्राता) उत्कीर्ण मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि वह एक शक्तिशाली राजा था। सिक्कों पर शिव, नन्दी तथा त्रिशूल की आकृतियाँ मिलती हैं। इससे उसका शैव मतानुयायी होना भी सूचित होता है। उसने 'महेश्वर' की उपाधि धारण की थी। उसके विशुद्ध स्वर्ण सिक्कों से साम्राज्य की समृद्धि एवं सम्पन्नता सूचित होती है। प्लिनी के विवरण से पता चलता है कि उसके समय में भारत तथा रोम के व्यापारिक सम्बन्ध अत्यन्त विकसित थे। चीन के साथ भी उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। मथुरा के पास माट नामक स्थान से सिंहासन पर विराजमान एक विशाल मूर्ति मिली है जिस पर 'महाराज राजाधिराज देवपुत्र कुषानपुत्र षहि वेम-तक्षम' लेख खुदा हुआ है। काशी प्रसाद जायसवाल इस लेख को विम कडफिसस का बताते हैं। यदि यह समीकरण स्वीकार कर लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि उसके समय में कुषाण साम्राज्य मथुरा तक फैला था। विम कडफिसस ने संभवता 65 ई0 से 78 ई0 तक शासन किया।

3.5 सोटर मेगस

पंजाब, कंधार तथा काबुल घाटी क्षेत्र में अनेक ऐसे सिक्के मिले हैं जिनमें 'सोटर मेगस' की उपाधि वाले किसी अज्ञात शासक के अस्तित्व का पता चलता है। इस शासक की पहचान सुनिश्चित नहीं है। कुछ विद्वान इसे विम कडफिसस ही मानते हैं। यह भी हो सकता है कि वह विम कडफिसस का राज्यपाल था जो तक्षशिला में शासन करता था और विम की मृत्यु के पश्चात् वह कुछ समय के लिए स्वतन्त्र हो गया तथा इसी बीच उसने अपने नाम के सिक्के चलवा दिये। कनिष्क के उदय के साथ उसकी स्वतन्त्रता का अन्त हो गया।

3.6 कनिष्क : कुषाण शक्ति का चरमोत्कर्ष

सम्राट कनिष्क एक महान भारतीय सम्राट था। इस समय तक कुषाण भारतीय समाज एवं संस्कृति का अंग बन गए थे और स्वयं कनिष्क कुषाण सम्राट विम कडफिसस के पूर्वी भारतीय साम्राज्य का प्रांतपति अथवा 'क्षत्रप' था। कनिष्क के समय का ज्ञान प्राप्त करने के सबसे प्राचीन साधन उत्तर-प्रदेश से प्राप्त हुए हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि कनिष्क कुषाण साम्राज्य के पूर्वी भाग का क्षत्रप था। विम कडफिसस की मृत्यु के पश्चात् उसके क्षत्रपों में परस्पर संघर्ष हुआ और उसमें कनिष्क विजयी हुआ। इस प्रकार कनिष्क का सम्बन्ध आरम्भ से ही भारत से रहा और उसने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर-प्रदेश से ही प्रारम्भ किया। इस कारण, उसे एक भारतीय सम्राट मानने में कोई कठिनाई नहीं है।

3.6.1 तिथि सम्बन्धी समस्या

कनिष्क की तिथि के बारे में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। मजूमदार के अनुसार कनिष्क 248 ई० में सिंहासन पर बैठा, भण्डारकर के अनुसार यह तिथि 278 ई० थी। परन्तु इतिहासकारों द्वारा इनमें से किसी भी तिथि को मान्यता नहीं दी गयी है। इतिहासकार मार्शल, स्मिथ, बोनो आदि ने कनिष्क के सिंहासन पर बैठने का समय 125 ई० या 144 ई० बताया। परन्तु चीनी और तिब्बती स्रोतों तथा कनिष्क के समकालीन अन्य भारतीय सम्राटों की तिथियों पर विचार करते हुए इतिहासकारों ने जिस प्रकार मजूमदार और भण्डारकर के विचार को नकार दिया है उसी प्रकार इन पाश्चात्य विद्वानों के विचार को भी अस्वीकृत किया है। विद्वान फर्गुसन, राखलदास बनर्जी, रेप्सन, ओल्डेनवर्ग आदि ने कनिष्क के सिंहासनारोहण की तिथि 78 ई० बतायी है। उनके अनुसार कनिष्क 78 ई० से शक संवत् का प्रवर्तक था। चूंकि इस संवत् का प्रयोग पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपों ने, जो पहले कनिष्क की अधीनता स्वीकार करते थे, अपने लेखों तथा सिक्कों में चतुर्थ शती से अंत तक किया, अतः उनके साथ निरन्तर सम्बद्ध रहने के कारण इस संवत् को बाद में शक-संवत् कहा गया।

कनिष्क की तिथि की समस्या पर विचार करने के लिये 1913 तथा 1960 ई० में लंदन में दो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किये गये। द्वितीय सम्मेलन में आम सहमति 78 ई० के पक्ष में ही बनी। इसके समापन भाषण में ए.एल. बाशम ने कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई० रखने के पक्ष में एक नया तर्क प्रस्तुत किया। इसके अनुसार कनिष्क की तिथि 78 ई० न मानने की स्थिति में यह बता सकना कठिन होगा कि गांधार तथा पंजाब में किस संवत् का प्रचलन था। हमें सम्पूर्ण उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भारत में, जो दीर्घकाल तक शक-कुषाणों की अधीनता में थे, शक संवत् के प्रचलन का प्रमाण मिलता है।

3.6.2 पूर्वी भारत की विजय

वाराणसी के पास सारनाथ से कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष का अभिलेख प्राप्त हुआ है। बिहार तथा उत्तर बंगाल से उसके शासन काल के बहुत सिक्के मिले हैं। 'श्रीधर्मपिटकनिदानसूत्र' के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा पर आक्रमण कर उसे बुरी तरह पराजित किया तथा हर्जाने के रूप में एक बड़ी रकम की मांग की। परन्तु इसके बदले में वह अश्वघोष लेखक, बुद्ध का भिक्षा-पात्र तथा एक अद्भुत मुर्गा पाकर ही संतुष्ट हो गया। स्पूनर ने पाटलिपुत्र की खुदाई के दौरान कुछ कुषाण सिक्के प्राप्त किये थे। सिक्कों का एक ढेर बक्सर (जिला-भोजपुर) से मिला है। वैशाली तथा कुम्रहार से भी कुषाण सिक्के मिलते हैं। बोधगया से हुविष्क के समय का मृण्मूर्तिफलक मिला है। ये सब बिहार पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि करते हैं। बिहार के आगे बंगाल के कई स्थानों, जैसे-तामलुक (ताम्रलिप्ति) तथा महास्थान से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। दक्षिण-पूर्व में उड़ीसा प्रांत के मयूरभंज, शिशुपालगढ़, पुरी गंजाम आदि से कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। किन्तु मात्र सिक्कों के प्रसार से ही कनिष्क के साम्राज्य-विस्तार का निष्कर्ष निकाल लेना युक्तिसंगत नहीं

लगता। सिक्के व्यापारिक प्रयोजन से भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाए जाते थे। तथापि पूर्वी उत्तर-प्रदेश तथा बिहार पर कनिष्क का अधिकार सुनिश्चित है। हाल ही में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के, के.के. सिन्हा तथा बी.पी. सिंह के निर्देशन में बलिया जिले के खैराडीह नामक स्थान पर खुदाई की गयी है। जिसके परिणामस्वरूप एक अत्यन्त समृद्धिशाली कुषाणकालीन बस्ती का पता चला है। घाघरा नदी के तट पर स्थित यह नगर एक प्रमुख व्यापारिक स्थल रहा होगा। इससे भी पूर्वी उत्तर-प्रदेश पर कुषाणों का अधिपत्य प्रमाणित होता है।

कौशाम्बी तथा श्रावस्ती से प्राप्त बुद्ध प्रतिमाओं की चरण-चोटियों पर उत्कीर्ण अभिलेखों में कनिष्क के शासनकाल का उल्लेख मिलता है। कौशाम्बी से कनिष्क की एक मुहर भी मिली है। इन प्रमाणों से ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने उपर्युक्त प्रदेशों की विजय की थी।

3.6.3 पार्थिया से संघर्ष तथा सफलता

पार्थिया साम्राज्य और कुषाण साम्राज्य की सीमाएं एक दूसरे से मिली हुई थीं। पार्थिया का एरियाना-प्रदेश इस समय कुषाणों के अधिकार में था। स्वभाविक था कि पार्थिया अपने इस प्रदेश को पुनः हस्तगत करने का अवसर खोज रहा होगा। शत्रुता का दूसरा कारण व्यापारिक था। व्यापारिक दृष्टिकोण से बैक्ट्रिया की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। यहाँ से भारत मध्य एशिया, चीन आदि को व्यापारिक मार्ग जाते थे। बैक्ट्रिया के ऊपर कनिष्क का अधिकार था। यहाँ से जाने वाले व्यापारिक मार्गों पर भी उसका प्रभाव था। यह प्रभाव पार्थिया को खलता था। अपनी समृद्धि के लिए वह मध्य एशिया के व्यापारिक मार्गों को अपने अधिकार में लेना चाहता था। इन दोनों कारणों से पार्थिया और कनिष्क का युद्ध हुआ। इसका साक्ष्य हमें चीनी साहित्य से मिलता है। चीनी साहित्य का कथन है कि नान-सी के राजा ने देवपुत्र कनिष्क पर आक्रमण कर दिया, परन्तु इस युद्ध में उसे सफलता न मिली। कनिष्क ने उसे परास्त कर दिया। नान-सी का समीकरण पार्थिया से किया जाता है।

3.6.4 चीन से युद्ध

जिस समय भारत में कनिष्क का राज्य था, उसी समय चीन में हान वंश का राजा था। यह बड़ा शक्तिशाली और साम्राज्यवादी राजवंश था। उसके सेनापति पान-चाओ ने खोतान, काशगर, कुचा काराशहर आदि को जीतकर सम्पूर्ण चीनी तुर्किस्तान को चीनी अधिकार में कर लिया था। अब उसके साम्राज्य की सीमा कनिष्क-साम्राज्य के कश्मीर प्रांत की सीमा को छूने लगी थी। चीनियों की इस साम्राज्यवादी नीति से भारत के कुषाण साम्राज्य के लिए एक भारी खतरा उत्पन्न हो गया था। अतः कनिष्क ने उसे रोकने का निश्चय किया। चीनी तुर्किस्तान को लेकर चीन साम्राज्य तथा कुषाण साम्राज्य के बीच झगड़ा पहले से चल रहा था। चीनी ग्रंथों का कथन है कि 73 ई० में पान-चाओ ने काशगर की घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप किया और उसके राजा को सिंहासन से उतार कर अपने समर्थक को वहाँ का राजा बनाया। सिंहासनाच्युत राजा ने यू-ची राजा से सहायता मांगी। परन्तु उसे यह सहायता प्राप्त न हो सकी, क्योंकि पान-चाओ ने यू-ची राजा को बहुमूल्य उपहार आदि देकर संतुष्ट कर दिया और उसे चीनी तुर्किस्तान की राजनीति में हस्तक्षेप न करने दिया। चीनी ग्रंथों से ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ काल पश्चात् कनिष्क ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए निश्चित कदम उठाये। उसने चीनी सम्राट के समक्ष अपनी समानता स्थापित करने के लिए यह प्रस्ताव रखा कि चीनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया जाय। परन्तु चीनी सेनापति पान-चाओ ने इस प्रस्ताव को अपने सम्राट के लिए अपमानजनक समझा और कनिष्क के राजदूत को बन्दी बना लिया। यह सूचना पाते ही कनिष्क ने चीन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उस पर आक्रमण के

लिए 70,000 अश्वारोहियों को भेजा। परन्तु शीत और पर्वतीय मार्ग की कठिनाईयों के कारण सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। क्षत-विक्षत अवस्था में जब वह खोतान पहुँची तो उसे पान-चाओ ने हरा दिया। इस पराजय के पश्चात् कनिष्क को प्रतिवर्ष चीन को कर देने का वचन देना पड़ा।

कनिष्क की इस पराजय के समर्थन में एक जनश्रुति का भी उल्लेख किया जाता है जिसमें कनिष्क कहता है कि 'मैंने तीनों दिशाओं को अधीन कर लिया है।..... केवल उत्तरी प्रदेश ही आत्मसमर्पण के लिए नहीं आया है।

परन्तु हेव्न्सांग के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि कनिष्क ने अपनी पराजय का बदला ले लिया। हेव्न्सांग ने लिखा है कि कनिष्क का साम्राज्य सुंग-लिंग पर्वत के पूर्व में भी विस्तृत था और पीली नदी के पश्चिम में रहने वाली जातियाँ उससे भयभीत हो गयीं तथा उन्होंने अपने राजकुमारों को कनिष्क के दरबार में बंधक के रूप में भेज दिया। सुंग-लिंग के पूर्व के प्रदेश का अर्थ है चीनी तुर्किस्तान जिसमें यारकन्द, खोतान और काशगर स्थित हैं। पीली नदी के पश्चिम की जातियों से तात्पर्य चीनी लोगों से है। इस प्रकार हेव्न्सांग के वर्णन से यह निष्कर्ष लगाया जा सकता है कि कनिष्क ने चीनी साम्राज्य पर दूसरी बार आक्रमण किया था और चीनी तुर्किस्तान पर अधिकार कर लिया था। विजय के परिणामस्वरूप पश्चिम में कनिष्क का साम्राज्य यारकन्द, खोतान और काशगर तक हो गया। पराजित चीनी सम्राट अथवा उसके किसी सामंत शासक ने कनिष्क की सभा में अपने पुत्रों को बंधक के रूप में रखा था।

यह भी उल्लेखनीय है कि कनिष्क के दूसरे आक्रमण और उसकी विजय का वर्णन एकमात्र हेव्न्सांग ने ही किया है। इसलिए अनेक विद्वान इस वर्णन का विश्वसनीय नहीं मानते। टामस का कहना है कि पीली नदी के पश्चिम में रहने वाली जातियों का अर्थ तारिम प्रदेश के राजाओं से है। ये राजा चीनी सम्राट की साम्राज्यवादी नीति से भयभीत थे। अतः वे स्वयं कनिष्क के संरक्षण में आ गये थे।

3.6.5 पश्चिमोत्तर प्रदेशों की विजय

कनिष्क के शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष का अभिलेख सुई बिहार से मिला है। इससे यह प्रमाणित होता है कि अपने शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष में उसने निचली सिंधु घाटी को जीत लिया था। इसी वर्ष का एक लेख जेद्दा (उन्द-पेशावर) से मिला है। कपिशा में कनिष्क के अधिकार की पुष्टि हेव्न्सांग करता है। काबुल के वार्दाक से शक संवत् 151 तिथि वाला हुविष्क का एक लेख मिला है जो अफगानिस्तान के ऊपर कुषाण सत्ता को प्रमाणित करता है। यह विजय भी कनिष्क के समय में ही की गयी होगी। कल्हण की राजतरंगिणी से पता चलता है कि उसका कश्मीर पर अधिकार था। इसके अनुसार उसने यहाँ कनिष्कपुर नामक नगर बसाया था।

3.6.6 दक्षिण भारत

सांची से कनिष्क संवत् 25 का एक लेख मिला है। यह वासिष्क का है तथा बौद्ध प्रतिमा पर खुदा हुआ है। वासिष्क की किसी भी उपलब्धि का ज्ञान हमें नहीं है। उसका शासन मात्र चार वर्षों का था। अतः कहा जा सकता है कि यह भू-भाग कनिष्क द्वारा ही विजित किया गया होगा। सांची लेख में 'वासु' नामक किसी राजा का उल्लेख मिलता है। यह संभवतः कनिष्क के समय में मालवा का उपराजा रहा होगा। ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण में कम से कम विंध्य पर्वत तक कनिष्क साम्राज्य विस्तृत था।

3.6.7 रोम से मैत्रीपूर्ण संबंध

इस समय रोम साम्राज्य और पार्थिया साम्राज्य के बीच शत्रुता थी और पार्थिया कुषाण साम्राज्य का भी शत्रु था। अतः स्वभाविक रूप से कुषाण और रोम साम्राज्य के बीच मधुर सम्बन्ध थे। हालांकि भारत तथा रोम के बीच व्यापारिक सम्बन्ध कनिष्क के बहुत पहले से स्थापित हो गये थे। कनिष्क के समय में इन्हें और प्रगाढ़ होने का अवसर मिला। भारतीय रत्न, रेशमी वस्त्र तथा मसाले रोम जाने लगे तथा इसके बदले भारत में प्रचुर मात्रा में स्वर्ण आने लगा जिसके परिणामस्वरूप कनिष्क के समय में प्रचुर मात्रा में स्वर्ण मुद्राएं प्रवर्तित की गयीं।

3.6.8 कनिष्क का विस्तृत साम्राज्य

अपनी अनेकानेक विजयों के द्वारा कनिष्क ने अपने लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। उसके विभिन्न लेखों तथा सिक्कों के आधार पर हम उसकी साम्राज्य सीमा का निर्धारण कर सकते हैं। कनिष्क का साम्राज्य गंधार, कश्मीर, सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, नेपाल, मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी भारत में फैला था। भारतीय सीमा से संलग्न उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत तथा भारत से बाहर यह साम्राज्य अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया तथा मध्य एशिया में यारकन्द, खोतान तथा काशगर तक विस्तृत था। गंधार पर कनिष्क के प्रभाव की पुष्टि चीनी यात्री हेवनसांग तथा चीनी स्रोतों से होती है। गंधार तत्कालीन कला का सुप्रसिद्ध केन्द्र था। कश्मीर पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि राजतरंगिणी से होती है, जिसमें उसके द्वारा कश्मीर में कनिष्कपुर नामक नगर की स्थापना का उल्लेख मिलता है। कनिंघम इस नगर की स्थिति श्रीनगर से 16 किमी. दक्षिण पीर-पंचाल दर्रा के राजमार्ग पर स्वीकार करते हैं। वर्तमान में इसे कामपुर सराय के नाम से जाना जाता है। इसके विपरीत स्टीन तथा स्मिथ इसे वितस्ता तथा बारामूल से श्रीनगर जाने वाले मार्ग के बीच स्थित मानते हैं। कनिष्क द्वारा कश्मीर पर अधिकार की पुष्टि चतुर्थ बौद्ध संगीति के आयोजन से भी हो जाती है। इस संगीति का आयोजन कश्मीर के कुण्डलवन विहार में किया गया था। चीनी बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि कनिष्क ने किसी साधु के दर्शनार्थ किपिन (कश्मीर) की यात्रा की थी। सिंध के उत्तर बहावलपुर से लगभग 24 किमी. दक्षिण-पश्चिम स्थित सुई-बिहार से कनिष्क का एक ताम्रपत्र लेख मिला है जिस पर 11 वर्ष (89 ई0) तिथि अंकित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सिंध पर कनिष्क का अधिकार था। पंजाब पर कनिष्क के अधिकार का समर्थन जेदा तथा मणिकियाल लेखों से हो जाता है। टॉलमी हमें बताता है कि पूर्वी पंजाब कुषाणों के अधिकार में था। उत्तर प्रदेश पर इसके अधिकार की पुष्टि अनुश्रुतियों तथा लेखों के बहिरंग साक्ष्यों से होती है। तिब्बती अनुश्रुतियों से पता चलता है कि कनिष्क ने साकेत पर आक्रमण किया था और वहाँ का राजा पराजित हुआ था। सारनाथ के मूर्तिलेख 81 ई0 से ज्ञात होता है कि महाक्षत्रप खरपल्लान एवं क्षत्रप वनस्पर वाराणसी में प्रान्तीय शासक नियुक्त थे। कनिष्क के दूसरे तथा चौथे वर्ष के लेख क्रमशः कौशाम्बी तथा श्रावस्ती से मिले हैं। मथुरा में माट नामक स्थान से उसके शासनकाल के तेइसवें वर्ष का एक लेख मिला है और मुद्रायें उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ तथा गोरखपुर से भी मिली हैं। श्रावस्ती जिले के सहेत-महेत से कुषाण मुद्राओं का ढेर उपलब्ध हुआ है। जिसमें 105 मुद्रायें मिली हैं। मुद्राओं तथा लेखों के अतिरिक्त कनिष्क के समय की बहुत सी मूर्तियां, मथुरा, श्रावस्ती, सारनाथ, कौशाम्बी आदि स्थलों से मिली हैं।

धर्मापिटकनिदानसूत्र में कनिष्क के पाटलिपुत्र पर आक्रमण तथा वहाँ के शासक की पराजय का उल्लेख किया गया है। यह कनिष्क के पाटलिपुत्र पर अधिकार का स्पष्ट प्रमाण है। कुछ विद्वान इसे सही नहीं मानते। जैसे राधाकृष्ण चौधरी का विचार है कि बौद्ध परम्पराओं से इतना तो निश्चित हो जाता है कि अश्वघोष कनिष्क का समकालीन था तथा बौद्ध संगीति में सम्मिलित भी हुआ था, किन्तु पाटलिपुत्र पर कनिष्क का आक्रमण हुआ अथवा नहीं, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु यदि कनिष्क के सिक्के इस भू-भाग से न मिले होते तो बौद्ध

परम्परा में संदेह की पर्याप्त गुंजाइश थी। लेकिन हम जानते हैं कि कनिष्क की मुद्रायें पटना, वैशाली, राजगीर आदि से मिली हैं जो इस भू-भाग में इसके प्रत्यक्ष अधिकार को प्रतिबिम्बित करती हैं। कनिष्क का साम्राज्य बिहार तक सीमित न रहा अपितु इसकी धुर पूर्वी सीमा बंगाल तक पहुँच गयी थी। कनिष्क की दो मुद्रायें पश्चिमी बंगाल से मिली हैं। सुधाकर चट्टोपध्याय का विचार है कि संभव है कनिष्क ने पश्चिमी बंगाल पर आक्रमण किया हो, किन्तु सफलता न मिली हो।

उत्तर प्रदेश के साथ-साथ कनिष्क का शासन उड़ीसा पर भी माना जाता है। आर०डी० बनर्जी के अनुसार उड़ीसा की परम्पराओं में जिस विदेशी आक्रमण का जिक्र है उसका सम्बन्ध कनिष्क से ही है। कुषाण शासकों की मुद्रायें मयूरभंज, गंजाम तथा पुरी से मिली हैं, किन्तु यह भी सत्य है मात्र मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर उड़ीसा पर कनिष्क का अधिपत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि मुद्राएँ व्यापारिक गतिविधियों द्वारा भी पहुँच सकती हैं। कनिष्क संवत् का प्रयोग नेपाल में लिच्छवि करते थे। इस आधार पर नेपाल पर कनिष्क के अधिकार का अनुमान होता है। किन्तु डी०सी० सरकार संवत् प्रयोग को अधिकार का द्योतक नहीं मानते। मध्य प्रदेश पर कनिष्क के अधिकार का समर्थन अभिलेखिक एवं मौद्रिक साक्ष्यों से हो जाता है। मध्य प्रदेश के विदिशा के निकट सांची (जिला-रायसेन) से वासिष्क का एक बौद्ध प्रतिमा लेख मिला है जिस पर 28 वर्ष (160 ई०) तिथि अंकित है। वासिष्क का शासनकाल बहुत कम केवल चार वर्ष था, अतः उससे इस भू-भाग की विजय की उम्मीद करना व्यर्थ है। अतः लगता है, यह भू-भाग उसे पैतृक साम्राज्य के रूप में ही मिला होगा। सांची से प्राप्त एक लेख में वसु कुषाण नामक शासक का उल्लेख मिलता है। यह संभवतः कोई कुषाण वंशीय राजकुमार था, जिसे पूर्वी मालवा का गवर्नर नियुक्त किया गया। कनिष्क के छत्तीसगढ़ पर अधिकार की पुष्टि मुद्राओं से भी हो जाती है। कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों की मुद्रायें छत्तीसगढ़ के विलासपुर तथा अन्य स्थलों से मिली हैं। सांची से मथुरा कला शैली की बहुत सी प्रतिमाएँ मिली हैं। इन सभी साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के कुछ भागों पर कनिष्क का प्रभुत्व था।

पश्चिमी मालवा, दक्षिणी राजस्थान, गुजरात एवं काठियावाड़ पर क्षहरात वंशीय क्षत्रप शासन कर रहे थे। इनका प्रथम ज्ञात शासक भूमक था, जो कनिष्क का समकालीन था। रैप्सन तथा भण्डारकर ने संभावना व्यक्त की है कि भूमक तथा उसका उत्तराधिकारी नहपान, कुषाणों के अधीन था। लेवी का विचार है कि कनिष्क का शासन उत्तरी-पश्चिमी दकन पर भी था। वह 'पेरिप्लस ऑफ द इरीथ्रियन सी' में उल्लिखित सैण्डनीज का तादात्म्य चन्द्र या चन्दन से करते हैं जो चीनी 'चेन-तन' का संस्कृत रूपान्तर तथा कनिष्क की उपाधि है।

भारतीय सीमा से बाहर कनिष्क का साम्राज्य मध्य एशिया, बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान तथा उत्तरी-पश्चिमी प्रांतों में विस्तृत था। मध्य एशिया पर कनिष्क के स्वामित्व की बात चीनी यात्री हेवनसांग के विवरण द्वारा सिद्ध हो जाती है, जिसके अनुसार कनिष्क को चीन के विरुद्ध सफलता मिली थी। इस सफलता के फलस्वरूप उसका यारकन्द, खोतान तथा काशगर पर अधिकार स्थापित हो गया था। बैक्ट्रिया पर कुषाणों का अधिपत्य कनिष्क के पहले ही स्थापित हो गया था। अतः यह उसे पैतृक साम्राज्य के अंग रूप में मिला था। इसका कोई प्रमाण नहीं कि कनिष्क के हाथ से बैक्ट्रिया निकल गया था। खोतान से प्राप्त एक पांडुलिपि में चन्द्र कनिष्क का उल्लेख बाल्हक के शासक के रूप में किया गया है। विद्वानों का विचार है कि चन्द्र कनिष्क कुषाण वंशीय कनिष्क ही है तथा बाल्हक से तात्पर्य बैक्ट्रिया से है। अफगानिस्तान पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि अप्रत्यक्ष साक्ष्य से भी हो जाती है। काबुल से लगभग 45 किमी पश्चिम खवात (वार्दाक) से हुविष्क का एक अभिलेख मिला है। इस पर शक

संवत् 51 अर्थात् 129 ई0 तिथि अंकित है। इससे पता चलता है कि हुविष्क का अफगानिस्तान पर अधिकार था। प्रश्न है, क्या इसे हुविष्क ने जीतकर कुषाण साम्राज्य में मिलाया था ? किन्तु इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा। अतः इस भू-भाग पर हुविष्क को पैतृक अधिकार मिला होगा। इस प्रकार अफगानिस्तान कनिष्क के समय से ही कुषाण साम्राज्य में था। उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में कनिष्क के स्वत्व का प्रमाण स्वयं इसकी राजधानी है, जो पुरुषपुर या पेशावर में स्थित थी।

3.6.9 कनिष्क का अन्त

कनिष्क के अंतिम दिनों के बारे में किसी निश्चित जानकारी का अभाव है। संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद में जो अनुश्रुति सुरक्षित है उससे पता चलता है कि अतिशय लोलुपता, निर्दयता तथा महात्वाकांक्षा से प्रजा में भारी अंसतोष फैल गया। निरन्तर युद्धों के कारण उसके सैनिक तंग आ गए तथा उसके विरुद्ध एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। एक बार जब वह उत्तर अभियान पर जा रहा था, मार्ग में बीमार पड़ा। उसी समय उसके सैनिकों ने लिहाफ से उसका मुँह ढँककर मुग्दरों से पीटकर उसे मार डाला। यह कथा कहाँ तक सही है— यह नहीं कहा जा सकता तथापि इससे ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि इस महान कुषाण सम्राट का अन्त दुःखद रहा। कनिष्क ने कुल 23 वर्षों तक राज्य किया। यदि हम उसके राज्यारोहण की तिथि 78 ई0 मानें तो तदनुसार उसकी मृत्यु 101 ई0 के लगभग हुई।

कनिष्क की उपलब्धियों को देखते हुए हम उसे भारतीय इतिहास के महान सम्राटों में स्थान दे सकते हैं। वह एक महान विजेता, साम्राज्य-निर्माता तथा विद्या एवं कला कौशल का उदार संरक्षक था। गंगाघाटी के एक साधारण क्षत्रप के पद से उठकर उसने अपनी विजयों द्वारा एशिया के महान राजाओं में अपना स्थान बना लिया। वह एक कुशल सेनानायक तथा सफल प्रशासक था। अशोक के समान उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने साम्राज्य के साधनों को लगा दिया। उत्तरी बौद्ध अनुश्रुतियों में उसका वही स्थान है जो दक्षिणी बौद्ध परम्पराओं में अशोक का। वह कभी भी धार्मिक मामलों में असहिष्णु नहीं हुआ। इस प्रकार कनिष्क में चन्द्रगुप्त मौर्य जैसी सैनिक योग्यता तथा अशोक जैसा धार्मिक उत्साह देखने को मिलता है। उसने मध्य तथा पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रवेश का द्वार खोल दिया।

3.6.10 कनिष्क और सांस्कृतिक विस्तार

कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और साम्राज्य के संसाधनों को उसने इसके प्रसार में लगा दिया। उसके समय में कश्मीर में चौथी बौद्ध संगति हुई। इसी अवसर पर बौद्ध धर्म की महान शाखा महायान सम्प्रदाय का उदय हुआ। कनिष्क की प्रेरणा से भारत में बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, चीन, मध्य-एशिया तथा जापान जैसे दूरस्थ देशों में हुआ। इसी समय अजन्ता के गुफा-चित्रों का निर्माण आरम्भ हुआ। परन्तु विशेष प्रगति मूर्तिकला में हुई। गांधार में यूनानी कला से प्रभावित गांधार शैली का विकास हुआ। इसी युग में मथुरा मूर्तिकला शैली और दक्षिण भारत में अमरावती मूर्ति-कला शैली का विकास हुआ। इसके साथ ही भारत में सुन्दरतम् तथा भावनात्मक मूर्तियों के निर्माण का युग आरम्भ हुआ।

3.7 कनिष्क के उत्तराधिकारी

3.7.1 वासिष्क

कनिष्क का उत्तराधिकारी वासिष्क था। उसका एक लेख मथुरा से और दूसरा सांची से प्राप्त हुआ है। प्रथम लेख की तिथि 24 तथा द्वितीय की 28 है। दोनों ही तिथियां शक-संवत् की हैं। परन्तु उसकी मुद्राएं प्राप्त नहीं हुई हैं। राजतरंगिणी में एक जुष्क का उल्लेख है।

जिसने जुष्कपुर नामक एक नगर की स्थापना की थी। सम्भवतः यह जुष्क वासिष्क ही था। उसका राज्य कम से कम मथुरा से सांची तक था।

3.7.2 हुविष्क

वासिष्क के पश्चात् हुविष्क सिंहासन पर बैठा। यह अधिक शक्तिशाली प्रतीत होता है। इसके अनेक सिक्के एवं अभिलेख प्राप्त हुए हैं। गया अभिलेख से प्रकट होता है कि इसका राज्य बिहार तक विस्तृत था। मथुरा में इसकी मुद्राएँ मिली हैं। राजतरंगिणी के अनुसार इसने कश्मीर में हुविष्कपुर नामक नगर की स्थापना की थी। वर्दक-अभिलेख से काबुल-प्रदेश पर उसका अधिपत्य सिद्ध होता है। परन्तु कोई भी साक्ष्य ऐसा नहीं मिला है जिससे सिंध के ऊपर उसका अधिपत्य सिद्ध हो सके। ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः रुद्रदामन ने सिंध प्रदेश कुषाणों से छीन लिया था। हुविष्क की तिथियाँ 26 से 60 तक मिली हैं। इससे प्रकट होता है कि कम से कम उसने 138 ई० तक राज्य किया था। संभवतः वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने मथुरा में एक बौद्ध विहार का निर्माण कराया था। उसकी मुद्राओं पर ईरानी, यूनानी और भारतीय देवी-देवताओं के चित्र हैं। भारतीय देवताओं में स्कन्द, शिव, विशाख, गणेश और विष्णु विशेषतः उल्लेखनीय हैं। ये मुद्राएँ उसकी धार्मिक सहिष्णुता की ओर संकेत करती हैं। अधिकांश मुद्राएँ बड़ी ही सुडौल और कलात्मक हैं।

3.7.3 कनिष्क द्वितीय

आरा अभिलेख में एक कनिष्क का उल्लेख है। इसकी तिथि 41 है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह कनिष्क कौन था। लूडर्स, फ्लीट और स्टेन कोनो आदि विद्वानों का मत है कि यह कनिष्क प्रथम से भिन्न था। अतः इसे कनिष्क द्वितीय की संज्ञा दी गई है। संभव है कि इसने हुविष्क के साथ राज्य किया हो। उसने महाराज, राजधिराज, देवपुत्र और कैसर नामक उपाधियाँ धारण कीं।

3.7.4 वासुदेव

हुविष्क के पश्चात् वासुदेव कुषाण साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। इसकी तिथियाँ 67 से 98 कनिष्क संवत् तक मिलती हैं। इससे प्रकट होता है कि कम से कम इसने 176 ई० तक राज्य किया। इसके सिक्के और लेख मात्र पंजाब और उत्तर प्रदेश में ही मिले हैं। इससे प्रकट होता है कि उसके समय तक अफगानिस्तान, कश्मीर, सिंध व मालवा के प्रदेश कुषाण साम्राज्य से निकल चुके थे। इस प्रकार वह मात्र भारतीय राज्य का ही शासक रह गया था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी उसका पूर्णतः भारतीयकरण हो गया था। यह सत्य उसके नाम से ही प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त उसकी मुद्राओं पर शिव और नन्दी की आकृतियाँ खुदी हुई हैं, जिससे प्रतीत होता है कि वह शैव था।

वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् कुषाण वंश की अवनति की गति तीव्रतर हो गई। एक-एक करके उसके अधीन प्रदेश स्वतन्त्र होने लगे। भारत के पश्चिम और पश्चिमोत्तर प्रदेशों में शकों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किए। उत्तरी भारत में नाग-भारशिवों, यौधेयों तथा मालवों आदि वंशों की शक्ति बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप क्षीण कुषाण राज्य पूर्णतः विलुप्त हो गया।

3.8 परवर्ती कुषाण

वासुदेव के बाद कुषाणों का इतिहास अंधकारपूर्ण है सिक्कों से कुछ कुषाण राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं, जिन्होंने द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तृतीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शासन किया। इन्हें परवर्ती अथवा उत्तर-कुषाण कहा गया है।

3.8.1 कनिष्क तृतीय

परवर्ती कुषाण शासकों में सर्वप्रथम वासुदेव के बाद हमें एक तीसरे कनिष्क का पता चलता है जिसने संभवतः 180 से 210 ईसवी तक राज्य किया। बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान, गंधार, सीस्तान, पंजाब आदि से उसके बहुसंख्यक सिक्के मिलते हैं जो इस बात की सूचना देते हैं कि उसने दीर्घकाल तक शासन किया था। सतलुज के पूर्व से उसके सिक्के नहीं मिलते। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अब कुषाणों का शासन मथुरा अथवा उत्तर प्रदेश से समाप्त हो गया था। कनिष्क तृतीय के शासनकाल के अन्त तक कुषाण राज्य केवल पंजाब, कश्मीर, सीस्तान, अफगानिस्तान तथा बैक्ट्रिया तक ही सीमित रहा।

कनिष्क तृतीय के सिक्कों पर उसके कुछ प्रांतीय क्षत्रपों के नामांश प्राप्त होते हैं, जैसे 'वासु', 'विरू', 'मही' आदि। अल्तेकर महोदय ने इन्हें वासुदेव, विरूपाक्ष तथा महीश्वर बताया है। वासुदेव सम्भवतः उसका पुत्र था तथा विरूपाक्ष और महीश्वर उसके भाई रहे होंगे। वासुदेव सीस्तान में तथा विरूपाक्ष एवं महीश्वर क्रमशः पंजाब और अफगानिस्तान में क्षत्रप थे। क्षत्रपों के हिन्दू नाम से स्पष्ट है कि इस समय तक कुषाणों के भारतीयकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। सिक्कों पर क्षत्रपों का नाम उनके बढ़ते हुए प्रभाव का द्योतक है।

3.8.2 वासुदेव द्वितीय

अल्तेकार के अनुसार कनिष्क तृतीय के बाद वासुदेव द्वितीय राजा हुआ। वह कनिष्क तृतीय का पुत्र था। शिव तथा नन्दी प्रकार के सिक्के, जिन पर 'वासु' नाम उत्कीर्ण है, बैक्ट्रिया तथा अफगानिस्तान से मिले हैं। इससे पता चलता है कि उसका अधिकार इसी क्षेत्र में था तथा सीस्तान और पंजाब में उसके राज्यपाल स्वतन्त्र हो गये थे। उसने सम्भवतः 210 ई0 से 230 ई0 तक राज्य किया।

वासुदेव द्वितीय के समय तक कुषाण साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। इस काल में भारत में अनेक जातियों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। मथुरा तथा पद्मावती में नागवंशों का उदय हुआ। नागवंश के अतिरिक्त यौधेय, मालव, कुणिन्द आदि गणराज्यों ने भी अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। पश्चिमोत्तर सीमाओं पर ईरान के ससैनियन राजाओं के आक्रमण प्रारम्भ हुए। अब यह सिद्ध हो चुका है कि ससैनियों द्वारा पराजित कुषाण नरेश वासुदेव द्वितीय ही था, न कि वासुदेव प्रथम। उसके सिक्के वासुदेव प्रथम से इस अर्थ में भिन्न हैं कि उन पर यूनानी का अधिक विकृत रूप मिलता है, मोनोग्राम भिन्न है तथा क्षत्रपों के नामांश भी अंकित हैं। ससैनियों ने वासुदेव द्वितीय को परास्त कर उसके शिव तथा नन्दी प्रकार के सिक्कों को ग्रहण कर लिया। इन सिक्कों को ससैनियन-कुषाण-सिक्के कहा जाता है। इनके अग्रभाग ससैनियन तथा पृष्ठ भाग परवर्ती कुषाण सिक्कों की भांति हैं। चीनी दरबार में 230 ई0 में जो राजदूत भेजा गया था उसे सम्भवतः वासुदेव द्वितीय ने ही भेजा था। यह कुषाण वंश का अंतिम ज्ञात शासक प्रतीत होता है। इसके पश्चात् धीरे-धीरे भारतवर्ष में कुषाण साम्राज्य नष्ट होने लगा तथा उसका गौरव और महत्वपूर्ण स्थान खो सा गया। इनके स्थान पर अन्य वंशों और सत्ताओं का उदय हुआ।

3.9 सारांश

शकों को दक्षिण की ओर यू-ची लोगों ने धकेला था। एक चीनी स्रोत में लिखा है कि उनके कुजुल कडफिसस नामक सरदार ने पांचों यू-ची कबीलों को एक सूत्र में बांधा और अपने नेतृत्व में उन्हें उत्तरी पर्वतों को लांघकर पश्चिमोत्तर भारत में ले आया, उसने बैक्ट्रिया में अपनी सत्ता प्रतिष्ठित की और अपना नियंत्रण काबुल और कश्मीर तक फैलाया। इस प्रकार उसने कुषाण राज्य की स्थापना की और कनिष्क ने इसे अपने उत्कर्ष पर पहुँचाया। कुषाण राज्य में मध्य एशिया के काशगर तक के प्रदेशों के शामिल होने से वह एक ऐसा विस्तृत राज्य बन गया जिसमें साम्राज्य के सभी तत्व विद्यमान थे। ऐसा लगता है कि कुषाण साम्राज्य ने

भारत, चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया एवं मध्य एशिया को एक सूत्र में पिरो लिया हो। कुषाणों के माध्यम से इन क्षेत्रों के मध्य नए व्यापारिक एवं सांस्कृतिक आयाम स्थापित हुए। इन सम्बन्धों से आर्थिक समृद्धि बढ़ी। संपर्क के क्षेत्रीय विस्तार तथा लोगों के पारस्परिक सम्मिश्रण के फलस्वरूप अनेक धर्मों को राज-संरक्षण प्राप्त हुआ। उत्तर के बौद्धों ने कनिष्क को अपना संरक्षण बताया और बौद्ध सिद्धांत के स्पष्टीकरण के लिए आयोजित चौथी बौद्ध संगीति से उसे संबद्ध दिखाया। महायान सम्प्रदाय के राज्य प्रश्रय से मूर्ति कला शैलियों का विकास अपने चरम तक पहुँचा। कुषाण राजाओं ने भारत में मुद्रा निर्माण के क्षेत्र में भी नए युग का सूत्रपात किया। कनिष्क के काल में कुषाण शक्ति अपने चरम पर पहुँचती है। कनिष्क ने मध्य तथा पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रवेश का द्वार खोल दिया।

कालांतर में कुषाण शक्ति का धीरे-धीरे क्षय होने लगा। इसका कारण एक ओर तो यह था कि उनके मुकाबले में ईरान की उदीयमान ससानी शक्ति खड़ी हो गई थी और दूसरी ओर उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान के हठी गणसंघ कुषाण शक्ति को घुन की तरह खाने लगे थे। साथ ही साथ कुषाणों की विलक्षणता भी धीरे-धीरे तिरोहित होती चली गई और कुषाण वंश इतिहास के गर्त में विलीन हो गया।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कुषाण कौन थे ? सम्राट कनिष्क की सैनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. कनिष्क से पूर्व कुषाण साम्राज्य विस्तार पर चर्चा कीजिए।
3. भारत से बाहर कुषाण साम्राज्य के विस्तार पर एक निबन्ध लिखिए।
4. परवर्ती कुषाण कौन थे ? भारत में इनके साम्राज्य पर एक लेख लिखिए।
5. कुषाण शासकों के मध्य एशिया से सम्बन्ध स्थापित कीजिए।
6. कुषाण वंश के राजनीतिक इतिहास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
7. कनिष्क एक साम्राज्य निर्माता था। आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं ?

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. के.सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
 2. रोमिला थापर – पूर्वकालीन भारत (प्रारम्भ से 1300 ई० तक)
 3. डी.एन. झा और के.एम. श्रीमाली – प्राचीन भारत का इतिहास
 4. विमल चन्द्र पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग-1
 5. हेमचन्द्र रायचौधरी – प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास
 6. आर.एन. पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
 7. एल.पी. शर्मा – प्राचीन भारत
-

गुप्त वंश का उद्भव— प्रारम्भिक इतिहास एवं चन्द्रगुप्त प्रथम

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 प्रमुख स्रोत
- 1.4 गुप्त वंश के उदय के समय उत्तर भारत
- 1.5 गुप्त वंश की उत्पत्ति
- 1.6 प्रारम्भिक शासक
 - 1.6.1 श्री गुप्त— मूल स्थान एवं समय
 - 1.6.2 घटोत्कच गुप्त
- 1.7 चन्द्रगुप्त प्रथम
 - 1.7.1 राज्यारोहण—गुप्त संवत् का प्रारम्भ
 - 1.7.2 वैवाहिक सम्बन्ध
 - 1.7.3 साम्राज्य विस्तार
- 1.8 मूल्यांकन
- 1.9 सारांश
- 1.10 स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर
- 1.11 संदर्भ ग्रंथ
- 1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें
- 1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

कुषाणों और सातवाहन के पश्चात लगभग तीसरी शताब्दी में भारत में तीन नए राजवंशों का उदय हुआ— मध्य भारत के पश्चिम में नाग वंश, मध्य भारत के पूर्व में गुप्त वंश और दक्कन में वाकाटक वंश। इन राज्यों ने साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर आपसी सहयोग की राजनीति को महत्व दिया। शीघ्र ही गुप्तों के नेतृत्व में भारत को भौगोलिक एकता में बांधने का प्रयत्न किया गया। गुप्त वंश का साम्राज्य मौर्य साम्राज्य की तरह विशाल नहीं था, परन्तु हिन्दू धर्म से सम्बन्धित संस्थाओं के विकास एवं हिन्दू संस्कृति की दृढ़ता पूर्वक स्थापना तथा कला, शिल्प, साहित्य, व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में नवीन प्रयोगों और प्रवृत्तियों के विकास के कारण भारतीय इतिहास में गुप्त युग का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त वंश के समय उत्तर भारत की राजनैतिक एकता, सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति तथा आर्थिक समृद्धि के कारण कई विद्वान इस युग को क्लासिक युग अथवा स्वर्ण युग कहते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे—

1. उन ऐतिहासिक साधनों को जिनसे गुप्त वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं।
2. गुप्त वंश के उदय के समय भारत की राजनैतिक परिस्थितियों को जान सकेंगे।
3. गुप्त वंश के प्रारम्भिक शासकों की पृष्ठभूमि और उनके राज्य के बारे में जान सकेंगे।
4. चन्द्रगुप्त प्रथम के साम्राज्य के विषय में जानते हुए समझ सकेंगे कि परवर्ती महान सम्राटों के लिए किस प्रकार अनुकूल परिस्थितियां स्थापित की गयीं।

1.3 प्रमुख स्रोत

गुप्त वंश के इतिहास को जानने के लिए साहित्यिक साधनों की प्रचुरता के साथ साथ पुरातात्विक साधन भी पर्याप्त उपलब्ध हैं।—

साहित्यिक साधन— गुप्त वंश का इतिहास जानने के लिए जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें शासकों के राजनीतिक कार्यों की अपेक्षा सांस्कृतिक इतिहास पर अधिक जानकारी प्राप्त होती है।

गुप्त वंश के इतिहास की संरचना की दृष्टि से विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण निश्चित रूप से उपयोगी प्रमाणित हुए हैं।

बौद्ध महायान सम्प्रदाय का ग्रन्थ मंजुश्री मूलकल्प, जिनसेन सूरि रचित हरिवंश पुराण, यति वृषभ रचित तिलोय पण्णति, वज्जिका रचित कौमुदी महोत्सव, विशाखदत्त रचित देवी चन्द्रगुप्तम् एवं मुद्राराक्षस, प्रवरसेन रचित सेतुबन्ध, सुबन्धु रचित वासवदत्ता , परमार्थ रचित वसुबन्धु चरित, चक्रपाणिदत्त रचित आयुर्वेद दीपिका टीका, शूद्रक रचित मृच्छकटिकम्, सोमदेव कृत कथा सरित्सागर, कमन्दक रचित नीतिसार तथा कालिदास की रचनाएं— अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंश, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, ऋतु संहार आदि साहित्यिक और धार्मिक रचनाओं में गुप्त वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं।

चीनी यात्रियों फाहयान, हवेन सांग एवं ईत्सिंग आदि के संस्मरण आदि गुप्तों के इतिहास तथा उनकी राज्य सीमा, समाज और संस्कृति के विविध पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

पुरातात्विक साधन— गुप्त काल में लगभग बयालिस अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इनमें से सत्ताईस पत्थरों, चट्टानों, स्तम्भों या मूर्ति आसनों पर अंकित हैं। इनमें बाईस निजी दान पत्र, चार प्रशस्तियाँ तथा एक राज शासन हैं। अन्य पन्द्रह अभिलेखों में एक लौह स्तम्भ तथा शेष ताम्रपत्र हैं। यह अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं।

इनमें प्रमुख सरकारी अभिलेख हैं— हरिषेण रचित प्रयाग प्रशस्ति, एरण प्रशस्ति, चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन मथुरा स्तम्भ लेख, उदयगिरि के गुहा लेख, महारौली प्रशस्ति, कुमारगुप्त कालीन मन्दसौर शिलालेख, गढ़वा के शिलालेख तथा स्कन्दगुप्त कालीन जूनागढ़ प्रशस्ति तथा भितरी प्रशस्ति।

समसमायिक वंशों के अभिलेख – वाकाटक वंश और कदम्ब वंश के अभिलेख तथा मिहिरकुल और यशोधर्मन के अभिलेख भी महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

गुप्तकाल की दृष्टि से भितरी से प्राप्त धातु मुहर तथा बसाढ़ और नालन्दा से प्राप्त मिट्टी की मुहरें विशेष महत्व रखती हैं। इनके अतिरिक्त गुप्त काल में बहुत मात्रा में सोना, चांदी और तांबे के सिक्के मिले हैं। सर्वाधिक मात्रा में सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जो चन्द्रगुप्त प्रथम से लेकर विष्णुगुप्त तक लगभग सभी गुप्त शासकों के हैं। इन सिक्कों की सहायता से गुप्त शासकों की शक्ति, समृद्धि, व्यक्तित्व आदि का ज्ञान होता है। गुप्तकालीन मन्दिर, स्मारक, मूर्तियाँ, गुफाएँ आदि से भी विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

1.4 गुप्त वंश के उदय के समय उत्तर भारत

उत्तरी भारत में मौर्यों के पश्चात किसी एक राजवंश का साम्राज्य नहीं रहा। उत्तर भारत कई स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया था, जिनमें राजतंत्रात्मक तथा गणतंत्रात्मक दोनों प्रकार के राज्य विद्यमान थे। उत्तरी पश्चिमी सीमा से बाह्य शक्तियां निरन्तर भारत में प्रवेश कर रहीं थीं। पश्चिमी और उत्तर भारत के कई क्षेत्रों में मालव, यौधेय और अजुर्नायन आदि गणतंत्रात्मक राज्य शक कुषाण आदि का सामना कर रहे थे। मगध में कुछ समय तक शुंग और कण्वों ने राज्य किया। तत्पश्चात उत्तरी भारत के बहुत बड़े क्षेत्र पर कुषाण वंश का अधिकार हो गया। विशाल क्षेत्र के बावजूद कुषाण साम्राज्य 100 वर्ष से अधिक नहीं रह सका। दक्कन में सातवाहन और उत्तर भारत में कुषाण वंश समाप्ति पर थे। राजनैतिक अस्थिरता के इस युग में दक्कन में वाकाटकों ने

सातवाहन का और पश्चिम में नागों तथा पूर्व में गुप्तों ने कुषाणों का स्थान ले लिया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक छोटे से क्षेत्र से उदय होकर गुप्त वंश शीघ्र ही एक महान शक्ति बन गया।

1.5 गुप्त वंश की उत्पत्ति

‘गुप्त कौन थे’ इस सम्बन्ध में इतिहासकारों के अनेक मत हैं। काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार गुप्त सम्राट जाट और मूलरूपेण पंजाब के निवासी थे। दशरथ शर्मा ने भी धारण गोत्र के कारण गुप्तों को जाट माना है क्योंकि धारण गोत्र जाटों में प्रचलित है। गौरी शंकर ओझा एवं डा० पांथरी ने गुप्तों को क्षत्रिय बताया है। उनके अनुसार गुप्तों के वैवाहिक सम्बन्ध लिच्छवी और वाकाटकों के साथ थे, जो क्षत्रिय वंश के थे। बाद के अभिलेखों में गुप्तों को चन्द्रवंशी क्षत्रिय कहा गया है। हेमचन्द्र रायचौधरी ने गुप्तों को ब्राह्मण और शुंग वंश की महारानी धारिणी के वंश का माना है। अल्तेकर, एलन, आयंगर, रामशरण शर्मा, सत्यकेतु विद्यालंकर आदि विद्वानों के अनुसार गुप्त वैश्य थे, क्योंकि स्मृतियों के अनुसार नाम के उत्तरांश में गुप्त शब्द जोड़ा जाना वैश्यों की विशेषता है तथा वैश्यों में अग्रवाल धारण गोत्र के हैं, जो गुप्तों का भी गोत्र था।

परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि जिस युग में गुप्तवंशी शासक हुए उस युग में वर्ण और जाति की अपेक्षा कर्म और गुण का महत्व अधिक था। गुप्त शासक किसी प्राचीन राजवंश या कुल से सम्बन्धित हों या न हों अथवा उनकी सामाजिक स्थिति कैसी भी रही हो वह सफल शासक सिद्ध हुए।

1.6 प्रारम्भिक शासक

गुप्त शासकों के अभिलेख में वंशावली उपलब्ध हैं, उनके अनुसार गुप्त वंश की स्थापना श्री गुप्त ने की थी। अभिलेखों में गुप्त वंश के प्रारम्भिक शासक गुप्त तथा उसके पुत्र घटोत्कच को ‘महाराजा श्री’ उपाधि से सम्मानित किया गया है, जबकि तीसरे सम्राट चन्द्रगुप्त के लिए ‘महाराजाधिराज’ शब्द का प्रयोग किया गया है। महाराजा उपाधि परवर्ती गुप्त शासकों के अभिलेखों में छोटे सामन्तों के लिए प्रयुक्त हुयी है। अतः अधिकांश विद्वान मानते हैं कि प्रारम्भिक गुप्त शासक सामन्त अथवा छोटे जमींदार थे। रामशरण शर्मा ने इन्हें कुषाणों का सामन्त बताया है। परन्तु गुप्तों के उदय के समय महाराज शब्द का प्रयोग कौशाम्बी के मगधों, भारशिवों तथा वाकाटकों में स्वतंत्र शासकों द्वारा किया जा रहा था। सम्भवतः प्रारम्भिक गुप्त शासक स्वतंत्र शासक रहे हों, परन्तु उनका राज्य बहुत बड़ा नहीं था। रोमिला थापर का मानना है कि यह धनी भूस्वामियों का परिवार था, जिसने धीरे-धीरे राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर ली थी।

1.6.1 श्री गुप्त— मूल स्थान एवं समय

गुप्त अभिलेखों में श्री गुप्त के शासन काल अथवा राज्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। चीनी यात्री ईत्सिंग ने श्री गुप्त नामक एक शासक का उल्लेख किया है, जिसने चीनी यात्रियों के लिए एक मन्दिर का निर्माण मृगशिखावन में कराया था और उसके खर्च के लिए चौबीस गाँव दान किए थे। इसे कुछ विद्वान गुप्त वंश का संस्थापक मानते हैं।

गुप्तों के मूल स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। मृगशिखावन के आसपास का क्षेत्र गुप्तों का मूल स्थान रहा होगा, लेकिन यह कौन सा क्षेत्र है, इसके सम्बन्ध में अनेक मत हैं। दिनेशचन्द्र गांगुली और रमेश चन्द्र मजुमदार आदि इसे बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में मानते हैं। परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि मृगशिखावन मृगदाव (आधुनिक सारनाथ) था तथा वाराणसी के समीप का क्षेत्र श्री गुप्त का मूल स्थान रहा होगा। वायु पुराण तथा विष्णु पुराण में गुप्तों का राज्य प्रयाग से मगध तक बताया गया है। गुप्तों ने वाराणसी के आस पास के क्षेत्र से पश्चिम की ओर प्रयाग तथा साकेत और पूर्व की ओर मगध तक राज्य का विस्तार किया होगा।

गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त के समय पर भी अनेक विचार प्रचलित हैं। इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी श्री गुप्त का समय 240 से 280 ई0 के मध्य मानते हैं। परन्तु विन्सेन्ट स्मिथ ने 319 को चन्द्रगुप्त प्रथम का प्रारम्भिक वर्ष मानते हुए श्री गुप्त का समय 277 से 300 ई0 के मध्य माना है, जिसे अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है।

1.6.2 घटोत्कच गुप्त

महाराज श्री गुप्त के पश्चात उसका पुत्र महाराज श्री घटोत्कच का नाम वंशावली में मिलता है। स्कन्दगुप्त के समय के सुपिया अभिलेख में घटोत्कच को ही गुप्त वंश का आदिराज कहा गया है। वाकाटकों के अभिलेखों में भी गुप्त वंश की वंशावली घटोत्कच से ही प्रारम्भ की गयी है। विद्वानों के अनुसार घटोत्कच ने लगभग 300 ई0 से 319 ई0 तक शासन किया होगा। गुप्त अभिलेखों में इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती है।

1.7 चन्द्रगुप्त प्रथम

चन्द्रगुप्त प्रथम इतिहासकारों के अनुसार गुप्त वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। गुप्त वंश को एक साम्राज्य के रूप में स्थापित करने का कार्य उसने ही किया। अभिलेखों में चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए महाराजाधिराज पदवी का प्रयोग हुआ है। पूर्ववर्ती दोनों शासकों की अपेक्षा उसकी पदवी बड़ी है और उसके बड़े राज्य का शासक होने का प्रतीक लगती है। उसके सोने के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर अधिकांश विद्वान उसे गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक मानते हैं।

1.7.1 राज्यारोहण – गुप्त संवत का प्रारम्भ

चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण और गुप्त अभिलेखों में उल्लिखित संवत के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं। फ्लीट का मानना है कि लिच्छिवियों के संवत को ही गुप्तों ने अपना लिया था। परन्तु अधिकांश इतिहासकार इस संवत को गुप्तों का ही मानते हैं। विन्सेन्ट स्मिथ इसका आरम्भ चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण से मानते हैं। अधिकांश इतिहासकार बाद की दो जनश्रुतियों जिनका उल्लेख जिनसेन के हरिवंशपुराण तथा अल्बरूनी के वर्णन में मिलता है, के आधार पर गुप्त संवत का आरम्भ 319 ई0 से और गुप्त वर्ष 1 का आरम्भ 320 ई0 से मानते हैं। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार इस संवत को चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्यारोहण की स्मृति में जारी किया था।

1.7.2 वैवाहिक सम्बन्ध

गुप्त अभिलेखों में वंश सूचियों में चन्द्रगुप्त प्रथम की पत्नी कुमारदेवी का नाम लिखा मिलता है। कुमारदेवी लिच्छिवी वंश की राजकुमारी थी। चन्द्रगुप्त प्रथम के चलाये सोने के सिक्कों में भी एक तरफ चन्द्रगुप्त के साथ उसकी रानी कुमारदेवी का चित्र और नाम अंकित है और दूसरी ओर सिंह पर सवार देवी का चित्र तथा लिच्छिवी नाम लिखा है। गुप्त वंशावलियों में समुद्रगुप्त को भी गर्व से 'लिच्छिवियों की पुत्री का पुत्र' कहा गया है, जबकि अन्य किसी शासक की माता के वंश का उल्लेख नहीं मिलता।

इस आधार पर अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के विवाह का गुप्तों के उत्थान में विशेष महत्व रहा होगा। के0पी0जायसवाल का मानना है कि गुप्तों ने लिच्छिवियों की सहायता से किसी क्षत्रिय राजा को पराजित कर मगध प्राप्त किया था। एलन के अनुसार लिच्छिवियों का वंश प्राचीन क्षत्रिय वंश था, जिसके सामाजिक और राजनैतिक रूप से सम्मानित होने के कारण गुप्तों को उनसे वैवाहिक सम्बन्ध होने पर गर्व हुआ होगा। इसी कारण वह बार-बार इस वैवाहिक सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं। विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम

की पत्नी के सम्बन्धियों का राज्य मगध और आस-पास के क्षेत्र पर था और इस विवाह के कारण चन्द्रगुप्त प्रथम राजसत्ता का उत्तराधिकारी बना। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार लिच्छिवी नरेश पुत्रहीन मरे होंगे और पुत्र के अभाव में पुत्री तथा उसके पति को उनका राज्य प्राप्त हुआ होगा। स्मृतियों में कहा गया है कि पुत्र न होने पर पुत्री के पुत्र को उत्तराधिकारी स्वीकार किया जा सकता है। इस आधार पर लिच्छिवी के वैध उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के वयस्क होने तक चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपनी रानी कुमारदेवी के साथ संयुक्त रूप से राज्य किया और समुद्रगुप्त के वयस्क होने पर उसे राज्य सौंप कर सन्यास लिया होगा।

चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के इस वैवाहिक सम्बन्ध से पूर्वी भारत के दो राज्यों का एकीकरण हुआ और चन्द्रगुप्त प्रथम को एक बड़ा साम्राज्य प्राप्त हुआ।

1.7.3 साम्राज्य विस्तार एवं समय

चन्द्रगुप्त प्रथम का कोई स्वयं का जारी अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है, जिससे उसके राज्य विस्तार का पता चल सके। उसके उत्तराधिकारियों और पुराणों के आधार पर उसका साम्राज्य विस्तार आधुनिक बिहार, बंगाल के कुछ इलाके और पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश भागों में माना जाता है।

पुराणों में मगध, साकेत और प्रयाग को गुप्तों का क्षेत्र बताया गया है। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार उसके पुत्र समुद्रगुप्त के द्वारा विजित क्षेत्रों पर चन्द्रगुप्त प्रथम का राज्य उत्तर में वाराणसी के आगे गंगा के उत्तर में नहीं होगा, लेकिन उसके राज्य में मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर, सम्भलपुर और गंजाम जिले के कुछ हिस्से सम्मिलित होंगे। पश्चिम में विदिशा की सीमा तक तथा पूर्व की ओर पूरा बिहार और बंगाल का कुछ क्षेत्र चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य में शामिल थे।

उसने 319 ई० से लेकर लगभग 335 ई० तक राज्य किया। एलन, फ्लीट एवं स्मिथ मानते हैं कि चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु 335 ई० में हुयी। रमेश चन्द्र मजूमदार और परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार 338 ई० से 345 ई० के मध्य चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने पुत्र के पक्ष में राज्य त्याग दिया। उसके पश्चात वह कितने समय जीवित रहा, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

1.8 मूल्यांकन

श्री गुप्त और घटोत्कच के द्वारा स्थापित गुप्त वंश को चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा विस्तार प्रदान किया। अपने पितामह और पिता की तरह महाराज की जगह उसने महाराजाधिराज उपाधि धारण की। अपने राज्यारोहण के समय एक नया संवत चलाया। गुप्त वंश के प्रारम्भिक सिक्के भी चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा ही चलाये गए। इस प्रकार गुप्त वंश को एक मजबूत नींव प्रदान करने का कार्य प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने किया।

1.9 सारांश

तीसरी सदी में भारत अनेक छोटे राज्यों में बँटा था, जिनमें से पूर्वी भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। गुप्त वंश का इतिहास उसके अभिलेखों, सिक्कों और तत्कालीन साहित्य विशेष रूप से पुराणों से ज्ञात होता है। गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त और उसके पुत्र घटोत्कच महाराज की उपाधि धारण करने वाले छोटे राजा या भू स्वामी थे। इनका मूल निवास वाराणसी के आस पास का क्षेत्र था। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्राचीनकाल से विख्यात लिच्छिवी वंश की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह किया तथा गुप्त वंश की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। दो राजवंशों के मिलने से गुप्तों के अधीन बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा क्षेत्र आ गया। अभिलेखों में चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए महाराजाधिकार उपाधि का प्रयोग, उसके द्वारा नये संवत का प्रवर्तन तथा सोने के सिक्के चलाना इस बात का द्योतक है कि उसने गुप्त वंश को एक प्रतिष्ठित

राजवंश के रूप में स्थापित कर दिया था। इसी कारण उसे गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक भी माना जाता है। प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने परवर्ती गुप्तों के लिए एक सशक्त राज्य की आधारशिला रखी।

1.10. स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर

1. तीसरी शताब्दी ई0 में उत्तर भारत में किन तीन शक्तियों का उदय हुआ?
2. गुप्त वंश के इतिहास की जानकारी देने वाले प्रमुख पुराण कौन से हैं।
3. गुप्तों के मूल स्थान के विषय में क्या मत प्रचलित हैं।
4. रिक्त स्थान भरो।—
 क. गुप्त अभिलेखों मेंको गुप्त वंश का संस्थापक बताया गया है।
 ख. सुपिया अभिलेख में को गुप्त वंश का आदिराज कहा गया है।
 ग. कुमारदेवीवंश की थी।
 घ. गुप्त संवत् का प्रारम्भ.....से हुआ।

उत्तर—

1. नाग, वाकाटक एवं गुप्त वंश
2. वायु और विष्णु पुराण
3. 1.6.1 का द्वितीय पैराग्राफ देखें
4. क. श्रीगुप्त
 ख. घटोत्कच
 ग. लिच्छवी वंश
 घ. 319 ई0

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रायचौधरी, हेमचन्द्र—पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियेंट इंडिया, नई दिल्ली, 1996
2. स्मिथ, विन्सेंट—अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आक्सफोर्ड, 1924
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल—गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011
4. मजूमदार, रमेशचन्द्र एवं अल्लेकर, ए.एस.— सम्पादित द वाकाटक—गुप्त एज़, दिल्ली, 1946
5. बनर्जी, राखाल दास— द एज़ ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज़, वाराणसी, 1933

1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1. मजूमदार, रमेश चन्द्र—श्रेण्य युग, नई दिल्ली, 1984
2. उपाध्याय, वासुदेव— गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
3. थापर, रोमिला— भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
4. शर्मा, रामशरण—प्रारम्भिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
5. झा, द्विजेन्द्र नाथ एवं श्रीमाली, के.एम.— प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1994

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गुप्त वंश के उदय के समय उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. गुप्त कौन थे? उनके प्रारम्भिक इतिहास पर विस्तार से लिखिए।
3. चन्द्रगुप्त प्रथम के समय की प्रमुख घटनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
4. चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक था, विश्लेषण कीजिए।

समुद्र गुप्त और उसकी उपलब्धियां

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 प्रयाग प्रशस्ति एवं समुद्रगुप्त के सिक्के
- 2.4 परिवार और राज्यारोहण
- 2.5 साम्राज्य विस्तार
 - 2.5.1 आर्यावत का प्रथम अभियान
 - 2.5.2 दक्षिणापथ अभियान
 - 2.5.3 आर्यावत का द्वितीय अभियान
 - 2.5.4 आटविक राज्य
 - 2.5.5 सीमान्त प्रदेश
 - 2.5.6 विजित प्रदेशों के प्रति नीति
 - 2.5.7 विदेशी राज्यों से सम्बन्ध
- 2.6 मूल्यांकन
- 2.7 सारांश
- 2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर
- 2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें
- 2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने और कुमारदेवी के पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, तथापि शासन प्राप्ति के लिए समुद्रगुप्त को अपने सम्बन्धियों से संघर्ष करना पड़ा। वह गुप्त वंश का शक्तिशाली और साम्राज्यवादी शासक सिद्ध हुआ, जिसने अपनी विजयों से न केवल एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, वरन् गुप्त साम्राज्य को अपनी नीतियों से दृढ़ता भी प्रदान की।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम जान सकेंगे। —

- गुप्त वंश के साम्राज्यवादी शासक समुद्रगुप्त के राज्यारोहण तथा तत्सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं को जान सकेंगे।
- प्रयागप्रशस्ति तथा उसके द्वारा जारी किए गए सिक्कों के विषय में जान सकेंगे, जिसमें समुद्रगुप्त के विषय में विस्तार से महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।
- उसके विजय अभियानों तथा विभिन्न राज्यों के सम्बन्ध में उसकी नीतियों को जान सकेंगे।
- समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व तथा चरित्र का विश्लेषण कर प्राचीन भारतीय शासकों में उसके स्थान का मूल्यांकन कर सकेंगे

2.3 प्रयाग प्रशस्ति एवं समुद्रगुप्त के सिक्के

गुप्त काल के सबसे पहले अभिलेख समुद्रगुप्त के समय के प्राप्त हुए हैं। दो प्रशस्तियाँ — प्रयाग और एरण तथा दो ताम्रपत्र— वर्ष चार का नालन्दा ताम्रपत्र और वर्ष नौ का गया ताम्रपत्र। इनमें स्तम्भ लेख प्रयाग प्रशस्ति सबसे महत्वपूर्ण है।

प्रयाग प्रशस्ति 35 फुट ऊँचे पत्थर के एक गोल स्तम्भ पर अंकित है। यह एक चम्पू काव्य है, जिसकी रचना समुद्रगुप्त के सान्धिविग्रहक, कुमारामात्य, दण्डनायक हरिषेण ने की थी। हरिषेण महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र था।

यह प्रशस्ति प्रयाग में गंगा यमुना के संगम तट पर स्थित दुर्ग में है। किन्तु चीनी यात्री युवांग च्वांग के प्रयाग वर्णन में इस स्तम्भ का उल्लेख न होने के कारण विद्वान मानते हैं कि यह स्तम्भ पहले कौशाम्बी में था, जहाँ अशोक के लेख के नीचे यह प्रशस्ति लिखी गयी। इस अभिलेख को सर्वप्रथम 1834 ई0 में ए ट्रायर ने प्रकाशित किया। प्लीट द्वारा इसका सम्पादन किया गया।

इसमें समुद्रगुप्त के गुणों और सैनिक सफलताओं का वर्णन है। प्रशस्ति के प्रथम छ श्लोकों में समुद्रगुप्त की शिक्षा, उत्तरदायित्व तथा राजपद ग्रहण करने के सम्बन्ध में उल्लेख है। प्रथम दो श्लोक स्पष्ट नहीं दिखते। तीसरे में उसकी विद्वता का वर्णन है। चौथे और पांचवे श्लोक में शासक बनाने एवं भाईयों के विद्रोह का वर्णन है। सातवें श्लोक से समुद्रगुप्त की सामरिक सफलताओं का वर्णन है। अठाईसवें एवं उन्तीसवें श्लोक में समुद्रगुप्त के वंश, माता पिता आदि का उल्लेख है। अन्तिम पंक्तियों में हरिषेण ने अपना परिचय दिया है। कुछ पंक्तियों में समुद्रगुप्त की चारित्रिक विशेषताओं का भी वर्णन है।

समुद्रगुप्त की एरण प्रशस्ति के विषय में विद्वानों द्वारा माना गया कि वह उसके नाग राजाओं पर विजय के पश्चात अंकित की गयी थी। अन्य दानों ताम्रपत्रों की मौलिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद है।

समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के 7.65–7.77 (118–120 ग्रैन) के हैं। इनमें दण्डधारी, अश्वमेध, व्याघ्र निहन्ता, धनुर्धर, वीणवादक आदि सिक्के प्रमुख हैं। इन पर दूसरी ओर देवी के विभिन्न रूप जैसे सिंहासनासीन देवी, मंचासीन देवी, चामरधारिणी देवी, जल में मकर के साथ देवी आदि का अंकन है। सिक्कों पर बाँयी ओर समुद्र अथवा समुद्रगुप्त लिखा है। साथ ही अश्वमेध पराक्रमः, व्याघ्र पराक्रमः, अप्रतिरथः, कृतान्तपरशु आदि लेख भी अंकित हैं।



इन प्रशस्तियों और सिक्कों से ही समुद्रगुप्त के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि उसके दरबारी कवि द्वारा लिखी होने के कारण प्रशस्ति और उसके स्वयं के चलाये सिक्कों में कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हो सकता है, किन्तु इनके महत्व को पूर्ण रूप से नकारा भी नहीं जा सकता।

2.4 परिवार और राज्यारोहण

समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी का पुत्र था। उसकी माता कुमारदेवी प्रतिष्ठित लिच्छवी वंश की थी। उसका विवाह दत्तदेवी के साथ हुआ था जो सम्भवतः कदम्ब वंश के शासक कुकुत्स्थवर्मन की पुत्री थी। परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि उसका विवाह दत्तदेवी से दक्षिण भारत के अभियान के समय हुआ होगा। एरण अभिलेख में कहा गया है कि समुद्रगुप्त के अनेक पुत्र और पौत्र थे, जिनमें रामगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख ही अभिलेखों और साहित्यिक कृतियों में मिलता है।

प्रयाग प्रशस्ति में चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा समुद्रगुप्त को भरी सभा में राज्य प्रदान करने का वर्णन किया गया है। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार 338 और 345 ई0 के मध्य चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को राज्य सौंपा होगा। रमेश चन्द्र मजूमदार के अनुसार समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की

तारीख 340 से 350 ई० के मध्य मानी जा सकती है। हेरास तथा रैप्सन आदि इतिहासकारों का मानना है कि यद्यपि चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, किन्तु उसको सिंहासन प्राप्ति के लिए भाईयों से युद्ध लड़ना पड़ा था। समुद्रगुप्त के सिक्कों से मिलते सोने के कुछ सिक्कों पर 'काच' नाम अंकित है। कुछ विद्वानों के अनुसार काच समुद्रगुप्त का भाई था, जिसके साथ उसे राजसत्ता पाने के लिए संघर्ष करना पड़ा।

2.5 साम्राज्य विस्तार—

समुद्रगुप्त गुप्त वंश का एक महान सेनानायक, कुशल राजनीतिज्ञ तथा अजेय योद्धा समझा जाता है। अपनी विजयों के द्वारा उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। प्रयाग प्रशस्ति में उसे 'धरणि—बन्ध' कहा गया है, जिसका अर्थ भारत का एकराट् सम्राट बनने से था। सिंहासन पर बैठते ही उसने दिग्विजय की योजना बनाई। वह विविध प्रकार की युद्धकलाओं का ज्ञाता था एवं उसने सैकड़ों युद्धों में भाग लिया था (**विविधसमरशतावतरणदक्षस्य**)। जैसा आपको पहले बताया जा चुका है, उसकी विजयों का विस्तृत वर्णन प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है।

2.5.1 आर्यावर्त का प्रथम अभियान

प्रयाग प्रशस्ति की तेरहवीं तथा चौदहवीं पंक्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने अच्युत, नागसेन, ग तथा कोतकुलज को पराजित किया था। अच्युत को अहिच्छत्र (बरेली) का नागवंशी शासक, नागसेन को पद्मावती (ग्वालियर) का शासक, ग (गणपतिनाग) को विदिशा आथवा मथुरा का शासक, कोतकुलज को पुष्यपुर (कन्नौज) का शासक माना जाता है। यह सभी नाग वंश के शासक थे। इन राजाओं पर विजय को आर्यावर्त का प्रथम अभियान कहा जाता है।

काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार इन राजाओं के संघ ने समुद्रगुप्त पर आक्रमण किया था और यह युद्ध कौशाम्बी में हुआ था।

2.5.2 दक्षिणापथ अभियान

प्रयाग प्रशस्ति की उन्नीसवीं और बीसवीं पंक्ति में समुद्रगुप्त के दक्षिण राज्यों पर अभियान का वर्णन है, इसके अनुसार उसने महाकान्तार का व्याघ्रराज, कोराल का मण्टराज, पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, कोट्टूर का स्वामिदत्त, एरण्डपल्ल का दमन, कांची का विष्णुगोप, अवमुक्त का नीलराज, वेंगी का हस्तिवर्मा, पालक का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर तथा कुस्थलपुर का धनन्जय को पराजित किया था।

यह राज्य उसके राज्य के दक्षिण में आधुनिक मध्यप्रदेश के एरण (सागर) एवं डभाल (जबलपुर) से लेकर कांची तक स्थित थे। इन राजाओं को पराजित करने के बाद समुद्रगुप्त ने उन्हें कृपापूर्वक छोड़ दिया था। उसकी इस नीति को प्रयाग प्रशस्ति की बीसवीं पंक्ति में दया दिखाते हुए मुक्त कर देना (मोक्षानुग्रह) कहा है। पलीट के अनुसार समुद्रगुप्त दक्षिण से लौटते समय पश्चिमी तटवर्ती राजाओं को विजित करते हुए राजधानी पहुँचा होगा। इसके विपरित इतिहासकार द्रुबिया का मानना है कि समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ अभियान के समस्त विजित प्रदेश पूर्वी तट पर थे और वह उसी मार्ग से वापिस आया। पश्चिमी घाट पर वाकाटक राज्य कर रहे थे, जिनसे संघर्ष से बचने के लिए समुद्रगुप्त पूर्वी घाट से ही वापस आ गया था।

2.5.3 आर्यावर्त का द्वितीय अभियान

दक्षिणापथ विजय के बाद हरिषेण पुनः आर्यावर्त के नौ राजाओं का उल्लेख करता है, जिन्हें समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। यह नौ राजा थे—

रुद्रदेव, मतिल, नन्दि नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, बलवर्मा।

इनमें से गणपतिनाग, नागसेन एवं अच्युत के नाम का प्रथम आर्यावर्त युद्ध में भी उल्लेख है। शेष नाम नए हैं और उनके विषय में पर्याप्त जानकारी का अभाव है। इतिहासकार रैप्सन के अनुसार ये पुराणों में उल्लिखित नव नाग हैं। समुद्रगुप्त के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले गरुड़ चिह्न से भी सिद्ध होता है कि उसने इन नाग राजाओं को पराजित किया होगा।

प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त में इन राजाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य राजाओं को भी पराजित किया था (अनेकार्यावर्त-राज-प्रसभोद्धारण)।

2.5.4 आटविक राज्य

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त द्वारा वन प्रदेश पर विजय का उल्लेख है, उसने वन प्रदेश के समस्त राजाओं को अपना दास बनाया (परिचायकीकृतसर्वाटविकराज्यस्य)। इतिहासकार फ्लीट के अनुसार यह वन प्रदेश गाजीपुर से जबलपुर तक विस्तृत था। कुछ विद्वान मानते हैं कि आर्यावर्त के प्रथम युद्ध के पश्चात जब समुद्रगुप्त दक्षिणापथ की विजय के लिए जा रहा था, तो उसने मार्ग में पड़ने वाले वन प्रदेशों के राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने को विवश किया होगा। परन्तु हरिषेण ने इनका उल्लेख आर्यावर्त के द्वितीय युद्ध के पश्चात तथा पूर्वी अभियान से पहले किया है। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार आटविक राज्यों का तात्पर्य उन्हीं राज्यों से होगा जो आर्यावर्त और पूर्वी सीमान्त प्रदेशों के मध्य रहे होंगे।

2.5.5 सीमान्त प्रदेश

समुद्रगुप्त ने आन्तरिक क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के पश्चात सीमान्त प्रदेश की विभिन्न जातियों पर ध्यान दिया। प्रयाग प्रशस्ति में पूर्वी और पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों का अलग-अलग उल्लेख किया गया है।

'क' पूर्वी सीमान्त प्रदेश- 1. समतट - पूर्वी बंगाल का समुद्रतटीय प्रदेश

2. डवाक- सम्भवतः ढाका एवं चटगाँव जिले

3. कामरूप- वर्तमान आसाम

4. नेपाल

5. कूर्तपुर- कुमाँऊ, गढ़वाल एवं रुहेलखण्ड का कुछ भाग

इन पाँच राज्यों के बाद 'आदि' शब्द का उल्लेख है, जिससे लगता है कि कुछ अन्य छोटे राज्य भी होंगे। यह प्रदेश राजतन्त्रात्मक थे।

'ख' पश्चिमी सीमान्त प्रदेश- प्रयाग प्रशस्ति में पश्चिमी सीमा के नौ जातियों के राज्यों का उल्लेख किया गया है। -

1. मालव- यह गुप्तों के समय मन्दसौर पर राज्य करते थे तथा पंजाब से आए थे। इनकी मुद्राओं में 'मालवानां जयः' तथा 'मालवगणस्य जयः' लिखा मिलता है।

2. यौधेय-यह हरियाणा में रहते थे और इनकी मुद्राओं में 'बहुधान्यक यौधेयानाम' अंकित मिला है।

3. अर्जुनायन- यह अलवर और भरतपुर में रहते थे, जहाँ इनकी 'अर्जुनायनानां जयः' अंकित मुद्राएं प्राप्त हुयी हैं।

4. माद्रक- यह यौधेयों के उत्तर में थे तथा इनकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी।

5. आभीर- यह मध्यप्रदेश के पार्वती और बेतवा नदी के बीच में आहीरवाड़ा में रहते थे।

6. प्रार्जुन- इसकी राजधानी मध्यप्रदेश में नरसिंहपुर या नरसिंहगढ़ थी।

7. सनकानीक-इनका राज्य भिलसा के पास था।

8. काक- यह सनकानीक के पड़ोस में थे।

9. खरपरिक— यह मध्यप्रदेश के दमोह में बसे थे।

इन जातियों के अन्त में भी 'आदि' शब्द लगा हुआ होने से विद्वान मानते हैं कि इनके साथ कुछ अन्य जातियां भी होंगी। यह सभी गणतन्त्रात्मक राज्य थे।

2.5.6 विजित प्रदेशों के प्रति नीति

समुद्रगुप्त ने विजित राज्यों के प्रति अलग-अलग नीति अपनायी। आर्यावत के राज्यों का उसने पूर्ण उन्मूलन करके उन पर अधिकार कर लिया और अपने साम्राज्य का विस्तार किया। आर्यावत के राज्यों के विपरीत दक्षिणापथ के राज्यों को उसने कृपापूर्वक छोड़ दिया। उसकी दक्षिण विजय की नीति ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह(राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) पर आधारित थी। यह प्रतीत होता है कि सुदूर राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने में व्यवहारिक बाधाएँ आ सकती हैं, ऐसा सोचकर उसने दक्षिणापथ के राज्यों पर अधिकार नहीं किया। उसके दक्षिणापथ अभियान का उद्देश्य आर्थिक भी हो सकता था। पूर्वी घाट पर स्थित राज्यों के राजाओं का राजकोष सम्पन्न रहा होगा और समुद्रगुप्त उस कोष को प्राप्त करने के लिए ही दक्षिण गया होगा। दक्षिण के पश्चिमी घाट में वाकाटक शासकों के साथ उसने कोई संघर्ष नहीं किया, इससे प्रतीत होता है कि गुप्तों और वाकाटकों के मध्य कोई अनाक्रमण सन्धि रही होगी, जो कालान्तर तक चलती रही थी।

आटविक राज्यों को उसने अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। उसकी विजयों ने अन्य स्वतन्त्र जातियों और सीमान्त प्रदेश के राजाओं को भयभीत कर दिया था। इन सीमान्त राज्यों ने उसे कर प्रदान करके, उसकी आज्ञा का पालन करके, उसके प्रति विनीत भाव धारण करके तथा समय-समय पर समुद्रगुप्त की राजसभा में उपस्थित होकर समुद्रगुप्त को प्रसन्न किया।

इस प्रकार उसने नीति निपुणता का परिचय दिया। उसने विभिन्न प्रदेशों के लिए भिन्न-भिन्न नीतियों को अपनाया, जो उसकी सबसे बड़ी दूरदर्शिता थी।

2.5.7 विदेशी राज्यों से सम्बन्ध

हरिषेण ने कुछ विदेशी शासकों का भी उल्लेख किया है, जो समुद्रगुप्त की विजयों से भयभीत हो गए थे। उन्होंने विभिन्न कार्यों द्वारा समुद्रगुप्त को सन्तुष्ट किया। इनमें सीमान्त राज्यों के आगे भारत के उत्तर पश्चिम के विदेशी राज्य— शक , दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि (सम्भवतः कुषाणों के उत्तराधिकारी), मुरुण्ड (सम्भवतः अफगानिस्तान के शासक) तथा दक्षिण में सिंहल द्वीप (श्रीलंका) एवं सर्वद्वीप वासी (द0पूर्वी एशिया के द्वीप) थे। सिंहल द्वीप (श्रीलंका) के शासक मेघवर्ण के साथ उसके मैत्री सम्बन्ध के अन्य प्रमाण भी मिलते हैं, जिनके अनुसार मेघवर्ण ने बोधगया में सिंहल के भिक्षुओं की सुविधा हेतु एक बौद्ध विहार बनाने की अनुमति मांगी थी। समुद्रगुप्त ने सहर्ष अनुमति दे दी थी और इसके बदले उसे सिंहल शासक मेघवर्ण ने अनेक बहुमूल्य उपहार भेंट में दिए थे।

हरिषेण के अनुसार इन विदेशी राज्यों ने समुद्रगुप्त के सम्मुख प्रत्यक्ष उपस्थित हो अपनी श्रद्धा भक्ति का निवेदन करके, अपनी पुत्रियों का विवाह उसके राजवंश में करके तथा गरुड़ अंकित मुद्राओं और आज्ञापत्रों का प्रयोग करके अपनी सेवा प्रदान की और उसकी प्रभुता स्वीकार की। विदेशी राज्यों के सम्बन्ध में हरिषेण का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है , तथापि यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन विदेशी राज्यों के साथ समुद्रगुप्त के मैत्री सम्बन्ध रहे होंगे।

अपनी दिग्विजय के परिणामस्वरूप उसने अश्वमेघ यज्ञ भी किया, जिसके विषय में उसके सिक्कों और उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों से ज्ञात होता है।

2.6 मूल्यांकन

समुद्रगुप्त एक शक्तिशाली शासक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। भारत के विशाल क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के बावजूद उसने उत्तर भारत के राज्यों को ही अपने केन्द्रीय शासन के अधीन रखा। उसने दूरस्थ विजित क्षेत्रों को अपने सीधे नियन्त्रण में करने का प्रयास नहीं किया,

जो उसकी दूरदर्शिता को प्रकट करता है। उसने उत्तरी भारत को मजबूत केन्द्रीय शासन से एकता प्रदान कर एक महान साम्राज्य की नींव रखी। उसकी सफलता उसके सैनिक अभियानों का परिणाम थी। उसके अभिलेखों एवं सिक्कों में शत समर आदि शब्दों द्वारा उसकी निरन्तर युद्ध रतता का वर्णन किया गया है। सिक्कों में उसके लिए अप्रतिरथ, कृतान्त परशु, व्याघ्र पराक्रम, पराक्रमांक आदि विरुद्धों का प्रयोग किया गया है। इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने उसे भारतीय नेपोलियन की संज्ञा दी है।

समुद्रगुप्त महान सेनानायक, कुशल राजनीतिज्ञ और शक्तिशाली शासक होने के साथ-साथ साहित्य और कला का ज्ञाता भी था। उसके सिक्कों में उसे वीणा बजाते हुए दिखाया गया है। प्रयाग प्रशस्ति में उसे कविराज और शास्त्रतत्वज्ञ आदि कहा गया है। उसके द्वारा चलाये गए सोने के सिक्कों की कलात्मक बनावट भी उसकी कलात्मक अभिरुचि को प्रकट करती है।

प्रयाग प्रशस्ति में उसे विद्वानों का महान संरक्षक बताया गया है। प्रयाग प्रशस्ति का लेखक हरिषेण उसका दरबारी कवि था। बौद्ध अभिलेखों से भी पता चलता है कि उसने बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को अपना मंत्री नियुक्त किया था। अभिलेखों में उसकी दानशीलता और दयालुता का भी वर्णन किया गया है।

समुद्रगुप्त ने लगभग तीस वर्ष शासन किया। मथुरा स्तम्भ लेख में उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय की राज्यारोहण की तिथि गुप्त संवत् 56 (375 ई०) की गयी है। इससे पूर्व रामगुप्त ने भी कुछ वर्ष शासन किया। इस आधार पर परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि समुद्रगुप्त ने लगभग 370 ई० से 375 ई० के मध्य तक शासन किया। इस प्रकार उसका राज्यकाल 338 या 345 ई० से प्रारम्भ होकर 370 या 375 ई० तक माना गया है।

2.7 सारांश

गुप्त वंश के शासकों में समुद्रगुप्त एक शक्तिशाली सेनानायक और साम्राज्यवादी शासक के रूप में प्रसिद्ध है। चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के पुत्र होने के कारण उत्तर भारत के दो प्रमुख वंशों गुप्त और लिच्छवी वंश का राज्य उसे उत्तराधिकार में मिला था, जिसका अपनी विजयों द्वारा विस्तार करने के साथ-साथ उसे संगठित और सुरक्षित करने का महान कार्य भी समुद्रगुप्त ने किया। समुद्रगुप्त के दिग्विजय और व्यक्तित्व के बारे में प्रमुख स्रोत प्रयाग प्रशस्ति और उसके द्वारा चलाये गए सिक्के हैं। समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय से भारत की विलुप्त एकता की पुनः स्थापना की। उसकी दिग्विजय के तीन प्रमुख परिणाम हुए— 1. साम्राज्य स्थापना— गुप्त साम्राज्य में आर्यावर्त और मध्य प्रदेश प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित हो गए। 2. प्रभाव क्षेत्र की स्थापना—उसके साम्राज्य से अधिक विस्तृत उसका प्रभाव क्षेत्र था, जिसमें दक्षिणपथ तथा पूर्व और पश्चिम के सीमान्त प्रदेश थे, जो उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। 3. मैत्री क्षेत्र— विदेशी शासकों से उसके मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए थे। महान विजेता होने के साथ-साथ समुद्रगुप्त साहित्य, कला और संगीत का ज्ञाता और संरक्षक भी था।

समुद्रगुप्त ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए सांस्कृतिक, बौद्धिक और भौतिक सम्पन्नता से पूर्ण एक विस्तृत साम्राज्य की नींव रखी।

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर

1. प्रयाग प्रशस्ति के लेखक का नाम बताइए?
2. समुद्रगुप्त के सिक्कों की विशेषता बताइए?
3. प्रथम आर्यावर्त युद्ध में पराजित शासक किस वंश के माने जाते हैं?
4. समुद्रगुप्त के माता-पिता का प्रयाग प्रशस्ति की किस पंक्ति में उल्लेख किया गया है?
5. रिक्त स्थान भरो।—
क. आर्यावर्त के द्वितीय युद्ध में कुल राजाओं का उल्लेख है।

ख. द्रुबिया के अनुसार दक्षिणापथ का अभियान केवलघाट के राजाओं के विरुद्ध हुआ।

उत्तर—

1. हरिषेण
2. समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के 7.65–7.77(118–120 ग्रेन) के हैं। इनमें दण्डधारी, अश्वमेध, व्याघ्र निहन्ता, धनुर्धर, वीणवादक आदि सिक्के प्रमुख हैं। इन पर दूसरी ओर देवी के विभिन्न रूप जैसे सिंहासनासीन देवी, मंचासीन देवी, चामरधारिणी देवी, जल में मकर के साथ देवी आदि का अंकन है। सिक्कों पर बाँयी ओर समुद्र अथवा समुद्रगुप्त लिखा है। साथ ही अश्वमेध पराक्रमः, व्याघ्र पराक्रमः, अप्रतिरथः, कृतान्तपरशु आदि लेख भी अंकित हैं।
3. नाग वंश
4. अठाईसवें एवं उन्तीसवें श्लोक में
क. नौ
ख. पूर्वी घाट

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रायचौधरी, हेमचन्द्र—पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियेंट इंडिया, नई दिल्ली, 1996
2. स्मिथ, विन्सेंट—अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आक्सफोर्ड, 192
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल—गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011
4. मजूमदार, रमेशचन्द्र एवं अल्लेकर, ए.एस.— सम्पादित द वाकाटक—गुप्त एज़, दिल्ली, 1946
5. बनर्जी, राखाल दास— द एज़ ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज़, वाराणसी, 1933

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1. मजूमदार, रमेश चन्द्र—श्रेण्य युग, नई दिल्ली, 1984
2. उपाध्याय, वासुदेव— गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
3. थापर, रोमिला— भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
4. शर्मा, रामशरण—प्रारम्भिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
5. झा, द्विजेन्द्र नाथ एवं श्रीमाली, के.एम.— प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1994

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित समुद्रगुप्त की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. समुद्रगुप्त की आर्यावर्त विजयों का उल्लेख करते हुए उनके प्रति उसकी नीति पर प्रकाश डालिए।
3. समुद्रगुप्त की दक्षिण विजय पर विस्तार से लिखिए।
4. समुद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार का उल्लेख करते हुए बताइए कि उसने विजित राज्यों के प्रति क्या नीति अपनायी।
5. समुद्रगुप्त के समकालीन विदेशी शासकों से सम्बन्धों पर टिप्पणी लिखिए।

चन्द्रगुप्त द्वितीय एवम उसकी उपलब्धियां

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई प्राप्ति के उद्देश्य

3.3. चन्द्रगुप्त द्वितीय 375-414ई०

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.4 चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के स्रोत

3.4.1 साहित्यिक स्रोत

3.4.2 पुरातात्विक स्रोत

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.5 सिंहासनारोहण के समय चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्रारम्भिक कठिनाइयां

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.6. चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियां

3.6.1 अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक संबन्ध

3.6.2 चन्द्र गुप्त द्वितीय की दिग्विजयें (Conquests of Chandragupta II)

3.6.3 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण

3.6.4 चन्द्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार एवम मुख्य नगर

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.7 फ़ा-ह्यान (Fa-hein, 399-411ई०) द्वारा वर्णित भारत

3.7.1 फ़ा-ह्यान के वृतांत के अनुसार चन्द्रगुप्त की शासन की शासन व्यवस्था

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.8 सारांश

3.9 तकनीकी शब्दावली

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्त काल का श्रेष्ठ स्थान है। कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात भारत में कई वर्षों तक सर्वत्र राजनैतिक अव्यवस्था एवम अस्थिरता फैल गई थी। इस कारण लगभग 120 वर्षों का इतिहास अंध युग के नाम से जाना जाता है। इस स्थिति को समाप्त करने का कार्य गुप्त शासकों ने किया। गुप्तों के शासन के अंतर्गत भारत ने राजनैतिक एकता और आर्थिक समृद्धि पुनः महसूस किया। जीवन के प्रत्येक

क्षेत्र में अतिशय प्रगति के दर्शन हुए। इन्हीं कारणों से इतिहासकारों ने गुप्त काल को प्राचीन भारत का 'स्वर्ण काल' या 'क्लासिक युग' की संज्ञा प्रदान की है।

इस अध्याय के अंतर्गत आप चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन परिचय, प्रारम्भिक कठिनाइयों, उसकी कूटनीतिक योग्यता, उसकी विजयों, साम्राज्य विस्तार एवं शासन प्रबन्ध तथा फ़ाह्यान के यात्रा-वृत्तांत का अध्ययन करेंगे।

3.2 इकाई प्राप्ति के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित विषयों के बारे में जानने योग्य हो जायेंगे-

- चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन इतिहास जानने के स्रोतों के संबन्ध में
- चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन परिचय एवम उसकी राजनैतिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में
- चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा किये गये साम्राज्य विस्तार
- वैवाहिक सम्बन्धों की नीति से चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा प्रभाव विस्तार के संबन्ध में
- फ़ाह्यान द्वारा वर्णित तत्कालीन भारत की स्थिति एवम शासन व्यवस्था के संबन्ध में

3.3. चन्द्रगुप्त द्वितीय (Chandragupta II, 375-414ई०)

चन्द्रगुप्त द्वितीय गुप्त राजवंश का दूसरा महान शासक एवम भारत के योग्यतम शासकों में से एक था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ही इतिहास में चन्द्रगुप्त 'विक्रमादित्य' के नाम से भी ख्याति प्राप्त है। उसका अन्य नाम 'देवगुप्त', 'देवराज', 'देवश्री' भी थे। वह समुद्रगुप्त का पुत्र था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात 375 ई० में चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई रामगुप्त गद्दी पर बैठा। वह एक कमजोर शासक था। चन्द्रगुप्त द्वारा वह मारा गया और इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने सिंहासन छीन लिया। किन्तु ऐतिहासिक रूप से रामगुप्त की इस कथा पर अभी भी संदेह है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय गुप्त वंश का पहला शासक है जिसके राज्यारोहण की तिथि निश्चित रूप से 376-77ई० के रूप में ज्ञात है। इसके कई अभिलेखीय प्रमाण भी उपलब्ध हैं। इस बात के भी प्रमाण हैं कि अपने अनेक पुत्रों और प्रपौत्रों में से समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को अपने जीवनकाल में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। तत्कालीन शिलालेखों में 'तत्परिगृहीत' शब्द पाया जाता है। जिसका तात्पर्य है कि-चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त द्वारा अपने साम्राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

I. चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यारोहण की तिथि बताइये।

II. चन्द्रगुप्त द्वितीय के पिता का क्या नाम था?

2-चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन परिचय पर संक्षिप्त लेख लिखें।

3.4 चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के स्रोत

चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के अनेकों स्रोत उपलब्ध हैं, जिनको मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

- साहित्यिक स्रोत
- पुरातात्विक स्रोत

3.4.1 साहित्यिक स्रोत

- साहित्यिक स्रोतों में सर्वोपरि चीनी यात्री फ़ाह्यान का यात्रा वृत्तांत है। **फ़ाह्यान के संस्मरण का नाम 'फो-क्यो-की' है।** यद्यपि वह बौद्ध धर्मानुयायी था और बुद्ध के जीवन से जुड़े स्थानों के भ्रमण के लिये भारत आया था किन्तु उसके विवरण से हमें 405 ई० से लेकर 411 ई० तक के भारत के इतिहास का पता चलता है। विशेषकर चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन इतिहास जानने का यह सबसे महत्वपूर्ण समकालीन अधिकारिक स्रोत है।
- दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत है पुराण- जिनमें मुख्यतया वायु पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण और ब्राह्मण पुराण हैं।
- धर्मशास्त्र-नारद स्मृति, बृहस्पति-स्मृति और कमाण्डक नीति-शास्त्र
- इनके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक स्रोत नाटक और काव्य के रूप में उपलब्ध हैं। 'विशाखदत्त' द्वारा रचित नाटक 'देवी चन्द्रगुप्त' तथा 'मुद्राराक्षस' से हमें चन्द्रगुप्त कालीन प्रमुख घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।
- इतिहासकारों (ए०बी० कीथ, ए०ए०मेकडोनल, विसेंट स्मिथ, हेमचन्द्र रायचौधरी, राधाकुमुद मुखर्जी, तथा पी०एल० गुप्त) की बहुमत धारणा के अनुसार कालिदास गुप्तकाल और चन्द्रगुप्त द्वितीय के संरक्षकत्व में रहे। इस आधार पर पी०एल० गुप्त का मानना है कि कालिदास की रचनाओं- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, माल्विकाग्निमित्रम्, रघुवंशम् में उस युग के लोक-जीवन का प्रतिबिम्ब सुगमता से देखा जा सकता है।

3.4.2 पुरातात्विक स्रोत

पुरातात्विक स्रोतों में सिक्के और पत्थर, ताँबे और लोहे पर अंकित अभिलेख, सील और मुहरें तथा स्मारकों के द्वारा हम तत्सामयिक इतिहास की जानकारी प्राप्त करते हैं।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल के सोने, चाँदी, ताँबे और सीसे के अनेकों **सिक्के** प्राप्त हैं। ज्ञातव्य है कि चाँदी के सिक्कों का प्रारम्भ चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में ही हुआ। चन्द्रगुप्त ने कई प्रकार के सिक्के चलाये। धनुर्धर प्रकार, सिंहासन प्रकार, छत्र प्रकार, सिंह घातक प्रकार और घुड़सवार प्रकार।

- धनुर्धर प्रकार के सिक्कों का मुद्रा लेख है- “ देव श्री महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः”। मुख भाग पर गरुड़ है और पृष्ठ भाग पर लक्ष्मी।
- सिंहासन प्रकार के सिक्कों पर मुद्रा लेख हैं-‘रूपकृत’ और ‘विक्रमादित्यस्य’।

- छत्र प्रकार के सिक्कों पर एक बौने का चित्र है जिसने राज-छत्र उठा रखा है।
- सिंह-घातक प्रकार के सिक्कों पर मुद्रा-लेख है-राजा को सिंह विक्रम कहा गया है।

चन्द्रगुप्त द्वारा पश्चिमी छत्रों की विजय का निर्णय सिक्कों से ही किया गया है। उन सिक्कों पर दी गई तिथियों से ही विजय का काल भी निश्चित किया गया है। पश्चिमी क्षत्रों के सिक्कों की अन्तिम तिथि संवत् 370 या 388 ई० है। इसी अवधि में पश्चिमी छत्रों की विजय का कार्य संपूर्ण किया गया।

इतिहास जानने के स्रोतों के रूप में **अभिलेखों** का महत्वपूर्ण स्थान है। ये पत्थर और लौह स्तम्भ के रूप में तथा शिलालेख और ताम्रलेख के रूप में उपलब्ध हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजकाल के अब तक 7 अभिलेख प्राप्त हैं। उनमें से एक राप्रशस्ति है तथा अन्य निजी दानोल्लेख हैं।

दिल्ली से 14कि०मी० दूर स्थित 'मेहरौली में स्थित लौह स्तंभ', उदयगिरि गुहाभिलेख (मध्य प्रदेश), 'साँची' (विदिशा, मध्य प्रदेश) और 'बसरा' के अभिलेखों से हमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

तत्कालीन **मुहरें** भी इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की गवाह होती हैं। हमें चन्द्रगुप्त कालीन बहुत सी धातु व मिट्टी की मुहरें भी प्राप्त हैं।

बनारस, मथुरा और नालन्दा से अनेक गुप्त कालीन कलाकृतियों के नमूने प्राप्त हैं। **स्मारक** विशेषकर मंदिर, मूर्तियाँ और दीवारों पर अंकित चित्र निःसंदेह हमें तत्सामयिक इतिहास की जीवन्त एवम बहुउपयोगी जानकारी प्रदान करते हैं।

नोट: प्राचीन इतिहास के छात्रों को विषय की गहन जानकारी हेतु अथवा शोध में रुचि हो तो विभिन्न संग्रहालयों जैसे कलकत्ता स्थित 'इन्डियन म्युजियम', मथुरा संग्रहालय इत्यादि, एवम ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण करना चाहिये।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- I. फ़ाह्यान के संस्मरण का नाम क्या है?
- II. नाटक 'देवी चन्द्रगुप्त' तथा 'मुद्राराक्षस' किसकी रचना है?
- III. 'इन्डियन म्युजियम' भारत के किस राज्य में स्थित है?

2-निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

- I. चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के पुरातात्विक स्रोत
- II. 'मेहरौली का लौह स्तंभ लेख,

3. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

- I. चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के स्रोतों का विश्लेषण कीजिये।

3.5 सिंहासनारोहण के समय चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यारोहण के समय देश की राजनैतिक स्थिति असंतोषजनक थी। उसके पिता समुद्रगुप्त ने एक विशाल गुप्त साम्राज्य स्थापित किया था। उसने उत्तर में कुछ राज्यों को विजित करके उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया था। समुद्रगुप्त एक व्यावहारिक साम्राज्यवादी था। वह समझता था कि संपूर्ण भारत को एक शासक के अधीन रखना संभव नहीं होगा। अतः उसने दक्षिण तथा सीमांत क्षेत्रों के कई राज्यों को अधीनता स्वीकार करने की शर्त पर उनके राज्य वापस कर दिये थे। इस प्रकार अपने शासनकाल में समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य और उससे भी अधिक प्रभाव क्षेत्र स्थापित किया।

किन्तु समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त साम्राज्य की राजनैतिक स्थिति पतनोन्मुख हो गई। 'शकों' की शक्ति और प्रभाव बढ़ने लगा। केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होने के साथ-साथ प्रान्तीय शासक अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने लगे। चूंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय एक महत्वाकांक्षी शासक था और अपने पिता की तरह ही साम्राज्य विस्तार की उसकी महत्वाकांक्षा थी। अतः इन स्थितियों का सामना उसको करना था। शकों तथा अन्य जनजातीय शक्तियों की बढ़ती ताकत को दबाना दूसरी समस्या थी।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यारोहण के साथ ही उसे अनेकों समस्याओं का सामना करना था। **बिखरते साम्राज्य को एकता के सूत्र में पिरोना तथा राज्य में कानून और व्यवस्था बनाये रखना सर्वप्रमुख समस्या थी।**

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1-निम्न लिखित विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

1-सिंहासनारोहण के समय चन्द्रगुप्त द्वितीय के समक्ष कौन-कौन सी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थीं?

3.6. चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ

3.6.1 अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक संबंध

चन्द्रगुप्त द्वितीय एक महान विजेता के साथ-साथ एक कुशल कूटनीतिज्ञ के गुणों से युक्त था। अपने समय की शक्तियों को अपने नियंत्रण में लाने के लिये उसने मात्र सैन्य शक्ति का प्रयोग ही नहीं किया अपितु वैवाहिक संबंधों की कूटनीति से भी काम लिया। उसने उन अधीन राज्यों से, जो असंतुष्ट या शक्तिसंपन्न थे, वैवाहिक संबंधों द्वारा अपना मित्र बना लिया।

यहाँ आप यह जान लें वैवाहिक संबंधों के द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ या सुरक्षित बनाने की नीति कोई नयी नहीं थी। इससे पूर्व भी गुप्त वंश के लगभग सभी महत्वपूर्ण राजाओं ने अपनी वैदेशिक नीति में वैवाहिक संधियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

उदाहरण के तौर पर आप देखें कि लिच्छवी वंश में चन्द्रगुप्त प्रथम के विवाह से उसकी स्थिति सुदृढ़ हुई। आर्यावर्त की विजय के पश्चात गुप्त राजाओं ने अन्य राजवंशों से भी वैवाहिक संबन्ध स्थापित करने की चेष्टा की, जिससे गुप्त साम्राज्य को सुदृढ़ किया जा सके और नये प्रदेशों की विजय के लिये भी संभावना बन जाये। उसी प्रकार समुद्रगुप्त ने कुषाण तथा अन्य शासकों से कन्याओं को उपहार स्वरूप स्वीकार किया तथा शक और कुषाण वंश से मैत्री संबन्ध स्थापित किये।

इस संबन्ध में 'डा० हेमचन्द्र राय चौधरी' का मत है- **“वैवाहिक संबन्ध बनाना गुप्तों की विदेश नीति का महत्वपूर्ण अंग बन गया था। अतः वैवाहिक संबन्धों की यह नीति चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जारी रखी।”**

चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन नागवंश देश की महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली शक्ति बन गई थी। अतएव उसने नागवंश की राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया। इसके साक्ष्य हैं कि इस विवाह से गुप्त राजवंश की स्थिति सुदृढ़ हुई। कुबेरनागा ने एक पुत्री प्रभावती गुप्ता को जन्म दिया। प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय से किया गया। इतिहासकार 'डा० स्मिथ' का मत है कि “वाकाटक राजा की भौगोलिक स्थिति गुप्त शासकों के लिये बड़े महत्व की थी। चन्द्रगुप्त ने बुद्धिमत्तापूर्वक, सावधानी के रूप में अपनी पुत्री वाकाटक शासक को दे दी और उसकी अधीनस्थ मैत्री प्राप्त कर ली।” रुद्रसेन द्वितीय का राज्य काल बहुत अल्प था। उसकी मृत्यु के पश्चात प्रभावती गुप्ता को उसके अवयस्क पुत्रों दिवाकरसेन तथा प्रवरसेन द्वितीय की संरक्षिका नियुक्त किया गया। इससे वाकाटक दरबार में गुप्त सम्राट का प्रभाव बढ़ गया। लगभग 390 ई० से 410 ई० तक प्रभावती गुप्ता ही वाकाटक राज्य की शासिका थी। इस अवसर का लाभ उठाकर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी क्षत्रपों को परास्त करके उनके राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इतिहासकारों का मत है कि कुन्तल के कादम्ब शासक काकुत्स्थवर्मा की पुत्रियों के विवाह गुप्त शासकों से हुए। भोज तथा क्षेमेन्द्र ने कहा है कि विक्रमादित्य ने एक दूत मंडल कुन्तल भेजा।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वैवाहिक मित्रता की नीति के द्वारा चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। ये सभी वैवाहिक संबन्ध राजनैतिक महत्व के और गुप्त सम्राज्य को दृढ़ करने वाले थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ था।

3.6.2 चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजयें (Conquests of Chandragupta II)

यद्यपि समुद्रगुप्त अपने उत्तराधिकारी के लिये एक विस्तृत साम्राज्य छोड़ गया था, तथापि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने साम्राज्य विस्तार हेतु कई युद्ध किये।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजयों का सबसे महत्वपूर्ण एवं अधिकारिक स्रोत 'मेहरौली का लौह स्तम्भ लेख' माना गया है। इस पर संक्षिप्त किन्तु काव्यमय वर्णन पाया जाता है। यद्यपि इस पर उत्कीर्ण 'चन्द्र' का संबन्ध किससे है, इस संबन्ध में इतिहासकारों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। 'डा० आयंगर' के मतानुसार- 'चन्द्र' का तात्पर्य चन्द्रगुप्त प्रथम से है जबकि 'राखाल दास बनर्जी' तथा 'डा० हर प्रसाद शास्त्री' का मत है कि मेहरौली स्तम्भ के 'चन्द्र' का तात्पर्य पुशरमान (जोधपुर) के राजा चन्द्रवर्मन से है। किन्तु चन्द्रवर्मन एक प्रान्तीय और कम प्रसिद्ध राजा था। 'विन्सेंट स्मिथ' सहित अनेक इतिहासकारों का मत है कि 'चन्द्र' गुप्त

वंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय की ओर संकेत करता है। इस प्रकार अब तक हुए शोध से यह स्पष्ट है कि इस स्तम्भ के 'चन्द्र' का तात्पर्य चन्द्रगुप्त द्वितीय से ही है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयों की विवेचना निम्नलिखित रूपों में की जा सकती है।

a) गणराज्यों का विनाश

उस समय पश्चिमोत्तर भारत में कुषण और अवन्ति के महाक्षत्रपों के बीच मद्र-गण से लेकर खरपरिक-गण तक बहुत से छोटे-छोटे गणराज्य थे। स्वतंत्रता प्रेमी होने के कारण ये गणराज्य असंगठित थे। किन्तु सैन्य दृष्टि से इतने दुर्बल थे कि किसी संगठित विदेशी आक्रमणकारी का सामना नहीं कर सकते थे। चन्द्रगुप्त ने इनकी दुर्बलता का पूरा लाभ उठाया। अपने विजय अभियान का पहला निशाना चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इन्हीं गणराज्यों को बनाया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि में मिले हुए उत्कीर्ण लेखों से पता चलता है कि मध्यभारत की ओर विजय के प्रयोजन से चन्द्रगुप्त गया हुआ था। (फ़लीट: गुप्त अभिलेख, संख्या-11 “ कृत्स्नापृथ्वी-जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः”) इस घटना के बाद भारत के इतिहास में गणराज्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। डा० राजबली पाण्डेय का मत है कि चन्द्रगुप्त न केवल 'शकारि' अपितु 'गणारि' भी था।

b) अवन्ति के क्षत्रपों का अन्त

मध्यभारत के गणराज्यों का विनाश करने के बाद चन्द्रगुप्त ने अपना विजय अभियान जारी रखा तथा अवन्ति के क्षत्रपों का विनाश किया। रुद्रसिंह तृतीय के 388 ई० तक के सिक्के मिलते हैं। इसके बाद का कोई सिक्का नहीं मिलता। वह अन्तिम क्षत्रप था जिसका.....यह घटना संभवतः 395 से 400 ई० के बीच घटी। क्षत्रप सिक्कों का अनुकरण कर चन्द्रगुप्त ने मालवा में अपने चाँदी के सिक्के चलाये।

c) बंगाल (पूर्वी प्रत्यान्त /सीमावर्ती राज्यों) की विजय-

मेहरौली लौह स्तम्भ से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् पूर्वी भारत में स्थित गुप्त वंश के शत्रु राजे फिर से एकजुट होने लगे थे। जिनमें बंगाल प्रांत के कुछ प्रमुख सरदार-प्रत्यन्त-नृपतिसमतट, दवाक एवं कामरूप के राजा सम्मिलित थे। परन्तु चन्द्रगुप्त ने उन सभी को बलपूर्वक पराजित कर दिया। इन विजयों के द्वारा गुप्त साम्राज्य की सीमा आसाम तक विस्तृत हो गई।

मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख' में कहा गया है कि-

“यस्योद्धर्तयतःप्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागता-
न्वङ्गेष्वहव-वर्त्तिनोऽभिलिखता खड्गेन कीर्तिभुजे।”

राजा चन्द्र ने अपने विरुद्ध संगठित राजाओं के एक संघ को परास्त करके वंग देश को विजित किया। कालिदास की मान्यता है कि 'वंग' शब्द का अर्थ गंगा की दो शाखाओं भागीरथी और पद्मा के बीच की भूमि है। इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में कहा गया है कि समतट जिसमें वंग का कुछ भाग भी सम्मिलित था, एक 'प्रत्यान्त' या सीमावर्ती राज्य था, जो समुद्रगुप्त की प्रभुता को स्वीकार करता था। सम्भव है कि कुछ राजाओं ने चन्द्रगुप्त द्वितीय को मान्यता न दी हो और उसे उनके विरुद्ध युद्ध करना पड़ा हो। संभव है कि वंग

विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल के अंत में हुई हो और इसीलिये सिक्कों तथा अभिलेखों से इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

d) पश्चिमोत्तर भारत विजय

मेहरौली के लौह स्तम्भ लेख में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि पूर्व के सीमावर्ती राज्यों को अपने राज्य में मिलाने के पश्चात चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर भारत, जहाँ संभवतः कुषाणों के वंशज अभी भी शासन कर रहे थे, पर आक्रमण किया। लौह स्तम्भ में यह भी स्पष्ट वर्णित है कि-“तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोजिता वाहिकाः” अर्थात् ‘सिन्धु नदी के सात मुँह’ (सिन्धु नदी की सात सहायक नदियों सतलज से लेकर काबुल) पार करके उसने वाहलिक पर भी विजय प्राप्त की। डा० आर० सी० मजुमदार के अनुसार, वाहलिक हिन्दुकुश पर्वतों के पार बल्ख को ही मानना होगा। यह भी कहा गया है कि राजा चन्द्र ने अपनी भुजाओं के पराक्रम से संसार में प्रभुता प्राप्त की। उसने पंजाब और सीमान्त पर अधिकार जमाकर भारत के प्राचीन दिग्विजयी राजाओं की परिपाटी के अनुसार हिन्दुकुश के पास तक दिग्विजय करते हुए वाहिकों को परास्त किया।

e) शक क्षत्रपों पर विजय

पश्चिम भारत के शक क्षत्रपों पर विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकों पर विजय की तिथि विवादास्पद है तथापि विभिन्न तर्कों के पश्चात विद्वान इतिहासकारों ने यह तिथि 389 ई० से 413 ई० के बीच की मानी है।

कई शताब्दी तक शक भारतीय राजनीति की विकट समस्या थे। इलाहाबाद स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने शकों के साथ मैत्री संबन्ध रखे तथा उन पर अपना आधिपत्य नहीं जमाया।

स्मिथ का मत है कि जाति, धर्म और रिति-रिवाज की विभिन्नता के कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय को पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य को विजित करने का विशेष कारण दिखायी दिया। उसका कुछ भी उद्देश्य रहा हो उसने सत्य सिंह के पुत्र क्षत्रप रुद्रसेन पर आक्रमण किया, उसे सिंहासन से उतारा और उसका बध किया। तत्पश्चात उसने उसका राज्य भी गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। युद्ध अवश्य ही बहुत लम्बा रहा होगा। उस प्रदेश के विलीन किये जाने का प्रमाण सिक्कों से मिलता है, अभिलेखों से नहीं। किन्तु वीरसेन शाब के उदयगिरि गुफा अभिलेख में कहा गया है कि “वह(शाब) यहाँ (पूर्वी मालवा) आया, उसके साथ स्वयं राजा (चन्द्रगुप्त) भी था जो समस्त संसार पर विजय पाने का अभिलाषी था।” यह विचार प्रकट किया गया है कि शाब पाटलिपुत्र का निवासी था और वह चन्द्रगुप्त द्वितीय का ‘सचिव’ या मंत्री बना। वह युद्ध तथा शान्ति विभाग का अधिकारी था। जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी क्षत्रपों को परास्त करने का निश्चय किया तो वह भी उसके साथ गया। शकों के विरुद्ध चन्द्रगुप्त के अभियानों का केन्द्र पूर्वी मालवा था। साँची तथा उदयगिरि के अभिलेखों से प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने मंत्री, सेनानी और सामंत पूर्वी मालवा में विदिशा के स्थान पर या उसके निकट एकत्र किये।

बाण ने भी पश्चिमी क्षत्रपों के पतन का उल्लेख किया है, किन्तु चन्द्रगुप्त द्वारा चलाये गये चाँदी के सिक्कों का प्रमाण तो निर्णायक है। रैपसन की मान्यता है कि “अन्तिम महाक्षत्रपों के सिक्कों की तरह, जिनसे वे धातु और शैली की दृष्टि से बहुत मिलते जुलते हैं और उनके मुख भाग (obverse) पर, राजा के पीछे तिथि दी गई है जिसके साथ ‘वर्षे’ का कोई तुल्यार्थ शब्द भी है और यूनानी अक्षरों में पुराने मुद्रा लेख (legend) के कुछ कुछ अवशेष भी हैं और पृष्ठ भाग (reverse) पर गुप्त चिन्ह (मोर) के स्थान पर चैत्य, चन्द्र और तारे को अंकित कर दिया गया है।”

f) दक्षिणापथ की पुनर्विजय

मेहरौली लौह स्तम्भ में वर्णित है “यस्याद्याप्यिधवास्यते जसनिधिवीर्यानिर्लैर्दक्षिणः”। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि रामगुप्त के शासनकाल में दक्षिण-भारत के राजाओं ने गुप्तों के साम्राज्य से निकलने का प्रयत्न किया और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी भुजाओं के बल पर दक्षिण में पुनः अपना आधिपत्य स्थापित किया।

3.6.3 ‘विक्रमादित्य’ की उपाधि धारण

चूँकि ऐसा माना जाता था कि शकों को पराजित करने वाले की कीर्ति चारों दिशाओं में फैल जाती थी। इसलिये चन्द्रगुप्त ने शक क्षत्रपों को विजित करने में अधिक रुचि दिखायी। ऐसा अनुमान है कि शकों को पराजित करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ‘शकारि’ की उपाधि धारण की। 57 ई० में उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने शकों को हराकर संवत् का प्रदर्शन किया था। चन्द्रगुप्त ने भी उत्तरापथ और अवंति के शक राज्यों का उन्मूलन करके ‘विक्रमादित्य’ का विरुद्ध धारण किया। चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम और प्रताप से पुनः अपना आधिपत्य स्थापित किया। अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ‘देवराज’, ‘देवगुप्त’, ‘सिंहविक्रम’, ‘सिंहचन्द्र’ इत्यादि उपाधियाँ धारण कीं।

3.6.4 चन्द्रगुप्त का साम्राज्य एवम मुख्य नगर

चन्द्रगुप्त द्वितीय योग्य प्रशासक के साथ-साथ एक महान योद्धा और महान विजेता था। उसने पिता के समान ही साम्राज्य विस्तार की नीति का अनुपालन किया। उसने अपने शौर्य और पराक्रम से गुप्त साम्राज्य का प्रसार किया। उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल और आसाम से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तक विस्तृत था। उसने कुषाणों को पराजित कर पश्चिमोत्तर में हिन्दुकुश तक तथा गांधार एवम कम्बोज में गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। इस प्रकार, चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल व पंजाब का अधिकांश भाग सम्मिलित था।

अधिकांश इतिहासकारों ने यही स्वीकार किया है कि है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने एक निवास स्थान मालवा में भी बना लिया था। उसके पहले संभवतः विदिशा में और फिर उज्जैन में उसका निवास था। चन्द्रगुप्त द्वितीय को ‘श्रेष्ठतम नगर उज्जैन का स्वामी’ और ‘सर्वश्रेष्ठ नगर पाटलिपुत्र का स्वामी’ कहा गया है। वसुबन्धु की जीवन-कथा के लेखक ने अयोध्या को विक्रमादित्य की राजधानी कहा है। एलन के अनुसार, “चन्द्रगुप्त

द्वितीय द्वारा चलाये गये ताँबे के सिक्के प्रायः अयोध्या में और उसके निकट पाये गये हैं। इससे ज्ञात होता है कि अयोध्या भी एक राजधानी थी तथा उसमें एक टकसाल था।”

ब्लोच द्वारा बसाड़ में की गई खुदाई से बहुत-सी मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुईं जिनसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। एक मुहर से ज्ञात होता है कि ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त द्वितीय की ‘महादेवी’ और गोविन्दगुप्त की माता थी। यह भी सिद्ध हो जाता है कि अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में गोविन्दगुप्त तीर या तीरभुक्ति का गवर्नर था। मुहरों में उस समय के कई कर्मचारियों को पदवियां दी गई हैं, जैसे ‘उपरिक’, ‘कुमारामात्याधिकरण’, ‘बलाधिकार’, ‘रणभन्डाधिकरण’, ‘दण्डपाशाधिकरण’, ‘महादण्डनायक’, ‘भटाश्वपति’, ‘महाप्रतिहार’, विनयस्थितिस्थापक ‘विनयसुर’ तथा ‘तलवार’। इन मुहरों से प्रान्तीय प्रशासन पर ही नहीं बल्कि जिला और स्थानीय प्रशासन पर भी प्रकाश पड़ता है।

प्रतीत होता है कि उज्जैन और उत्तरी भारत के बीच मुख्य मार्ग पर स्थित कौशांबी को भी राजा ने अपना निवास स्थान बनाकर सम्मानित किया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1-लघु उत्तरीय प्रश्न

- चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपना विवाह किस वंश में किया?
- चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री का विवाह किस वंश में किया?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजयों का सबसे महत्वपूर्ण, अधिकारिक स्रोत किसे माना गया है?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कौन सी उपाधियाँ धारण कीं?

2-निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

- चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा अपनायी गई वैवाहिक संबन्धों की नीति
- चन्द्रगुप्त कालीन प्रमुख नगरों की स्थिति

3- नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दिजिये।

- वैवाहिक संबन्धों की नीति से क्या लाभ हुआ?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयों पर प्रकाश डालिये।

3.7 फ़ा-ह्यान (Fa-hein, 399-411ई०)

यहाँ आपको यह जान लेना आवश्यक है कि प्राचीन काल में भारत अनेकों धर्मावलम्बियों और ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र था। अनेकों यात्री ‘ह्वेन्सांग’, ‘इत्सिंग’, ‘फ़ाह्यान’ यहाँ आये। इन यात्रियों ने भारत संबन्धी जो वृत्तांत लिखे वह हमें राजनीतिक, आर्थिक, इतिहास तथा तत्सामयिक शिक्षा, कला एवं संस्कृति की स्थिति जानने में अत्यधिक सहायक हैं। हमारे अध्ययन हेतु इन्हीं में से एक चीनी यात्री फ़ाह्यान का यात्रा विवरण को जानना हमारे लिये आवश्यक है।

चन्द्र गुप्त द्वितीय के राज्यकाल में चीनी तीर्थयात्री फ़ा-ह्यान ने भारत यात्रा की। वह बौद्ध संयासी था। भारत आने का उसका मुख्य उद्देश्य बौद्ध-नीति की पुस्तकें प्राप्त करना था जो चीन में लगभग अज्ञात हो चुकी थीं। वह स्थल मार्ग से भारत आया। अपनी यात्रा में उसने 30 देशों का भ्रमण किया। भारत में उसने छः वर्ष 405-411 ई० यात्रा और अध्ययन में व्यतीत किये। उसी बीच के तीन वर्ष संस्कृत लिखने-बोलने व नीति पुस्तकों की नकल में लगाये।

फ़ाह्यान के संस्मरण का नाम 'फो-क्यो-की' है। उसका अंग्रेजी अनुवाद 'जे०एच०लेगे' ने 1886 ई० में किया था, जिसे आक्सफोर्ड ने 'रिकार्ड आव द बुद्धिस्टिक किंगडम्स' नाम से प्रकाशित किया है। 1923 ई० में एक दूसरा अनुवाद 'ट्रैवेल आव फ़ाह्यान आर रिकार्ड आव द बुद्धिस्टिक किंगडम्स' नाम से कैम्ब्रिज से प्रकाशित हुआ। बाद में 'रिकार्ड आव दि बुद्धिस्टिक कण्ट्री' नाम से तीसरा अनुवाद 1957 ई० में पेकिंग से प्रकाशित हुआ।

इस यात्रा में वह बुद्ध के जीवन से जुड़े प्रत्येक स्थल जैसे खोतान, काशगर, गांधार, तक्षशिला, पेशावर, सारनाथ, लुम्बिनी, वैशाली नालन्दा, गया, बौध-गया और राजगृह, कपिलवस्तु, आदि बौद्ध स्थानों की उसने यात्रा की। इनके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक स्थलों जैसे-पाटलिपुत्र, कन्नौज, काशी, मथुरा की यात्रायें भी कीं। श्रावस्ती में उसने कई बौद्ध स्मारक देखे। उसने लंका यात्रा भी की और वहाँ वह दो वर्ष रहा। लंका से वह जावा गया और इसके पश्चात वह समुद्री मार्ग से वापस चीन पहुँचा।

3.7.1 फ़ा-ह्यान (Fa-hein, 399-411 ई०) के यात्रा वृत्तांत के अनुसार चन्द्रगुप्त की शासन की शासन व्यवस्था

यह उल्लेखनीय है कि फ़ा-ह्यान तीन वर्ष तक पाटलिपुत्र में ठहरा। अपने कार्य में वह इतना लीन था कि उसने शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उसके विवरण से गुप्त शासन व्यवस्था का पता अवश्य चलता है। लगभग संपूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद **गुप्त शासन-प्रबन्ध को संगठित करने का श्रेय भी चन्द्रगुप्त द्वितीय को है।** उसके आदर्श शासन की प्रशंसा चीनी यात्री फ़ाह्यान करता है।

❖ राजनैतिक दशा

चुंकि फ़ाह्यान की यात्रा का उद्देश्य धार्मिक था अतः उसने राजनैतिक स्थिति का वर्णन करने पर अपना ध्यान कम केन्द्रित किया तथापि परोक्ष रूप से तत्कालीन प्रशासनिक व राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। जिससे हमें ज्ञात होता है कि राजा का प्रमुख उद्देश्य जनकल्याण और जनता की समृद्धि था। प्रशासन प्रबुद्ध एवं कार्य कुशल था।

“लोग खुशहाल हैं, करों का भार कम है। उन्हें अपनी गृहस्थी के विषय में लिखवाना नहीं पड़ता, न न्यायाधीशों के सामने उपस्थित होना पड़ता है और न ही उनके नियमों का पालन करना होता है, केवल वही लोग जो राज्य की भूमि में खेती करते हैं, उससे प्राप्त लाभ का कुछ अंश देते हैं। दण्ड व्यवस्था बहुत सरल है।

यदि वे जाना चाहें तो उनके अपराध की परिस्थितियों के अनुसार भारी या हल्का जुर्माना लगाया जाता है। बार बार अपराध करने पर भी केवल उनका दाहिना हाथ काट दिया जाता है। यात्रायें करना सुरक्षित है।”

❖ सामाजिक दशा

फ़ाह्यान के विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय राज्य के लोग शुद्ध व सात्विक जीवन जीते थे। वे सुखी एवम संपन्न थे। अधिकांशतः अहिंसा में विश्वास रखते। न ही मांसाहारी थे न ही मदिरा का प्रयोग करते थे।

समाज में जाति विशेष ‘चाण्डाल’ के प्रति छुआछूत की भावना थी। केवल चाण्डाल ही मांस मदिरा खाते थे। इसलिये उनका निवास स्थान नगरों से बाहर था। जब वे नगर में चलते थे तो लोगों को आगाह करने के लिये सड़क पर बांस के डंडे पीटते हुए चलते ताकि सब लोग उन्हें छूने से बच जायं।

फ़ाह्यान से हमें ज्ञात होता है कि “धनी लोगों ने अपनी राजधानियों में निःशुल्क औषधालय बना रखे हैं और सभी निर्धन या असहाय रोगी, अनाथ विधवायें और पंगु वहां आते हैं। वहां इनकी अच्छी देख रेख की जाती है, एक वैद्य उनकी चिकित्सा करता है और खाना तथा औषधियां उनकी आवश्यकतानुसार निःशुल्क दी जाती हैं। जब वे ठीक हो जाते हैं तो वे चले जाते हैं।”

यह भी ज्ञात होता है कि धनवान व्यक्ति निर्धनों, असहायों और धार्मिक कार्यों हेतु अस्पताल, धर्मशालायें बनवाते तथा मठों, विहारों और मंदिरों को दान में भूमि देते थे।

❖ आर्थिक स्थिति

फ़ाह्यान ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य में आय के स्रोतों तथा व्यापार एवम वाणिज्य की प्रगति का वर्णन किया है। हमें यह ज्ञात होता है कि भूमिकर राज्य की आय का मुख्य स्रोत था। करों की अदायगी लोग स्वतः नकद या उत्पादों के द्वारा करते थे।

फ़ाह्यान के अनुसार आंतरिक एवम विदेशी व्यापार एवं वाणिज्य अत्यंत समृद्ध था। समुद्री व्यापार बहुत विकसित स्थिति में था और विदेशों से व्यापारिक संबन्ध इस काल में स्थापित हुए। भारतीय समुद्र यात्रायें भी करते थे। उसने अनेक बंदरगाहों जैसे -काम्बे, सोपारा, भड़ौच, ताम्रलिप्ति का भी विवरण दिया है।

सरकारी कर्मचारियों को निश्चित वेतन दिये जाते थे। राजा के अंगरक्षकों तथा परिचालकों को वेतन दिया जाता था। क्रय-विक्रय में कौड़ियों का प्रयोग होता था।

वस्तुतः फ़ाह्यान के वर्णन से स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक रूप से प्रजा संपन्न थी।

❖ धार्मिक स्थिति-

जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है फ़ाह्यान की भारत यात्रा का उद्देश्य पूर्णतः धार्मिक था। अतः उस काल की धार्मिक स्थिति, विशेषकर बौद्ध धर्म के बारे में हमें अधिक जानकारी प्राप्त होती है। वह बताता है कि उत्तर भारत में बौद्ध धर्म बहुत प्रचलित था, लोग बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों-सत्य और अहिंसा में

विश्वास करते थे। बौद्ध विहारों का विस्तृत ब्यौरा देते हुए वह लिखता है-राज्य के उत्तरी भाग पंजाब बंगाल और मथुरा में बौद्ध विहारों का जाल फैला है। मथुरा में अकेले 20 विहार हैं। जिनमें 3000 बौद्ध भिक्षु थे।

स्थायी निवासी और यात्री भिक्षुओं को बिस्तरों तथा चटाइयों और खाने तथा कपड़ों सहित रहने के लिये कमरे दिये जाते हैं, सभी स्थानों में ऐसा ही होता है। सारीपुत्र, मोगालन तथा आनन्द और अभिधम्म, विनय तथा सुत्तों के सम्मान में पगोडे बनाये जाते हैं। भिक्षुओं की वार्षिक वापिसी के पश्चात उनके लिये विभिन्न वस्त्र तथा अन्य वस्तुएं जुटाने के लिये धार्मिक परिवार चन्दा इकट्ठा करते थे। भगवान बुद्ध के निर्वाण के समय से राजा, सरदार और गृहस्थ सभी ने भिक्षुओं के लिये विहार बनवाये हैं और उनके लिये खेत, घर, बाग, सेवक और पशु दान में दिये हैं। ताम्र-पत्रों पर लिख कर विहारों की सम्पत्ति उनके लिये आरक्षित कर दी जाती है, ये ताम्र-पत्र एक राज्य के बाद दूसरे राज्य को दे दिये जाते हैं और उन्हें रद्द करने की किसी को हिम्मत नहीं होती। सभी स्थायी भिक्षु जिन्हें विहारों में कमरे दिये जाते हैं, उन्हें विस्तर चारपाईयां, खाना, पेय पदार्थ आदि मिलते हैं। वे अपना समय दया धर्म के कार्य करने, धार्मिक पुस्तकों का पाठ करने और आत्मचिन्तन में व्यतीत करते हैं। यदि कोई विदेशी यात्री किसी विहार में आता है तो वहां के उच्च पुरोहित उसे अतिथि गृह तक छोड़ने जाते हैं और उसके वस्त्र तथा दान-पात्र भी उठाते हैं। वे उसे पैर धोने के लिये पानी और मालिश के लिये तेल देते हैं और उसके लिये विशेष खाना बनाया जाता है।

दान धर्म की कई संस्थायें थीं। सड़कों के किनारों पर या उनसे दूर लोग दान गृह बनवाते थे और यात्रा करने वाले भिक्षुओं तथा यात्रियों को वहाँ बिस्तर और भोज्य पदार्थ दिये जाते थे। किन्तु वहाँ रहने का निश्चित समय प्रत्येक स्थान पर भिन्न था।

“राजाओं, वृद्धों तथा भद्र व्यक्तियों की रीति थी कि वे धार्मिक स्थान बनवायें, भूमि, घर और बाग दान में दें और खेतों के लिये बैल तथा अन्य आदमी भी दें। पक्के पट्टे लिख दिये जाते थे और बाद के राजा भी उनका उल्लंघन करने का साहस नहीं करते थे।”

फ़ाह्यान ने मध्य प्रदेश नामक प्रदेश की भी यात्रा की। फ़ाह्यान हमें बताता है कि मथुरा से दक्षिण की ओर का प्रदेश ‘मध्य देश’ (मालवा) कहलाता था। यह प्रदेश ब्राह्मण-धर्म का दृढ़ केन्द्र था। राजा विष्णु का उपासक था परन्तु हिन्दुओं और बौद्धों में परस्पर सद्भावना थी। जिससे यह स्पष्ट है कि समाज में सहिष्णुता का वातावरण था।

यद्यपि यह ध्यान देने योग्य बात है कि फ़ाह्यान ने सब कुछ बौद्ध दृष्टि से देखा। उसे यह भी देखना चाहिये था कि गुप्त राजाओं के संरक्षण में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के कारण बौद्ध धर्म पृष्ठभूमि में आ गया था। उसके विवरण से यह पता नहीं चलता कि ब्राह्मण-धर्म भारत में मुख्यतः प्रचलित था।

❖ पाटलिपुत्र एवम अन्य नगरों की स्थिति

अपनी भारत यात्रा के दौरान फ़ाह्यान पाटलिपुत्र में रुका था। पाटलिपुत्र से और अशोक के महल से वह अत्यंत प्रभावित हुआ। उसके विचार में कई भवनों वाला महल भूतों ने बनाया था जो पत्थरों पर पत्थर रखते गये। उन्होंने दीवारें और द्वार बनाये, चित्रकारी की और दैवी ढंग से उसमें मूर्तियां उत्कीर्ण कीं। फ़ाह्यान की

यात्रा के समय भी अशोक का महल बना हुआ था। अशोक के बनवाये एक स्तूप के निकट फाह्यान ने दो विहार देखे जिनमें से एक में महायान शाखा के और दूसरी में हीनयान शाखा के बौद्ध भिक्षु रहते थे। दोनों विहारों में कुल छः सात सौ भिक्षु रहते थे। किन्तु अपनी विद्वता के लिये वे इतने प्रसिद्ध थे कि दूर दूर से विद्यार्थी तथा जिज्ञासु उनके भाषण सुनने आते थे। स्वयं फ़ा-ह्यान ने संस्कृत भाषा सीखने में तीन वर्ष लगाये। भिक्षुओं की नीति पुस्तकें प्राप्त करके वह अति प्रसन्न हुआ। बीस बड़े और सुसज्जित रथों वाले विशाल जुलूस की उसने बहुत सराहना की। ये जुलूस हर साल निकाले जाते हैं और दूसरे महीने की आठवीं तिथि को इन्हें शहर में घुमाया जाता है। उनमें गायक और संगीतज्ञ भी होते थे। फ़ा-ह्यान हमें बताता है कि ऐसे जुलूस और भी शहरों में भी निकाले जाते थे।

फ़ा-ह्यान हमें बताता है कि 'बोधगया' शहर वीरान और उजड़ा हुआ था। बोधगया के पवित्र स्थानों के चारों ओर जंगल बन गये थे। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में पहाड़ की तराई में जहाँ घनी आबादी थी, अब वहाँ अल्प जनसंख्या थी। 'श्रावस्ती' में केवल 200 परिवार थे। 'कपिलवस्तु' और 'कुशीनगर' के पवित्र स्थान भी उजाड़ और खाली थे। बहुत थोड़े भिक्षु और उनके सेवक अब भी पवित्रता और अपनी श्रद्धा के कारण वहाँ रहते थे और दान पर निर्वाह करते थे।

निष्कर्षतः मौर्यों के पश्चात् गुप्तों ने एक निश्चित योजना के अनुसार आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना की। बल्कि यह माना जाता है कि गुप्तों का शासन मौर्यों से अधिक उदार था। जिसमें प्रजा सुखी और समृद्ध थी। यह कहा जा सकता है कि फ़ाह्यान के विवरण का ऐतिहासिक महत्व है। इस विवरण से हमें गुप्तकालीन इतिहास की बहुउपयोगी और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त होती है। उसने जो देखा और नोटिस किया उसे लिखा इस शासन प्रणाली से फ़ाह्यान बहुत प्रभावित हुआ। इतिहासकार वी० ए० स्मिथ के अनुसार प्राचीन पद्धति में इससे अच्छा शासन कभी नहीं हुआ।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1-निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

I. फ़ाह्यान के संस्मरण पर

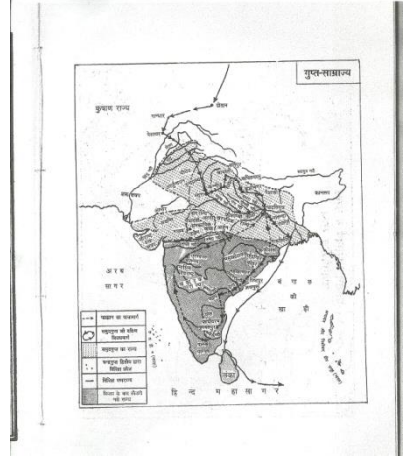
II. फ़ा-ह्यान एवम उसका यात्रा वृतांत

2.7 सारांश

उक्त अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि चन्द्रगुप्त द्वितीय एक सशक्त और प्रचण्ड शासक था और एक विस्तृत साम्राज्य की वृद्धि और उसके प्रशासन के लिये सुयोग्य था। वह बड़ी-बड़ी उपाधियों का इच्छुक था, जिनसे उसकी वीरता तथा पराक्रम का परिचय मिलता है। वह स्वयं कट्टर वैष्णव था लेकिन दूसरे संप्रदायों के अनुयायियों को भी उसने राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया। समुद्रगुप्त ने विजय-कार्य आरम्भ किया और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसे संपूर्ण किया। साम्राज्य की रूपरेखा में उसने केवल सीमावर्ती जातीय राज्यों तथा राजतंत्रों को ही विलीन नहीं किया बल्कि शकों और कुषाणों के राज्यों को भी साथ मिला दिया। शान्तिमय और सुगठित विशाल साम्राज्य जो उसने अपने उत्तराधिकारी को सौंपा, यह एक महान सेनानी और सुयोग्य



राजनीतिज्ञ के ही नहीं, एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के प्रयत्नों का भी परिणाम था। यदि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को भविष्य की पीढ़ियों ने स्मरण रखा और उसके अधिक प्रतिभाशाली पिता को विस्मृत कर दिया तो इसका कारण ढूंढना कठिन नहीं है। राजनीतिक महत्ता और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के युग को संपूर्ण करने वाला चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी प्रजा के हृदयों में भी स्थान प्राप्त करने में विजयी हुआ।



2.8 तकनीकी शब्दावली

- तत्परिगृहीत- पिता की इच्छानुसार सिंहासन ग्रहण करना
- शकारि- शकों का शत्रु या नाश करने वाला
- गणारि- गणों का शत्रु या नाश करने वाला

2.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.3 इकाई

1-I-निश्चित रूप से 376-77ई० के रूप

II- समुद्रगुप्त

2- देखिये- इकाई 3.3

3.4 इकाई

1-I. 'फो-क्यो-की'

II. विशाखदत्त'

III. कलकत्ता

2-I देखिये -इकाई 3.4.2

II देखिये -इकाई 3.4.2

3. I. देखिये -इकाई 3.4.2

3.5 इकाई

I-देखिये-इकाई 3.5

3.6 इकाई

1- a) नागवंश

b) वाकाटक नरेश

c) मेहरौली का लौह स्तम्भ लेख

d) विक्रमादित्य, देवराज, 'देवगुप्त', सिंहविक्रम, सिंहचन्द्र' इत्यादि

2-देखिये-

I.इकाई 3.6.1

II. इकाई 3.6.4

3- देखिये-इकाई 3.6.1

3.7.

1- I देखिये 3.7

II.देखिये 3.7.1

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011.
- परमेश्वरी लाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,भाग-2 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014.
- डा० राजबली पान्डेय, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000.
- एल पी शर्मा, प्राचीन भारत (प्रागैतिकहासिक युग से 1200 ई० तक) लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1999.
- वी०डी० महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कंपनी प्रा० लि०, रामनगर, नई दिल्ली, 2016.
- डा० के०एल० खुराना, एन्शाएन्ट इन्डिया,(from earliest time to 1206 A.D.) चतुर्थ संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल,2000.

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011.
- परमेश्वरी लाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,भाग-2 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014.
- डा० राजबली पान्डेय, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,2000.

- एल पी शर्मा, प्राचीन भारत (प्रागैतिकहासिक युग से 1200 ई० तक) लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1999.
- वी०डी० महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कंपनी प्रा० लि०, रामनगर, नई दिल्ली, 2016.
- डा० के०एल० खुराना, एन्शिएन्ट इन्डिया,(from earliest time to 1206 A.D.) चतुर्थ संस्करण , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल,2000.
- वी०ए०स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ओफ़ इण्डिया
- वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास,भाग 1
- आर०डी०बनर्जी,दि एज आफ़ दि इम्पीरियल गुप्तज
- जे० एफ़०फ़्लूट, गुप्त अभिलेख,
- इपिग्राफिया इंडिका,जिल्द 15,
- पी वी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

- चन्द्रगुप्त द्वितीय की सैन्य सफलताओं का विस्तृत विवरण दीजिये।
- चन्द्रगुप्त द्वितीय के सैन्य अभियानों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
- चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंहासनारोहण के समय कौन-कौन सी कठिनाइयाँ थीं, उसने उनका निराकरण किस प्रकार किया?
- भारतीय संस्कृति के पोषक के रूप में चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।
- चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिये। उसने भारतीय संस्कृति की समृद्धि के लिये कौन-कौन से प्रयत्न किये?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय का इतिहास जानने में फाह्यान का विवरण कितना उपयोगी है?
- फ़ा-ह्यान कौन था? उसकी भारत यात्रा का वर्णन कीजिये।
- फ़ा-ह्यान पर एक नोट लिखिये।

कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त की उपलब्धियाँ

- 1.0 उद्देश्य
- 2.1 कुमारगुप्त प्रथम
 - 2.1.1 प्रस्तावना
 - 2.1.2 कुमारगुप्त प्रथम के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत
 - 2.1.2.1 अभिलेख
 - 2.1.2.2 कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख
 - 2.1.2.3 कुमारगुप्त प्रथम का दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख
 - 2.1.2.4 मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख
 - 2.1.2.5 बिलसद अभिलेख
 - 2.1.2.6 गढ़वा के दो शिलालेख
 - 2.1.2.7 मनकुँवर अभिलेख
 - 2.1.2.8 अन्य अभिलेख
- 3.1 मुद्रायें
 - 3.1.1 व्याघ्र-निहन्ता प्रकार
 - 3.1.2 अश्वमेघ प्रकार
 - 3.1.3 वीणावादक प्रकार
 - 3.1.4 अश्वारोही प्रकार
 - 3.1.5 धनुर्धारी प्रकार
- 4.0 साहित्य
- 5.0 गोविन्दगुप्त का प्रश्न
- 6.1 कुमारगुप्त प्रथम की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ
 - 6.1.1 पुष्यमित्र जाति का आक्रमण
- 6.2 कुमारगुप्त प्रथम की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ
 - 6.2.1 सहिष्णुता और निर्माण-कार्य
 - 6.2.2 अश्वमेघ यज्ञ
- 7.0 प्रान्तीय प्रशासन
- 8.0 उपाधियाँ
- 9.0 मूल्यांकन
- 10.0 स्कन्दगुप्त
 - 10.1 प्रस्तावना
 - 10.1.1 स्कन्दगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत
 - 10.1.1.1 जूनागढ़ अभिलेख
 - 10.1.1.2 कहौम का अभिलेख
 - 10.1.1.3 सुपिया स्तम्भ-अभिलेख
 - 10.1.1.4 इन्दौर ताम्र पत्र
 - 10.1.1.5 भितरी स्तम्भ लेख

- 10.1.2 मुद्राएँ
- 10.1.3 साहित्यिक स्रोत
- 11.0 उत्तराधिकार का युद्ध
- 12.0 स्कन्दगुप्त की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ
- 12.1 पुष्यमित्रों का आक्रमण
- 12.2 हूणों का आक्रमण
 - 12.2.1 भितरी अभिलेख
 - 12.2.2 जूनागढ़ अभिलेख
- 12.3 चन्द्रगर्भ परिपृच्छा
- 12.4 सोमदेव रचित कथासरित्सागर
- 12.5 चान्द्र व्याकरण
- 12.6 युद्धस्थल
- 12.7 नागों से संघर्ष
- 12.8 वाकाटकों से युद्ध
- 13.0 साम्राज्य विस्तार
- 14.0 स्कन्दगुप्त की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ
- 14.1 उपलब्धियाँ और विरुद्ध
- 15.0 शासन—प्रबन्ध
- 15.1 धार्मिक सहिष्णुता
- 15.2 लोकोपकारी कार्य
- 16.0 मूल्यांकन
- 17.0 शब्दावली (Glossary)
- 18.0 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 19.0 निबन्धात्मक प्रश्न
- 20.0 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य—पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप गुप्त वंश के दो महान् शासकों कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कन्दगुप्त के विषय में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर पायेंगे— दोनों शासकों के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोतों—अभिलेख एवं मुद्राओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- गोविन्दगुप्त एवं कुमारगुप्त प्रथम के उत्तराधिकारी सम्बन्धी प्रश्न का समझ पायेंगे।
- पुष्यमित्रों के आक्रमण के विषय में जानकारी मिलेगी। पुष्यमित्रों ने कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल में आक्रमण किया था।
- स्कन्दगुप्त के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों को आप समझ पायेंगे। पुरुगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार के विवाद को सुलझा पायेंगे।
- हूणों के आक्रमण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

यह इकाई दो खण्डों में विभक्त है— खण्ड (क) कुमारगुप्त प्रथम एवं खण्ड (ख) स्कन्दगुप्त के विषय में आप पढ़ेंगे।

2.1 कुमारगुप्त प्रथम

2.1.1 प्रस्तावना

कुमारगुप्त प्रथम गुप्त वंश के महानतम् शासकों की परम्परा का वाहक था। यद्यपि उसकी उपलब्धियाँ अपने पूर्वजों समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकक्ष तो नहीं थीं, तथापि उसने अपने पिता द्वारा प्रदत्त विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा। ऐतिहासिक स्रोतों से हमें पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की दो रानियाँ— कुबेरनागा एवं ध्रुवदेवी (ध्रुवस्वामिनी) थी। कुबेरनागा से चन्द्रगुप्त द्वितीय को एक पुत्री हुई थी। जिसका नाम प्रभावतीगुप्ता था। प्रभावतीगुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय के साथ विवाह हुआ था। प्रभावतीगुप्ता ने वाकाटक साम्राज्य को संचालित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जिसके कारण गुप्त-वाकाटक सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ हुए थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय की दूसरी रानी ध्रुवदेवी से दो पुत्र हुए जिनमें से एक का नाम कुमारगुप्त प्रथम तथा दूसरे का नाम गोविन्दगुप्त था। गोविन्दगुप्त को लेकर इतिहासकारों के मध्य विवाद रहा है। कतिपय इतिहासकारों की धारणा रही है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद कुमारगुप्त प्रथम एवं गोविन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध लड़ा गया जिसमें कुमारगुप्त प्रथम विजयी रहा और गुप्त साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा।

2.1.2 कुमारगुप्त प्रथम के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल की घटनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने के मुख्य स्रोत अभिलेख एवं मुद्राएँ हैं—

2.1.2.1 अभिलेख

कुमारगुप्त प्रथम के अब तक कुल 18 अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। इतने अभिलेख किसी अन्य गुप्त शासक के नहीं मिले हैं। कतिपय प्रमुख अभिलेखों का विवरण निम्नलिखित है —

2.1.2.2 कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख

उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद से शाहगंज फैजाबाद वाली सड़क पर फैजाबाद से लगभग 12 मील दूर स्थित कर्मदण्डा गाँव के समीप भराठीडीह टीले से प्राप्त एक शिवलिंग के अठपहले आधार पर यह लेख अंकित है। इस पर गुप्त संवत् 117 (436-37) का उल्लेख है। यह कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल का है जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्त्री शिखर स्वामी का पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के कुमारामात्य पृथ्वीसेन ने उत्कीर्ण कराया है। इस अभिलेख की लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी तथा भाषा संस्कृत है। इसका विषय 'पृथ्वीश्वर के लिए दान' है। गुप्त अभिलेख प्रायः 'सिद्धम्' से प्रारम्भ होते हैं, परन्तु यह अभिलेख 'नमोमहादेवाय' से प्रारम्भ होता है। इससे शैव धर्म की प्रधानता स्पष्ट होती है। कुमारगुप्त प्रथम की उपाधि अभिलेखों में 'परमभागवत्' है, उसने अश्वमेघ यज्ञ करके अश्वमेघ प्रकार का सिक्का ढलवाया था। गंगाधर लेख में विष्णु मन्दिर को दान आदि उसके वैष्णवनुयायी होने की पुष्ट करते हैं। परन्तु शैव मन्त्री की नियुक्ति और शैव मन्दिर का दान कुमारगुप्त की धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। धार्मिक इतिहास के साथ-साथ यह अभिलेख गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था पर भी प्रकाश डालता है। इस समय अधिकारियों का पद वंशानुगत था। तभी चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्त्री कुमारामात्य शिखरस्वामी के पुत्र पृथ्वीषेण महाराजा कुमारगुप्त के मन्त्री और बलाधिकृत नियुक्त किया गया था। सम्भवतः तब एक मन्त्री को योग्यता के अनुसार कई पद दिए जाते थे, तभी पृथ्वीषेण को कुमारामात्य और महाबलाधिकृत दोनों ही पद प्रदत्त थे। 'कुमारामात्य' एक प्रशासनिक अधिकारी था जबकि महाबलाधिकृत गुप्तकाल का प्रधान सेनापति था। उसके अधीन अनेक महासेनापति थे।

यह अभिलेख नगरों के इतिहास के लिए भी महत्वपूर्ण है, उसमें अद्योया नगर की चर्चा विद्याव्यसनी नगर के नाम से हुई है। आर.एस. शर्मा की मान्यता रही है कि गुप्तकाल से नगरों का पतन प्रारम्भ हो गया था। धार्मिक कार्य हेतु भूमि अनुदान दिए जाने का उल्लेख भी इस अभिलेख में हुआ है।

2.1.2.3 कुमारगुप्त प्रथम का दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख

आधुनिक बंगलादेश के दिनाजपुर जिले के दामोदरपुर ग्राम से प्राप्त चार ताम्रपत्र अभिलेखों में से यह एक है। तिथि एवं अभिलेख में वर्णित शासक के अनुसार यह कुमारगुप्त (पृथ्वीपति) का है। यह अभिलेख कुमारगुप्त कालीन इतिहास जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें कुमारगुप्त की उपाधियाँ परमदैवत, परमभट्टारक, महाराजाधिराज अंकित हैं। ये उपाधियाँ इसके पूर्व एवं बाद के अभिलेखों से भी ज्ञात होती हैं। यह अभिलेख प्रशासन के ऊपर भी व्यापक प्रकाश डालता है। इससे ज्ञात होता है कि राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तों को भुक्ति कहते थे जिसका अधिकारी उपरिक (राज्यपाल) होता था। प्रान्त में कई जिले होते थे जिन्हें विषय कहा जाता था। जिला का शासक कुमारामात्य था। इसका कार्यालय प्रधान नगर में होता था जिसे 'अधिष्ठानाधिकरण' कहते थे। इसकी सहायता के लिए एक प्रतिनिधि समिति थी जिसमें चार सदस्य थे— नगरश्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलीक तथा प्रथम कायस्थ। यहाँ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के अन्तर्गत कोटिवर्ष विषय का उल्लेख है जिसका कुमारामात्य वेत्रवर्मा था। इसकी समिति में नगरश्रेष्ठि धृतपाल, सार्थवाह बन्धुमित्र, प्रथम कुलीक घृतिमित्र और प्रथम कायस्थ शाम्बपाल था।

यहाँ पुस्तपाल का भी उल्लेख है। यह सम्भवतः लेखाधिकारी या दस्तावेजों का अधिकारी था। इसके पास भूमि का पूरा विवरण क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में रहता था तथा वह कागज के आधार पर बताता था कि भूमि की प्रकृति किस प्रकार की है? क्या उसे बेचा जा सकता है? अथवा कर रहित करने में राज्य को कोई विशेष हानि नहीं होगी।

2.1.2.4 मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख

यह अभिलेख शिवना नदी के किनारे मध्य प्रदेश के मन्दसोर जिले में महादेव घाट की दीवाल में लगे एक काले प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है। इसी स्थान का प्राचीन नाम दशपुर था जिसे आज मन्दसोर कहते हैं। इसमें मालव संवत् 493 तथा 529 का उल्लेख है तथा कुमारगुप्त और उसके गोप्ता विश्वकर्मा एवं उसके पुत्र बन्धुवर्मा का नाम आया है। यह एक धर्मपरक लेख है जिसमें दशपुर में सूर्यमंदिर निर्माण का वर्णन है। साथ ही यह एक प्रशस्ति प्रकार का लेख है जिसकी रचना वत्सभट्टि ने की थी। वह संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान था। 44 श्लोकों का यह अभिलेख संस्कृत साहित्य की अक्षुण्ण निधि होने के साथ-साथ ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण है।

इस अभिलेख से निम्नांकित ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आते हैं—

(1) मन्दसोर प्राचीन भारत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नगर जान पड़ता है क्योंकि यहाँ से अनेक अभिलेख मिले हैं। इस अभिलेख में दशपुर के सूर्य मंदिर का निर्माण और पुनर्निर्माण का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि पश्चिमी भारत के मालवा क्षेत्र में सूर्य उपासना का व्यापक प्रचलन था। इसकी पुष्टि इन्दौर के स्कन्दगुप्तकालीन ताम्रलेख से होती है जो सूर्य की अर्चना से प्रारम्भ होता है। साथ ही महाराज सर्वनाग द्वारा सूर्यमंदिर के दान का उल्लेख तथा हूण शासन मिहिरकुल द्वारा अपने शासन के 15वें वर्ष में सूर्य मंदिर का निर्माण भी पश्चिम भारत में सूर्य उपासना के प्रमाण हैं।

(2) कुमारगुप्त एक धर्मसहिष्णु शासक था इसका प्रमाण यह अभिलेख है। उसकी उपाधि परमभागवत है। यह लेख महादेव घाट पर मिला है जो शैव उपासना की ओर इंगित करता है। वह स्वयं कार्तिकेय का पूजक था क्योंकि उसके सिक्कों पर मयूर की आकृतियाँ बहुतायत से मिली हैं। विहार का होना बौद्ध और जैन धर्म के प्रति सद्भाव को व्यक्त करता है।

(3) इस अभिलेख से शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। यहाँ कुमारगुप्त का गोप्ता विश्वकर्मा को बताया गया है तथा उसके बाद उसके पुत्र बन्धुवर्मा का उल्लेख है। इस अभिलेख में गोप्ता के उन्हीं गुणों की चर्चा की गयी है, जिनकी चर्चा स्कन्दगुप्त के सौराष्ट्र प्रदेश के गोप्ता पर्णदत्त के लिए जूनागढ़ अभिलेख में की गयी है। इससे पता चलता है कि गुप्तशासक अधिकारियों की नियुक्ति के पूर्व उनमें लोक कल्याणकारी गुणों की जांच करते थे। इस अभिलेख में 'लाट' विषय का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि राज्य विषयों में बटौं होता था।

(4) तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन के विषय में ज्ञान मिलता है। इस लेख में यहाँ के निवासियों के उत्तम आचरण एवं विनम्र स्वभाव का वर्णन मिलता है। इसमें श्रेणी संगठन पर भी प्रकाश पड़ता है। श्रेणियां सैनिक कार्य किया करती थीं, इसका प्रमाण इस लेखमें वर्णित 'श्रेणी-बल' शब्द से हो जाती है। श्रेणियां अपने सिक्के चलाती थीं। श्रेणियां बैंकों के कार्य भी करती थीं, लोग इनमें अपना पैसा जमा करते थे।

(5) आर्थिक जीवन में इन्हें अपना निर्णय लेने की स्वतन्त्रता थी। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि सिल्क बुनने वाली श्रेणी ने दशपुर जाने और वहाँ सपरिवार बसने का निर्णय स्वयं लिया था।

(6) इस लेख में मालव संवत् का भी उल्लेख है।

(7) मन्दसोर अभिलेख में वर्णित है कि कुमारगुप्त प्रथम के शासन में समुद्र उसके राज्य की मेखला बना रहा था तथा सुमेरी और कैलाश पर्वत ऐसे उन्नत थे जैसे वृहत पयोधर हों। यह पंक्ति कुमारगुप्त के साम्राज्य विस्तार की ओर संकेत करती हैं।

दामोदरपुर ताम्रपत्र से बंगाल पर तथा मन्दसोर अभिलेख से मालवा पर उसकी सत्ता का ज्ञान मिलता है।

2.1.2.5 बिलसद अभिलेख

बिलसद उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित है। इसमें कुमारगुप्त प्रथम तक गुप्तों की वंशावली प्राप्त होती है। इस लेख में ध्रुवशर्मा नामक एक ब्राह्मण द्वारा स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मंदिर तथा धर्म संघ बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है। यह कुमारगुप्त के शासनकाल का प्रथम अभिलेख है जिस पर गुप्त संवत् 96 अर्थात् 415 ई० की तिथि अंकित है।

2.1.2.6 गढ़वा के दो शिलालेख

इलाहाबाद जिले में स्थित गढ़वा से कुमारगुप्त के दो शिलालेख मिले हैं। इन पर गुप्त संवत् 98 = 417 ई० की तिथि उत्कीर्ण है। इनमें किसी दानगृह को 10 और 12 दीनारें दिए जाने का वर्णन है।

2.1.2.7 मनकुँवर अभिलेख

मनकुँवर इलाहाबाद जिले में स्थित है। इस लेख में गुप्त संवत् 129=448 ई० की तिथि अंकित है। यह बुद्ध प्रतिमा के निचले भाग पर अंकित है। इस मूर्ति की स्थापना बुद्धमित्र नामक बौद्ध भिक्षु द्वारा कराई गई थी।

2.1.2.8 अन्य अभिलेख

उपरोक्त अभिलेखों के अतिरिक्त कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल के प्राप्त अभिलेखों में मथुरा का लेख, साँची अभिलेख, उदयगिरी गुहा लेख, तुमैन अभिलेख तथा धनदह ताम्रपत्र और वैग्राम ताम्रपत्र प्रमुख हैं।

3.1 मुद्रायें

अभिलेखों के अतिरिक्त भारत के विशाल भू-भाग से कुमारगुप्त की स्वर्ण, रजत तथा ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। उसकी स्वर्ण मुद्रायों में कतिपय कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि की हैं और कुछ निम्न कोटि की। कुमारगुप्त प्रथम ने निम्नलिखित प्रकार की स्वर्ण मुद्रायें जारी करवाई—

3.1.1 व्याघ्र-निहन्ता प्रकार

इनके पुरोभाग पर राजा व्याघ्र को धनुष-बाण से मारता हुआ अंकित किया गया है। पृष्ठ भाग पर देवी मकर की पीठ पर आसीन है। इस ओर लेख 'कुमारगुप्तोऽधिराज' अंकित है।

3.1.2 अश्वमेघ प्रकार

इस प्रकार की आधे दर्जन से अधिक मुद्राएँ उपलब्ध हैं। इनके पुरोभाग पर यज्ञ-यूप से बंधे हुए तथा जीन से अलंकृत अश्व का अंकन है और पृष्ठभाग पर 'श्री अश्वमेघ महेन्द्रः' लेख अंकित है।

3.1.3 वीणावादक प्रकार

इस प्रकार की केवल दो ही मुद्राएँ प्राप्त हैं। इनके पुरोभाग पर सम्राट ऊँची पीठ वाले पर्यक पर आसीन है और गोढ़ में रखी वीणा को बजा रहा है। इसी ओर राजा का नाम उपाधि के सहित (महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तः) अंकित है। इसके पृष्ठभाग पर देवी कुण्डल, हार तथा कंकण पहिने पर्यक पर आसीन है।

3.1.4 अश्वारोही प्रकार

इनके पुरोभाग पर सम्राट घोड़े की पीठ पर आसीन दिखाया गया है। इस ओर लेख 'पृथिवी-तलाबरशशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः' अंकित है।

3.1.5 धनुर्धारी प्रकार

ये पर्याप्त संख्या में निर्मित की गई थी। इनके पुरोभाग पर सम्राट बाईं ओर दाहिने हाथ में बाण तथा बायें हाथ में धनुष लिये खड़ा है। इस ओर लेख प्रायः 'महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त' अंकित है। इनके अलावा कुमारगुप्त ने छत्रप्रकार, सिंहनिहन्ताप्रकार, राजारानीप्रकार, खड्गधारी प्रकार, गजारोही प्रकार, गजारोधी-सिंहनिहन्ता प्रकार, गौंडा-निहन्ता प्रकार, कार्तिकेय प्रकार, अप्रतिघ प्रकार स्वर्ण मुद्राएँ भी जारी करवाईं जिन पर उसकी उपाधियाँ अंकित हैं। कुमारगुप्त प्रथम की रजत एवं ताम्र मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं जिन पर परमभागवत् महाराजाधिराज एवं राजाधिराज उपाधियाँ अंकित हैं।

4.0 साहित्य

'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में कुमारगुप्त प्रथम की चर्चा मिलती है। 'कथासरित्सागर' तथा 'चन्द्रगर्भ परिपृच्छा' जैसे ग्रंथों में वर्णित महेन्द्रादित्य एवं 'महेन्द्रसेन' उपाधि कुमारगुप्त प्रथम की प्रतीत होती हैं।

5.0 गोविन्दगुप्त का प्रश्न

कतिपय इतिहासकारों की मान्यता रही है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के उपरान्त प्रथम कुमारगुप्त नहीं बल्कि गोविन्द गुप्त शासक बना था। जो चन्द्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। इस मत का प्रतिपादन डा० भण्डारकर ने किया था तथा डा० पी० एल० गुप्ता जैसे अनेक विद्वानों ने इसका समर्थन किया है। अपने मत के समर्थन में ये विद्वान वैशाली की राजमुद्रा का उल्लेख करते हैं, जिसमें गोविन्दगुप्त को चन्द्रगुप्त व ध्रुवदेवी का पुत्र बताया गया है एवं उसे 'महाराज' कहा गया है। इसके अतिरिक्त ये विद्वान अपने प्रमाण के तौर पर मन्दसौर अभिलेख का भी उल्लेख करते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं हैं तथा प्रमुख गुप्त वंशावलियों के आधार पर, जहाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमारगुप्त प्रथम का नाम दिया गया है। यह मानते हैं कि गोविन्दगुप्त सम्भवतः वैशाली का स्थानीय शासक था तथा कुमारगुप्त प्रथम ही गुप्त सिंहासन का उत्तराधिकारी था।

6.1 कुमारगुप्त प्रथम की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ

लगभग 40 वर्षों तक कुमारगुप्त ने शासन किया। उसका राज्यकाल 415 ई० से 455 ई० तक था। इन 40 वर्षों में कुमारगुप्त प्रथम ने कोई सैनिक सफलता तो अर्जित नहीं की, परन्तु अपने पूर्वजों से जो विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ था, उसे उसने अक्षुण्ण बनाये रखा। उसके राज्यकाल में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रही। मन्दसौर अभिलेख से पता चलता है कि कुमारगुप्त का राज्य चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ था।

जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है लगभग 13 अभिलेख कुमारगुप्त प्रथम के प्राप्त हुए हैं जो उसके साम्राज्य की सीमाओं को निश्चित करने में हमारी सहायता करते हैं। इन अभिलेखों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उसके साम्राज्य में बंगाल, पश्चिमी भारत में पूर्वी मालवा, पश्चिमी मालवा, उत्तरप्रदेश, कामरूप प्रदेश सम्मिलित थे। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार और डा० रायचौधरी का विचार है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का कुछ क्षेत्र कुमारगुप्त प्रथम के आधिपत्य में था। 'व्याघ्र शैली' की मुद्राएँ इस विचार का मुख्य आधार हैं। उसके कुछ सिक्कों के ऊपर 'व्याघ्रवल पराक्रमः' अर्थात् 'व्याघ्र के समान बल एवं पराक्रम वाला' की उपाधि अंकित मिलती है। इस आधार पर डा० हेमचन्द्रराय चौधरी ने यह मत प्रतिपादित किया है कि कुमारगुप्त प्रथम अपने पितामह (समुद्र गुप्त) के समान दक्षिणी अभियान पर गया तथा नर्मदा नदी को पारकर व्याघ्र वाले जंगली क्षेत्रों को अपने अधीन करने का प्रयास किया सतारा जिले (महाराष्ट्र) से उसकी 1395 मुद्रायें मिली हैं। उसकी 13 मुद्राएँ एलिचपुर (बंरार) से मिलती हैं। किन्तु मात्र सिक्कों के आधार पर ही उसकी विजय का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। राधा कुमुद मुकर्जी ने खंग-निहन्ता प्रकार के सिक्कों, जिनमें कुमारगुप्त को गैंडा का शिकार करते हुए दिखाया गया है, के आधार पर उसकी असम विजय का निष्कर्ष निकाला है क्योंकि गैंडा असम में ही पाये जाते हैं। यह मत भी काल्पनिक जान पड़ता है।

6.1.1 पुष्यमित्र जाति का आक्रमण

कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से पता चलता है कि उसके शासन के प्रारम्भिक वर्ष अत्यन्त शान्तिपूर्ण रहे और वह व्यवस्थित तरीके से शासन करता रहा। परन्तु उसके शासन का अन्तिम चरण शान्तिपूर्ण नहीं था। स्कन्दगुप्त के भीतरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में पुष्यमित्रों ने गुप्त-साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस अभिलेख के अनुसार इस आक्रमण के परिणाम स्वरूप इस कुल की राजलक्ष्मी विचलित हो उठी। इसे स्थिर करने में स्कन्दगुप्त को कठोर प्रयास करना पड़ा पुष्यमित्रों के वेग को रोकने के लिए उसे पूरी रात्रि युद्धभूमि में ही व्यतीत करनी पड़ी। भीतरी लेख से पता चलता है कि पुष्यमित्रों की सैन्यशक्ति एवं साधन विकसित थे तथा उनसे मुकाबला करना अत्यन्त कठिन कार्य था। इसी कारण इस अभिलेख में तीन बार गुप्तों की लक्ष्मी विचलित होने का उल्लेख है। जिससे इस आक्रमण की तीव्रता का अनुमान लगाया जा सकता है। कुमारगुप्त इस समय तक वृद्ध हो चुका था। इस कारण उसके पुत्र युवराज स्कन्दगुप्त को इस युद्ध के संचालन का नेतृत्व करना पड़ा। स्कन्दगुप्त ने बड़ी कुशलता-पूर्वक पुष्यमित्रों के आक्रमण को विफल कर दिया तथा अपनी योग्यता और शक्ति को प्रदर्शित किया। स्कन्दगुप्त की यह विजय अत्यन्त महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इस विजय से पुष्यमित्रों ने उत्पात, भय और आतंक की जो स्थिति उत्पन्न कर दी थी वह समाप्त हो गयी और उनके विचलित कर देने वाले प्रहारों से गुप्तवंश विलुप्त होने से बच गया।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये पुष्यमित्र कौन थे? इतिहासकारों के मध्य यह विवादित प्रश्न रहा है। वस्तुतः इस आक्रमण का विवरण स्कन्दगुप्त के भीतरी अभिलेख के अलावा अन्यत्र कहीं और नहीं मिलता। डा० राखलदास बनर्जी उन्हें हूण तथा हर्नले उन्हें मैत्रक मानते हैं। डा० स्मिथ पुष्यमित्रों को पश्चिमोत्तर प्रदेश का निवासी तथा डा० के० पी० जायसवाल उन्हें पश्चिमी मालवा का निवासी मानते हैं। प्लीट के अनुसार वे नर्मदा नदी के तटीय प्रदेश के निवासी थे। कतिपय विद्वान वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन को पुष्यमित्रों का नेता मानते हैं। दिवेकर महोदय ने भीतरी लेख में 'पुष्यमित्राश्च' के स्थान पर 'युद्ध मित्राश्च' पाठ पढ़ा है तथा यह प्रतिपादित किया है कि यहाँ किसी जाति के आक्रमण का उल्लेख न होकर साधारण शत्रुओं का ही वर्णन हुआ है। लेकिन इतिहासकारों ने इस तर्क से असहमति जताई है। विभिन्न स्रोतों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में पुष्यमित्र नामक जाति थी। वायुपुराण तथा जैनकल्पसूत्र में इस जाति का उल्लेख मिलता है। वे नर्मदा नदी के मुहाने के समीप मेकल में शासन करते थे। पुष्यमित्रों के पहचान का

निर्धारण करना कठिन तो अवश्य है किन्तु इतना स्पष्ट है कि आक्रमणकारी बुरी तरह परास्त हुए और उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। इस विजय की सूचना मिलने से पहले ही वृद्ध सम्राट कुमारगुप्त दिवंगत हो चुका था।

6.2 कुमारगुप्त प्रथम की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

6.2.1 सहिष्णुता और निर्माण-कार्य

कुमारगुप्त प्रथम का शासन-काल सहिष्णुता और सार्वजनिक निर्माण कार्यों का काल था। वह अपने पूर्वजों की भाँति वैष्णव था। उसके मुद्राओं एवं अभिलेखों पर उसकी 'परमभागवत' की उपाधि मिलती है। कतिपय मुद्राओं पर विष्णु के वाहन गरुड़ की आकृति भी उत्कीर्ण है। परन्तु उसने अपने पूर्वजों की धार्मिक सहिष्णुता को कायम रखा। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृत्तान्त में उल्लेख किया है कि शक्रादित्य (कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य) ने नालन्दा बौद्ध बिहार की स्थापना की थी। करमदण्डा अभिलेख से पता चलता है कि उसका एक उच्च पदाधिकारी पृथ्वीषेण, जो उसका पहले मंत्री और कुमारामात्या था तथा बाद को उसका महाबलाधिकृत (सेनापति) हो गया, शैव था। करमदण्डा अभिलेख में उसके द्वारा एक शैव-मूर्ति की स्थापना का उल्लेख मिलता है। मन्दसोर अभिलेख से ज्ञात होता है कि पश्चिमी मालवा के उसके गवर्नर बन्धुवर्मा के शासनकाल में एक तन्तुवाय-श्रेणी ने दशपुर में एक सूर्यमंदिर का निर्माण करवाया था। बिलसड़ के अभिलेख से पता चलता है कि ध्रुवशर्मा ने स्वामी महासेन (कार्तिकेय) का एक मंदिर बनवाया था। मनकुँवर के अभिलेख में बुद्धमित्र द्वारा एक बुद्ध-प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख मिलता है। उदयगिरी के एक गुहा लेख में शंकर द्वारा जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति-स्थापना का ज्ञान प्राप्त होता है। उसके अन्यान्य उल्लेखों में इसी प्रकार के अन्यान्य निर्माण-कार्यों तथा दानों के उल्लेख मिलते हैं। इनमें प्रकट होता है कि देश में वैष्णव, शैव, सूर्योपासक, बौद्ध एवं जैन आदि सभी प्रेमपूर्वक रहते थे। उनमें किसी प्रकार का धार्मिक वैमनस्य नहीं था। जनता अपनी इच्छानुसार विभिन्न धर्मों के मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण कराती थी तथा उन्हें दान देती थी। राजा की दृष्टि में भी कोई पक्षपात नहीं था। वह एक मात्र योग्यता के आधार पर अपने पदाधिकारियों को नियुक्त करता था, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों।

6.2.2 अश्वमेघ यज्ञ

कुमारगुप्त के सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया था। अश्वमेघ प्रकार के सिक्कों के मुख भाग पर यज्ञयूप में बधे हुए घोड़े की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर 'श्री अश्वमेघमहेन्द्रः' मुद्रालेख अंकित है। लेकिन कुमारगुप्त ने किस उपलब्धि के लिए यह अनुष्ठान किया था, पता नहीं चलता।

7.0 प्रान्तीय प्रशासन

प्रान्त को भुक्ति कहा जाता था। कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से निम्नलिखित प्रान्तीय पदाधिकारियों के नाम ज्ञात होते हैं—

चिरादत्तः— दामोदर के ताम्रपत्र में इसे पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) का राज्यपाल बताया गया है।

घटोत्कचगुप्तः— तुमैन (म० प्र०) के लेख में इसे एरण प्रदेश (पूर्वी मालवा) का शासक कहा गया है।

बन्धुवर्माः— यह पश्चिमी मालवा क्षेत्र का राज्यपाल था। इसकी सूचना मन्दसोर अभिलेख में मिलती है।

पृथिवीषेणः— करमदण्डा अभिलेख से पता चलता है कि पृथिवीषेण अवध प्रदेश का सचिव, कुमारामात्य तथा महाबलाधिकृत के पदों पर कार्य कर चुका था। गुप्तकाल में प्रान्तीय शासक को 'उपरिक महाराजा' कहा जाता था।

8.0 उपाधियाँ

कुमारगुप्त प्रथम के लिए मुद्राओं एवं साहित्य में महेन्द्रादित्य, श्री महेन्द्र, महेन्द्रकुमार, अजितमहेन्द्र, सिंहमहेन्द्र गुप्तकुलव्योम की उपाधियाँ प्रयुक्त हुई हैं। उसकी सबसे प्रमुख उपाधि महेन्द्रादित्य थी। ह्वेनसांग ने एक राजा शक्रादित्य का उल्लेख किया है। संस्कृत में शक्र और महेन्द्र दोनों इन्द्र के पर्यायवाची हैं। विमलचन्द्र पाण्डे के विचारानुसार ह्वेनसांग के शक्रादित्य का समीकरण कुमारगुप्त प्रथम से करना चाहिए।

9.0 मूल्यांकन

कुमारगुप्त प्रथम अपने पूर्वजों की तरह विजेता तो नहीं था फिर उसने अपने पैतृक साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखा। सौभाग्य वश उसे युवराज स्कन्दगुप्त एवं प्रान्तीय पदाधिकारियों का कुशल प्रशासनिक और सैनिक सहयोग प्राप्त था। धार्मिक सहिष्णुता का अनुसरण करते हुए कुमारगुप्त ने सभी धर्मों के प्रति आदर-भाव दिखाया और बिना धार्मिक भेदभाव के वैष्णव होते हुए भी शैवों और बौद्धों को उच्च पद प्रदान किए। उसका शासन काल अधिकांशतः शान्ति एवं समृद्धि का काल था। गुप्तवंश में सबसे अधिक अभिलेख एवं मुद्राएँ कुमार गुप्त की ही हैं। उसकी मयूर शैली की मुद्रा गुप्त मुद्राओं में सबसे अधिक कलात्मक है। उसके मुद्रालेख सुन्दर पदावली के लिए प्रसिद्ध हैं। वत्सभट्टि का मन्दसोर अभिलेख संस्कृत काव्य का अनुठा नमूना है। वास्तव में कुमार गुप्त का 40 वर्षों का शासन काल स्वर्णयुग का प्रतिबिम्ब है।

10.0 स्कन्दगुप्त

10.1 प्रस्तावना

स्कन्दगुप्त गुप्त-वंश का अन्तिम प्रतापी शासक था। कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरान्त 455 ई० में स्कन्दगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। युवराज के रूप में उसने अपनी सैनिक कुशलता एवं बाहुबल का परिचय पुष्यमित्रों को परास्त करके दे दिया था। वह योग्य पिता का सुयोग्य पुत्र था। जूनागढ़ अभिलेख में उसके शासन की प्रथम तिथि गुप्तसंवत् 136=455 ई० उत्कीर्ण मिलती है। गढ़वा अभिलेख एवं चोंदी के सिक्कों में उसकी अन्तिम तिथि गुप्त संवत् 148=467 ई० दी हुई है। अतः स्कन्दगुप्त ने 455 ई० से 467 ई० तक कुल 12वर्षों तक राज्य किया।

10.1.1 स्कन्दगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत

स्कन्दगुप्त के शासनकाल पर प्रकाश डालने वाले महत्वपूर्ण स्रोत उसके अभिलेख एवं सिक्के हैं।

स्कन्दगुप्त के अभिलेखों का विवरण इस प्रकार है—

10.1.1.1 जूनागढ़ अभिलेख

यह स्कन्दगुप्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेख है, जो गुजरात में स्थित जूनागढ़ नामक नगर के समीपवर्ती एक पर्वत की शिला पर उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में स्कन्दगुप्त के शासनकाल की प्रथम तिथि गुप्त संवत् 136=455 ई० अंकित है। इस अभिलेख से पता चलता है कि स्कन्दगुप्त ने हूणों को परास्त कर सौराष्ट्र प्रान्त में पर्णदत्त को अपना गोप्ता (राज्यपाल) नियुक्त किया था। उस प्रदेश में उसने लोकोपकारिता का कार्य करवाया था। इस अभिलेख में उसके गिरनार के पुरपति चक्रपालित द्वारा सुदर्शन झील के बाँध के पुनर्निर्माण का विवरण सुरक्षित है तथा चक्रपालित द्वारा उस झील के तट पर एक विष्णु मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। यह भी पता चलता है कि उस समय काल गणना गुप्त-संवत् में की जाती थी।

10.1.1.2 कहौम का अभिलेख

यह अभिलेख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में स्थित कहौम नामक स्थान पर एक स्तम्भ के ऊपर उत्कीर्ण है। मद्र नामक एक व्यक्ति द्वारा पाँच जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं के निर्माण का विवरण इस स्तम्भ लेख में उत्कीर्ण है। इसकी तिथि गुप्त संवत् 141=460 ई० है। इस लेख के अनुसार इस समय गुप्त साम्राज्य में शान्ति स्थापित हो चुकी थी।

10.1.1.3 सुपिया स्तम्भ-अभिलेख

यह अभिलेख मध्य प्रदेश के रीवा जिले में स्थित सुपिया नामक स्थान से प्राप्त हुआ है, जिसमें गुप्त संवत् 141 अर्थात् 460 ई० की तिथि अंकित है। इस अभिलेख में गुप्तवंश को घटोत्कच-वंश कहा गया है तथा इसमें स्कन्दगुप्त के 'विक्रमादित्य' उपाधि का उल्लेख भी मिलता है।

10.1.1.4 इन्दौर ताम्र पत्र

यह ताम्रपत्र उ० प्र० के बुलन्दशहर जिले में स्थित इन्दौर नामक स्थल से प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख से पता चलता है कि एक तैलिक श्रेणी ने एक सूर्य-मंदिर में दीपक जलाने के निमित्त एक दान का प्रबन्ध किया था। इसमें गुप्त संवत् 146=465 ई० की तिथि अंकित है। यह वर्ष स्कन्दगुप्त के अभ्युत्थितिमय एवं विजयपूर्ण शासन का वर्ष था।

10.1.1.5 भितरी स्तम्भ लेख

उत्तर-प्रदेश के गाजीपुर जिले में स्थित भितरी नामक स्थल से तिथि विहिन यह स्तम्भलेख प्राप्त हुआ है। यह स्कन्दगुप्त कालीन राजनैतिक इतिहास जानने का प्रमुख स्रोत है। इसमें पुष्यमित्रों एवं हुणों के साथ स्कन्दगुप्त के युद्ध का वर्णन मिलता है।

इन लेखों के अलावा गढ़वा शिलालेख, विहार स्तम्भ लेख तथा कौशाम्बी अभिलेख से भी स्कन्दगुप्त के शासन काल पर प्रकाश पड़ता है।

10.1.2 मुद्राएँ

स्कन्दगुप्त के शासनकाल की कतिपय स्वर्ण एवं रजत मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। स्वर्ण मुद्राओं के मुख भाग पर धनुष-बाण लिए हुए राजा की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर पद्मासन में विराजमान लक्ष्मी के साथ साथ 'श्रीस्कन्दगुप्तः' उत्कीर्ण है। कतिपय सिक्कों के ऊपर गरुडध्वज तथा उसकी उपाधि 'क्रमादित्य' अंकित है।

स्कन्दगुप्त के रजत मुद्राओं के मुख भाग पर वक्ष तक राजा का चित्र तथा पृष्ठ भाग पर गरुड, नन्दी अथवा वेदी बनी हुई है। इनके ऊपर स्कन्दगुप्त की उपाधियाँ 'परमभागवत्' तथा 'क्रमादित्य' उत्कीर्ण मिलती हैं।

10.1.3 साहित्यिक स्रोत

स्कन्दगुप्त के सम्बन्ध में कथासरित्सागर, चन्द्रगर्भ परिपृच्छा, चान्द्र व्याकरण तथा आर्य मंजू श्रीमूलकल्प से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

11.0 उत्तराधिकार का युद्ध

रमेशचन्द्र मजूमदार, गांगुली जैसे कतिपय इतिहासकारों की मान्यता रही है कि कुमारगुप्त प्रथम के उपरान्त उसके दो पुत्रों पुरुगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध हुआ था। जिसमें स्कन्दगुप्त ने पुरुगुप्त को परास्त कर गुप्त वंश के सिंहासन को प्राप्त किया था। अपने मत के समर्थन में इन इतिहासकारों ने भीतरी एवं जूनागढ़ के लेखों के साक्ष्य दिए हैं। स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख में उसके पूर्वगामी राजाओं की माताओं के नाम दिए हैं और उन्हें महादेवी (प्रधानरानी) कहा गया है। लेकिन स्कन्दगुप्त की माता का नाम नहीं है। जान पड़ता है स्कन्दगुप्त की माँ महादेवी अर्थात् प्रधान रानी नहीं थी, इसी कारण वह राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी न होने पर उसने बलात् राज्य प्राप्त किया था। भीतरी लेख में कहा गया है कि कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरान्त गुप्त-वंश की लक्ष्मी चंचल हो गयी। स्कन्दगुप्त ने अपने भुजबल से शत्रुओं को परास्त करके उसकी फिर से स्थापना की। शत्रुओं का नाश करके वह (स्कन्दगुप्त) अपनी रोती हुई माता के पास उसी प्रकार गया जिस प्रकार शत्रुओं का नाश करके कृष्ण अपनी माता देवकी के पास गए थे। रमेश चन्द्र मजूमदार का मत है कि राजलक्ष्मी को चंचल करने वाले शत्रु

पुरुगुप्त और उसके सहायक थे। उन्होंने कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद राजसिंहासन पर अधिकार करने की कोशिश की। लेकिन स्कन्दगुप्त ने इन्हें परास्त कर दिया। और सम्भवतः पुरुगुप्त के बन्दीगृह से अपनी माता का उद्धार किया।

जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि स्कन्दगुप्त ने अपने शत्रुओं को परास्त करके पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया था। आर० सी० मजूमदार जैसे इतिहासकारों की धारणा है कि स्कन्दगुप्त द्वारा पराजित ये शत्रु पुरुगुप्त और उसके सहायक थे, अर्थात् पुरुगुप्त को परास्त करने के उपरान्त ही स्कन्दगुप्त राज्याधिकारी हो सका। जूनागढ़ अभिलेख में यह भी उल्लेखित है कि लक्ष्मी ने समस्त राजपुत्रों का परित्याग कर स्कन्दगुप्त का वरण किया। यही स्वयंवर दृश्य स्कन्दगुप्त की एक मुद्रा पर भी उत्कीर्ण है।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकार का प्रश्न अत्यन्त उलझा हुआ है। इतिहासकारों ने मजूमदार आदि विद्वानों के उपरोक्त तर्कों का खण्डन किया है। स्कन्दगुप्त की माता का उसके अभिलेखों में उल्लेख न होना तथा उसके महादेवी न होने से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह राज्य का वैधानिक उत्तराधिकारी नहीं था। इसी प्रकार भितरी अभिलेख में जिन वाह्य शत्रुओं का उल्लेख हुआ है वे पुष्यमित्र तथा हूण हो सकते हैं। वास्तविकता जो भी रही हो, इतना तो स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त के शासन के आरम्भिक वर्ष अत्यन्त अशान्तिपूर्ण रहे। अपनी वीरता एवं पराक्रम के बल पर स्कन्दगुप्त ने जटिल समस्याओं से निपटने के उपरान्त ही गुप्त राजसिंहासन प्राप्त किया था।

12.0 स्कन्दगुप्त की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ

स्कन्दगुप्त के शासन का प्रारम्भिक काल गुप्त साम्राज्य के लिए आपत्काल था। इस काल में उस पर बाह्य शत्रुओं के अनेकानेक आक्रमण हुए।

12.1 पुष्यमित्रों का आक्रमण

पुष्यमित्रों का आक्रमण कुमारगुप्त प्रथम के शासन के अन्तिम दिनों में हुआ था। युवराज स्कन्दगुप्त को इन आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। भितरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में उनके प्रबल एवं भयंकर आक्रमण के आघात से गुप्त-राजशक्ति क्षीण होने लगी थी तथा गुप्त-राजलक्ष्मी विचलित हो गई थी। अतः स्कन्दगुप्त को अपने वंश की राजलक्ष्मी को स्थिर रखने, क्षतिग्रस्त साम्राज्य को पुनः संगठित करने तथा पुष्यमित्रों की शक्ति कुचलने के लिए दिन-रात का विचार त्याग कर उनसे संघर्ष करना पड़ा और उस कठिन परीक्षा के समय में एक रात्रि तो उसे नंगी पृथ्वी पर ही व्यतीत करनी पड़ी। अन्ततः अपने पराक्रम द्वारा युवराज स्कन्दगुप्त ने पुष्यमित्रों को न्यस्त व पराभूत कर उन पर पूर्ण विजय प्राप्त की और उनके राजा को चरण पीठ बन कर उस पर अपना वाम-पद स्थापित कर उन्हें सदैव के लिए शान्त कर दिया।

12.2 हूणों का आक्रमण

स्कन्दगुप्त के शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना गुप्त साम्राज्य पर हूण आक्रमण है। ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि गुप्त शासकों ने उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया था तथापि इसकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं की गई थी। इसका लाभ उठाकर मध्य एशिया से पुनः विदेशियों ने आक्रमण आरम्भ कर दिया। इस बार आक्रमणकारी हूण थे, जिन्होंने पाँचवी शताब्दी में समस्त मध्य एशिया को अपने पैरों तले रौंद डाला था। वे अब भारत की तरफ बढ़े। भितरी और जूनागढ़ अभिलेखों में तथा चन्द्रगर्भ-परिपृच्छा नामक बौद्ध ग्रंथ में इन विदेशी आक्रान्ताओं को 'हूण', 'म्लेच्छ' या विदेशी कहा गया है।

12.2.1 भितरी अभिलेख

इस अभिलेख में यह उल्लेखित है कि जिस समय हूणों और स्कन्दगुप्त का युद्ध हुआ उस समय स्कन्दगुप्त की भुजाओं के प्रताप से सम्पूर्ण पृथ्वी काँपने लगी और एक भंयकर बवण्डर (तुफान) उठ खड़ा हुआ (हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोभ्या धरा कम्पिता)।

12.2.2 जूनागढ़ अभिलेख

जूनागढ़ अभिलेख में हूणों को म्लेच्छ कहा गया है। स्कन्दगुप्त ने उसके अहंकार को चूर कर दिया था और वे भी अपने देश में उसका यशोगान करने लगे थे। जूनागढ़ अभिलेख की तिथि 136 गुप्तसंवत् (456 ई०) है। अतः अभिलेख द्वारा यह स्पष्ट है कि यह युद्ध भी स्कन्दगुप्त के शासन के प्रारम्भ में हुआ था।

12.3 चन्द्रगर्भ परिपृच्छा

नामक बौद्ध ग्रंथ में महेन्द्रसेन नामक एक राजा का वर्णन मिलता है, जिसका पुत्र बड़ा प्रतापी था। वह यवनों, बाहलिकों और सकुनों को पराजित कर जब वापस लौटा तो उसके पिता महेन्द्रसेन ने उसे सिंहासनासीन किया और स्वयं संसार त्याग दिया। डा० के०पी० जायसवाल ने महेन्द्रसेन का समीकरण कुमारगुप्त के साथ तथा उसके प्रतापी पुत्र का समीकरण स्कन्दगुप्त से किया है।

12.4 सोमदेव रचित कथासरित्सागर

में कहा गया है कि उज्जैन के राजा महेन्द्रादित्य का पुत्र विक्रमादित्य अपने पिता के बाद सिंहासन पर बैठा। उसने म्लेच्छों को पूर्णतया पराजित किया। एलन महोदय ने महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य का समीकरण क्रमशः कुमारगुप्त एवं स्कन्दगुप्त से किया है। अतः कथासरित्सागर में भी स्कन्दगुप्त और हूणों के युद्ध की स्मृति संरक्षित है।

12.5 चान्द्र व्याकरण

नामक ग्रंथ में एक वाक्य मिलता है—‘अजयत् गुप्तो हूणान’ अर्थात् गुप्तों ने हूणों को जीता। डॉ० मजूमदार गुप्त का समीकरण स्कन्दगुप्त से करते हैं।

12.6 युद्धस्थल

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि स्कन्दगुप्त और हूणों का युद्ध किस स्थान पर हुआ? भित्तरी अभिलेख में युद्ध का वर्णन करते हुए ‘श्रोत्रेषु गंगा ध्वनि’ शब्दों का प्रयोग मिलता है। इस आधार पर डॉ० वासुदेव उपाध्याय का मत है कि यह युद्ध गंगा की घाटी में हुआ था। परन्तु अभिलेख का यह भाग इतना टुटा-फुटा है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि ‘श्रोत्रेषु गंगाध्वनिः’ का प्रयोग किस स्थान के सम्बन्ध में हुआ है।

उपेन्द्र ठाकुर का विचार है कि हूण युद्ध या तो सतलज नदी के तट पर या पश्चिमी भारत के मैदानों में लड़ा गया था। जूनागढ़ अभिलेख से विदित होता है कि स्कन्दगुप्त सौराष्ट्र प्रदेश की रक्षा के लिए सर्वाधिक चिन्तित था, जान पड़ता है कि सौराष्ट्र पर ही हूण आक्रमण हुआ था। यह युद्ध संभवतः उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र में हुआ होगा।

12.7 नागों से संघर्ष

जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि स्कन्दगुप्त की गरुडध्वजांकित राजाज्ञा नागरुपी उन राजाओं का मर्दन करने वाली थी जो मान और दर्प से अपने फन उठाये रहते थे। इस आधार पर फ्लीट ने निष्कर्ष निकाला है कि स्कन्दगुप्त ने नागवंशी राजाओं को पराजित किया था, परन्तु इस मत के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

12.8 वाकाटकों से युद्ध

बालाघाट ताम्रपत्र में आधार पर दाण्डेकर ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि स्कन्दगुप्त की विपत्तियों से लाभ उठाकर वाकाटकों ने भी गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसके पश्चिमी प्रदेश का कुछ भाग छीन लिया। इस ताम्रपत्र में वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन को मालवा का अधिपति कहा गया है (कोशल मेकलमालवाधिपतिः अभ्यर्चित शासनः) मालवा गुप्तों के अधिकार में था। फिर वह वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन के अधिकार में कैसे आया? ए०एस० अल्टेकर ने विचार व्यक्त किया है कि 455ई० के लगभग कदाचित् मालवा के सामन्त ने गुप्तों के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी हो और उनके विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए वाकाटकों के विरुद्ध अधीनता स्वीकार कर ली हो। परन्तु स्कन्दगुप्त ने शीघ्र ही इस प्रदेश के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा जीवन पर्यन्त उसका शासक बना रहा।

13.0 साम्राज्य विस्तार

स्कन्दगुप्त के अभिलेखों एवं सिक्कों के व्यापक प्रसार से स्पष्टतः कहा जा सकता है कि उसने अपने पिता एवं पितामह के साम्राज्य को पूर्णतया अक्षुण्ण बनाये रखा। जूनागढ़ अभिलेख सुराष्ट्र प्रान्त पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है। मन्दसौर अभिलेख उसके मालवा पर स्वामित्व को सिद्ध करता है। उसकी विविध प्रकार की रजत मुद्राएँ साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर उसके आधिपत्य को सिद्ध करती हैं। बिहार के एक अभिलेख से सिद्ध होता है कि आधुनिक बिहार उसके साम्राज्य में था। भितरी स्तम्भ लेख, कहौम स्तम्भलेख, इन्दौर ताम्रपत्र, गढ़वा एवं कौशाम्बी शिलालेख से उसका आधिपत्य सम्पूर्ण प्रदेश पर प्रमाणित होता है। मध्यप्रदेश में उसकी गरुण शैली की मुद्राएँ मिली हुई हैं। वह अन्तिम गुप्त सम्राट था जिसने बंगाल से लेकर गुजरात तक के विस्तृत भू-भाग पर शासन किया। जूनागढ़ अभिलेख में उसके साम्राज्य की विशालता के बारे में कहा गया है कि यह चारों समुद्रों तक फैला हुआ था।

स्कन्दगुप्त के सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियों के विषय में आर०के० मुखर्जी का यह विचार अत्यन्त प्रासंगिक लगता है "स्कन्दगुप्त शत्रुओं को परास्त करके ही चुप नहीं बैठ गया था। उसका सैनिक स्वभाव उसे 'दिग्विजय' की ओर प्रेरित करने लगा। स्कन्दगुप्त की यह विजय 'धर्मविजय' थी क्योंकि उसने परास्त शत्रुओं को पुनः स्थापित करके दया भावना का प्रदर्शन किया।"

14.0 स्कन्दगुप्त की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

14.1 उपलब्धियाँ और विरुद्ध

भितरी अभिलेख में स्कन्दगुप्त की 'क्रमादित्य' और 'विक्रमादित्य' की उपाधियाँ मिलती हैं। 'क्रमादित्य' की उपाधि उसकी धनुर्धारी, गरुड़, वृषभ और वेद शैलियों की मुद्राओं पर भी मिलती है। 'विक्रमादित्य' की उपाधि भी उसकी वेदी शैली की रजत-मुद्राओं पर भी मिलती है। कथासरित्सागर में भी उसे विक्रमादित्य कहा गया है। आर्यमंजुश्री मूलकल्प में उसे 'देवराज' कहा गया है। 'शक्रोपम' की उपाधि उसके कहौम अभिलेख में मिलता है।

15.0 शासन-प्रबन्ध

जूनागढ़ अभिलेख में स्कन्दगुप्त के शासन प्रबन्ध की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। स्कन्दगुप्त का विशाल साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त को देश अथवा विषय कहा गया है। प्रान्त पर शासन करने वाले राज्यपाल को 'गोप्ता' कहा गया है। पर्णदत्त सौराष्ट्र प्रान्त का राज्यपाल था। सर्वनाग अर्न्तर्वेदी गंगा - यमुना दोआब का शासक था। कौशाम्बी में उसका राज्यपाल भीमवर्मन था जिसका उल्लेख वहाँ से प्राप्त एक प्रस्तरमूर्ति में मिलता है। बिहार के लेख में उसके कतिपय स्थानीय कर्मचारियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं-

अग्रहारिकः- यह दान में दी गई भूमि की देखरेख करता था।

शौक्तिकः— यह शुल्क सम्बन्धी कर्मचारी था।

गौलिमकः— वह जंगलों का अध्यक्ष था।

स्कन्दगुप्त का शासन बड़ा उदार था जिसमें जनता सुखी एवं समृद्ध थी। किसी को कोई कष्ट नहीं था। जूनागढ़ अभिलेख में उसके प्रशासन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसकी प्रजा में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो धर्मच्युत हो अथवा दुःखी, दरिद्र, आपत्तिग्रस्त, लोभी या दण्डनीय होने के कारण अत्यन्त सताया गया हो।

15.1 धार्मिक सहिष्णुता

स्कन्दगुप्त वैष्णव धर्मावलम्बी था किन्तु उसने धर्म-सहिष्णुता की नीति का पालन किया। उसने सभी धर्मों के प्रति समान नीति अपनाई। भित्तरी में उसने विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवायी थी। गिरनार में चक्रपालित ने भी सुदर्शन झील के तट पर विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवाई थी। उसने अपने साम्राज्य में अन्य धर्मों को विकसित होने का भी अवसर दिया। उसकी प्रजा का दृष्टिकोण भी उसी के समान उदार था। इन्दौर अभिलेख में सूर्यपूजा का उल्लेख मिलता है। कहौम लेख से पता चलता है कि मद्र नामक एक व्यक्ति ने पाँच जैन तीर्थकरों की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण करवाया था। यद्यपि वह एक जैन था तथापि ब्राह्मणों, श्रमणों एवं गुरुओं का सम्मान करता था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त का शासन धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता का काल रहा।

15.2 लोकोपकारी कार्य

स्कन्दगुप्त अपने प्रजा के सुख-दुःख का सदैव ध्यान रखता था। वह प्रजावत्सल शासक था। प्रान्तों में उसके राज्यपाल भी लोकोपकारी कार्यों में सदैव तत्पर रहते थे। जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में अतिवृष्टि के कारण ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बाँध टूट गया। क्षण भर के लिए वह रमणीय झील सम्पूर्ण लोक के लिए दुर्दर्शन यानी भयावह आकृति वाली बन गयी, इससे प्रजा को महान कष्ट होने लगा। इस कष्ट के निवारण हेतु सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने, जो गिरनार नगर का नगरपति था, दो माह के भीतर ही अतुल धन का व्यय करके पत्थरों की जड़ाई द्वारा उस झील के बाँध का पुनर्निर्माण करवा दिया। जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार यह बाँध सौ हाथ लम्बा तथा अरसठ हाथ चौड़ा था। इससे प्रजा ने सुख-शान्ति की सांस ली तथा बार-बार विकाराल रूप ग्रहण कर लेने वाली सुदर्शन झील हमेशा के लिए स्थिर हो गयी। उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक सुदर्शन झील का निर्माण चन्द्रगुप्तमौर्य के सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने पश्चिमी भारत में सिंचाई की सुविधा के लिए करवाया था। अशोक के राष्ट्रीय यवन जातीय तुषास्प ने झील पर बाँध का निर्माण करवाया था। शकमहाक्षत्रप रुद्रदामन (130-150 ई०) के समय यह बाँध टूट गया जिसका पुनर्निर्माण अतुल धन व्यय करके रुद्रदामन ने अपने राज्यपाल सुविशाख के देखरेख में करवाया था।

16.0 मूल्यांकन

स्कन्दगुप्त एक महान् विजेता, अपने वंश की प्रतिष्ठा का पुनर्स्थापक तथा एक प्रजावत्सल सम्राट था। वह गुप्तवंश के महानतम राजाओं की शृंखला में अन्तिम प्रतापी राजा था। अपनी वीरता एवं कुशल पराक्रम के बल पर उसने अपने वंश की विचलित राजलक्ष्मी को पुनःप्रतिष्ठित कर दिया। जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि "सभी राजकुमारों को त्यागकर लक्ष्मी ने स्वयं उसका वरण किया" अर्थात् कुमारगुप्त प्रथम के पुत्रों में वह सर्वाधिक योग्य एवं बुद्धिमान था। राजकुमार के रूप में उसने पुष्यमित्र जैसी भंयकर जाति को परास्त किया था तथा शासक के रूप में हूणों के गर्व को चूर्णकर उन्हें देश के बाहर भगा दिया। वह

गुप्तवंश का एक मात्र वीर था। उसकी प्रजा उससे इतनी अधिक उपकृत थी कि 'उसकी अमर कीर्ति का गान बालक से लेकर प्रौढ़ तक प्रसन्नतापूर्वक सभी दिशाओं में किया करते थे।'

उसे अपने बाहुबल का भरोसा था, तथा वह बड़ा ही यशस्वी था। यह उसके शौर्य का जीवन्त प्रमाण है कि अनेकानेक विपत्तियों के होते हुए भी उसने बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक विस्तृत अपने साम्राज्य को आजीवन अक्षुण्ण रखा। वह एक वीर सेनानी के साथ-साथ उच्चकोटि का संगठनकर्त्ता भी था। उसने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभाजित करके वहाँ योग्य गर्वनों की नियुक्ति की। स्कन्दगुप्त में अनेक चारित्रिक गुण थे। वह विनय, बल तथा शील से युक्त था। वह भक्त प्रजा में अनुरक्त विशेष रूप से बुद्धिमान तथा समस्त प्रजा के हित में संलग्न रहता था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त अपने वंश का महान् सम्राट था। वह एक ऐसा लौहपुरुष था, जिसने साम्राज्य को विघटित होने से सफलतापूर्वक रोका, तथा अपनी प्रजा के हृदय में अपने प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न की।

17.0 शब्दावली (Glossary)

पुरोभाग – सिक्के का मुख भाग (**Front or head of coin**)

पृष्ठभाग– सिक्के का उल्टा भाग (**tail of coin**)

भुक्ति– प्रान्त

मुद्रालेख– मुद्राओं पर अंकित लेख

अभिलेख– पत्थर अथवा धातु जैसी अपेक्षाकृत कठोर सतह पर उत्कीर्ण पठन–सामग्री

मुद्राशास्त्र– सिक्कों, कागजीमुद्रा आदि के संग्रह एवं उसके अध्ययन का विज्ञान

19.0 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

- पुष्यमित्र जाति का आक्रमण किस गुप्तशासक के शासनकाल में हुआ था ?
(अ) समुद्रगुप्त (ब) चन्द्रगुप्त द्वितीय (स) कुमारगुप्त प्रथम (द) स्कन्दगुप्त
- कुमारगुप्त के शासनकाल में एक तन्तुवाय श्रेणी द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण का उल्लेख किस अभिलेख से ज्ञात होता है ?
(अ) कर्मदण्डा अभिलेख (ब) भीतरी अभिलेख (स) जूनागढ़ अभिलेख (द) मन्दसोर अभिलेख
- मन्दसोर अभिलेख किस राज्य से प्राप्त हुआ है ?
(अ) उत्तर प्रदेश (ब) मध्य प्रदेश (स) उत्तराखण्ड (द) गुजरात
- कुमारगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ करवाया था । सत्य/असत्य
- कुमारगुप्त के शासनकाल में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया था। सत्य/असत्य
- सुदर्शन झील का पुर्ननिर्माण किस गुप्त शासक द्वारा करवाया गया था?
(अ) स्कन्दगुप्त (ब) कुमारगुप्त (स) चन्द्रगुप्त द्वितीय (द) समुद्रगुप्त
- स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख किस राज्य से प्राप्त हुआ है ?
(अ) गुजरात (ब) महाराष्ट्र (स) उत्तरप्रदेश (द) उत्तराखण्ड
- पुरुगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध हुआ था। सत्य/असत्य
- किस गुप्त राजकुमार ने पुष्यमित्रों को परास्त किया था ?
(अ) काच (ब) गोविन्दगुप्त (स) स्कन्दगुप्त (द) पुरुगुप्त
- जूनागढ़ अभिलेख में हूणों को क्या कहा गया है ?
(अ) पुष्यमित्र (ब) म्लेच्छ (स) हूण (द) शक

11. गुप्तकालीन कौन सी मुद्रा सर्वाधिक कलात्मक मानी जाती है ?
(अ) धुर्नधारी सिक्के (ब) अश्वमेघ प्रकार के सिक्के (स) मयूर शैली की मुद्राएं (द) इनमें से कोई नहीं।
12. मन्दसोर अभिलेख का लेखक कौन था ?
(अ) वत्सभट्टि (ब) हरिषेण (स) रविकृति (द) कालीदास
13. स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों को परास्त करने की सूचना किस अभिलेख से प्राप्त होती है?
(अ) कहौम अभिलेख (ब) सुविया स्तम्भलेख (स) इन्दौर ताम्रपत्र (द) जूनागढ़ अभिलेख
14. स्कन्दगुप्त के किस अभिलेख में सूर्य पूजा का उल्लेख मिलता है ?
(अ) भीतरी (ब) जूनागढ़ (स) इन्दौर (द) कहौम
15. सर्वप्रथम सुदर्शन झील का निर्माण किस शासक द्वारा करवाया गया था ?
(अ) चन्द्रगुप्त मौर्य (ब) अशोक (स) रुद्रदामन (द) स्कन्दगुप्त

उत्तर—

- 1.(स) 2. (स) 3.(ब) 4.(सत्य) 5. (असत्य) 6.(अ) 7.(अ) 8.(सत्य) 9.(स) 10.(ब) 11.(स)
12(अ) 13.(द) 14.(स) 15.(अ)

निम्नलिखित पर 100–150 शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

1. हूण आक्रमण
2. पुष्यमित्रों का आक्रमण
3. मन्दसोर अभिलेख
4. जूनागढ़ अभिलेख
5. तन्तुवाय श्रेणी

19.0 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुमारगुप्त के चरित्र एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
2. स्कन्दगुप्त गुप्त साम्राज्य का अन्तिम महान शासक था, समीक्षा कीजिए।
3. स्कन्दगुप्त के चरित्र एवं उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।

20.0 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तकें

1. Majumdar R. C. *et. al.* (Eds) *The History and Culture of Indian people, Vol. III: The classical Age* (1970) Vidhya Bhawan, Bombay.
2. परमेश्वरी लाल गुप्ता—गुप्त साम्राज्य (1970) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. भगवतशरण उपाध्याय—गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास (1969)।
4. वासुदेव उपाध्याय— गुप्त साम्राज्य का इतिहास
5. श्रीराम गोयल— गुप्त साम्राज्य का इतिहास (1995) कुसुमाज्जलि प्रकाशन, जोधपुर।
6. झा डी0एन0 एवं श्रीमाली के0 एम0— प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (1990)।
7. पाण्डेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास (250—1250 ई0) एम0 चन्द्र, दिल्ली (2003)।
8. श्रीवास्तव, के0 सी0 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहाबाद (1991)।

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के ऐतिहासिक स्रोत
- 2.3 केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था
 - 2.3.1 राजा
 - 2.3.2 सामन्त
 - 2.3.3 केन्द्रीय पदाधिकारी—मन्त्रीपरिषद एवं अन्य अधिकारीगण
 - 2.3.4 प्रान्तीय शासन एवं प्रान्तीय अधिकारी
 - 2.3.5 जिला प्रशासन एवं विषयाधिकारी
 - 2.3.6 नगर प्रशासन
 - 2.3.7 ग्राम प्रशासन
- 2.4 सैन्य—संगठन
- 2.5 पुलिस व्यवस्था
- 2.6 न्याय प्रशासन
- 2.7 राजस्व प्रशासन
- 2.8 सारांश
- 2.9 शब्दावली
- 2.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 2.11 निबन्धात्मक प्रश्न
- 2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य—पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप गुप्त राजाओं के प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- राजा के दैवी उत्पत्ति को समझ सकेंगे। राजा के कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में सम्यक अध्ययन कर सकेंगे।
- गुप्तकाल में सामन्तों के उदय एवं प्रशासनिक महत्व को समझ सकेंगे।
- गुप्तकालीन केन्द्रीय पदाधिकारियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था, जिला प्रशासन एवं ग्राम प्रशासन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- गुप्तकालीन सैन्य प्रशासन, न्याय—व्यवस्था एवं राजस्व व्यवस्था का अध्ययन कर पायेंगे।

2.1 प्रस्तावना

स्वर्णकाल के नाम से अभिहित गुप्तकाल में एक कुशल एवं उत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था का विकास हुआ था। गुप्तकालीन शासन—प्रणाली ने पूर्वगामी राजवंशों के शासन—प्रबन्धों के सभी लाभकर तत्वों को ग्रहण कर लिया था। इसके साथ—साथ इसने आवश्यकतानुसार अनेक नवीन और मौलिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं का भी निर्माण किया था। गुप्तकाल में दो प्रकार का शासन तन्त्र प्रचलन में था—

(1) गणतन्त्रः— इसकाल में अनेक गणतन्त्रामक राज्यों के नाम मिलते हैं। ये राज्य पंजाब और राजस्थान में थे। इनमें मालव, आर्जुनायन, सनकानीक, यौधेय, मद्र, प्रार्जुन, कुणिन्द, काक, खरपरिक, आभीर विशेष उल्लेखनीय थे। के० पी० जायसवाल का मत था कि समुद्रगुप्त की साम्राज्यवादी नीति के कारण 400 ई० पश्चात् ये गणतन्त्र समाप्त हो गये।

(2) राजतन्त्रः— गुप्तकाल में अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय शासनतंत्र राजतंत्र ही था। राजतंत्र दैवी सिद्धान्त पर आधारित था।

2.2 गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के ऐतिहासिक स्रोत

गुप्तकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों, अभिलेखों, सिक्कों एवं चीनी यात्री फाह्यान के यात्रा वृत्तान्त से इस युग के शासन-संस्थाओं पर ठोस प्रकाश पड़ता है। कालिदास के ग्रन्थों—रघुवंश, मालविकाग्निमित्र, अभिज्ञानशाकुन्तलम् में गुप्तयुगीन राजनैतिक आदर्शों एवं शासन संस्थाओं का कतिपय उल्लेख मिलता है। विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस, विष्णुशर्मा के पंचतंत्र एवं कामन्दक नीतिसार से गुप्तकालीन शासन प्रबन्ध पर प्रभाव पड़ता है। गुप्त सम्राटों के अभिलेखों एवं सिक्कों से इस युग की प्रशासनिक व्यवस्था का वृहद उल्लेख मिलता है। चीनी यात्री फाह्यान ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में कहीं-कहीं इस देश के सुशासन एवं कानूनों की उत्तमता का निर्देश किया गया है, जैसे— “राजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा पढ़ी और पंचायत कुछ नहीं है। वे राजा की भूमि जोतते हैं और उसका अंश देते हैं। जहाँ चाहें रहें। राजा न प्राणदण्ड देता है, न शारीरिक दण्ड देता है। अपराधी को अवस्था के अनुसार उत्तम साहस या मध्यम साहस का अर्थदण्ड दिया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी होते हैं।”

2.3 केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था

2.3.1 राजा

गुप्तकाल में राजा को देवतुल्य समझा जाता था, उसे पृथ्वी पर देवता का प्रतिनिधि और कभी-कभी तो स्वयं देवता माना जाता था। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को देव कहा गया है (लोकधाम्नो देवस्य)। वह मानवोचित क्रियायें करने मात्र के कारण मनुष्य लगता था, अन्यथा वह देवता तुल्य था। प्रयाग-प्रशस्ति में उसे अचिन्त्यपुरुष (भगवान् बिष्णु) कहा गया है तथा उसकी तुलना कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा यमराज आदि से की गयी है। समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य दोनों को साक्षात् अप्रतिरथ (=बिष्णु) भी कहा गया है। हरिषेण ने समुद्रगुप्त को सज्जनों के उदय एवं दुर्जनों के पतन का कारण माना है।

गुप्त सम्राटों की उपाधियाँ भी उनकी दैवी उत्पत्ति की अवधारणा की ओर संकेत करती हैं। उन्होंने ‘परमदैवत’, ‘महाराजाधिराज’, ‘राजाधिराज’, ‘एकाधिराज’ तथा ‘परमेश्वर’ जैसी उपाधियाँ धारण की। राजाओं के प्रति दैवी भावना इस युग की स्मृतियों से भी प्रकट होती है। राजा देवताओं के अंश से बना होने के कारण दैवी होता है, यह अभिव्यक्ति याज्ञवल्क्य और नारद स्मृतियों में उल्लेखित है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी यह विचार वर्णित है। जिसका प्रयोग गुप्तचर लोग जन-सामान्य में राजा का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही किया करते थे, परन्तु गुप्तकाल तक यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त हो गया था।

दैवी उत्पत्ति के बावजूद राजा स्वयं विधि-विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। राजा प्रशासन का मुख्य स्रोत था, जिसके अधिकार और शक्तियाँ असीमित थी। वह कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी, न्याय का प्रधान न्यायाधीश एवं सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। युद्ध के समय वह स्वयं सेना का संचालन करता था। प्रशासन के सभी उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति सम्राट द्वारा ही की जाती थी और वे सभी उसी के प्रति उत्तरदायी होते थे। सिद्धान्ततः राजा की स्थिति एक निरंकुश शासक जैसी थी, लेकिन व्यवहार में वह उदार तथा जनहिताकारी होता था। गुप्तकाल में ऐसे रानियों का दृष्टान्त उपलब्ध है जिन्होंने अपने पतियों के साथ मिलकर शासन किया। कुमार देवी ने अपने पति चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ मिलकर शासन चलाया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता ने वाकाटक राज्य के शासन का संचालन किया था।

2.3.2 सामन्त

इतिहासकार आर. एस. शर्मा के अनुसार गुप्तकाल में 'सामन्तवाद' का उदय हो चुका था। भूमि अनुदान तथा गुप्त सम्राटों की अधीनस्थ राजाओं के प्रति अपनायी गई नीति के कारण सामन्तवाद का उदय हुआ। गुप्तकाल में सम्राट के अधीन अनेक छोटे-छोटे सामन्त हुआ करते थे जो अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से शासन करते थे तथा नाममात्र के लिए सम्राट की अधीनता स्वीकार करते थे। ये सामन्त 'महाराज' की उपाधि ग्रहण करते थे। उन्हें सेना रखने तथा अपने अधीन जनता से कर वसूलने का अधिकार प्राप्त था। पूर्वी मालवा में सनकानिक, बुन्देलखण्ड में परिव्राजक एवं उच्चकल्प वंशों के शासक गुप्तों के सामन्त थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि के एक गुहालेख में 'सनकानिक महाराज' का उल्लेख मिलता है। सामन्त शासक अपने लेखों में अपने को पादानुध्यात कहते थे। विभिन्न अवसरों पर सम्राट की राजसभा में उपस्थित होते तथा भेंट, उपहारादि से उसे सन्तुष्ट रखते थे। कतिपय शक्तिशाली सामन्तों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपने अधीन कई छोटे-छोटे सामन्त रखे थे। ऐसे शक्तिशाली सामन्तों में परिव्राजक महाराज हस्तिन् का उल्लेख किया जा सकता है। गुप्तों के अभिलेखों में सामन्तों तथा उनकी श्रेणियों का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।

2.3.3 केन्द्रीय पदाधिकारी-मन्त्रीपरिषद एवं अन्य अधिकारीगण

गुप्त सम्राट शासन-कार्यों में मंत्रियों और अन्य पदाधिकारियों की सहायता लेते थे। मंत्रियों को अमात्य अथवा सचिव भी कहा जाता था। गुप्त अभिलेखों में हरिषेण, वीरसेन उर्फ शाव, शिखरस्वामी तथा पृथिवीषेण आदि मंत्रियों के नाम मिलते हैं। उदयगिरि गुहालेख से पता चलता है कि सचिव का पद परम्परागत था। परिव्राजकों तथा उच्च कल्पों में भी यह परम्परा प्रचलित थी। वाकाटक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उनके राज्य में मंत्री पद एक परिवार में कई पीढ़ी तक रहा था। मन्त्री की नियुक्ति में योग्यता को महत्व दिया जाता था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य सन्धि-विग्रहिक वीरसेन एक निपुण कवि तथा व्याकरण, न्याय और राजनीति का पण्डित था तथा समुद्रगुप्त का सन्धिविग्रहिक हरिषेण एक निपुण कवि था।

कुमारामात्यः— साम्राज्य के मुख्य-मुख्य पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों को 'कुमारामात्य' कहते थे। कुमारामात्य राजघराने के भी होते थे और दूसरे लोग भी। साम्राज्य के विविध अंगों-मुक्ति, विषय आदि का शासन करने के लिए जहाँ इनकी नियुक्ति की जाती थी, वहाँ सेना, न्याय आदि के उच्च पदों पर भी ये कार्य करते थे। कुमारामात्य साम्राज्य की स्थिर सेवा में होते थे, और शासन-सूत्र का संचालन इन्हीं के हाथों में रहता था। रोमिला थापर कुमारामात्य को प्रान्तीय पदाधिकारी मानती हैं। जबकि अभिलेखों से ये केन्द्रीय पदाधिकारी प्रतीत होते हैं। ए० एस० अल्तेकर ने भी कुमारामात्य को 'केन्द्रीय नौकरशाही' का पर्याय माना है। कुमारामात्य के कार्यालय को 'कुमारामात्याधिकरण' कहते थे।

अधिकरणः— केन्द्रीय शासन के विविध विभागों को अधिकरण कहते थे। प्रत्येक अधिकरण की अपनी-अपनी मुद्रा (सील) होती थी। गुप्तकाल के विविध शिलालेखों और मुद्राओं आदि से निम्नलिखित अधिकरणों और प्रधान राज-कर्मचारियों के विषय में जानकारी मिलती है:—

1. **महासेनापतिः**— गुप्त सम्राट स्वयं कुशल सेनानायक और योद्धा थे। वे दिग्विजयों और विजय-यात्राओं के अवसर पर स्वयं सेना का संचालन करते थे। पर उनके अधीन महासेनापति भी होते थे, जो साम्राज्य के विविध भागों में, विशेषतया सीमान्त प्रदेशों में, सैन्य संचालन के लिये नियत रहते थे। सेना के ये सबसे बड़े पदाधिकारी 'महासेनापति' कहलाते थे।
2. **महादण्डनायकः**— महासेनापति के अधीन अनेक महादण्डनायक होते थे, जो युद्ध के अवसर पर सेना का नेतृत्व करते थे। गुप्त-काल की सेना के तीन प्रधान विभाग होते थे—पदाति, घुड़सवार और हाथी। महादण्डनायकों के अधीन महाश्वपति, अश्वपति, महापीलुपति आदि अनेक सेनानायक रहते थे। साधारण सैनिक को 'चाट' और सेना की छोटी टुकड़ी को 'चमू' कहते थे। चमू का नायक 'चमूप' कहलाता था। युद्ध के लिये परशु, शर, अंकुश, शक्ति, तोमर, भिंदिपाल, नाराच आदि अनेकविध अस्त्रों को प्रयुक्त किया जाता था।
3. **रणभांडारिकः**— सेना के लिये सब प्रकार की सामग्री (अस्त्र-शस्त्र, भोजन आदि) को जुटाने का विभाग रणभांडारिक के अधीन होता था।

4. **महाबलाधिकृतः**— सेना, छावनी और व्यूह रचना का विभाग महाबलाध्यक्ष या महाबलाधिकृत के हाथ में रहता था। उसके अधीन अनेक बलाधिकृत होते थे।
5. **दंडपाशिकः**— पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी दंडपाशिक कहलाता था। उसके नीचे खुफिया विभाग के अधिकारी 'चौराद्ध रणिक', 'दूत' आदि अनेक कर्मचारी रहते थे। पुलिस के साधारण सिपाही को भट कहते थे।
6. **महासंधिविग्रहिकः**— इस उच्च अधिकारी का कार्य पड़ोसी राज्यों, सामन्तों और गणराज्यों के साथ संधि तथा विग्रह की नीति का प्रयोग करना होता था। यह सम्राट का अत्यन्त विश्वस्त कर्मचारी होता था, जो साम्राज्य की विदेशी नीति का निर्धारण करता था। किन देशों पर आक्रमण किया जाय, अधीनस्थ राजाओं व सामन्तों के प्रति क्या व्यवहार किया जाय, ये सब बातें इसी के द्वारा तय होती थीं। इसे 'सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत' भी कहते थे।
7. **विनय-स्थिति-स्थापकः**— मौर्यकाल में जो कार्य धर्म-महापात्र करते थे, वही गुप्त-काल में विनय-स्थिति-स्थापक करते थे। देश में धर्मनीति की स्थापना, जनता के चरित्र का उन्नत रखना और विविध सम्प्रदायों में मेल-जोल रखना इन्हीं अमात्यों का कार्य था।
8. **भांडागाराधिकृतः**— यह कोषविभाग का अध्यक्ष होता था।
9. **महाक्षपटलिकः**— राज्य के सब आदेशों का रिकार्ड रखना इसके 'अधिकरण' का कार्य था। राजकीय आय-व्यय आदि के सब लेखे भी इसी अमात्य द्वारा रखे जाते थे।
10. **सर्वाध्यक्षः**— यह सम्भवतः साम्राज्य के केन्द्रीय कार्यालय का प्रधान अधिकारी होता था।
11. **ध्रुवाधिकरणः**— यह राज्य-कर का वसूल करने वाला विभाग था। इस अधिकरण के अधीन निम्नलिखित अधिकारी एवं कर्मचारी होते थे:—
 - (अ) **शालिकः**— भूमिकर वसूल करने वाले।
 - (ब) **गौलिमकः**— जंगलों से विविध आमदनी प्राप्त करने वाले।
 - (स) **तलवाटक एवं गोप**— ग्रामों के विविध कर्मचारी
12. **महाप्रतीहार एवं प्रतीहारः**— राजप्रसाद के विशाल विभाग को महाप्रतीहार और प्रतीहार नाम के अनेक कर्मचारी सभालते थे। राजा के व्यक्तिगत सेक्रेटरी को 'रहसि नियुक्त' कहते थे। अन्य अमात्यों और अध्यक्षों के भी अपने-अपने 'रहसि नियुक्त' रहते थे।

2.3.4 प्रान्तीय शासन एवं प्रान्तीय अधिकारी

विशाल गुप्त साम्राज्य अनेक राष्ट्रों या देशों में विभक्त था। साम्राज्य में कुल कितने देश या राष्ट्र थे, उसकी ठीक संख्या ज्ञात नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र में अनेक मुक्तियाँ और प्रत्येक मुक्ति में अनेक विषय होते थे। मुक्ति को वर्तमान समय की कमिश्नरी के समान समझा जा सकता है। गुप्त अभिलेख में कतिपय मुक्तियों के नाम मिलते हैं।

1. पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का चिरातदत्त
2. पश्चिमी मालवा का बन्धु वर्मा
3. अवध का पृथ्वीषेण
4. सौराष्ट्र का पर्णदत्त
5. एरण (पूर्वी मालवा) का घटोत्कचगुप्त
6. तीरभुक्ति का गोविन्द गुप्त

7. मगध-गया और नालन्दा ताम्रपत्रों से पता चलता है कि मगध भी गुप्त साम्राज्य का एक प्रान्त था।

भुक्ति (प्रान्त) के शासक को 'उपरिक' और 'गोप्ता' कहा जाता था। उपरिक की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी और वह सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। सीमान्त प्रदेशों के शासक गोप्ता कहलाते थे जिनकी नियुक्ति सम्राट पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त किया करते थे। उपरिक के पद पर प्रायः राजकुमार अथवा राजकुल से सम्बन्धित व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जाती थी। कभी-कभी अन्य योग्य व्यक्तियों की भी उपरिक पद पर नियुक्तियां दे दी जाती थी। बन्धुवर्मा, पर्णदत्त, पृथ्वीषेण और चिरातदत्त राजपरिवार से नहीं थे फिर भी उन्हें प्रान्तपति के रूप में नियुक्ति किया गया। उससे विदित होता है कि योग्यता रही है कि

नियुक्तियाँ होती थी। कतिपय इतिहासकारों की मान्यता रही है कि नियुक्तियाँ पाँच वर्ष के लिए होती थी, यद्यपि ऐसे अनेक दृष्टान्त उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि गवर्नरों की नियुक्तियाँ निश्चित अवधि के लिए नहीं होती थी। उपरिक्त पद आनुवंशिक होने के प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जैसे—पुण्ड्रवर्धन—भुक्ति में कई पीढ़ियों तक 'दत्त' परिवार के उपरिक्त होते थे।

गोप्ता प्रशासन के साथ—साथ लोकोपकारी कार्य भी किया करते थे। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि पर्णदत्त—चक्रपालित ने सुदर्शन झील की मरम्मत कराई थी। राज्यपाल प्रायः 'महाराज' की उपाधि—धारण किया करते थे तथा राजा के प्रति स्वामी भक्ति प्रदर्शित करने हेतु 'तत्पादानुध्यात' कहलाते थे। राज्यपाल की सहायता के लिए सभा भी होती थी।

2.3.5 जिला प्रशासन एवं विषयाधिकारी

प्रत्येक भुक्ति अनेक विषयों में विभक्त होता था। प्रयाग—प्रशस्ति में हरिषेण ने विषय—भुक्ति का उल्लेख किया है। विषय आधुनिक काल के जिले के समान होता था। विषय का सर्वोच्च अधिकारी विषयपति (जिलाधिकारी) कहलाता था। विषयपति की नियुक्ति कभी सम्राट और कभी उपरिक्त (राज्यपाल) द्वारा होती थी। इन्दौर ताम्रपात्र से अन्तर्वेदी (गंगा—यमुना का दोआब) के विषयपति सर्त्तनाग का ज्ञान होता है। यहीं बुधगुप्त के समय सुरश्मिचन्द्र विषयपति बना।

वैन्यगुप्त के समय पूर्वी बंगाल में विजयसेन विषयपति था। बांग्लादेश से प्राप्त ताम्रपात्रों से जिला (विषय) प्रशासक की रूपरेखा सुनिश्चित होती है। विषयपति की सहायता के लिए एक विषय—परिषद होती थी जिसके सदस्य महत्तर कहलाते थे। यद्यपि फरीदपुर के एक ताम्रपात्र में इनकी संख्या बीस बताई गयी है। परन्तु अधिकांश ताम्रपात्रों में विषय—समिति के निम्नलिखित 4 कर्मचारियों के नाम मिलते हैं—

1. नगर—श्रेष्ठी— यह नगर के साहूकारों और उद्योगपतियों का प्रतिनिधि था।
2. सार्थवाह— यह व्यवसायियों का प्रतिनिधि था।
3. प्रथम कुलिक— यह शिल्पकारों का प्रतिनिधि था।
4. प्रथम कायस्थ— यह लिपिकों और आलेखकों का प्रधान था।

विषय के शासक कुमारामात्यों (विषयपतियों) का गुप्त—साम्राज्य के शासन में बड़ा महत्व था। अपने विषय (जिले) की सुरक्षा, शान्ति और व्यवस्था के लिए अनेक कर्मचारी रहते थे, जिन्हें युक्त, आयुक्त, नियुक्त आदि अनेक नामों से कहा जाता था। मौर्यकाल में भी जिले के इन कर्मचारियों को 'युक्त' ही कहते थे। गुप्तकाल में बड़े पदाधिकारियों के नाम बदल गये थे, परन्तु छोटे राजपुरुषों के अब भी वही नाम थे, जो कम से कम सात सदियों से भारत में प्रयुक्त होते आ रहे थे। विषयपति के अधीन दण्डपाशिक (पुलिस के कर्मचारी) चोरोद्धरणिक (खुफिया पुलिस), आरक्षाधिकृत (जनता के रक्षार्थ नियुक्त कर्मचारी) और दण्डनायक (जिले की सेना के अधिकारी) रहते थे।

2.3.6 नगर प्रशासन

गुप्तकाल में पाटलिपुत्र, ताम्रलिप्ति, मथुरा, तक्षशिला, उज्जयिनी, दशपुर, भृगुकच्छ, वाराणसी आदि अनेकानेक बड़े नगरों का विकास हो चुका था। नगरों की व्यवस्था के लिए नगर—पालिकाएँ थीं। नगर को 'पुर' भी कहा जाता था। नगरपालिका का उपाध्यक्ष (मेयर) 'पुरपाल' कहलाता था। इतिहासकारों की मान्यता है कि 'पुरपालों' की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती थी। गिरनार के पुरपाल चक्रपालित का नाम स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में मिलता है। चक्रपालित सौराष्ट्र के गोप्ता पर्णदत्त का पुत्र था। इसी ने सुदर्शन झील की मरम्मत कराई थी उस पर एक विष्णु—मन्दिर का निर्माण कराया था। इससे पता चलता है कि नगर—पालिकाएँ नगर में शान्ति की स्थापना, सभागृह, सरोवर, मन्दिर बनवाना तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों को करवाना था।

नगर के प्रशासन में व्यवसायियों के संगठनों की अच्छी साझेदारी रहती थी। वैशाली से प्राप्त सीलों से पता चलता है कि शिल्पी, वणिक् और लिपिक एक ही सामूहिक संस्था में काम करते थे और इस

हैसियत से वे स्पष्टतः नगर के कार्यों का संचालन करते थे। उत्तरी बंगाल (बांग्लादेश) के कोटिवर्ष जिले की प्रशासनिक परिषद में मुख्यवणिक, मुख्य व्यापारी और मुख्य शिल्पी शामिल थे।

भूमि के अनुदान या खरीद-बिक्री में उनकी सम्मति आवश्यक समझी जाती थी। शिल्पियों और बैंकरों के अपने अलग-अलग संगठन-‘श्रेणिया’ थे। भीटा और वैशाली के शिल्पियों और वणिकों की अलग-अलग श्रेणियाँ थी। मालवा के मंदसौर और इंदौर में रेशम बुनकरों की अपनी खास श्रेणी थी। पश्चिमी और प्रदेश में बुन्देलशहर जिले में तेलियों की अपनी अलग श्रेणियों, विशेषतः वणिकों की श्रेणियों को कई खास छूटों की सुविधा दी गई थी हर हालत में ये श्रेणियाँ अपने सदस्यों के मामले देखती थीं और श्रेणी के नियम, कानून और परम्परा का उल्लंघन करने वाले को सजा दे सकती थीं।

2.3.7 ग्राम प्रशासन

गुप्तकाल में ग्रामीण प्रशासन भी सुसंगठित था। वीभि से छोटी इकाई पेट थी। पेट अनेक ग्रामों के समूह को कहा जाता था। सबसे छोटी इकाई गाँव थी। ग्रामपति या ग्रामिक महत्तर, अष्टकुलाधिकारी, कुटुम्बी, तलवारक इत्यादि अधिकारियों की सहायता से गाँवों की व्यवस्था देखता था। दामोदर ताम्रपत्र सं० 03 में इन ग्राम-अधिकारियों का उल्लेख मिलता है।

ग्राम-पंचायत के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए महत्तर को स्थानीय जनता पर कर लगाने का भी अधिकार था। जो व्यक्ति 3 वर्ष तक लगातार राजस्व अदा न करे उसकी भूमि को ग्राम पंचायत को बेचने का अधिकार था। इस बेची हुई भूमि का एक भाग राजकोष में जाता था तथा शेष भाग ग्राम पंचायत को मिल जाता था। ग्राम-पंचायत अपनी आमदनी का ठीक-ठीक हिसाब रखती थी। एक सरकारी पदाधिकारी इसका निरीक्षण करता था। ग्राम-पंचायत इस धन को सार्वजनिक कार्यों में व्यय करती थी। ग्राम-पंचायत ग्राम के वृद्धों की सहायता में कृषकों के खेतों के सीमा-सम्बन्धी विवादों का निर्णय करती थी।

2.4 सैन्य-संगठन

गुप्तकाल में सैन्य-संगठन का व्यापक विकास हुआ था, इस काल में सेना विशाल एवं सुसंगठित थी। गुप्त-शासकों ने अपने सैन्य-शक्ति के आधार पर ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। राजा सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था व युद्ध में सेनापति के रूप में सेना का संचालन एवं नेतृत्व करता था। राजा के अधिक वृद्ध होने पर युवराज सेना का संचालन करता था। सेना का सर्वोच्च अधिकारी ‘महाबलाधिकृत’ था। इसे ‘महादण्डनायक’ एवं महासेनापति भी कहा जाता था। महादण्डनायक के अतिरिक्त अनेक उपसेनापति भी होते थे। सेना के सामान की व्यवस्था रखने वाला पदाधिकारी रणभाण्डागारिक कहलाता था गुप्त सेना 4 प्रकार की थी— (1) हस्ति (2) अश्व (3) रथ और (4) पदाति। हाथियों के नायक को महापीलुपति तथा घुड़सवारी के नायक को ‘भटाश्वपति’ कहा जाता था। सेना की छोटी टुकड़ी के नेता का ‘चमूप’ कहते थे। मंत्रियों के लिए भी सैनिक दृष्टि से योग्य होना आवश्यक था। गुप्तकाल में रथ सेना को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। प्रयाग प्रशस्ति में गुप्तकालीन कतिपय अस्त्र-शस्त्रों के नाम इस प्रकार मिलते हैं— परशु, शर, शंकु, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच इत्यादि।

2.5 पुलिस व्यवस्था

इस समय देश में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा के लिए पुलिस विभाग था। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी ‘दण्डपाशिक’ होता था। इतिहासकार ए० एस० अल्तेकर ने दण्डपाशिक की तुलना आधुनिक पुलिस-अधीक्षक से की है। पुलिस विभाग के साधारण कर्मचारियों को ‘चाट’, ‘भाट’ अथवा ‘रक्षिन’ कहा जाता था। पुलिस की सहायता के लिए गुप्तचर भी होते थे। गुप्तचर विभाग के कर्मचारियों को ‘दूत’ कहा जाता था। चीनी यात्री फाहियान के विवरण से पता चलता है कि ‘भारत में अपराध बहुत कम होते थे एवं चोरी डकैती का भय भी नहीं रहता था। फाहियान ने स्वयं हजारों मील की यात्रा की थी किन्तु उसे कहीं चोर-डाकुओं का सामना नहीं करना पड़ता था। गुप्तकाल में पुलिस विभाग अत्यन्त सक्षम था। महाकवि कालीदास ने भी गुप्तकालीन शान्ति एवं सुरक्षा की प्रशंसा की है।

2.6 न्याय प्रशासन

गुप्तकालीन न्याय प्रशासन का उल्लेख अभिलेखों में तो नहीं मिलता है किन्तु तत्कालीन नारद एवं वृहस्पति स्मृतियों से पता चलता है इस काल में न्याय-प्रशासन का विकास हो चुका था। गुप्तकालीन स्मृतिकारों ने प्रथम बार दीवानी तथा फौजदारी अपराधों से सम्बन्धित कानूनों की विस्तृत व्याख्या की गयी। उत्तराधिकार सम्बन्धी स्पष्ट एवं विषद कानूनों का निर्माण किया गया राजा देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वह सभी प्रकार के मामलों की सुनवाई की अन्तिम अदालत था। राजा के अतिरिक्त एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य अनेक न्यायाधीश होते थे जो साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थित अनेक न्यायालयों में न्याय-सम्बन्धी, कार्यों को देखते थे। गुप्त-अभिलेखों में न्यायाधीशों को दण्डनायक, महादण्डनायक, सर्वदण्डनायक तथा महासर्वदण्डनायक कहा गया है। फाहियान अपने यात्रा-वृतान्त में लिखता है कि "व्यवहार की पढ़ी-लिखी एवं पंच पंचायत कुछ भी नहीं है। राजा न तो प्राणदण्ड देता है और न ही शारीरिक दण्ड ही देता है। अपराधी को उत्तम अथवा मध्यम साहस का अर्थदण्ड दिया जाता है। अपराध की पुनरावृत्ति करने पर दाहिना हाथ काट दिया जाता है।" इससे तत्कालीन दण्ड-विधान की नरमी का पता चलता है।

वृहस्पति स्मृति धन-मूल और हिंसा मूल विवादों का वर्णन करती है। धन-मूल दीवानी विवाद थे और हिंसा मूल फौजदारी। वृहस्पति स्मृति में ही न्यायालय की चार कोटियाँ बताई गई हैं— 1- शासित 2-मुद्रित 3-प्रतिश्रुत और 4-अप्रतिश्रुत।

शासित न्यायालय में राजा न्याय करता था। मुद्रित न्यायालय का न्यायाधीश प्राङ्गविवाक होता था जो राजकीय मुद्रा (seal) का प्रयोग करता था। प्रतिश्रुत न्यायालय विशेष विवादों को निपटाने के लिए राजाज्ञा से स्वीकृत किये जाते थे। अप्रतिश्रुत न्यायालय पूग(जातियों)और कुल(परिवारों) के न्यायालय थे। इनके अधिकार अर्थदण्ड और चेतावनी तक सीमित थे। शासित और मुद्रित न्यायालयों को ही मृत्यु-दण्ड और कारावास देने का अधिकार था। नारद स्मृति में न्याय-प्रक्रिया का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसमें साक्षी की नियुक्ति, व्यवहार एवं सत्यापन के विषय में अनेक निर्देश हैं। न्याय-प्रक्रिया को लेखबद्ध किया जाता था और अभियुक्त को ऊपरी न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार था। स्मृतियों में जल-परीक्षा, अग्नि-परीक्षा, विश-परीक्षा और तुला परीक्षा द्वारा अभियुक्त को अपनी निरापराधिता सिद्ध करने की बात कही गयी है। लेकिन इस बात के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि व्यवहारिक रूप से इन परीक्षाओं का प्रयोग होता था। जूनागढ़ अभिलेख में पुलिस द्वारा उत्पीड़न के प्रमाण हैं। गुप्तकालीन दण्ड विधान में मौर्ययुगीन दण्डविधान यथा-मृत्यु-दण्ड, अंगच्छेद आदि के उदाहरण नगण्य हैं। शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था थी। लेकिन अभियुक्त चारुदत्त को उससे मुक्त कर दिया गया। यह इस बात का प्रमाण है कि मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। गुप्तकाल में समाज अपराध मुक्त एवं भयमुक्त था। तभी तो स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि उस राजा के शासनकाल में कोई भी व्यक्ति धर्मच्युत, आर्त, दरिद्र, व्यसनी, कदर्य, दण्डनीय और पुलिस द्वारा उत्पीड़ित नहीं था।

व्यापारियों तथा व्यवसायियों की श्रेणियों के अपने अलग न्यायालय होते थे जो अपने सदस्यों के विवादों का निपटारा करते थे। स्मृति ग्रंथों में 'पूग' तथा 'कुल' नामक संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है जो अपने सदस्यों के विवादों का फैसला करती थी। 'पूग' नगर में रहने वाली विभिन्न जातियों की समिति होती थी जबकि 'कुल' समान परिवार के सदस्यों की समिति थी। इन सभी को राज्य की ओर से मान्यता मिली हुई थी। ग्रामों में न्याय का कार्य ग्राम-पंचायतें किया करती थी। पेशेवर वकीलों का अस्तित्व नहीं था।

2.7 राजस्व प्रशासन

गुप्तकाल में राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूराजस्व था। इस काल के विधिवेत्ताओं ने किसानों के हितों का ध्यान रखते हुए, व्यवस्था दी कि 'प्रजा से उतना ही कर लेना चाहिए जितना जन सरलता से दे सके और उसके पास अगले उत्पादन के लिए पर्याप्त धन बचा रहे।' कामन्दक नीतिसार में कामन्दक ने इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए एक माली और ग्वाले की उपमा दी है जैसे माली फूल के पौधों में पानी देता है। फिर फूल तोड़ता है, जिस प्रकार ग्वाला गायों की सेवा करता है फिर उनका दूध निकालता है, उसी प्रकार राजा को प्रजा की रक्षा और सहायता करनी चाहिए। महाकवि कालीदास ने भी इसी प्रकार विचार व्यक्त किया है कि राजा प्रजा की भलाई के लिए ही प्रजा से कर वसूल करता है। नारद स्मृति ने करों को राजा

द्वारा प्रजा को दिए जाने वाले संरक्षण का प्रतिदान माना है। आधुनिक यूरोपिय विद्वानों एडमस्मिथ एवं जॉन स्टुअर्ट मिल ने गुप्तकालीन लेखकों कामन्दक एवं कालीदास के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है। अर्थशास्त्र के जनक एडमस्मिथ ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रत्येक नागरिक को करों के रूप में राज्य को उस अनुपात में धन देना चाहिए जितना वह राज्य का संरक्षण पाने के कारण कमाता है।

गुप्तकालीन विधिवेत्ताओं ने उपज का छठा भाग कर के रूप में राज्य को देने की व्यवस्था दी है। कालीदास ने राजा के उपज के छह भाग को उसकी वृत्ति निर्वाह का साधन कहा है। तपस्वियों से उनकी तपस्या के पुण्य का छठा भाग ही राजा का कर समझा जाता था। नारद स्मृति में उल्लेख है कि राजा प्रजा की रक्षा करने के लिए पारिश्रमिक के रूप में ही उपज का छठा भाग भू राजस्व के रूप में लेता था। गुप्तकालीन अभिलेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि राजा साधारणतया उपज का छठा भाग भू-राजस्व के रूप में लेता था। वृहस्पति स्मृति के अनुसार राजा को भूमि की उपज के अनुसार अलग-अलग भू-राजस्व लेना चाहिए। वृहस्पति ने लिखा है कि राजा को परती भूमि से 1/10 भाग, वर्षा जल से सींची जाने वाली भूमि से 1/8 भाग और जो फसल वसन्त ऋतु में काटी जाती है उनसे 1/6 भाग लेना चाहिए। वृहस्पति स्मृति के इस विवरण से पता चलता है कि भू राजस्व के लिए भूमि की उर्वरता तथा प्रयोग के आधार पर वर्गीकरण किया गया था। नाल (खेतिहर भूमि), खिल (परती), वास्तु (जहाँ मकान बनाये जायें)। अप्रहत(बिना जोती हुई भूमि), अप्रदा(जिससे शासन को कोई आय नहीं होती थी), गोचर तथा वन्य आदि भूमि की श्रेणियाँ थी।

अमर सिंह ने अमरकोश में भूमि के बारह प्रकार गिनाये हैं— उर्वरा, ऊसर, मरु (रेगिस्तानी) अप्रहत (बंजर), शादूवल (गोचर) पंकिल (कीचड़ से भरी हुई), जलप्रायमनुपम् (जलयुक्त), कच्छ (कछारी), शर्करा (बंजरी कंकडयुक्त), शर्कावती (रेतीली), नदीमातृक (नदी द्वारा सिंचित) तथा देवमातृक(वर्षा द्वारा सिंचित)। अभिलेखों में 'क्षेत्र' का प्रयोग 'खेत' के अर्थ में हुआ है।

राज्य की आय के स्रोत:— प्रमुख राजकीय कर— कामन्दक नीतिसार में राज्य की आय के आठ स्रोत बताए गए हैं—कृषि, वणिक—पथ, दुर्ग, सेतु, कुज्जर—बन्धन, खाने, इमारती लकड़ी तथा शून्य सीनों का उपनिवेशन। श्रीराम गोयल के विचारानुसार दुर्ग और हाथियों का इस सूची में परिगणन सम्भवतः इसलिए किया गया है क्योंकि इनके कारण व्यापारियों में विश्वास पैदा हुआ था, जिससे वे अधिकाधिक व्यापार कर राज्य को समृद्ध बनाते थे। गुप्त अभिलेखों से विदित होता है कि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत विविध प्रकार के भूमि कर थे—

1—भाग:— खेती में प्रयुक्त होने वाली जमीन से पैदावार का निश्चित भाग राज्यकर के रूप में लिया जाता था। यह मानकर प्रायः पैदावार (अनाज) के रूप में लिया जाता था। यदि वर्षा नहीं हुई हो या कोई अन्य प्राकृतिक कारण से उपज कम हुई हो तो यह कर स्वतः कम हो जाता था। क्योंकि किसानों को पैदा हुए अन्न का निश्चित हिस्सा ही मालगुजारी के रूप में देना होता था। मनुस्मृति में 'भाग' कर की मात्रा भूमि की उर्वरता के अनुसार उपज का 1/6, 1/8, या 1/2 भाग का उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन विद्वानों—कालीदास ने रघुवंश में तथा नारद ने नारद स्मृति में भाग कर 1/5 भाग लिए जाने का उल्लेख किया है। गुप्तोत्तर कालीन विधिवेत्ता शुक्र ने अपने शुक्रनीतिसार में सिंचाई की सुविधा के अनुसार 1/6, 1/3, 1/4 या 1/2 भाग उपज का भागकर के रूप में लिए जाने का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में भागकर की मात्रा अनुलिखित है लेकिन वे ग्राम एवं पहाड़पुर—दानपत्रों में राजा को भूमि दान से मिलने वाले 1/6 भाग का उल्लेख मिलता है। यह कर गुप्तकाल में खाद्यान्न के रूप में लिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'भाग' शब्द का प्रयोग कुछ अन्य करों के नाम के साथ राजा का हिस्सा बताने के लिए किया गया है जैसे उदक भाग, लवणभाग आदि। गुप्त अभिलेखों में 'भाग' शब्द प्रायः 'भोग' और 'कर' के साथ संयुक्त मिलता है ('भागभोगकर' अथवा 'भोगभाग कर')।

2—भोग:—दिनेश चन्द्र सरकार की मान्यता रही है कि भोग का अर्थ वे फल, फूल, दूध, ईधन आदि थे, जो प्रजा समय—समय पर राजा को देती थी। मनुस्मृति में 'भोग' एक कर के नाम के रूप में उल्लेखित है। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि और कुल्लूक ने भी 'भोग' का अर्थ फल—फूल, सब्जी, घास इत्यादि के रूप में नित्य दी जाने वाली भेंट ही माना है। कतिपय इतिहासकारों का मानना है कि मौर्यकाल में जिस चुंगी

को शुल्क संज्ञा से कहा जाता था, उसी को गुप्तकाल में भोगकर कहते थे। भट्ट स्वामी ने उल्लेख किया है कि उपज के छठे भाग में वे सब दरें अर्थात् 1/3 या 1/4 आदि भी आ जाती हैं जो भूराजस्व के रूप में राजा देश के विभिन्न भागों में किसानों से लेता था।

3— करः—‘कर’ शब्द करों के लिए सामान्य शब्द भी था और एक विशेष कर का नाम भी। एक विशिष्ट कर के रूप में इसका अर्थ विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग माना है। मनुस्मृति के टीकाकारों ने कर के निम्नलिखित अर्थ दिए हैं—

1—मेधातिथि ने ‘कर’ को वस्तुओं की भेंट माना है।

2—सर्वज्ञानारायण ने ‘कर’ को भूमि पर नकद कर के रूप में उल्लेख किया है।

3—रामचन्द्र ने उल्लेख किया है कि ‘घास’, ईंधन इत्यादि के रूप में जो कर दिया जाता था वह ‘कर’ था।

4—कुल्लूक ने गाँव और नगर के निवासियों से भाद्रपद एवं पौष माह में लिया जाने वाला कर माना है।

5—जबकि रघुनन्दन ने इसे ग्रामवासियों से प्रति मास लिया जाने वाला कर माना है।

उपर्युक्त अर्थों से स्पष्ट है कि निश्चित समय पर लिया जाने वाला टैक्स ‘कर’ कहलाता था। रुद्रदामन के जुनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि यह कर विष्टि (बेगार) तथा प्रणय (आपातकालीन कर) के समान एक अनुचित कर था जिसको वसूल करना रुद्रदामन प्रजा के लिए कष्टकर समझता था। दिनेशचन्द्र सरकार के मतानुसार अनाज के हिस्से के अतिरिक्त जो टैक्स किसानों को देना होता था उसे ‘कर’ कहते थे। गुप्तकालीन साहित्य तथा अभिलेखों में ‘कर’ सभी टैक्सों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अनुदान लेखों में ‘सर्वकर परिहारे’ या ‘सर्व करसमेत’ शब्दावली प्रयुक्त हुई है उसमें ‘कर’ का अर्थ स्पष्टतः सभी टैक्स है।

4— ‘बलि’ः— गुप्तकाल में अन्य करों में सर्वप्रथम ‘बलि’ का उल्लेख किया जा सकता है। ऋग्वेद में यह प्रजा तथा विजित राजाओं से लिया जाने वाला एक ऐच्छिक कर था। जातकों में इस कर का उल्लेख एक अतिरिक्त कर के रूप में मिलता है। अशोक के रुम्मिनदेई स्तम्भ लेख में भी ‘बलि’ का उल्लेख मिलता है जिसे कतिपय विद्वानों ने ‘धार्मिक कर’ माना है। बलि का अर्थ धार्मिक कर गुप्तकालीन अभिलेखों में उसके प्रयोग के अनुरूप है। एस० के० मैती के अनुसार ‘चरु’ और ‘सत्र’ आदि के साथ उल्लिखित होने के कारण गुप्तकालीन लेखों में भी यह धार्मिक शुल्क के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। ‘बलि’ में घी, अनाज, चावल, फल, फूल आदि देवताओं को अर्पित किये जाते थे। इसका अर्थ राजा को दिए जाने वाला धार्मिक कर किया जा सकता है।

5— उपरिकर और उद्रंगः— इस काल के अभिलेखों में ‘उपरिकर’ तथा ‘उद्रंग’ का भी प्रयोग मिलता है। यू० एन० घोषाल के अनुसार ‘उद्रंग’ स्थायी किसानों से तथा उपरिकर अस्थायी किसानों से वसूल किया जाता था, किन्तु अधिकतर विद्वानों ने घोषाल के इस मत से असहमति जताई है। दिनेश चन्द्र सरकार ने उपरिकर का अर्थ अतिरिक्त टैक्स किया है। सतीश कुमार मैती डी. सी. सरकार के विचार से सहमत हैं। लेकिन मैती के अनुसार उद्रंग पुलिस टैक्स भी हो सकता है जो सीनीय पुलिस के खर्च के लिए प्रजा से लिया जाता था। राजतंरगिणी में द्रंग पुलिस चौकी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसी आधार पर मैती ने ‘उद्रंग’ का अर्थ पुलिस टैक्स किया है।

6— हिरण्यः— गुप्तकाल से पूर्व की स्मृतियों एवं गुप्तकालीन कई अभिलेखों में ‘हिरण्य’ शब्द प्रयुक्त किया गया है। विष्णु स्मृति के अनुसार राजा को वस्तु के मूल्य का 1-50 भाग हिरण्य के रूप में लेना चाहिए। वाकाटक अभिलेखों में अनुदान-ग्राहियों को ‘हिरण्य’ से मुक्त किया गया है। इससे पता चलता है कि हिरण्य राज्य की आय के प्रमुख साधनों में से एक था। डी.सी. सरकार ने हिरण्य का अर्थ वह कर किया है जो नकद कर राज्य को दिया जाता था। यू० एन. घोषाल के अनुसार हिरण्य वह टैक्स था जो विशेष प्रकार की फसलों पर नकद लिया जाता था।

7— वात-भूत करः— धरसेन द्वितीय के मालिय ताम्रलेख में वात-भूत शब्द आया है। विद्वानों की मान्यता रही है कि सम्भवतः वायु और पानी के देवताओं की पूजा के लिए यह कर इकट्ठा किया जाता होगा।

8— हलिकाकरः— शर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र लेख में हलिकाकर शब्द आता है। यू० एन० घोषाल के अनुसार यह कर हलों पर था।

9— शुल्क:— अमरकोश में चुंगी कर के लिए शुल्क दिया है। प्रवरसेन द्वितीय के सिवानी अभिलेख में भी शुल्क का उल्लेख है। स्कन्दगुप्त के बिहार अभिलेख में शुल्क इकट्ठा करने वाले अधिकारी शौल्किक का उल्लेख है। यू0एन0 घोषाल के मतानुसार व्यापारियों पर लगाया जाने वाला कर शुल्क कहलाता था। एस. के. मैती के अनुसार नगर में बन्दरगाहों पर व्यापारियों द्वारा लाई वस्तुओं पर लगाया जाने वाला कर शुल्क कहलाता था।

उपरोक्त वर्णित करों के अतिरिक्त राज्य को जखीरों, खानों और नमक की खुदाई से भी बहुत आय होती थी। राज्य को जुमाने से भी आय होती थी। नारद और वृहस्पति ने किन अपराधों में राज्य को कितना जुमाना लेना चाहिए उसका विस्तृत विवेचन किया है। गुप्तकालीन अभिलेख भी इसकी पुष्टि करते हैं।

गुप्तशासन व्यवस्था के दौरान विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति तीव्र हुई। एक तरफ राजा का पद ज्यादा गौरवमय बन गया, तो दूसरी तरफ उसकी शक्ति क्षीण होने लगी। गुप्तशासकों के अधीनस्थ शासक और सामन्त ज्यादा शक्तिशाली हो गए। इनको राजा के अनेक अधिकार (यथा—शासन करने का, सेना रखने का, सिक्का एवं मुद्रा जारी करने का) स्वतः प्राप्त हो गए। प्रो० रामशरण शर्मा के अनुसार कुल मिलाकर गुप्तशासन—प्रणाली में हमें सामन्तवाद की स्पष्ट विशेषताएँ दिखाई देती हैं। वस्तुतः गुप्तशासन प्रणाली ने परवर्तीकाल के उस प्रशासनिक ढाँचे की नींव तैयार कर दी जो पूर्णतः सामन्तवादी था।

2.8 सारांश

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' व 'क्लासिकल युग' के नाम से विख्यात है। इस युग में अनेक उदात्त, मेधावी और शक्तिशाली राजाओं ने उत्तर—भारत को एक छत्र के नीचे संगठित कर शासन में सुव्यवस्था तथा देश में शान्ति की स्थापना की। गुप्त सम्राटों ने जिस विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण किया वह अत्यन्त उदार एवं सुसंगठित थी। सर्वत्र शान्ति एवं सुव्यवस्था विद्यमान थी। गुप्तचरों एवं पुलिस अधिकारियों के आचरण से प्रजा को कोई कष्ट नहीं था। लोकोपकारी कार्य करने के लिए गुप्त सम्राट सदैव तत्पर रहते थे। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से विदित होता है कि 'जिस समय वह राजा शासन कर रहा था कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो धर्मच्युत हो, दुःखी हो, दरिद्र हो, व्यसनी हो, लोभी हो अथवा दण्डनीय होने के कारण अधिक सताया गया हो।' इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तकालीन शासन—प्रबन्ध एक आदर्श प्रस्तुत करती है जिसमें जनता का किसी प्रकार का शोषण नहीं हुआ और प्रजा सदैव सुख—शान्ति का अनुभव करती थी।

2.9 शब्दावली

1. कुमारामात्य — प्रमुख पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारी
2. कुमारामात्याधिकरण — कुमारामात्य का कार्यालय
3. महासेनापति — सेना का सर्वोच्च अधिकारी
4. महापीलुपति — गज सेना का अध्यक्ष
5. महाअश्वपति — अश्वसेना का अध्यक्ष
6. महासन्धिविग्रहिक — युद्ध और शान्ति का मंत्री
7. दण्डपाशिक — पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी
8. विनय स्थिति स्थापक — धार्मिक मामलों का मुख्य अधिकारी
9. रणभाण्डागारिक — सैनिक की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला प्रधान अधिकारी
10. महादण्डनायक — युद्ध एवं न्याय—विभाग का कार्य देखने वाला
11. महाभाण्डागाराधिकृत — राजकीय कोष का प्रधान
12. महाबलाधिकृत — सैनिक अधिकारी
13. महाअक्षपटलिक — अभिलेख विभाग का प्रधान
14. ध्रुवाधिकरण — कर वसूलने वाले विभाग का प्रधान
15. अग्रहारिक — दान विभाग का प्रधान
16. शाल्किक — भूमिकर वसूलने वाला

17. गौल्मिक – जंगलों (वनों) से आमदनी प्राप्त करने वाला
18. महाप्रतिहार – राजप्रसाद का प्रभारी
19. तलवाटक–ग्राम अधिकारी
20. गोप–ग्राम अधिकारी
21. राष्ट्र–वर्तमान राज्य के समान
22. देश–वर्तमान राज्य के समान
23. भुक्ति–वर्तमान कमीशनरी के समान
24. उपरिक–भुक्ति का शासक
25. गोप्ता–सीमान्त प्रदेश का शासक
26. विषयपति–जिलाधिकारी
27. श्रेष्ठी–साहूकारों एवं उद्योगपतियों का प्रतिनिधि
28. सार्थवाह–व्यवसायियों का प्रतिनिधि
29. कुलिक–शिल्पकारों का प्रतिनिधि
30. कायस्थ–लिपिक
31. कुटुम्बी–ग्राम व्यवस्थापक

2.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न:-

1. विषयपति कौन होता था ?
(अ) न्यायाधीश (ब) जिलाधिकारी (स) सैन्य अधिकारी (द) पुलिस अधिकारी
2. व्यापारियों के नेता को क्या कहाँ जाता था ?
(अ) सार्थवाह (ब) श्रेष्ठी (स) पूण (द) श्रेणी
3. प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी ?
(अ) गाँव (ब) वीधि (स) पेट (द) विषय
4. पुलिस विभाग के प्रधान को क्या कहा जाता था ।
(अ) महाबलाधिकृत (ब) महादण्डनायक (स) रणभाण्डागारिक (द) दण्डपारीक
5. महासंधिविग्रहिक का क्या कार्य था ?
(अ) राजस्व विभाग का प्रमुख (ब) युद्ध एवं शान्ति मंत्री
(स) पुलिस विभाग का प्रमुख (द) कोषाध्यक्ष
6. गुप्तकालीन न्यायालय का वर्णन हमें किस ग्रंथ में मिलता है?
(अ) मनुस्मृति (ब) बृहस्पति स्मृति (स) नारद स्मृति (द) गौतम स्मृति
7. हरिषेण किस गुप्त शासक का संधि विग्रहिक था ?
(अ) चन्द्रगुप्त प्रथम (ब) समुद्रगुप्त (स) चन्द्रगुप्त द्वितीय (द) कुमारगुप्त
8. कुमारामात्य के कार्यालय को 'कुमारामात्याधिकरण' कहते थे। (सत्य/असत्य)
9. गुप्तकालीन केन्द्रीय शासन के विविध विभागों को क्या कहा जाता था ?
(अ) कार्यालय (ब) अधिकरण (स) श्रेष्ठी (द) सार्थवाह
10. सेना के सबसे बड़े पदाधिकारी महासेनापति कहलाते थे। (सत्य/असत्य)
11. पुलिस द्वारा उत्पीड़न के प्रमाण गुप्तकालीन किस अभिलेख में मिलता है ?
(अ) प्रयाग प्रशस्ति (ब) भीतरी अभिलेख (स) जूनागढ़ अभिलेख (द) मन्दसोर अभिलेख
12. 'पूग' नगर में रहने वाली विभिन्न जातियों की समिति होती थी। (सत्य/असत्य)
13. ग्रामों में न्याय का कार्य कौन करता था ?
(अ) पुलिस (ब) न्यायालय (स) कुल (द) ग्राम-पंचायतें
14. गुप्तकाल में पेशेवर वकीलों का अस्तित्व मिलता है। (सत्य/असत्य)

15. गुप्तकाल में 'उद्वंग' क्या था ?

(अ) कर (ब) किसान (स) व्यापारी (द) पुलिस

उत्तर—

1.(ब) 2. (अ) 3.(अ) 4.(द) 5. (ब) 6.(ब) 7.(ब) 8.(सत्य) 9.(ब) 10.(सत्य) 11.(स) 12(स) 13.(द)
14.(असत्य) 15.(अ)

निम्नलिखित पर 100–150 शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

1. गुप्तकालीन पुलिस—प्रशासन
2. गुप्तकालीन सैन्य—संगठन
3. गुप्तकालीन नगर एवं ग्राम प्रशासन
4. कुमारामात्य
5. गुप्तकालीन प्रमुख राजकीय कर
6. गुप्तकालीन न्याय—व्यवस्था

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. गुप्त साम्राज्य की प्रशासन पद्धति पर प्रकाश डालिए।
3. गुप्तकालीन प्रमुख करों का उल्लेख करते हुए राजस्व प्रशासन का विवरण दीजिए।
4. गुप्त काल में केन्द्रीय प्रशासन के संचालन में मंत्रिपरिषद एवं अन्य अधिकारीगणों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
5. गुप्तकालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य—पुस्तकें

1. Majumdar R. C. *et. al.* (Eds) *The History and Culture of Indian people, Vol. III: The classical Age* (1970) Vidhya Bhawan, Bombay.
2. परमेश्वरी लाल गुप्ता—गुप्त साम्राज्य (1970) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. वासुदेव उपाध्याय— गुप्त साम्राज्य का इतिहास
4. श्रीराम गोयल— गुप्त साम्राज्य का इतिहास (1995) कुसुमाज्जलि प्रकाशन, जोधपुर।
- 5- Sharma, R. S., *Political ideas and institutions in Ancient India*, New Delhi (Hindi version)
- 6- Altekar, A. S., *State and Government in Ancient India*, Varanasi (Hindi Version)
- 7- Maity, S. K., *Economic Life in Northern India in the Gupta period* Varanasi.

गुप्त साम्राज्य का पतन

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 इकाई के उद्देश्य
- 3.3 पतन के कारण
- 3.4 निर्बल उत्तराधिकारी एवं केन्द्रीय शासन की शिथिलता
- 3.5 सामन्तवाद और सामन्तों के विद्रोह
- 3.6 बौद्धनीति का अनुसरण
- 3.7 वंशानुगत पद
- 3.8 साम्राज्य की विशालता
- 3.9 पारिवारिक अन्तर्कलह एवं उत्तराधिकार के नियम का अभाव
- 3.10 आर्थिक अवनति
- 3.11 बाह्य आक्रमण
- 3.12 विदेश नीति का परित्याग
- 3.13 युद्धों का आधिक्य
- 3.14 उपसंहार
- 3.15 सन्दर्भ सूची

3.1 प्रस्तावना

गुप्त राजाओं का शासन काल प्राचीन भारतीय इतिहास के सर्वाधिक गौरवशाली युग का प्रतिनिधित्व करता है। गुप्त साम्राज्य को विस्तृत एवं सशक्त बनाने का कार्य समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे महान शासकों ने किया। जिनकी विजयों के परिणाम स्वरूप भारत में मौर्य शासन के उपरान्त विलुप्त हुई राजनीतिक एकता पुनःस्थापित हुई। गुप्त वंश के अन्तिम पराक्रमी शासक स्कन्दगुप्त ने यद्यपि गुप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने का अथक प्रयास किया तथा अपने शासनकाल में वह इस उद्देश्य में सफल भी हुआ, किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य नहीं थे। अतः स्कन्दगुप्त की मृत्यु (467 ई०) के उपरान्त गुप्त साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया। जिस प्रकार से गुप्त साम्राज्य का गठन हुआ था। उसका पतन होना अपरिहार्य था।

3.2 इकाई के उद्देश्य

विशाल गुप्त साम्राज्य का पतन एक नहीं अपितु अनेक कारणों से हुआ यहाँ उन कारणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिनकी वजह से महान गुप्त साम्राज्य का विलोपन हो गया। भारत में जिन महान राजवंशों ने अपने-अपने महान शासकों के अदम्य साहस एवं पराक्रम के बल पर भारत भूमि के विशाल भू-भाग पर शासन किया। उन सबके पतन में कई एक कारक समान रूप से उत्तरदायी परिलक्षित होते हैं। गुप्तवंश ने लगभग 275 ई० से 550 ई० तक शासन किया, इस वंश के पतन के कारण जानने का प्रयास इस इकाई में किया जासयेगा।

3.3 पतन के कारण

वस्तुतः स्कन्दगुप्त के बाद कई शासक सत्ता में आये परन्तु उनमें अपने पूर्वजों के समान न हो पराक्रम था और न ही इतनी सुझबुझ, जो इतने बड़े साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रख सकें। स्कन्दगुप्त के बाद अधिकांशतः शासक अत्यन्त निर्बल थे जिस कारण उनके समय में गुप्त साम्राज्य

का कलेवर घटने लगा और मात्र पूर्वी भारत तक सीमित रह गया और अन्ततः 550 ई० के लगभग पूर्णतः विलुप्त हो गया। आइये अब विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का अध्ययन करते हैं।

3.4 निर्बल उत्तराधिकारी एवं केन्द्रीय शासन की शिथिलता

गुप्त साम्राज्य के पतन का यह तात्कालिक कारण था क्योंकि स्कन्दगुप्त की मृत्यु 467 ई० के पश्चात् के गुप्त राजाओं में योग्यता, कुशलता एवं पराक्रम का नितान्त अभाव था। गुप्त साम्राज्य का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था, तथा इस प्रकार की शासन पद्धति में राज्य का विकास एवं पतन राजा की योग्यता पर निर्भर करता था। गुप्तवंश के प्रारम्भिक नरेश अत्यन्त योग्य शक्तिशाली थे। समुद्रगुप्त एवं उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने की आकांक्षा रखते थे। इसी कारण समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे योग्य व प्रतापी शासक गुप्त साम्राज्य को इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सफल हुए। कुमारगुप्त प्रथम भी इतना योग्य था कि वाह्य आक्रमणों को विफल कर उसने विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा। स्कन्दगुप्त एक वीर एवं पराक्रमी योद्धा था जिसने पुष्यमित्र एवं हूण जैसे भयानक शत्रुओं को परास्त किया। दुर्भाग्यवश स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी अयोग्य एवं निर्बल प्रमाणित हुए। वे उत्तराधिकार में प्राप्त गुप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण भी न रख सके। स्कन्दगुप्त के बाद के गुप्त शासकों में कोई भी इतना पराक्रमी नहीं हुआ जो दूरस्थ प्रदेश के सामन्तों पर नियन्त्रण रख सकता।

गुप्त साम्राज्य के पतन के समय के कारणों पर प्रकाश डालने वाले साक्ष्य अस्पष्ट और संदिग्ध हैं। अधिकांश साक्ष्य अस्पष्ट और अल्प हैं। अतः बाद के गुप्त शासकों का निश्चित क्रम देना भी एक बड़ी समस्या है। विशाल और शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य का पतन स्कन्दगुप्त के पश्चात् हुआ। पुरुगुप्त और विष्णुगुप्त जिनका कार्यकाल अन्तर 468 से 570 ई० है के बीच के कई सम्राट हुए। किन्तु इन सम्राटों का गुप्त वंशावली में स्थान सुनिश्चित करना इतिहासकारों के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। कतिपय इतिहासकार सुविधा के दृष्टिकोण से गुप्त शासकों को दो शाखाओं में विभक्त करते हैं। प्रथम स्कन्दगुप्त के वंशज जैसे—पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय दूसरे—बुधगुप्त के वंशज जैसे—विष्णुगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय एवं वज्र। बुधगुप्त के समय तक गुप्त साम्राज्य पतन के कगार पर पहुँच चुका था, और बुधगुप्त के पश्चात् तो गुप्तवंश की एकता भी नष्ट हो गई। कालान्तर में तो गुप्त साम्राज्य केवल मगध के आसपास तक ही सीमित हो गया। प्रो० श्रीराम गोयल का विचार है कि साम्राज्य विघटन की जो प्रक्रिया बुधगुप्त के शासनकाल में प्रारम्भ हुई वह धीरे-धीरे अधिकाधिक सबल होती गयी है और प्रान्तीय अधिकारियों तथा अधीन राजाओं के अधिकारों में वृद्धि एवं हूण आक्रमण के कारण एक-एक करके अनेक प्रान्त गुप्तों के हाथ से निकल गए अथवा उन पर उनका प्रभुत्व नाम मात्र के लिए रह गया। बुधगुप्तोत्तर काल में गुप्तों की शक्ति का केन्द्र धीरे-धीरे पूर्व की ओर सिकुड़ता गया। पाँचवीं शती ई० तक साहित्य में गुप्तों का उल्लेख मुख्यतः साकेत, प्रयाग, अयोध्या, श्रावस्ती, कौशाम्बी और उज्जयिनी के सिलसिले में हुआ और मुद्राएँ तथा अभिलेखिय साक्ष्य भी इस बात की तरफ संकेत करते हैं कि प्रारम्भिक गुप्त नरेशों का घनिष्ठतम सम्बन्ध उत्तर प्रदेश व इससे निकटवर्ती क्षेत्रों से रहा था। लेकिन छठी शताब्दी में स्थिति बदल जाती है। हेनसांग बालादित्यराज को मगध का राजा बताता है। आर्यमंजूश्रीमूकल्प में द्वितीय नरसिंहगुप्त बालादित्य को पूर्व दिशा का राजा बताया गया है और तृतीय कुमारगुप्त तथा भानुगुप्त को गौड़ का। इसके अतिरिक्त वह नरेश भी, जिसके पास 539 ई० में चीनी सम्राट ने एक

दूत-मण्डल भेजा था, 'मगध का राजा' ही बताया गया है। स्पष्टतः छठी शती ई० में गुप्त सम्राटों की शक्ति का केन्द्र पूर्व की तरफ खिसक गया था। इसका संकेत इस बात से भी मिलता है कि अन्तिम दो गुप्त नृपतियों—तृतीय कुमारगुप्त व विष्णुगुप्त के अधिकांश सिक्के कालिघाट—निधि (बंगाल) में मिले हैं। इस विषय में 543 ई० के पंचम दामोदरपुर—दानशासन से पता चलता है कि उस युग में जब सर्वत्र प्रान्तीय गवर्नर और अधीन राजा अधिकाधिक स्वतंत्र होते जा रहे थे, पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) में बुधगुप्त के समय की प्रशासकीय व्यवस्था बनी हुई थी। दामोदरपुर—दानशासन लेख लिखे जाने के समय पुण्ड्रवर्धन भुक्ति में स्वयं 'महाराज' पुत्र देवभट्टारक उपरि महाराज (गवर्नर) के रूप में नियुक्त था। इससे (543 ई०) में उत्तरी बंगाल पर गुप्तों का अधिकार सिद्ध होता है साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि गुप्त सम्राट अब पश्चिमी प्रान्तों के स्थान पर पूर्वी प्रान्तों में अधिक दिलचस्पी ले रहे थे।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि बंगाल का दक्षिण पूर्वी भाग (प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित समतट) समुद्रगुप्त के जमाने में गुप्त साम्राज्य का प्रत्यन्त राज्य था परन्तु वैन्गुप्त (507 ई०) के शासन काल में साम्राज्य का अविभाज्य अंग बन गया था। छठी शताब्दी ई० में पश्चिमोत्तर दिशा से आने वाले हूणों और पश्चिमी मालवा के वर्धनों के दबाव के कारण गुप्तशक्ति का केन्द्र पूर्व की ओर सिमटता जा रहा था। भारत के बड़े साम्राज्यों के विघटन काल में उसके सिकुड़ने की दिशा इस बात में पर निर्भर रही थी कि अधिक भंयकर आक्रमण किस दिशा से हुए जैसे मौर्यों एवं मुगलों के साम्राज्य के सिकुड़ने की प्रक्रिया इसी प्रकार रही थी। पश्चिमोत्तर दिशा से आने वाले विदेशी आक्रमणकारियों तथा दक्षिण के सातवाहनों के दबाव से मौर्य साम्राज्य मगध तक सिकुड़कर रह गया और उसी प्रकार मुगल साम्राज्य पूर्व दिशा से अंग्रेजों, दक्षिण से मराठों और पश्चिमोत्तर दिशा से अफगानों का दबाव पड़ने के कारण मात्र दिल्ली तक सिमट कर रह गया था और अन्ततः कायर एवं निर्बल उत्तराधिकारी इन बड़े साम्राज्य को संभाल नहीं पाये।

3.5 सामन्तवाद और सामन्तों का विद्रोह

गुप्त साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण सामन्तवादी व्यवस्था थी। समुद्रगुप्त ने स्थानीय शासकों को आंशिक स्वतंत्रता देकर सामन्तवादी प्रथा को बढ़ावा दिया था। उसने अपने साम्राज्य को अनेक सामन्ती इकाईयों के संघ के रूप में संगठित किया था। इस संघ का केन्द्रीय भाग गंगा घाटी थी, जिस पर शासन करने वाले नरेशों को उन्मूलित करके समुद्रगुप्त ने वहाँ अपना प्रत्यक्ष शासन स्थापित किया था, लेकिन शेष विजित प्रदेशों में उसने विविध स्थानीय राजाओं और गणराज्यों को अपने प्रभुत्व में आंशिक स्वतंत्रता का उपभोग करने दिया। साथ ही उसने अनेक प्रदेशों में नए वंशों की स्थापना भी की, जिन्हें उनकी परिस्थिति के अनुसार स्वतंत्रता दी गई थी। जैसे कि कामरूप के वर्मा, बुन्देलखण्ड—बघेलखण्ड के पाण्डव, परिव्राजक तथा उच्चकल्प एवं पश्चिमी मालवा के औलिकर अथवा वर्मा वंशों का उदय 350 से 375 ई० के मध्य समुद्रगुप्त की कृपा से हुआ था। दक्षिणापथ के राजाओं को विजित करने के उपरान्त उसने ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह (राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) की नीति का अनुसरण किया। इससे जान पड़ता है कि समुद्रगुप्त ने सुदूरवर्ती दक्षिण के शासकों के प्रति सहानुभूति अपनाई। उसके द्वारा स्थापित साम्राज्य में सिद्धान्ततः 'सम्राट' अनेक छोटे राज्यों के 'स्वामियों का स्वामी' अर्थात् 'महाराजाधिराज' था। स्पष्टतः समुद्रगुप्त के अधीन बहुत से राजा 'सामन्त' कोटि के थे। यद्यपि प्रयाग प्रशस्ति में 'सामन्त' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, लेकिन हर्षचरित में सामन्तों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का विवरण मिलता है।

सामन्त शब्द का उल्लेख 'कौटिल्य' के अर्थशास्त्र में स्वतंत्र पड़ोसी के अर्थ में किया गया है। सर्वप्रथम 'अश्वघोष' (प्रथम शती) ने बुद्धचरित में इस शब्द का प्रयोग जागीरदार के लिए किया है। गुप्तकाल से सामन्त शब्द का प्रयोग सामान्यतः इसी अर्थ में किया जाने लगा। सामन्तवाद के विकास में शासकों द्वारा प्रदत्त भूमि तथा ग्राम अनुदानों का प्रमुख योगदान रहा है। मौर्योत्तर काल विशेषतया गुप्तकाल से शासन की एक प्रवृत्ति ब्राह्मणों तथा अधिकारियों को भूमिदान में दिए जाने से हुई। जो भूमि ब्राह्मणों को दान में दी जाती थी, उसे 'ब्रह्मदेय' कहा गया है।

भूमिदान की प्रथा को महाकाव्यों और पुराणों में पुण्य कार्य बताया गया है। महाभारत में भूमिदान के महत्व को बताते हुए भूमिदान प्रशंसा नामक अध्याय की रचना की गई। महाभारत और पुराणों को अंतिम रूप गुप्त युग के आस-पास दिया गया। जिससे स्पष्ट है कि भूमिदान गुप्त युग में राजा का कर्तव्य समझा जाने लगा। भूमिदान का सबसे प्राचीन अभिलेखीय प्रमाण पहली शती के एक सातवाहन अभिलेख में मिलता है, जिसमें अश्वमेध यज्ञ में एक गाँव दान की चर्चा है। पाँचवी शती में भूमिदान की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। भूमिदान के साथ दो चीजें जुड़ी थी। एक तो राजस्व के समस्त साधनों को ग्रहीता के नाम पर हस्तांतरित कर दिया जाता था और दूसरे ग्रहीता को उस भूमिखण्ड की आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ता था। इस प्रकार राजा ने अपने नियंत्रण को उन स्थानों पर से हटा दिया, जो स्थान भूमिदान के रूप में दिए जाते थे। अब तक राजा का उत्तरदायित्व जनता को आन्तरिक सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था आदि का प्रबन्ध करना माना जाता था और इसके बाद बदले में वहीं कर प्राप्त करने वाला होता था। अब ये दोनों अधिकार जिस वर्ग के हाथ में आ गए उन्हें 'सामन्तवर्ग' कहा जा सकता है। पाँचवी शती तक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजा चोरों को दण्डित करने का अधिकार नहीं त्यागता था। परन्तु आगे चलकर चोरों को दण्डित करना या परिवार की सम्पत्ति इत्यादि के झगड़ों पर न्याय देने का अधिकार भी भूमिदान के साथ ब्राह्मणों को हस्तांतरित किया जाने लगा।

गुप्तकाल के प्रारम्भिक दिनों में गुप्त साम्राज्य के केन्द्रीय प्रान्तों में किसी भी सामन्त को सम्राट की अनुमति के बिना स्वयं भूमिदान देने का अधिकार नहीं था। परन्तु छठीं शताब्दी तक हमें ऐसे प्रमाण मिलने शुरू हो गए जहाँ कुमारामात्य महाराज नन्दन जैसे सामन्त भी बिना सम्राट की आज्ञा के भूमिदान करने लगे। इससे जान पड़ता है कि छठीं शती तक विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी और अब सामन्त अपनी-अपनी भूमि के वास्तविक शासक बन बैठे थे। इनके साथ केन्द्रीय सम्राट का केवल इतना ही सम्पर्क था कि वे समय-समय पर सम्राट को उपहार, भेंट इत्यादि देकर उनके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करते रहें और उनकी सभा में प्रस्तुत होकर उनके प्रति अपनी अधीनता का प्रदर्शन करें।

यह विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति न केवल ब्रह्मदेय भूमि पर ब्राह्मणों के भूमिपति बन जाने से उत्पन्न हुई, बल्कि जब शासकों ने उपरि, कुमारामात्य इत्यादि जैसे अपने प्रमुख कर्मचारियों को वेतन के बदले में भूमिदान देना शुरू किया और उनका पद क्रमशः वंश परम्परागत बनने लगा, तब ये उपरि और कुमारामात्य इत्यादि भी सामन्तों की तरह स्वतंत्र होने लगे। रामशरण शर्मा के विचारानुसार इस प्रकार अमात्य और कुमारामात्य सामन्त विरुद्ध बनते गए।

जैसे-जैसे गुप्तवंशीय केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गई वैसे-वैसे सामन्त शासकों की संख्या बढ़ती गई। कहाँ अभिलेख में स्कन्दगुप्त को क्षितिपशतपते: (सैकड़ों राजाओं का स्वामी) कहा गया है। मन्दसोर अभिलेख 467 ई० के अनुसार गोविन्दगुप्त के चरणों में अनेक राजा सिर झुकाते थे। पुनः गुप्त-साम्राज्य अनेकानेक भुक्तियों (प्रान्तों) और विषयों (जिलों) में विभक्त था। यहाँ गुप्तों के

अधीन सामन्त शासन बढ़ते थे। परन्तु केन्द्रीय सरकार की निर्बलता से लाभ उठाकर इन सामन्तों ने शनैः शनैः अपनी स्वतंत्रता घोषित करनी प्रारम्भ कर दी। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के उपरान्त पश्चिमी भारत में गुप्तों का कोई अभिलेख नहीं प्राप्त हुआ है। इस क्षेत्र से 467 ई० के बाद सिक्के भी नहीं मिले हैं। इससे प्रमाणित होता है कि यह प्रदेश स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद ही गुप्त साम्राज्य के नियंत्रण से बाहर हो गया।

कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल में बंगाल में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का गवर्नर चिरातदत्त केवल 'उपरिक' कहा जाता था। परन्तु बन्धुगुप्त के शासनकाल में उसी भुक्ति के गवर्नर ब्रह्मदत्त और जयदत्त उपरिक महाराज की बड़ी उपाधि से जाने जाते थे। स्कन्दगुप्त का अन्तर्वेदी का शासक सर्वनाग केवल 'विषयपति' कहलाता था। परन्तु बुधगुप्त के समय एरण का प्रशासक मातृविष्णु 'महाराज' कहा जाता था। बुन्देलखण्ड में परिव्राजक नरेश हस्ती और संक्षोभ के 6 ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। हस्ती ने 475 ई० से 517 ई० तक शासन किया और संक्षोभ ने 518 ई० से 527 ई० तक। लेकिन वे अपने लेखों में गुप्त सम्राट का नाम नहीं लेते।

परिव्राजकों के दक्षिण-पश्चिम में बुन्देलखण्ड में ही उच्चकल्प वंश राज्य करता था। इस वंश के दान पत्रों से इसके 6 राजाओं-औद्यदेव, कुमारदेव, जयस्वामी, व्याघ्र, जयनाथ और सर्वनाथ के नाम ज्ञात होते हैं। मिराशी ने व्याघ्र का समीकरण नचना और गंज लेखों के व्याघ्रदेव से किया है जो वाकाटक नरेश पृथिवीषेण द्वितीय के अधीन था। यदि यह ठीक है तो मानना पड़ेगा कि उच्चकल्प वंश के स्थान पर वाकाटकों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। स्कन्दगुप्त के बाद सौराष्ट्र में 'भटार्क' ने मैत्रक वंश की स्थापना की। उसके पश्चात् धरसेन प्रथम, द्रोणसिंह और ध्रुवसेन प्रथम ने राज्य किया। प्रथम दो शासक भटार्क और धरसेन केवल सेनापति थे। परन्तु तृतीय नरेश द्रोणसिंह ने 'महाराज' की उपाधि धारण की। चतुर्थ शासक ध्रुवसेन के अभिलेख में परमभट्टारक-पादानुध्यात विरूद्ध का प्रयोग किया गया है। इन लेखों की तिथियाँ गुप्त संवत् 206 अर्थात् 525 ई० से गुप्त संवत् 226 ई० अर्थात् 545 ई० तक है। अतः यह वंश 545 ई० तक सामन्त शासक रहा। आर.सी. मजुमदार के अनुसार यह वंश नाममात्र के लिए ही गुप्तवंश के अधीन था। बुधगुप्त के 484-485 ई० के एरण अभिलेख से ज्ञात होता है कि वहाँ मातृविष्णु और धन्यविष्णु गुप्तों के अधीन सामन्त थे। एरण के ही एक अन्य अभिलेख से सिद्ध होता है कि कुछ समय बाद धन्यविष्णु ने हूण-नरेश तोरमाण की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस प्रकार मालवा भी गुप्तों के हाथ से निकल गया।

विक्रम संवत् 547 अर्थात् 490 ई० के सादणी (नीमच के पास) अभिलेख से मालवा में एक नये वंश मानव्यानि के उदय का पता चलता है। इसमें यशोगुप्त, राष्ट्र, राज्यवर्धन, पुण्यसोम और गौरि नामक राजा हुए। मन्दसोर के तिथिविहीन और एक लेख में आदित्यवर्धन राजा का उल्लेख है। 516 ई० का रिस्थल अभिलेख प्रकाश धर्मा औलिकर का उल्लेख करता है। 532 ई० का मन्दसोर अभिलेख निश्चित रूप से मालवा पर यशोधर्मा का आधिपत्य सिद्ध करता है। इस प्रकार 485 ई० के बीच मालवा में निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता रही। इससे लगता है कि बार-बार सत्ता का हस्तान्तरण होता रहा। एक बार 510 ई० में भानुगुप्त और गोपराज ने एरण अभिलेख के अनुसार हूणों को परास्त कर कुछ समय के लिए वहाँ गुप्तों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। लेकिन यह सफलता क्षणिक रही और 532 ई० के आसपास मालवा पर यशोधर्मा का अधिकार हो गया। इतिहासकारों का अभिमत है कि उत्तर प्रदेश में गुप्तों का विनाश मौखरियों ने किया। 554 ई० के हड़हा अभिलेख में मौखरी नरेश महाराजाधिराज ईशानवर्मा का उल्लेख है। इसी तरह कुमारगुप्त

नामक राजा ने मगध में उत्तरकालीन गुप्त-वंश की स्थापना गुप्त साम्राज्य के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता घोषित करके की थी।

मल्लसरूल (बंगाल) से प्राप्त एक अभिलेख में महाराजाधिराज गोपचन्द्र के सामन्त महाराज विजयसेन के भूमिदान का उल्लेख है। गुनैघर अभिलेख के अनुसार महाराज-महासामन्त विजयसेन गुप्त सम्राट वैन्यगुप्त का दूतक था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गोपचन्द्र ने वैन्यगुप्त के बाद बंगाल में अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी। गोपचन्द्र के उपरान्त धर्मादित्य और समाचारदेव ने भी बंगाल में स्वतंत्र रूप से शासन किया। इस प्रकार प्रकार धीरे-धीरे गुप्त साम्राज्य का विघटन हो गया।

3.6 बौद्धनीति का अनुसरण

प्रारम्भिक गुप्त शासक साम्राज्यवादी एवं वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, किन्तु कालान्तर में गुप्त सम्राटों ने वैष्णव धर्म का परित्याग कर बौद्ध नीति को अपनाया। स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों ने बौद्ध नीति का पालन करते हुए युद्ध नीति को छोड़कर अहिंसात्मक नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। यह नीति गुप्त साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। इस विषय में हेमचन्द्र राय चौधरी का विचार है कि "जिस प्रकार कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के निकट सम्पर्क में आने कारण हर्ष ने बौद्ध धर्म को अपनाया था, तथा इस धर्म परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव राज्य की सेना पर पड़ा था, उसी प्रकार इन अन्तिम गुप्त सम्राटों के धर्म परिवर्तन के कारण साम्राज्य की राजनीतिक दशा एवं सेना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।" बौद्ध धर्म अपनाने के कारण गुप्त शासक राजनीतिक उदारता का परिचय देने लगे जो कालान्तर में गम्भीर गलती सिद्ध हुई, इससे गुप्त साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

गुप्त साम्राज्य की शासन व्यवस्था का संघात्मक रूप साम्राज्य के स्थायित्व में बहुत बड़ी बाधा था। इस व्यवस्था की सफलता पूर्णतः सम्राट की योग्यता पर निर्भर थी। प्रारम्भिक गुप्त सम्राटों में यह योग्यता थी। वे वैष्णव धर्मविलम्बी थे और चक्रवर्ती आदर्श से प्रभावित हुए थे। समुद्रगुप्त समस्त पृथ्वी पर अपना 'प्रचण्ड शासन' स्थापित करने का स्वप्न देखता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य विष्णु के तीनों लोकों का राज्य पाने का दावा करता था और स्कन्दगुप्त म्लेच्छों का दमन करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता था। लेकिन प्रथम कुमारगुप्त के समय गुप्त राजपरिवार पर बौद्ध धर्म की छाया पड़ने लगी जिसके परिणाम स्वरूप गुप्त नरेश पृथ्वी-विजय का स्वप्न के स्थान पर पुण्यार्जन की चिन्ता में लग गये। प्रथम कुमारगुप्त अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भिक्षु जीवन व्यतीत करने लगा था। उसके अप्रतिघ प्रकार के सिक्कों पर उसे बिल्कुल बुद्ध के रूप में अंकित किया गया है। 'प्रतिघ' शब्द का महायान बौद्ध धर्म में विशेष अर्थ 'क्रोध' माना गया है, और इसे मनुष्य को बन्धन में डालने वाले छः क्लेशों में से एक बताया गया है। कुमारगुप्त के सिक्कों पर लिखे 'अप्रतिघ' लेख का अर्थ 'क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला' अथवा क्रोध विहीन है। इस आधार पर श्रीराम गोयल ने विचार व्यक्त किया है कि प्रथम कुमारगुप्त बौद्ध धर्म से प्रभावित हुआ था, और इसका समर्थन ह्वेनसांग के इस कथन से भी हो जाता है कि 'शक्रादित्य' अर्थात् कुमारगुप्त प्रथम ने नालन्दा में बौद्ध महाविहार की स्थापना की थी।

कुमारगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त स्वयं वैष्णव था परन्तु उसने बौद्ध धर्म को भी संरक्षण प्रदान किया। उसने सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बसुबन्धु को अपने उत्तराधिकारी प्रथम नरसिंहगुप्त बालादित्य का शिक्षक नियुक्त किया था। गुप्त राजपरिवार के समय से बसुबन्धु का सम्बन्ध कुमारगुप्त प्रथम के समय से हो सकता है, रहा हो, और नालन्दा महाविहार की स्थापना बसुबन्धु के

प्रभाव के कारण ही कुमारगुप्त प्रथम ने की हो। लेकिन बौद्ध धर्म का यह प्रभाव गुप्त साम्राज्य के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम और नरसिंहगुप्त का आध्यात्मिक विकास तो हुआ लेकिन इसके प्रभाव के परिणामस्वरूप उनमें अपने पद के कर्तव्यों को दृढ़तापूर्वक पूरा करने की भावना उत्पन्न नहीं हुई। 'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' से पता चलता है कि बालादित्य ने 36 वर्ष की अल्पायु में आत्महत्या कर ली थी। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि कुमारगुप्त प्रथम ने 'आत्मशक्ति' से देवलोक प्राप्त किया था। हो सकता है बालादित्य के समान कुमारगुप्त प्रथम ने भी आत्महत्या की हो क्योंकि बौद्ध धर्म में इस प्रकार के देहत्याग के कई उदाहरण मिलते हैं।

बौद्ध धर्म के प्रभाव के परिणामस्वरूप गुप्तनरेशों की युद्धप्रियता, जो साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक थी, समाप्त-प्रायः हो गई। छठी शती ई0 में आन्तरिक संघर्षों और हूण आक्रमण के कारण गुप्तवंश की स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल हो गई थी। ऐसे समय साम्राज्य की व्यवस्था और सैनिक संगठन में सुधार एवं बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं का दृढ़तापूर्वक दमन सबसे बड़ी आवश्यकताएँ थी लेकिन बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण द्वितीय नरसिंहगुप्त अपने राज्य को चैत्य एवं बिहारों से सजाने में लगा रहा और जब मिहिरकुल का आक्रमण हुआ तो भाग गया। इसके बाद अधीन राजाओं के द्वारा हूणराज के पकड़ लिए जाने पर उसने घोर अदूरदर्शिता का परिचय दिया और अपनी माता के कहने में आकर ऐसे भयंकर शत्रु को पुण्य अर्जित करने के हेतु छोड़ दिया। यह बौद्ध धर्म के प्रभाव का गुप्त राजाओं पर हानिकारक प्रभाव था। बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण गुप्त राजाओं द्वारा बौद्ध संस्थाओं को अतुल्य धन दान दिया जाने लगा। परवर्ती गुप्त शासकों द्वारा ब्राह्मणों को भूमिदान भी दिया गया लेकिन 'अग्रहार' और 'ब्रह्मदेय' की तुलना में बौद्ध संस्थाओं को दान ज्यादा दिया गया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण नालन्दा-महाविहार है। फाह्यान के भारत यात्रा के दौरान पाँचवीं शती में नालन्दा एक गाँव था। उसके 50 वर्षों उपरान्त शक्रादित्य (अर्थात् कुमारगुप्त प्रथम) ने वहाँ एक महाविहार की नींव डाली। इसके बाद बुद्धगुप्त, तथागताराज, बालादित्यराज और ब्रज इन सबने यहाँ नए-नए संघाराम बनाए। सातवीं शती ई0 के प्रारम्भ में ह्वेनसांग के यात्रा के समय इसमें 10000 भिक्षु और अन्य लोग निवास कर रहे थे जिनके खर्च के लिए महाविहार को सौ गाँवों की आय दी जाती थी। इसके अलावा इन गाँवों के निवासी इस संस्था को कई सौ पिकल चावल और कई सौ केट्टी मक्खन और दूध प्रतिदिन देते थे। इस प्रकार नालन्दा-महाविहार पर उसके निकटवर्ती प्रदेश की आय का अधिकांश व्यय कर दिया जाता था। ह्वेनसांग लिखता है कि भारत में नालन्दा-महाविहार से छोटे अनेक विहार थे, जिनका खर्च इन विहारों के आस-पास के गाँवों से वसूल किया जाता था ये तथ्य इस तरफ संकेत करते हैं कि परवर्ती गुप्त शासकों के युग में बौद्ध विहार गुप्त साम्राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर भार बन गए होंगे और इस प्रकार गुप्त साम्राज्य के पतन का एक बहुत बड़ा कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा, क्योंकि बौद्ध विहार धन-संग्रह और भ्रष्टाचार के केन्द्र बन गए। इन्होंने सहज ही आक्रमणकारियों का ध्यान आकृष्ट किया।

3.7 वंशानुगत पद

राज्यकर्मचारियों, उच्च अधिकारियों के पद का आनुवंशिक होना भी गुप्त साम्राज्य के पतन का कारण बना। आनुवंशिक पदों के कारण कभी-कभी अयोग्य व्यक्ति उच्च पद पर आसीन हो जाता था। जिसका राज्य पर कुप्रभाव पड़ता था। पदों के वंशानुगत होने से सामन्तों और अमात्यों की शक्ति में और भी वृद्धि हुई। समुद्रगुप्त का सन्धि-विग्रहिक महादण्डनायक कुमारामात्य हरिषेण

महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सन्धि-विग्रहिक वीरसेन शाव के लिए 'अन्वयप्राप्तसाचिव्यः' पद का प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उसने वंशानुगत सचिव पद प्राप्त किया था। कुमारगुप्त प्रथम का मंत्री पृथिवीषेण चन्द्रगुप्त द्वितीय के मंत्री शिखरस्वामी का पुत्र था। पुण्ड्रवर्धन-भुक्ति में दत्तवंश का वंशानुगत शासन था। वंशानुगत पद रिक्तियों में सदैव योग्यता का ध्यान नहीं रखा जा सकता।

3.8 साम्राज्य की विशालता

समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रयत्नों से एक विशाल गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुई थी। समुद्रगुप्त का विशाल साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपूताना, सिन्ध तथा गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तरभारत इसमें सम्मिलित था। दक्षिणापथ के शासक तथा पश्चिमोत्तर भारत की विदेशी शक्तियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं। इस प्रकार समुद्रगुप्त ने अपने पिता से जो राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त किया था, उसे एक विशाल साम्राज्य में परिणत कर दिया। प्रयाग प्रशस्ति के शब्दों में उसने अपने 'बाहुबल के प्रसार द्वारा भूखण्ड को बाँध लिया'। चन्द्रगुप्त द्वितीय योग्य पिता का योग्यतम पुत्र था। उसका उद्देश्य उदयगिरि गुहाभिलेख के शब्दों में सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतना (कृत्स्नपृथ्वीजय) था। जिस साम्राज्य को उसके पिता समुद्रगुप्त ने निर्मित किया, वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में पूर्णतया संगठित, सुव्यवस्थित एवं सुशासित होकर उन्नति की चोटी पर जा पहुँचा। स्कन्दगुप्त के पश्चात् इतने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा करने में कोई भी गुप्त शासक सफल न हुआ। आवागमन के साधनों के अभाव में वे विशाल गुप्त साम्राज्य को संभाल नहीं सके, परिणामतः साम्राज्य का विलोपन हो गया।

3.9 पारिवारिक अन्तर्कलह एवं उत्तराधिकार के नियम का अभाव

उत्तराधिकार के किसी निश्चित नियम के अभाव में गुप्तवंश में 'गृहयुद्ध' मतवैमनस्य और पारिवारिक कलह की स्थिति सदैव बनी रही। चन्द्रगुप्त प्रथम के समय से ही उत्तराधिकार के विषय पर विवाद शुरू हो गया था। सिंहासन पर अधिकार करने के प्रश्न पर प्रायः राजकुमारों में परस्पर संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। प्रयाग प्रशस्ति से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा समुद्रगुप्त को उत्तराधिकारी नियुक्त करने पर अन्य राजकुमारों द्वारा विरोध प्रकट किया गया। हरिषेण द्वारा रचित प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त को सिंहासन सौंपकर चन्द्रगुप्त प्रथम ने संयास ले लिया। इस घटना के प्रतिक्रिया स्वरूप एक ओर दरबार के 'सभ्यजनों' ने हर्ष प्रकट किया तो दूसरी ओर 'तुल्यकुलजों' भाइयों ने ईर्ष्या का अनुभव किया। यह विचारणीय विषय है कि ऐसी क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई होंगी कि चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के पूर्व ही समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक किया गया। समुद्रगुप्त के सिक्कों से साम्य रखते हुए कुछ सोने के सिक्के मुद्राशास्त्रियों को प्राप्त हुए हैं जिन पर 'काच' नाम उत्कीर्ण है। इन पर 'सर्वराजोच्छेता' विरुद्ध भी मिलता है। यह विरुद्ध समुद्रगुप्त के लिए अभिलेखों में प्रयुक्त हुआ है। कतिपय विद्वान, जैसे-स्मिथ, फ्लीट व एलन 'काच' को समुद्रगुप्त का ही दूसरा नाम मानते हैं क्योंकि एक शासक के दो नाम रखने की परम्परा, गुप्त वंश में प्रचलित थी। समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय का दूसरा नाम देवगुप्त था। परन्तु कतिपय विद्वान, जैसे, हेरास, 'काच' को समुद्रगुप्त का भाई बताते हैं। कुछ इतिहासकारों की परिकल्पना रही है कि सम्भवतः चन्द्रगुप्त प्रथम के कई पुत्रों में समुद्रगुप्त ज्येष्ठ पुत्र नहीं था। 'काच' ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राज्याधिकारी था। पिता के समुद्रगुप्त के प्रति झुकाव को देखकर उन्होंने पिता की मृत्यु से पूर्व ही गद्दी प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने कुछ सिक्के

मुद्रित करवा लिए। चन्द्रगुप्त प्रथम योग्य पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे और इसलिए काच और समुद्रगुप्त में उत्तराधिकारी के संघर्ष की संभावना को महसूस कर उन्होंने भरी सभा में समुद्रगुप्त को गद्दी प्रदान कर दी जिससे सामन्त एवं अन्य पदाधिकारी हर्षित हुए यद्यपि 'तुल्यकुलजों' ने अर्थात् 'काच' इत्यादि अन्य भाईयों ने ईर्ष्या अनुभव की। समुद्रगुप्त के शक्तिशाली व्यक्तित्व के कारण गुप्तवंश भ्रातृकलह में पड़ने से बच गया।

उत्तराधिकार के प्रश्न पर ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर गुप्त साम्राज्य की गद्दी को हस्तगत किया था। विशाखदत्त कृत देवीचन्द्रगुप्तम् नामक नाटक में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य से पूर्व रामगुप्त को गुप्त शासक के रूप में वर्णित किया गया है जिनके शासनकाल में शक आक्रमणकारियों ने ऐसी सकंठपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि रामगुप्त ने अपनी पत्नी ध्रुवदेवी, जिसके प्रति शकाधिपति आसक्त था, को देकर शान्ति खरीदने का विचार किया। रामगुप्त की इस कायरता से क्षुब्ध होकर उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त ने स्थिति को संभालने के उद्देश्य से स्वयं ध्रुवदेवी का भेष बनाकर शक शिविर में जाने की योजना बनाई। और जब इस प्रकार वह तथा उसके साथी शकाधिपति के पास स्त्री वेष में पहुँचे और शक शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय को ध्रुवदेवी समझ उसकी ओर बढ़ा तब छद्म वेष धारी चन्द्रगुप्त ने शकराज की हत्या कर दी। उसके उपरान्त चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने कायर बड़े भाई की भी हत्या कर गद्दी पर अधिकार कर लिया और ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया। बहुत से इतिहासकारों ने यह सिद्ध किया है कि कुमारगुप्त और उसके बड़े भाई गोविन्दगुप्त के बीच उत्तराधिकार को लेकर राजगद्दी के लिए युद्ध हुआ था। कुछ इतिहासकार बसाढ़ (वैशाली) मुहर और मंदसौर अभिलेख के आधार पर ध्रुवदेवी के पुत्र गोविन्दगुप्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद आने वाला शासक बताते हैं। परन्तु कुछ इतिहासकार प्रमुख वंशावलियों के आधार पर, जहाँ चन्द्रगुप्त के पश्चात् कुमारगुप्त का नाम दिया गया है, यह भी मानते हैं कि गोविन्दगुप्त सम्भवतः वैशाली के स्थानीय शासक रहे होंगे और गुप्त सिंहासन के उत्तराधिकारी कुमारगुप्त प्रथम बने। इसी प्रकार कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने राजगद्दी के लिए अपने भाई पुरुगुप्त से युद्ध किया और सफलता प्राप्त की। ऐसा लगता है कि राजगद्दी के लिए राजकुमारों के बीच युद्ध होना गुप्तवंश की एक परम्परा सी बन गई। इस प्रकार उत्तराधिकार के लिए युद्ध बाद में भी हुए होंगे और इस राजपरिवार की इस अस्थिरता का लाभ कुछ महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने उठाया और गुप्त साम्राज्य के पतन को अवश्यंभावी बना दिया।

3.10 आर्थिक अवनति

आर्थिक कारणों को भी गुप्त साम्राज्य के पतन का कारण माना जा सकता है। कुषाण युग की तुलना में देखा जाए तो गुप्त युग में व्यापार के ह्रास के पर्याप्त चिन्ह मिलते हैं। आधुनिक ऐतिहासिक शोध इस बात की तरफ संकेत करते हैं कि इस काल में ग्राम लगभग आत्मनिर्भर उत्पादक इकाई के रूप में उभरकर सामने आ रहे थे। ऐसा कृषि पर अत्यधिक बल और भूमि अनुदान की व्यवस्था के कारण हो रहा था। इसके कारण कृषक, कारीगर और मजदूर वर्ग जमीन पर निर्भर हो गये। उनकी गतिशीलता पर कुप्रभाव पड़ा। इस व्यवस्था का उद्योग-धन्धों, व्यापार-वाणिज्य एवं नगरों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। बहुत से प्राचीन व्यापारिक नगर और औद्योगिक केन्द्र समाप्त हो गए। इससे मुद्राव्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ा तथा सिक्कों के प्रचलन में कमी आई। सोने, चाँदी, ताँबे आदि विभिन्न धातुओं के सिक्कों की जो बहुलता प्राक्-गुप्तकाल में दृष्टिगोचर होती है, वह गुप्तकाल में नहीं दिखती, स्पष्टः मुद्राप्रणाली का पतन हो रहा था। कौटिल्य ने नकद वेतन दिए जाने का उल्लेख किया है। लेकिन गुप्तकालीन साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता

है। केवल स्वर्ण मुद्राओं से दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को खरीदना असम्भव लगता है। स्वयं फाह्यान ने लिखा है कि साधारण जनता रोज के विनियम में वस्तुओं की अदला-बदली अथवा कौड़ियों से काम चलाती थी। अतः आन्तरिक दृष्टि से वस्तुओं का उत्पादन व्यापार के लिए कम ही हो पाता होगा। विदेशी व्यापार में भी द्रस परिलक्षित होता है क्योंकि पाश्चात्य देशों से सम्पर्क की स्थिति अब वह नहीं थी जो कृषाण सातवाहन युग में थी।

रोमन साम्राज्य के विघटन के पश्चात् पाश्चात्य देशों से हो रहे व्यापार में गिरावट आ गई। 364 ई० में रोमन साम्राज्य का विभाजन दो भागों में हो गया था, और उसके आगामी सौ वर्ष अत्यन्त कठिनाईपूर्ण थे। पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ से अनेक आक्रमणकारियों ने उस साम्राज्य को अपना लक्ष्य बना लिया था। गोथ, अलारिक एवं अन्तिल हूण के विध्वंशकारी आक्रमण इसके उदाहरण हैं। रोमन साम्राज्य की स्थिति अब इतनी डौवाडोल थी कि रोम के नागरिक प्राच्य जगत से व्यापार को प्रोत्साहन नहीं दे सकते थे।

प्रोकोपियस के वर्णन (छठी शताब्दी) से पता चलता है कि फारसवासियों ने रेशम के व्यापार पर एकाधिकार सा प्राप्त कर लिया था, और रोमन साम्राज्य से उनकी शत्रुता के कारण भारतीय व्यापार को ठेस लगनी स्वाभाविक थी। भारत के रेशम व्यापार की स्थिति भी कुछ ठीक नहीं थी। एक समसामयिक अभिलेख कुमारगुप्त प्रथम बन्धुवर्मन के मंदसौर अभिलेख में कहा गया है कि नर्मदा क्षेत्र के निकट लाट-विषय से रेशम बुनकरों की एक श्रेणी अपना काम छोड़कर पश्चिमी मालवा में आ गई। रेशम बुनकरों को अन्य व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा और फिर स्वयं रोमन साम्राज्य में रेशम उद्योग के विकसित करने के गंभीर प्रयास किए जा रहे थे। इन सभी कारणों से पाश्चात्य देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार में गिरावट आ गई थी।

लम्बी दूरी के व्यापार के पतन के बाद समुद्रतटीय क्षेत्रों और आंतरिक इलाके के बीच सम्पर्क भी कमजोर हो गया। माल उत्पादन का आकार सिकुड़ने लगा। व्यापारिक गतिविधियों के क्षीण पड़ने के साथ ही साथ देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में कारीगरों और व्यापारियों का आना-जाना भी बेकार हो गया। गतिहीन कारीगर अब किसी ने किसी गाँव से जुड़ गए और कालक्रम में किसानों की तरह उन्हें भी ग्रहिता को हस्तांतरित किया जाने लगा। इस प्रकार कला और शिल्प का ग्रामीणीकरण हो गया। हालांकि चौथी शताब्दी में बना मेहरौली (दिल्ली) लौह-स्तम्भ कारीगरों की तकनीकी दक्षता का सबूत देता है। गुप्तकालीन अभिलेखों से पता चलता है कि गुप्तकाल में कुछ छोटे शहरों में नगरपालिका का प्रशासन चलाने में व्यापारी और शिल्पकारों की श्रेणियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

व्यापार में अवनति और शिल्प एवं माल उत्पादन में आम गिरावट का परिणाम तीसरी और चौथी सदी के दौरान कई शहरों के द्रस में भी हुआ। उत्तरी भारत में कृषाण काल के कई नगरीय केन्द्र जैसे कौसाम्बी (इलाहाबाद), हस्तिनापुर, पुराना किला (दिल्ली) अहिच्छत्र और तक्षशिला में पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। अयोध्या और मथुरा जो ई० सन् की आरम्भिक सदियों में फलते-फूलते नगर थे, उनका महत्व गुप्तकाल में समाप्त हो गया था। अधोध्या और मथुरा का सम्बन्ध राम और कृष्ण के साथ होने से ये नगर आंशिक रूप से फलते-फूलते रहे।

मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात के कई नगर जैसे-नोह, उज्जैन आदि प्रायः पतन के शिकार हो चुके थे। सातवाहन कालीन शहरीय केन्द्र जैसे-कौण्डिन्यपुर, पैठन और नासिक (महाराष्ट्र) अमरावती और धरनीकोट (आन्ध्रप्रदेश), बड़गाँव-माधवपुर, ब्रह्मगिरी और चन्द्रावती (कर्नाटक) आदि पतनोमुख हो चुके थे। सुदूर दक्षिण में अरिकोमेडु सबसे महत्वपूर्ण नगर था, जो

गुप्तकाल में आर्थिक रूप से सक्रिय नहीं रह पाया। गुप्त साम्राज्य की हृदय स्थली में भी शहरों के पतन के लक्षण पुरातात्विक उत्खननों में परिलक्षित होते हैं। प्रो० रामशरण शर्मा ने (**Urban Decay in India**) में गुप्तकालीन नगरों के पतन के कारणों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। वैशाली (बसाढ़ गाँव, विहार) में पूर्ववर्ती काल की तुलना में गुप्तकालीन भवन कम आकर्षक लगते हैं। यही बात पाटलीपुत्र (पटना) के साथ भी है। उत्खननों से सहगौरा (गोरखपुर) में बस्तियों के चिन्ह प्राप्त नहीं हुए हैं, जहाँ मौर्य काल के दो अन्न-भण्डारों का अस्तित्व पाया गया है। वाराणसी की प्रशासनिक दृष्टि से कुछ महत्ता बनी रही परन्तु गुप्तकाल में वहाँ भी अवनति के लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकार परवर्ती गुप्त-सम्राटों का शासनकाल आर्थिक दृष्टि से अवनति का युग परिलक्षित होता है। इसकाल में व्यापार एवं वाणिज्य का ह्रास होने लगा। रोमन साम्राज्य का पतन हो जाने के कारण पश्चिमी देशों के साथ भारत का व्यापार बन्द हो गया। नगर तथा नगरीय जीवन में भी ह्रास हुआ। यही कारण है कि स्कन्दगुप्त के मृत्यु के उपरान्त इस काल में स्वर्ण मुद्राओं का अभाव दृष्टिगोचर होता है। स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन धीरे-धीरे बन्द हो गया और चाँदी और ताँबे की मुद्राएँ भी बहुत कम ढलवाई गयीं। नगरों के पतन के कारण व्यापारी ग्रामों की ओर उन्मुख हुए। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था अवरूद्ध हो गयी जो गुप्त साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुई।

3.11 बाह्य आक्रमण

गुप्त साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण भारत पर हूण आक्रमण का होना भी था। गुप्तों की शक्ति को एक बड़ा आघात पाँचवीं सदी के अन्त में लगा, जब उत्तर भारत में बड़ी संख्या में हूण प्रवेश कर गए। हूण बेहतरीन तीरंदाज और कुशल घुड़सवार होते थे, जो धातु के रकाब का प्रयोग करते थे। हूणों के आक्रमण ने गुप्त साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया, और आधी शताब्दी के अन्दर ही उसकी जगह कई छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गए। गुप्त साम्राज्य पर हूणों का प्रथम आक्रमण लगभग 370 ई० में हुआ था, लेकिन उस समय 'चन्द्र' ने उनको सप्तसिन्धु के पार, साम्राज्य की सीमा के परे, रोक दिया था। हूणों का दूसरा आक्रमण प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल के अन्तिम वर्षों में हुआ। गुप्त सम्राट इस बार भी उनका प्रतिरोध करने में सफल रहे, परन्तु इस बार कुछ समय के लिए हूण साम्राज्य में घुसने में सम्भवतः सफल हो गए और उनके आघात से गुप्तकुल की राजलक्ष्मी विचलित हो उठी। लेकिन इस घोर संकट के समय मालवा के किसी अज्ञात राजा ने जो गुप्तों के अधीन था, नरेन्द्रसेन वाकाटक के साथ मिलकर स्कन्दगुप्त की कठिनाइयाँ, बढ़ाने में संकोच नहीं किया श्रीराम गोयल का विचार है कि स्वयं गुप्त सम्राटों का भी हूण संकट की तरफ दृष्टिकोण बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं था। इस संकट की बार-बार पुनरावृत्ति होने बावजूद उन्होंने सिन्धु की घाटी को जीतकर पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा का प्रयास नहीं किया। सम्भवतः स्वयं स्कन्दगुप्त भी हूणों पर विजय प्राप्त करने के बाद इस ओर निश्चिन्त सा हो गया था। उसके बाद जब हूणों ने गंधार को हस्तगत किया तो इससे साम्राज्य के कर्णधार चिन्तित थे, ऐसा किसी साक्ष्य से संकेत नहीं मिलता। इसलिए जब छठीं शती के प्रारम्भ में हूणों ने तीसरी बार आक्रमण किया तो उनको रोक पाना असम्भव हो गया। उल्टे स्वयं गुप्त वंश से अनेक असन्तुष्ट राजकुमार जैसे हरिगुप्त और 'प्रकाराख्य' हूणों से मिल गए।

बिखरते हुए गुप्त साम्राज्य का विलोपन उत्तर भारत में हूण राज्य की स्थापना के साथ ही घटित होता है। हूणों का राज्य मध्यप्रदेश में एरण तक फैला हुआ था। पहला महत्वपूर्ण हूण राजा

तोरमाण था। उसके राज्यारोहण के प्रथम वर्ष की तिथि वाले अभिलेख सहित विष्णु के बाराह अवतार रूपी चार पैरों वाले विशाल बाराह की मूर्ति एरण से प्राप्त हुई है। इतिहासकारों का मानना है कि उसने जैन धर्म अंगीकार कर लिया था। उसका पुत्र मिहिर कुल 515 ई० में सत्ता में आया जो साकल (सियालकोट) से शासन करता था। परम्पराओं के अनुसार वह निरंकुश शासक, मूर्तिभंजक और बौद्धों का दमन करने वाला राजा था। परन्तु वह एक निष्ठावान शैव भी था और उसने मिहिरेश्वर मंदिर की स्थापना की। मिहिरकुल को पहले मालवा के यशोवर्मन ने और फिर उसके बाद गुप्त वंश के नरसिंहगुप्त बालादित्य ने पराजित किया। परन्तु हूणों की पराजय से गुप्त साम्राज्य फिर से पुनर्जीवित नहीं हो पाया।

हूणों के आक्रमण के दौर में गुप्त साम्राज्य की संघात्मक शासन व्यवस्था एक बार पुनः साम्राज्य के लिए अभिशाप सिद्ध हुई क्योंकि इस संकट काल में बजाय सम्राट की मदद करने के धन्यविष्णु जैसे पदाधिकारियों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए तोरमाण का साथ पकड़ लिया। इसी प्रकार बंगाल में महाराज विजयसेन ने जो 507 ई० में वैन्यगुप्त के अधीन था, पश्चिमी बंगाल में गुप्तों के स्थान पर अपनी सत्ता स्थापित करने वाले महाराजाधिराज गोपचन्द्र का प्रभुत्व मान लिया। यदि उस युग में गुप्त सम्राट अपनी सैनिक शक्ति के लिए प्रधानतः अधीन राजाओं और गर्वनों पर निर्भर रहे होंगे तो धन्यविष्णु और वीरसेन जैसे पदाधिकारियों का इस प्रकार पक्ष परिवर्तन साम्राज्य के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ होगा। यू०एन० राय का विचार है कि गुप्तों को निर्बल बनाने में सबसे बड़ा हाथ हूणों का ही था। उन लोगों ने रोमन साम्राज्य के समान गुप्त साम्राज्य को भी गहरा धक्का पहुँचाया। आर०एस० त्रिपाठी ने भी हूण आक्रमणों को गुप्तों के पतन के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना है। उनके अनुसार बर्बर जाति की अनवरत चोटों ने, जिनसे विश्व के अनेक सभ्य साम्राज्य टूट चुके थे, गुप्त साम्राज्य को भी अन्त में तार-तार कर डाला। लेकिन इतिहासकार आर०सी० मजूमदार इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार गुप्त साम्राज्य को वास्तविक आघात हूणों ने नहीं बल्कि यशोधर्मा जैसे महत्वाकांक्षी शासकों ने पहुँचाया था। हूण आक्रमण के प्रभाव तो अल्पजीवी थे किन्तु यशोधर्मा जैसे शासकों ने गुप्त साम्राज्य को पूर्णतः समाप्त कर दिया। हूण आक्रमण चाहे गुप्त साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण नहीं रहा हो फिर भी इसमें संदेह नहीं की इसने गुप्त साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचाया। इस तथ्य को इंगित करते हुए वी०ए० स्मिथ ने विचार व्यक्त किया है कि हूण आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिए तथा नवीन राज्यों के उदय के लिए आधार प्रदान कर दिया।

3.12 विदेश नीति का परित्याग

प्रारम्भिक गुप्त सम्राटों ने अपने पड़ोसियों के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों को बनाया। इन सम्बन्धों में विवाह सम्बन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने समय के प्रसिद्ध लिच्छवी राजवंश के साथ अपने वैवाहिक सम्बन्धों को स्थापित किया। समुद्रगुप्त ने कुषाण, शकों, सिंहल नरेशों के साथ मित्रता के सम्बन्ध बनाये और राजवंशों की कन्याओं (कन्योपायनदान) के साथ विवाह किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटक वंश, नागवंश, कदम्ब वंश में अपने वैवाहिक सम्बन्धों के जोड़कर उच्च प्रकार की कूटनीति को प्रदर्शित किया। किन्तु दुर्भाग्यवश परवर्ती शासकों में अपने पूर्वजों के इन गुणों का अभाव था। यही कारण था कि संकट काल में इन राजाओं को अपने पड़ोसी राज्यों से कोई सहायता नहीं मिली।

3.13 युद्धों का अधिकता

प्रारम्भिक गुप्त नरेशों ने अपने साम्राज्य के विस्तार हेतु साम्राज्यवादी नीति का पालन किया। साम्राज्यवादी नीति का पालन करने में स्वाभाविकतः उन्हें निरन्तर युद्धों में रत रहना पड़ा। कुमारगुप्त एवं उसके बाद के परवर्ती गुप्तशासकों को निरन्तर युद्ध लड़ने पड़े, क्योंकि भारत पर विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे तथा भारत की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए इन विदेशी आक्रान्ताओं का सामना करना आवश्यक था। निरन्तर युद्धों ने गुप्त साम्राज्य को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। इन युद्धों के परिणामस्वरूप एक ओर तो गुप्तों की आन्तरिक संगठन-व्यवस्था में शिथिलता उत्पन्न हो गई तथा दूसरी ओर गुप्त अर्थव्यवस्था पर इससे गहरा आघात पहुँचा, और गुप्त साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।

3.14 उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्त साम्राज्य उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचने के उपरान्त पतन की ओर अग्रसर हो गया। गुप्त साम्राज्य का पतन कोई आकास्मिक घटना नहीं थी। विभिन्न कारण परस्पर मिलकर गुप्त साम्राज्य को निरन्तर निर्बल बना दिए और अन्ततः साम्राज्य का विलोपन हो गया। विदेशी आक्रमण, शासक परिवार के मतभेद, सामन्तवाद, स्थानीय सरदारों के द्वारा पुनः अपनी शक्ति को स्थापित करना, प्रशासनिक कमजोरी, बौद्ध धर्म का प्रभाव, आर्थिक अवनति आदि कारणों ने महान् गुप्त साम्राज्य का अन्त कर दिया।

(i) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न—

- 1—गुप्त साम्राज्य के विलोपन पर प्रकाश डालिए?
- 2—गुप्त साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए?
- 3—गुप्त साम्राज्य का पतन वाह्य आक्रमणों एवं सामन्तवाद के कारण हुआ, व्याख्या कीजिए?

(ii) संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

- (1) सामन्तवाद का उद्भव एवं विकास
- (2) भारत पर हूण आक्रमण के कारण एवं प्रभाव
- (3) गुप्तशासकों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

(iii) लघु उत्तरीय प्रश्न—

- (1) नालन्दा में बौद्ध महाविहार की स्थापना किसने की?
(क) स्कन्दगुप्त (ख) कुमारगुप्त प्रथम (ग) समुद्रगुप्त (घ) रामगुप्त
- (2) चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकाधिपति को परास्त करने का विवरण कहाँ मिलता है?
(क) मुद्राराक्षस (ख) मालविकाग्निमित्रम् (ग) देवीचन्द्रगुप्तम्
(घ) नवसाहसांक चरित
- (3) समुद्रगुप्त का प्रतिद्वन्द्वी राजकुमार किसे माना जाता है?
(क) गोविन्दगुप्त (ख) रामगुप्त (ग) पुरुगुप्त (घ) काच
- (4) गुप्त साम्राज्य के पूर्णतः विलुप्त होने की तिथि सामान्यतः क्या मानी जाती है?
(क) 500 ई० (ख) 550 ई० (ग) 600 ई० (घ) 540 ई०
- (5) प्रयाग प्रशस्ति के लेखक हरिषेण के पिता का क्या नाम था?
(क) ध्रुवभूति (ख) रविकीर्ति (ग) वीरसेन शाव(घ) शिखर स्वामी
- (6) प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त को सिंहासन सौंपकर चन्द्रगुप्त प्रथम ने संयास ले लिया था?
सत्य/असत्य

(7) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर गुप्त कर गुप्त साम्राज्य की गद्दी को हस्तगत किया था? सत्य/असत्य

(8) गुप्तकाल में नगर और व्यापारिक केन्द्र प्रगति करने लगे थे। सत्य/असत्य

(9) हूणों का पहला भारतीय आक्रमण गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के शासन काल (455-467 ई0) में हुआ था। सत्य/असत्य

(10) प्रारम्भिक गुप्त नरेश बौद्ध धर्मानुयायी थे। सत्य/असत्य

उत्तर-1-(ख), 2-(ग), 3-(घ), 4-(ख), 5-(क), 6- सत्य, 7- सत्य, 8- असत्य, 9- सत्य, 10-असत्य।

3.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1-गोयल, श्रीराम, 1995, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, कुसुमांजली प्रकाशन, जयपुर

2-श्रीवास्तव, के.सी, 1991, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद

3-पाण्डेय, विमलचन्द्र, 2003, प्राचीन भारत का इतिहास (250 ई0 से 1200 ई0), एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, दिल्ली

4-मजूमदार तथा अल्लेकर 1960, दि वाकाटक-गुप्त एज, दिल्ली

5-राय, उदय नारायण, 1971, गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद

6-झा एवं श्रीमाली, 1990, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

7-शर्मा, रामशरण 2004, प्रारम्भिक भारत का परिचय, दिल्ली

वाकाटक एवं उनके गुप्त शासकों के साथ सम्बन्ध

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 विध्यशक्ति
- 1.4 प्रवरसेन प्रथम
 - 1.4.1 वैवाहिक संबंध
 - 1.4.2 साम्राज्य का विभाजन
- 1.5 प्रमुख शाखा
 - 1.5.1 प्रमुख शाखा रुद्रसेन प्रथम
 - 1.5.2 पृथ्वीसेन प्रथम
 - 1.5.3 रुद्रसेन द्वितीय
 - 1.5.4 प्रवरसेन द्वितीय
 - 1.5.5 नरेन्द्रसेन
- 1.6 वसीम शाखा (वत्समुल्म शाखा)
 - 1.6.1 सर्वसेन
 - 1.6.2 प्रवरसेन द्वितीय
 - 1.5.3 देवसेन
 - 1.6.4 हरिषेण
- 1.7 प्रशासन
- 1.8 गुप्त—वाकाटक संबंध
- 1.9 तकनीकी शब्दावली
- 1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वाकाटक राज्य प्राचीन दक्षिण भारत का एक शक्तिशाली राज्य था। उत्तर भारत में सर्वशक्तिमान गुप्त साम्राज्य के साथ-साथ दक्षिण भारत में वाकाटक साम्राज्य कायम था। वाकाटकों का उद्भव तीसरी शताब्दी में हुआ और वाकाटकों ने छठी शताब्दी तक शासन किया। वाकाटकों ने लगभग 250 – 55 ई० से 510 ई० तक दक्षिण भारत में शासन किया। जे० दुब्रील ने ठीक ही लिखा है कि “तीसरी शताब्दी ई० से छठी शताब्दी तक दक्षिण भारत में जिन राजवंशों का उदय हुआ, उनके वाकाटक राजवंश सर्वश्रेष्ठ था।” वाकाटकों ने दक्षिण भारत में सातवाहनों के पतन के बाद रिक्त राजनैतिक शून्य को अपनी तलवार के बल पर भरा। वाकाटक प्रारंभ में सातवाहनों के सामन्त थे। वाकाटकों का अभ्युदय लगभग 250–255 ई० के आसपास हुआ। वाकाटकों की जाति ब्राह्मण थी, वे विष्णुवृद्धि गौत्र

के ब्राह्मण थे। वाकाटक राजवंश का संस्थापक विंध्यशक्ति था। उसने वाकाटक राज्य की स्थापना कहीं पूर्वी मध्यप्रदेश या बरार में की थी। विंध्यशक्ति ने विंध्य के दर्रो को पार कर पूर्वी मालवा के कुछ क्षेत्र विजित कर अपने राज्य का विस्तार किया होगा।

1.3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. विद्यार्थी वाकाटक वंश का इतिहास समझ सकेंगे।
2. विद्यार्थी दक्षिण भारत के इतिहास को जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी वाकाटक – गुप्त संबंधों को समझेंगे।
4. विद्यार्थी वाकाटकों की प्रमुख शाखा का महत्व समझ सकेंगे।
5. विद्यार्थी वाकाटकों की बासीम शाखा के राजनैतिक संघर्ष को समझ सकेंगे।
6. विद्यार्थी वाकाटकों के प्रशासन को जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी प्रभावती गुप्ता की उपलब्धियों को समझ सकेंगे।
8. विद्यार्थी प्रवरसेन प्रथम की राजनैतिक एवं दिग्विजय को जान सकेंगे।

1.3 विंध्यशक्ति

विंध्यशक्ति ने वाकाटक साम्राज्य की स्थापना की थी। उसने वाकाटक राज्य की स्थापना कहीं पूर्वी मध्यप्रदेश या बरार में की थी। पुराणों से विदित होता है कि विंध्यशक्ति की राजधानी पुरिका थी। डॉ० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार – विंध्यशक्ति ने वाकाटक राजवंश की स्थापना लगभग 255 ई० में की थी। विंध्यशक्ति उसका वास्तविक नाम नहीं था, अपितु विंध्यक्षेत्र में अपनी शक्ति के द्वारा राज्य स्थापना के कारण उसका विरुद्ध विंध्यशक्ति ही पड़ा और इसी विरुद्ध से उसने शासन किया। विंध्यशक्ति का उल्लेख पुराणों और अजंता अभिलेख में मिलता है। ज्ञातव्य रहे कि वाकाटक वंश के अन्य किसी अभिलेख में विंध्यशक्ति का उल्लेख नहीं हुआ है। वाकाटक अभिलेखों वाकाटक वंश की वंशावली प्रवरसेन प्रथम से प्रारंभ मिलती है, उनमें विंध्यशक्ति का कहीं नाम नहीं आया है। बहुत संभव है कि, पिता विंध्यशक्ति से अधिक प्रतापी एवं यशस्वी सम्राट पुत्र प्रवरसेन प्रथम होने के कारण, वाकाटक अभिलेखों में प्रवरसेन प्रथम से वंशावली प्रारंभ की हो।

बहरहाल, जो भी हो, इतिहास सत्य यही है कि, विंध्यशक्ति वाकाटक राजवंश का संस्थापक प्रथम पुरुष था। विंध्यशक्ति संभवतः प्रारंभ में सातवाहनों के अधीन कोई सामंत या अधिकारी रहा होगा। जिसने सात वाहनों की केन्द्रीय शक्ति की क्षीणता का लाभ उठाते हुए शनैः-शनैः अपने आप को शक्तिशाली किया होगा और बाद में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की होगी। विंध्यशक्ति की उपलब्धियों का विवरण अजंता अभिलेख देता है। अजंता अभिलेख विंध्यशक्ति को अपने बाहुबल से सभी लोकों का विवेका कहा गया है— स्वबाहुरीयोजितसर्वलोकः। अजंता अभिलेख विंध्यशक्ति के जिस शौर्य और शक्ति का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए अनेक विजयों का विजेता बताता है, वह यह नहीं बताता कि, विंध्यशक्ति ने अपना यह शक्ति प्रदर्शन किस-किस के विरुद्ध किया था और किन शत्रुओं का विनाश किया था तथा कौन-कौन से प्रदेश विंध्यशक्ति ने जीते थे?

विंध्यशक्ति की शक्ति प्रसार का संकेत पुराणों से मिलता है। पुराणों में विंध्यशक्ति को विदिशा (आधुनिक मध्यप्रदेश का विदिशा, जो भोपाल से 50 कि.मी. दूरी पर स्थित है।) का शासक बताया गया है। पुराणों के इस संकेत पर इतिहासविदों का अनुमान है कि विंध्यशक्ति ने अपना प्रारंभिक राज्य आधुनिक मध्यप्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों में विस्तार किया होगा। डॉ0ए0एस0 अल्तेकर का मानना है कि, विंध्यशक्ति ने अपनी सैनिक सफलताओं से बैतूल, इटारसी और होशंगाबाद के जिलों को अपने राज्य में मिला लिया होगा। शुरु में उसका राज्य बरार में एक हिस्से तक ही सीमित रहा होगा। विंध्यशक्ति राज्य विस्तार में किसी शक्तिशाली राजवंश से प्रतिरोध नहीं करना पड़ा होगा। उसने आसानी से इन क्षेत्रों में अपनी सत्ता स्थापित की होगी। यदि उसे किसी के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता, तो उससे संबंधित साक्ष्य अवश्य मिलते। वस्तुतः विंध्यशक्ति के समकालीन उस क्षेत्र में कोई शक्तिशाली राज्य था ही नहीं, इसीलिए विंध्यशक्ति को प्रारंभिक सैनिक सफलताओं में कोई विशेष शौर्य का प्रदर्शन नहीं करना पड़ा होगा। विंध्यशक्ति ने अपने जीवनकाल में स्वतंत्र सत्ता की स्थापना तो कर ली थी, किन्तु उसने संभवतः अपना औपचारिक राज्याभिषेक नहीं करवाया था और न ही उसने राजा की उपाधि धारण की थी।

विंध्यशक्ति एक शक्तिशाली राज्य निर्माता के साथ ही एक विशुद्ध ब्राह्मण भी था, उसने अपने ब्राह्मणत्व को सदैव जीवित रखा और धर्म-कर्म, पुण्य तथा परोपकारी कार्यों में भी संलग्न था। अजंता अभिलेख में उसे द्विज और 'वाकाटक-वंश-केतु' कहा गया है। विंध्यशक्ति ने यज्ञों, मंदिरों, ज्ञान शालाओं एवं जन सुविधाओं पर धन खर्च किया था। लगभग 275 ई0 में विंध्यशक्ति की मृत्यु हो गयी थी। उसने लगभग 20 वर्षों तक शासन किया और वाकाटक राजवंश की नींव रखी।

1.4 प्रवरसेन प्रथम

वाकाटक राजवंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक विंध्यशक्ति का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी प्रवरसेन प्रथम था। प्रवरसेन प्रथम ने अपनी सैन्य सफलताओं के बल पर वाकाटक राज्य को एक 'साम्राज्य' में बदल दिया था। प्रवरसेन प्रथम लगभग 275 ई0 में वाकाटक राजवंश का शासक बना। पुराणों में प्रवरसेन को 'प्रवीर' कहा गया है। प्रवरसेन के शासक बनने के समय वाकाटक राज्य शैश्यावस्था में था। प्रवरसेन के सामने सबसे बड़ी चुनौती वाकाटक राज्य को एक सम्पूर्ण शक्तिशाली और विधिवत् स्थापित राज्य शक्ति में परिणित करना था। सात वाहन साम्राज्य के पतन के बाद दकन में एक केन्द्रियकृत शक्ति विखण्डित हो गयी थी। प्रवरसेन को उस विखण्डित शक्ति को अपने शौर्य और सूझबूझ से एक तलवार की शक्ति के अधीन करना था। प्रवरसेन के शौर्य और शक्ति प्रदर्शन का उल्लेख वाकाटकों के अनेक ताम्रपत्राभिलेखों एवं पुराणों में हुआ। पुराणों से विदित है कि, प्रवरसेन प्रथम ने चार अश्वमेध यज्ञ किये। जो उसकी चार बड़ी सैनिक सफलताओं की ओर संकेत करते हैं।

प्रवरसेन का आधिपत्य आधुनिक मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के एक बहुत बड़े भौगोलिक भाग पर था। इस क्षेत्र में अनेक विजयें उसके पिता विंध्यशक्ति ने भी की थीं, प्रवरसेन ने उसे आगे बढ़ाया इतिहासविदों की धारणा है कि, प्रवरसेन की राजधानी 'पुरिका' मध्यप्रदेश कहीं थी। पुराणों में विदिशा को प्रवरसेन के अधीन बताया गया है। डॉ0 वी0 मिराशी का मानना है कि प्रवरसेन ने विदिशा को नागवंशी शिशुक को पराजित करके हस्तगत किया था। इतिहासविदों का मानना है कि, प्रवरसेन ने दक्षिण कौसल या छत्तीसगढ़ के बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र को जीत लिया था, क्योंकि उस समय कोई ऐसी क्षेत्रीय शक्ति नहीं थी जो उसे चुनौती देती। मध्य प्रदेश के मालवा सहित पूर्वी मध्य,

पश्चिमी एवं दक्षिणी मध्य प्रदेश के भौगोलिक क्षेत्र पर प्रवरसेन ने अपना ध्वज फहरा दिया था। मध्यप्रदेश के बघेलखण्ड नामक भौगोलिक क्षेत्र से वाकाटक राजा पृथ्वीषेण के माण्डलिक व्याघ्रसेन दो शिलालेख क्रमशः नचना और गंज गाँवों मिले हैं। इन शिलालेखों की प्राप्ति अधिकार पर इतिहासविदों का मानना है कि, ये क्षेत्र प्रवरसेन ने ही विजित किये होंगे। क्योंकि किसी अन्य वाकाटक नरेश के इन क्षेत्रों पर सैन्य अभियान का ज्ञान नहीं है।

इस प्रकार प्रवरसेन प्रथम ने आधुनिक मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के एक बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। प्रवरसेन ने गुजरात एवं काठियावाड़ में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया था। डॉ. ए०एस० अल्तेकर का मानना है कि— प्रवरसेन ने अपनी शक्ति से गुजरात एवं काठियावाड़ के शक क्षत्रपों को सामन्तों की श्रेणी में ला दिया था। प्रवरसेन ने लगभग 310–332 ई० के मध्य पश्चिमी क्षत्रपों को अपने प्रभाव में ला दिया था। प्रवरसेन ने शक नरेशों रुद्रसिंह द्वितीय (304–316 ई०) एवं यशोदामन, द्वितीय (316–332 ई०) को महाक्षत्रप (स्वतंत्र सत्ता की प्रतीक उपाधि) से क्षत्रप (सामंत या अधीनता का प्रतीक) की स्थिति में ला दिया था। प्रवरसेन को अपना प्रभाव स्थापित करने का अवसर क्षत्रपों के उत्तराधिकार संघर्ष के समय मिला। लगभग 304 ई० में रुद्रसिंह और भर्तृदामन के बीच सिंहासन के लिए तनातनी हुई। प्रवरसेन ने सिंहासन के संघर्ष में भर्तृदामन के विरुद्ध रुद्रसिंह द्वितीय की मदद की। इस मदद के प्रतिरूप रुद्रसिंह द्वितीय ने 'महाक्षत्रप' के स्थान पर क्षत्रप की उपाधि धारण की। रुद्रसिंह द्वितीय प्रवरसेन को नियमित उपहार और संभवतः कर भी देता था। डॉ० ए०एस० अल्तेकर का मानना है कि मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के सोनपुर से 633 शक मुद्राओं का भण्डार मिला है। रुद्रसिंह द्वितीय और यशोदान द्वितीय की ये मुद्राएँ प्रवरसेन को कर स्वरूप मिली होंगी। किन्तु संदर्भ में डॉ० वी.वी. मिराशी का मत है कि, शकों को प्रवरसेन ने नहीं अपितु मध्यप्रदेश के श्रीधरवर्मन नामक किसी राजा ने पराजित किया था।

प्रवरसेन प्रथम का साम्राज्य भूतपूर्व हैदराबाद रियासत एवं महाराष्ट्र के एक बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ था। वाकाटक साम्राज्य में हैदराबाद रियासत के मराठी भाषी क्षेत्र अवश्य शामिल थे, साथ ही कृष्णा नदी के उत्तर में सभी जिले भी शामिल रहे होंगे। डॉ० ए०एस० अल्तेकर ने प्राचीन ग्रंथ 'श्रीशैलस्थल महात्म्य' के साक्ष्य के आधार पर कहा है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री एवं रुद्रसेन द्वितीय पत्नी प्रभावती गुप्ता प्रतिदिन श्रीशैल के देवता मल्लिकार्जुन को माला चढ़ाने जाती थी। श्रीशैल का क्षेत्र हैदराबाद रियासत में था। अल्तेकर का मत है कि फिर तो कुर्नूल जिले तक का सारा प्रदेश वाकाटकों के प्रभाव क्षेत्रों में रहा होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रवरसेन प्रथम का साम्राज्य हैदराबाद रियासत के एक बड़े भाग में फैला हुआ था। प्रवरसेन के प्रभाव में महाराष्ट्र का क्षेत्र भी था, उत्तर कुन्तल के कोतहापुर सतारा और शोलापुर एवं उत्तरी महाराष्ट्र का पूरा भौगोलिक क्षेत्र प्रवरसेन ने जीत लिया था।

डॉ० ए०एस० अल्तेकर ने प्रवरसेन के साम्राज्य विस्तार के बारे में लिखा है कि, प्रवरसेन प्रथम ने अपने पैतृक राज्य का दस गुना विस्तार कर दिया था। उसके राज्य विस्तार में नर्मदा और कृष्णा के बीच का पूरा दकन आ गया था। उत्तरी महाराष्ट्र, बरार, मध्यप्रदेश और हैदराबाद रियासत के प्रदेश तो निश्चय ही उसके साम्राज्य के अंग थे। मालवा, गुजरात, आंध्रप्रदेश और दक्षिण कौसल उसके प्रभाव क्षेत्र में थे।

1.4.1 वैवाहिक संबंध

वैवाहिक संबंधों के द्वारा राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना राजवंशों के लिए कोई नयी बात नहीं थी। वाकाटकों ने भी ऐसे वैवाहिक संबंधों का सहारा लिया और प्रवरसेन के समय नागों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये। उत्तर भारत में नागों का शक्तिशाली राज्य था। प्रवरसेन ने पद्मावती (जिला – ग्वालियर, मध्यप्रदेश) के भार शिववंशीय भवनाग की पुत्री भवनागा के साथ अपने पुत्र गौतमी पुत्र का विवाह किया। नागों और वाकाटकों के मध्य इस वैवाहिक संबंध की पुष्टि वाकाटकों के अनेक ताम्राभिलेखों में बड़े ही गौरव के साथ हुई है। वाकाटकों के साम्राज्य विस्तार एवं उत्कर्ष में इस वैवाहिक संबंध ने बड़ा सहयोग प्रदान किया।

प्रवरसेन की राजनैतिक सफलताओं के साथ ही, उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ भी महत्वपूर्ण थी। प्रवरसेन ब्राह्मण धर्म का बड़ा समर्थक था, उसने वैदिक धर्म और वैदिक धर्म के यज्ञवाद को अपना संरक्षण प्रदान किया। प्रवरसेन ने चार अश्वमेध एवं वाजपेयी, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम, षोडशी, उक्थ्य, आप्तोयमि, अतिरात्र, षोडशिन आदि वैदिक यज्ञ कराये। निश्चित रूप से प्रवरसेन के इन कार्यों से ब्राह्मणों के पुरोहित वर्ग एवं ब्राह्मण साहित्य तथा संस्कृत भाषा का बढ़ावा मिला होगा। प्रवरसेन ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर वाजपेय यज्ञ किया होगा और वाजपेय यज्ञ के बाद सम्राट की उपाधि धारण की होगी। वांशीय ताम्रपत्राभिलेख से 'धर्ममहाराज' की दूसरी एक अन्य उपाधि का भी ज्ञान होता है। प्रवरसेन ने लगभग 60 वर्षों तक शासन किया इस प्रकार प्रवरसेन का शासनकाल लगभग 275–335 ई० तक।

1.4.2 साम्राज्य का विभाजन

वाकाटक साम्राज्य का विभाजन, वाकाटकों के इतिहास की प्रमुख घटना है। सर्वशक्तिमान सम्राट प्रवरसेन की मृत्यु के बाद वाकाटक साम्राज्य चार भागों में विभक्त हो गया। प्रवरसेन प्रथम के चार पुत्रों ने उसकी मृत्यु के बाद अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। प्रवरसेन के चार पुत्रों में से दो पुत्रों, गौतमी पुत्र एवं सर्वसेन के नाम मिलते हैं, शेष दो पुत्रों के नामों का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। प्रवरसेन के बड़े पुत्र गौतमी पुत्र की मृत्यु उसके जीवन में ही हो गयी थी। गौतमी पुत्र का उत्तराधिकारी उसका बेटा रूद्रसेन प्रथम हुआ। रूद्रसेन प्रथम ने वाकाटकों की प्रमुख शाखा का नेतृत्व किया। जिसका शासित क्षेत्र उत्तरी विदर्भ था। जिसकी राजधानी नन्दिवर्धन (नगरधन) थी। प्रवरसेन का दूसरा पुत्र सर्वसेन दक्षिण विदर्भ का शासक बना। उसकी राजधानी वत्सगुल्म (बाशीम) थी। डॉ० वी. वी. मिराशी का मानना है कि प्रवरसेन के तीसरे पुत्र का राज्य उत्तरी कौसल तथा चौथे पुत्र का राज दक्षिण कौसल में था। उत्तरी कौसल की शाखा का विनाश राष्ट्रकूट नरेश मानांक ने और दक्षिणी कौसल का विनाश नल राजवंश ने किया। वाकाटकों की पहली दो शाखाएँ समानान्तर रूप से शासन करती रहीं। वाकाटकों के साम्राज्य के विभाजन से वाकाटकों की शक्ति को भारी चोट पहुँची। इससे वाकाटकों के दकन में एकछत्र राज्य करने का सपना भी चूर – चूर हो गया और भविष्य में भारत के राजनैतिक पटल पर अपनी सशक्त भूमिका को खो दिया। वाकाटक साम्राज्य के विभाजन से कुल मिलाकर वाकाटकों की शक्ति यश और प्रतिष्ठा को भारी क्षति पहुँची।

1.5 प्रमुख शाखा

रुद्रसेन प्रथम ने वाकाटकों की प्रमुख शाखा की स्थापना की। प्रमुख शाखा का शासित क्षेत्र उत्तरी विदर्भ था। जिसकी राजधानी नन्दिवर्धन (नगरधन) थी। प्रमुख शाखा ने लगभग 335 ई० से लगभग 480 ई० तक शासन किया। वाकाटकों की प्रमुख शाखा का अंतिम शासक पृथ्वीसेन था। पृथ्वीसेन की मृत्यु लगभग 480 ई० में हो गयी थी। यह वाकाटकों की मुख्य शाखा का अंतिम शासक था। इसके बाद वाकाटकों की मुख्य शाखा वशीम शाखा के हरिषेण के हाथों में चली गयी। इस प्रकार वाकाटकों की मुख्य शाखा का वशीम शाला में विलह हो गया।

1.5.1 प्रमुख शाखा रुद्रसेन प्रथम

रुद्रसेन प्रथम वाकाटक राजवंश की प्रमुख शाखा का प्रथम शासक था। वह गौतमी पुत्र का पुत्र और प्रवरसेन प्रथम का पौत्र था। रुद्रसेन प्रथम लगभग 335 ई० में सिंहासन पर बैठा और उसने 360 ई० तक शासन किया। इस प्रकार रुद्रसेन ने लगभग 25 वर्षों तक शासन किया। वाकाटकों की शक्ति क्षीणता का सर्वाधिक दुष्प्रभाव रुद्रसेन प्रथम को उठाना पड़ा। उसका संपूर्ण शासनकाल राज्य को किसी भी प्रकार से बचाये रखने में व्यतीत हुआ। इतिहासकारों की धारणा है कि, रुद्रसेन प्रथम के राज्य को संभवतः उसके सगे चाचाओं ने हड़पने का प्रयास किया होगा और इसी संघर्ष से रुद्रसेन को सफलतापूर्वक बाहर निकालने नागों ने उसकी मदद की होगी। क्योंकि ज्ञातव्य रहे कि, रुद्रसेन प्रथम की माँ पद्मावती के भारशिव वंशीय राजा भवनाग की पुत्री थी। वाकाटक अभिलेखों में बड़े ही सम्मान के साथ अनेक स्थानों पर बड़े ही गौरव के साथ यह अंकित है कि, रुद्रसेन प्रथम, नाग नरेश भवनाग का दौहिज (नाती) था।

निश्चित रूप से नागों की सहायता से रुद्रसेन प्रथम ने अपना सिंहासन बचाये रखा होगा। साथ ही इतिहासकार इस ओर भी ध्यान दिलाते हैं कि, रुद्रसेन ने अपने राजवंश का प्राचीन धर्म, वैष्णव धर्म त्यागकर, नाना का धर्म, शैव धर्म अपना लिया था और इसीलिए वाकाटक अभिलेखों में रुद्रसेन को महा भैरव (शिव) का उपासक बताया गया है। रुद्रसेन प्रथम के शासनकाल में वाकाटकों के यश और शक्ति को भारी क्षति पहुँची। अनेक सामंत और राज्य के क्षेत्र उनसे अलग हो गये थे। उज्जैन के क्षत्रपों ने भी वाकाटकों की अधीनता त्याग दी थी। इन निकट परिस्थितियों में रुद्रसेन प्रथम ने वाकाटकों के राज्य को येन-केन-प्रकारेण अस्तित्व में बनाये रखा और यहीं उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

1.5.2 पृथ्वीसेन प्रथम

वाकाटक नरेश रुद्रसेन प्रथम का पुत्र पृथ्वीसेन प्रथम वाकाटक वंश की प्रमुख शाखा का दूसरा शासक बना। उसने लगभग 360 – 385 ई० तक 25 वर्षों तक शासन किया। पृथ्वीसेन प्रथम ने भी अपने राज्य को संगठित बनाये रखने के लिए कोई सैन्य अभियान नहीं किया। डॉ० अल्तेकर ने लिखा है कि, उसके राज्य में शांति और समृद्धि थी क्योंकि दस्तावेजों में यह लिखा है कि, उसके शासनकाल में वाकाटक वंश ने अपने समृद्धिशाली शासन के सौ वर्ष पूरे किए थे। इस अवधि में कोष और सेना दोनों की ही अभिवृद्धि हुई थी। पृथ्वीसेन प्रथम की सबसे बड़ी उपलब्धि उसका वशीम शाखा के शासक विंध्यसेन के साथ मधुर संबंध थे। दोनों शाखाओं के मध्य आपसी समझबूझ और साझेदारियों ने पुनः वाकाटकों के सम्मान को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। दोनों शाखाओं ने एक साथ मिलकर कुंतल पर विजय प्राप्त की थी। कुंतल विजय की योजना बशीम शाखा के शासक

विंध्यसेन ने बनायी और विंध्यसेन के ही नेतृत्व में पृथ्वीसेन प्रथम के धन और सैन्य के सहयोग से कुंतल पर वाकाटकों ने विजय प्राप्त की थी।

डॉ० अल्तेकर का मानना है कि, बसीम शाखा के शासक औपचारिक तौर पर प्रमुख शाखा के शासक पृथ्वीसेन प्रथम की अधीनता स्वीकारते रहे, हालाँकि वे अपने शासन कार्यों में पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करते थे। वहरहाल, कुंतल विजय ने वाकाटकों के यश और शक्ति को पुनः स्थापित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। इस विजय से यह प्रमाणित हो गया कि, वाकाटकों की दोनों शाखाएँ एक शक्ति के रूप में कार्य कर सकती हैं, अतः कुंतल विजय का राजनैतिक संदेश बड़ा ही शुभ रहा होगा। संभवतः इसी राजनैतिक संदेश के कारण ही गुप्तों ने वाकाटकों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह पृथ्वीसेन प्रथम के पुत्र रुद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। गुप्तों का वाकाटकों से वैवाहिक संबंध स्थापित करना वाकाटकों की शक्ति का पुनः स्थापित होने का प्रतीक है।

गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय गुजरात एवं काठियावाड़ा के शकों पर विजय प्राप्त करना चाहता था। वाकाटकों का राज्य और शकों का राज्य एक-दूसरे की सीमा से मिले हुए थे, अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय शकों पर आक्रमण करने से पूर्व वाकाटकों की ओर से निश्चिन्त होना चाहता था। वाकाटकों से मित्रता स्थापित होने के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुजरात एवं काठियावाड़ा से शकों का दमन कर दिया। शकों के सफाये में वाकाटकों का महत्वपूर्ण सहयोग चन्द्रगुप्त द्वितीय को मिला होगा। वाकाटक अभिलेखों में पृथ्वीसेन को धर्मात्मा के रूप में अंकित किया गया है। उसकी मृत्यु लगभग 385 ई० में हुई।

1.5.3 रुद्रसेन द्वितीय

पृथ्वीसेन प्रथम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रुद्रसेन द्वितीय लगभग 385 ई० में वाकाटक सिंहासन पर विराजमान हुआ। उसका शासनकाल महत्वपूर्ण सैनिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिपूर्ण नहीं रहा। क्योंकि 390 ई० में ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। रुद्रसेन द्वितीय वैष्णव धर्म का अनुयायी था। उसे भगवतश्चक्रपाणेप्रसादोपार्जित श्री समुदयस्य महाराजरुद्रसेनस्य कहा गया। रुद्रसेन द्वितीय के जीवन की सबसे बड़ी राजनैतिक घटना सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त से विवाह होना था। रुद्रसेन द्वितीय के दो पुत्र – दिवाकरसेन एवं दामोदरसेन (प्रवरसेन द्वितीय) थे। राजमाता प्रभावती गुप्ता का संरक्षिका के रूप में शासनकाल :- रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के बाद अपने अल्पायु पुत्रों दिवाकरसेन एवं दामोदरसेन (प्रवरसेन द्वितीय) की संरक्षिका के रूप में शासन किया। 390 ई० में प्रभावती गुप्त की आयु मात्र 25 वर्ष थी, इतनी आयु में प्रशासनिक अनुभवहीनता होना स्वाभाविक था, ऊपर से दोनों पुत्रों का भी अल्पायु होना। बड़े पुत्र दिवाकरसेन की आयु 5 वर्ष एवं दामोदरसेन की आयु मात्र 3 वर्ष थी। ऐसी विकट परिस्थिति में प्रभावती गुप्त को उसके पिता सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने आधारभूत मदद प्रदान की।

डॉ० अल्तेकर ने लिखा है कि "चन्द्रगुप्त अपनी पुत्री को सात्वना देने के लिए स्वयं आया। कुशल शासन के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की। पाटलिपुत्र से कितने ही सैनिक, नागरिक और सचिवालयी अधिकारी वाकाटकों की राजधानी नंदिवर्धन में भेजे गए।" इन तथ्यों की पुष्टि प्रभावती गुप्त के पूना एवं ऋद्धपुर (रिद्धपुर) ताम्रपट्टों से होती है। पूना ताम्रपट्ट दिवाकरसेन के शासनकाल के तेरहवें एवं ऋद्धपुर ताम्रपट्ट दामोदरसेन के शासनकाल के उन्नीसवें वर्ष का है। ज्ञातव्य रहे कि, पूना

ताम्रपत्र से ही यह विदित हुआ है कि प्रभावतीगुप्त, सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की सुपुत्री है। उक्त ताम्रपत्रों की लिखि एवं गुप्त वंशावली के आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि वाकाटक शासन व्यवस्था पर गुप्तों का पर्याप्त प्रभाव था। प्रभावती के संरक्षित के रूप में शासनकाल के दौरान वाकाटकों की बसीम शाखा के दोनों शासकों विंध्यसेन एवं प्रवरसेन द्वितीय से उसके संबंध अच्छे रहे। अभी शासन सुचारु रूप से संचालित हो रहा था, इसी बीच प्रभावती गुप्त के युवराज पुत्र दिवाकरसेन की मृत्यु हो गयी। उसके बाद प्रभावती गुप्त का छोटा पुत्र दामोदरसेन युवराज बना। कालान्तर में दामोदरसेन लगभग 410 ई० में वयस्क होकर वाकाटक सिंहासन पर प्रवरसेन द्वितीय के नाम से बैठा। इस प्रकार प्रभावतीगुप्त ने 20 वर्षों तक वाकाटक राजवंश की मुख्य शाखा के गृवुक्ष को थामें रखा।

1.5.4 प्रवरसेन द्वितीय

लगभग 410 ई० में प्रभावती गुप्त का छोटा पुत्र दामोदरसेन, प्रवरसेन द्वितीय के नाम से वाकाटक राजवंश के सिंहासन पर बैठा। ऋद्धपुर ताम्रपत्र में प्रभावतीगुप्त को महाराज दामोदरसेन प्रवरसेन की जननी कहा गया है। प्रवरसेन के दर्जन भर से अधिक ताम्रपत्र मिले हैं। प्राचीन भारत के संभवतः सर्वाधिक ताम्रपत्र जारी करने का श्रेय प्रवरसेन द्वितीय को जाता है किन्तु किसी भी ताम्रपत्र में उसके सैन्य अभियानों या विजयों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। प्रवरसेन द्वितीय ने नंदिवर्धन (नंदपुर, नागपुर) नामक नई राजधानी बनायी एवं उसका नाम प्रवरपुर रखा। प्रवरसेन द्वितीय के राज्यकाल की प्रमुख घटना कुन्तल राज्य के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। प्रवरसेन ने अपने पुत्र नरेन्द्रसेन का विवाह कुन्तल राजकुमारी अज्जितभट्टारिका के साथ सम्पन्न कराया। डॉ. अल्तेकर के अनुसार यह राजकुमारी कंदव वंशीय राजा काकुत्स्यवर्गन की पुत्री थी, वहीं डॉ० वी०वी० मिराशी का मत है कि, कुन्तल में इस समय राष्ट्रकूट वंशीय अविधेय नामक राजा शासन कर रहा था। यह उनकी पुत्री थी। प्रवरसेन बड़ा ही विद्वान राजा था उसने प्राकृत भाषा में सेतुबंध नामक काव्य की रचना की थी। जिसका संशोधन संभवतः कालीदास ने किया था। प्रवरसेन ने लगभग 30 वर्षों तक शासन किया था, उसका पाण्डुर्गा ताम्रपत्र उसके शासनकाल के 29वें वर्ष का है, अतः इतिहासविदों का मत है कि, लगभग 440 ई० के आसपास प्रवरसेन द्वितीय की मृत्यु हो गयी थी।

1.5.5 नरेन्द्रसेन

प्रवरसेन द्वितीय के बाद उसका पुत्र नरेन्द्रसेन वाकाटक नरेश बना। नरेन्द्रसेन के शासनकाल का कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है, उसके बारे में उसके पुत्र पृत्वीषेण द्वितीय के बालाघाट ताम्रपट्टों से सूचना मिलती है बालाघाट ताम्रपट्टों से विदि हाता है कि, कोसल, मैकल औरमालवा के क्षेत्रों पर उसका आधिपत्य था। कौसल मूलतः दक्षिण कौसल (छत्तीसगढ़ प्रदेश) का क्षेत्र था। डॉ० वी० वी० मिराशी के अनुसार, नरेन्द्रसेन के प्रभाव में भीमसेन प्रथम यहाँ राज्य कर रहा था। मैकल क्षेत्र वर्तमान का अमरकण्टक का भौगोलिक क्षेत्र था। डॉ० वी०वी० मिराशी के अनुसार यहाँ पाण्डववंश गुप्तों के अधीन राज्य कर रहा था। बहुत संभव है कि, बाद में नरेन्द्रसेन के प्रभाव में आ गये हो। मालवा नरेन्द्रसेन के प्रभाव में आ गया था किन्तु बाद में स्कंदगुप्त के हाथों में चला गया।

बालाघाट ताम्रपट्टों से विदित होता है कि, राजवंश की लक्ष्मी को पुनः प्राप्त किया। वाकाटकों की राजलक्ष्मी को अपद्धत करने वाला नरेश नल वंश का भवदत्तवर्मा था। जिसकी पुष्टि भवदत्त वर्मा के ऋद्धपुर ताम्रपत्राभिलेख से होती है। भवदत्त वर्मा अपनी सैन्य शक्ति से वाकाटकों को रौंदता हुआ। उनकी राजधानी नंदिवर्धन तक पहुँच गया था। भवदत्तवर्मा ने वाकाटकों की शक्ति को

भारी चोट पहुंचायी। नरेन्द्रसेन येन-केन-प्रकरेण एक छोटे से क्षेत्र तक सीमित रह गया। किन्तु भाग्यवश भवदत्त वर्मा अधिक समय तक जीवित नहीं रहा और नरेन्द्रसेन ने उसके पुत्र अर्थपति को हराकर अपनी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित कर ली। डॉ० अल्तेकर मत है कि संकट की घड़ी नरेन्द्रसेन को अपनी पत्नी के कदम्ब वंश से यथेष्ट मदद मिली होगी। क्योंकि नरेन्द्रसेन के पुत्र पृथ्वीसेन द्वितीय ने अपनी वंशावली कदम्ब वंश का विवरण दिया है। नरेन्द्रसेन ने लगभग 20 वर्षों तक शासन किया और उसकी मृत्यु 460 ई० में हो गयी। द्वितीय वाकाटकों की मुख्य शाखा का लगभग 460 ई० में शासक बना।

पृथ्वीसेन द्वितीय के बालाघाट ताम्रभिलेखों में उल्लेखित है कि, उसने परिवार की लक्ष्मी का दो-दो उद्धार किया था। इससे प्रकट होता है कि, पृथ्वीसेन के शासनकाल में वाकाटकों को दो बार संकटों का सामना करना पड़ा। प्रथम संकट संभवतः नल वंश के शासकों ने उत्पन्न किया। जिससे पृथ्वीसेन ने अपने राजवंश की रक्षा की होगी। द्वितीय संकट पश्चिम से त्रैकूटकों के उत्कर्ष से उत्पन्न हुआ। त्रैकूटवंशीय धारसेन (दहसेन) ने एक अश्वमेध यज्ञ कराया था। संभवतः इसी समय वाकाटकों से उसका युद्ध हुआ हो। बहरहाल पृथ्वीसेन इस संकट से भी अपने राज्य का बचाने में सफल रहा है। पृथ्वीसेन की मृत्यु लगभग 480 ई० में हो गयी थी। यह वाकाटकों की मुख्य शाखा का अंतिम शासक था। इसके बाद वाकाटकों की मुख्य शाखा वशीम शाखा के हरिजन के हाथों में चली गयी। इस प्रकार वाकाटकों की मुख्य शाखा का वशीम शाला में विलह हो गया।

1.6 वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा)

वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) प्रथम संस्थापक शासक सर्वसेन तथा अंतिम शासक हरिषेण था। लगभग 335 ई० से लगभग 510 ई० तक शासन किया। वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) की स्थापना लगभग 335 ई० में प्रवसेन प्रथम के छोटे पुत्र सर्वसेन ने की थी। तत्कालीन 'वत्सगुल्म' अमोल (महाराष्ट्र) का आधुनिक 'बासीम' था। सर्वसेन ने बसीम या वत्सगुल्म में अपने राज्य की स्थापना की। वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) के अंतिम शासक हरिषेण की लगभग 510 ई० में मृत्यु हो गयी थी और इसी के साथ वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) का अंत हो गया।

1.6.1 सर्वसेन

वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) की स्थापना लगभग 335 ई० में प्रवसेन प्रथम के छोटे पुत्र सर्वसेन ने की थी। तत्कालीन 'वत्सगुल्म' अमोल (महाराष्ट्र) का आधुनिक 'बासीम' था। सर्वसेन ने बसीम या वत्सगुल्म में अपने राज्य की स्थापना की। इसी कारण यह शाखा वाकाटकों की बसीम (वत्सगुल्म) शाखा कहलायी। वत्सगुल्म ही इसकी राजधानी थी। सर्वसेन के जीवन के बारे में अधिक जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं है। सर्वसेन की मृत्यु लगभग 350 ई० में हो गयी थी। विंध्य सेन – सर्वसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विंध्यसेन या विंध्यशक्ति द्वितीय बसीम शाखा का दूसरा शासक बना। उसने 50 वर्षों तक लगभग 350 – 400 ई० तक शासन किया। इसके शासन की सबसे बड़ी उपलब्धि कुन्तल विजय थी, जिसमें उसे प्रमुख शाखा के वाकाटकों से सैन्य एवं धन संबंधी सहायता मिली थी। डॉ० आल्तेकर के अनुसार विंध्य शक्ति का अपनी विस्तृत था, जिसमें दक्षिण बरार, उत्तरी हैदराबाद खानदेश और नासिक, पूना, नगर और सतारा जिले शाक्ति थे। विंध्यशक्ति की मृत्यु लगभग 400 ई० में हो गयी थी।

1.6.2 प्रवरसेन द्वितीय

विंध्यशक्ति के बाद उसका पुत्र प्रवरसेन द्वितीय शासक बना। उसने लगभग 400–415 ई० तक शासन किया। इसकी मृत्यु के बाद 415 ई० में उसका अल्पवयस्क पुत्र वाकाटक नरेश बना जिसका नाम अभिलेखों या साहित्य में कहीं नहीं मिलता है। इसने लगभग 455 ई० तक शासन किया था। डॉ० अल्तेकर का मत है कि यह अल्प वयस्क 8 वर्षीय नरेश, प्रमुख शाखा के प्रवरसेन द्वितीय के संरक्षण में वयस्क होने तक शासक रहा होगा और उसके बाद उसने स्वयं शासन किया होगा।

1.5.3 देवसेन

देवसेन लगभग 455 ई० में बसीम शाखा का शासक बना। इसने लगभग 20 वर्षों तक शासन किया और 475 ई० में इसकी मृत्यु हो गयी थी। देवसेन राजकाज की अपेक्ष भोग विलास में अधिक संलग्न है। किन्तु अपने शासनकाल में इसे अपने योग्य मंत्री हस्तिभोज से बड़ी सहायता मिली। वस्तुतः शासन की समस्त शक्ति का उपयोग हस्तिभोज ने करके देवसेन के शासनकाल को सुचारु रूप से चलाया।

1.6.4 हरिषेण

देवसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हरिषेण लगभग 475 ई० में शासक बना। हरिषेण बसीम शाखा का सबसे प्रतापी शासक था, इसने वाकाटकों के यश और गौरव को तत्कालीन राजनैतिक पटल पर स्थापित कर दिया था। समकालीन प्राचीन भारत के राजनैतिक पटल पर हरिषेण से शक्तिशाली कोई शासक नहीं था। हरिषेण के शासनकाल में लगभग 480 ई० में वाकाटकों की प्रमुख शाखा का विलय भी बसीम शाखा में हो गया था, अतः प्रवरसेन प्रथम के बाद अब पुनः वाकाटक की एक राजनैतिक शक्ति हो गयी थी। हरिषेण अब विशाल साम्राज्य का स्वामी हो गया था, क्योंकि प्रमुख शाखा का राज्य भी उसके अधीन आ गया था। इस समय हरिषेण किसी भी प्रकार से सम्राट प्रवरसेन प्रथम से कम शक्तिशाली नहीं था। लगभग 510 ई० में हरिषेण की मृत्यु हो गयी थी और इसी के साथ एकाएक वाकाटक साम्राज्य इतिहास के पन्नों में विलीन हो गया। अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि, वाकाटकों के पतन के क्या कारण थे?

डॉ० अल्तेकर ने लिखा है कि, हरिषेण की मृत्यु के समय वाकाटकों का प्रभाव, उनकी प्रतिष्ठा और शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर थी। करीब-करीब पूरी हैदराबाद रियासत, बंबई- महाराष्ट्र, कर्नाटक, बरार और प्रायः सम्पूर्ण मध्यप्रदेश हरिषेण के प्रत्यक्ष शासनाधीन था। उत्तरी कोंकण, गुजरात मालवा आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़ उसके प्रभाव क्षेत्र में थे।

1.7 प्रशासन

वाकाटकों का केन्द्रीयकृत राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली पर आधारित था। वाकाटकों के प्रशासन वे सारी विशेषताएँ विद्यमान थी, जोकि एक राजतंत्रात्मिक व्यवस्था में निहित होती है। वाकाटकों के साम्राज्य का सर्वोच्च राजा होता था। राजा पद अनुवांशिक होता था। वह प्रशासन के समस्त विभागों का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। वाकाटक प्रशासन में राजकुमारों को भी विभिन्न क्षेत्रों का शासक नियुक्त किया जाता था। वाकाटक राजवंश आंतरिक कलह या उत्तराधिकार युद्ध से बचने के लिए राज्य का बंटवारे के भी प्रमाण मिले हैं, इसका सबसे बड़ा प्रमाण प्रवरसेन प्रथम द्वारा अपने चारों पुत्रों के बीच राज्य के बंटवारे का करना है। डॉ० अल्तेकर का मत है कि 'सातवाहनों, चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की अपेक्षा वाकाटक साम्राज्य में सत्ता केन्द्र के हाथों में अधिक थी, उसमें अर्ध स्वतंत्र सामंतों का अस्तित्व न था।

वाकाटक नरेश सम्राट और महाराजाधिकार जैसी पद्धतियों को धारण करते थे, किन्तु उन्होंने कभी भी राजा के दैवीय सिद्धान्त का दावा नहीं किया। वाकाटक राज्य में राजा को सलाह देने के लिए कोई मंत्री परिषद थी या नहीं। इसके कोई प्रमाण नहीं है। हाँ, इतना अवश्य पता है कि, युवराज के अल्पवयस्क होने पर संरक्षण की व्यवस्था अवश्य थी। वाकाटकों की दोनों शाखाओं में इसके प्रमाण हैं। मुख्य शाखा में प्रभावती गुप्ता ने तथा बसीम शाखा में लगभग 415–55 ई० तक मुख्य शाखा के प्रवरसेन द्वितीय द्वारा बसीम शाखा के 8 वर्षीय अल्पवयस्क युवराज को संरक्षण देना इसके उक्त उदाहरण हैं।

वाकाटक प्रशासन के सलाहकारों, मंत्रियों, विभागों, पदनामों आदि का कोई उल्लेख वाकाटक अभिलेखों में नहीं मिलता है। कुल मिलाकर यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, वाकाटक प्रशासन में पदाधिकारी, उनके विभागों, कर्तव्यों आदि की कोई पद श्रेणी प्राप्त नहीं होती है। वाकाटक अभिलेखों सेनापति, सर्वाध्यक्ष, संतक, चाट और भाट का ही उल्लेख मिलता है, कोई ढांचागत प्रशासन की संरचना का अंकन प्राप्त नहीं होता है।

सेनापति – सेनापति वाकाटक साम्राज्य का प्रमुख अधिकारी होता था। वाकाटक नरेश के दान पत्रों में राजा के साथ सेनापति के नाम के उल्लेख से उसकी महत्ता का ज्ञान है। प्रवरसेन द्वितीय के ग्यारहवें वर्ष के ताम्र लेख में वे राजा के साथ सेनापति चित्रवर्धन का उल्लेख है। प्रवरसेन द्वितीय के ही सिवनी ताम्रपट्टों में सेनापति बप्पदेव का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि, वाकाटक साम्राज्य में राजा के बाद सेनापति का सर्वाधिक महत्त्व था।

सर्वाध्यक्ष – सर्वाध्यक्ष संभवतः प्रधानमंत्री के समान था और अन्य मंत्रियों एवं आंतरिक प्रशासन का प्रधान था। वह सैन्य कौशल और प्रशासन दोनों में ही दक्ष होता था। सर्वाध्यक्ष संभवतः राजा का बहुत विश्वसनीय व्यक्ति होता था और विपरीत परिस्थिति में वह समस्त शासन का संचालन भी करता था। बसीम शाखा के देवसेन (लगभग 455–475 ई०) ने अपने शासनकाल में समस्त सत्ता अपने मंत्री 'हस्तिभोग' के हाथों में सौंप रखी थी। जिसका संचालन हस्तिभोग ने बड़ी ही कुशलतः के साथ किया था।

संतक – संभवतः जिला स्तर के जिलाधिकारी रहे होंगे जिले की प्रशासनिक व्यवस्था इनके अधीन रहनी होगी। चाट और भाट पुलिस एवं सेना के अधिकारी थे। रज्जक रज्जकन्तक एक लिपिक वर्गीय कर्मचारी का उल्लेख आया है।

वाकाटक प्रशासन की **प्रांतीय इकाईयों** के बारे में इतिहासकारों में मतभेद नहीं है। वाकाटक अभिलेखों में *भुक्ति*, *राष्ट्र* और *राज्य* जैसी क्षेत्रीय इकाईयों का उल्लेख हुआ है, जोकि संभवतः एक ही इकाई के विविध नाम थे इनके बारे में अभी तक कोई सूचना नहीं है कि इनका गठन प्रशासनिक कार्य एवं सीमाएँ क्या थीं? अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि वाकाटक राज्य में कोई क्षेत्रीय प्रांतीय इकाई का विभाजन नहीं था। पूरा राज्य **सीधे जिलों** में विभक्त था और भुक्ति, राष्ट्र, राज्य जैसी इकाईयों जिलों में विभक्त प्रशासन था। वाकाटक साम्राज्य के प्रशासन की अंतिम इकाई **ग्राम प्रशासन** थी। ग्राम का प्रधान महत्तर कहलाता था। ग्राम प्रशासन के लिए महत्तरों की सभा होती थी, जिसका प्रधान गाम का मुखिया होता था। ग्रामीण प्रशासन की संपूर्ण जिम्मेदारी इनपर होती थी।

1.8 गुप्त-वाकाटक संबंध

प्राचीन भारतीय इतिहास में वाकाटकों एवं गुप्तों का इतिहास स्वर्णियम् पृष्ठों पर अंकित है। सौभाग्य से दोनों शक्तियों का उद्भव एवं विकास समानान्तर हुआ और दुर्भाग्य से दोनों की शक्तियों का पतन छठी शताब्दी में हुआ। गुप्तों ने उत्तर भारत में सार्वभौमिक सत्ता की स्थापना करके एक राजनैतिक एकता के सूत्र में उत्तर भारत को बाँधा। वहीं दक्षिण भारत में वाकाटकों ने सातवाहनों के बाद विखण्डित राजनैतिक शक्ति को अपने अधीन एकसूत्र में बाँधा। गुप्तों ने उत्तर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार किया और जब दक्षिण विजय के लिए गये, तब उन्होंने आश्चर्यजनक तरीके से वाकाटकों से कोई संघर्ष नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त यह जानते थे कि, वाकाटक दक्षिण की एक बड़ी शक्ति है और उन्हें नहीं छेड़ते हुए संपूर्ण भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करेंगे। वहीं वाकाटकों ने भी इस बात का ध्यान रखा होगा कि, गुप्तों से कोई सीधा संघर्ष उत्पन्न नहीं हो। इसीलिए वाकाटकों दक्षिण में अपना साम्राज्य विस्तार किया। वाकाटकों एवं गुप्तों में हम ऐसी राजनैतिक देख पाते हैं कि कहीं भी वाकाटकों और गुप्तों में कोई राजनैतिक या सैन्य टकराव की स्थिति बनी हो।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के **प्रथम चरण** की समीक्षा में वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य प्रारंभिक संस्थापक शासकों के मध्य संभवतः किसी भी प्रकार का कोई संघर्ष या संपर्क नहीं रहा होगा। क्योंकि प्रारंभ में दोनों ही राजवंश अपने को स्थापित करने में संलग्न रहे होंगे। वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम (लगभग 275–335 ई०) एवं गुप्त शासक चन्द्रगुप्त प्रथम (लगभग 319–350 ई०) दोनों शासक समकालीन थे और दोनों ही अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। प्रवरसेन प्रथम ने अपने राज्य का विस्तार करते हुए अपनी सैन्य सफलताओं के उपलक्ष्य में सम्राट की उपाधि धारण की। वहीं, चन्द्रगुप्त प्रथम अपनी सैन्य सफलताओं और राज्य विस्तार की सफलता पर 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। डॉ० के० पी० जायसवाल ने संस्कृत नाटक 'कौमुदी महोत्सव' के कथानक के आधार पर अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि मगध नरेश चण्डसेन (चन्द्रगुप्त प्रथम) पर वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम ने आक्रमण करके युद्ध में मार डाला और मगध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इतिहासकारों ने अनेक तर्कों के आधार पर के० पी० जायसवाल के मत का खण्डन किया है अभी तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है कि, प्रवरसेन प्रथम ने मगध पर आक्रमण किया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, प्रवरसेन प्रथम एवं चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल में वाकाटक एवं गुप्तों में कोई संबंध नहीं था।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के **द्वितीय चरण** की समीक्षा में वाकाटकों की मुख्य शाखा के नरेश रूद्रसेन प्रथम (लगभग 335–360 ई०) पृथ्वीसेन प्रथम (लगभग 360 – 385 ई०) के समकक्ष गुप्त नरेश समुद्रगुप्त (लगभग 350–375 ई०) के शासनकाल के मध्य वाकाटक गुप्तों संबंधों की समीक्षा करेंगे। वाकाटक – गुप्त संबंधों के इस चरण में गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के पराक्रम की प्रधानता रही। समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय की और इस दिग्विजय में सैन्य अभियानों के कदम उत्तर भारत से लेकर दक्षिणापथ तक पड़े। इसी आधार पर डॉ० के०पी० जायसवाल, पत्नीट, डी०सी० सरकार, एस०के० आयंगर आदि इतिहासविदों ने अनेक साक्ष्यों और तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि, गुप्तों का वाकाटकों से संघर्ष हुआ था और इस संघर्ष में गुप्तों ने वाकाटकों को परास्त किया था। प्रयाग प्रशास्ति के अनुसार समुद्रगुप्त के द्वितीय आर्यावर्त सैन्य अभियान नव नामों का समूल विनाश

किया। इन नव नामों में रूद्रसेन प्रथम कानाना भवनाग भी था, अतः ऐसी स्थिति में रूद्रसेन ने गुप्तों के विरुद्ध हथियार उठाया होगा।

के०पी० जायसवाल का विचार है कि, रूद्रसेन और समुद्रगुप्त के मध्य यह युद्ध 'एरण' आधुनिक जिला— सागर, मध्यप्रदेश में हुआ था और इस युद्ध में समुद्रगुप्त ने रूद्रसेन प्रथम को मार डाला था। दक्षिणापथ के अभियान के दौरान आन्ध्रप्रदेश एवं दक्षिणा कौसल को समुद्रगुप्त ने जीता था। ये दोनों क्षेत्र वाकाटकों के अधीन थे, अतः वाकाटकों एवं गुप्तों में इसके कारण युद्ध हुआ होगा। वाकाटक पृथ्वीसेन प्रथम का सामन्त व्याघ्रदेव महाकान्तार में राज्य कर रहा था, जिसकी पुष्टि गंज एवं नचना के अभिलेख करते हैं। दक्षिणापथ की दिग्विजय में समुद्रगुप्त ने व्याघ्रराज को हराया था, जिसका उल्लेख प्रयोग प्रशस्ति (इलाहाबाद अभिलेख) में हुआ है। अपने सामन्त के रक्षार्थ निश्चित रूप से वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन प्रथम ने समुद्रगुप्त से संघर्ष किया होगा। वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम ने महाराजा की उपाधि धारण की थी, जबकि इससे पूर्व के वाकाटक राजा प्रवरसेन प्रथम ने सम्राट की उपाधि धारण की थी। सम्राट की उपाधि छोड़कर 'महाराज' की उपाधि धारण करना किसी भी राजा की शक्तिहीनता का प्रतीक है और ऐसा इसीलिए हुआ होगा कि, समुद्रगुप्त ने रूद्रसेन प्रथम को रौंद डाला होगा।

उक्त तर्कों के विरुद्ध इतिहासविदों ने अनेक तर्क किये हैं और इन मतों का तर्कों के आधार पर पुरजोर खण्डन किया है— वाकाटक राज्य और उसके शासन रूद्रसेन प्रथम, प्रवरसेन प्रथम के बाद स्वतः ही कमजोर और शक्तिहीन हो गये थे, क्योंकि प्रवरसेन प्रथम ने वाकाटक साम्राज्य का विभाजन चार भागों में कर दिया था, अतः रूद्रसेन प्रथम की शक्ति और साधन दोनों क्षीण हो गये थे, उसके द्वारा शासित भौगोलिक क्षेत्र भी सीमित हो गया था। ऐसी दशा में उसके अनेक सामन्त और अधिकृत क्षेत्र उससे मुक्त हो गये थे। रूद्रसेन प्रथम ने तो येन—केन—प्रकारेण अपने द्वारा शासित वाकाटक क्षेत्र को बचाये रखा। ऐसी विकट परिस्थिति में कोई राजा कैसे 'सम्राट' जैसी महान् उपाधि को धारण कर सकता था, अतः रूद्रसेन प्रथम ने 'महाराज' जैसी सम्मानजनक पदवी को ही धारण किये रखना उचित समझा होगा। समुद्रगुप्त द्वारा पराजित प्रयाग प्रशस्ति का रूद्रदेव आर्यावर्त के कौशांभी उ०प्र० के इलाहाबाद के पास का राजा था, जबकि रूद्रसेन प्रथम दक्षिण का राजा था और यह कि, प्रयाग प्रशस्ति के रूद्रदेव की प्रमाणिकता कौशांभी के शासक के रूप में हो चुकी है, अतः प्रयाग प्रशस्ति के रूद्रदेव और वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम की समानता करना अनुचित है।

इस तथ्य का भी कोई प्रमाण नहीं है कि, रूद्रसेन प्रथम और समुद्रगुप्त का एरण में कोई युद्ध हुआ था। जहाँ तक प्रश्न आंध्रप्रदेश और दक्षिणी कौसल पर समुद्रगुप्त के आधिपत्य का है, तो ये प्रदेश प्रवरसेन की मृत्यु के बाद ही वाकाटकों से अलग हो गये थे, अतः इनके प्रश्न पर युद्ध होना संभव ही नहीं है। एक और बात यह है कि, रूद्रसेन प्रथम सैन्यशक्ति, धनशक्ति और क्षेत्रीय आधिपत्य के मामलों में इतना शक्तिहीन था कि, वह समुद्रगुप्त से युद्ध के बारे में सोच भी नहीं सकता था। यह भी कि, समुद्रगुप्त ने जिस व्याघ्रराज को हरायाथा वह दक्षिणापथ का शासक था, जबकि गंज और नचना अभिलेखों में उल्लेखित व्याघ्रदेव उत्तरी भारत का शासक था, अतः दोनों की समानता करना अनुचित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम और समुद्रगुप्त के मध्य कोई युद्ध नहीं हुआ था और नही रूद्रसेन प्रथम के उत्तराधिकारी पृथ्वीसेन प्रथम के साथ समुद्रगुप्त का कोई युद्ध हुआ। डॉ० वी०सी० पाण्डेय का मत है कि, समुद्रगुप्त एक दूरदर्शी शासक था। उसने वाकाटकों

के साथ संघर्ष से दूरी बनाकर दक्षिणी भारत के पूर्वी तटीय मार्ग से दक्षिणापथ की विजय की थी और उसने वाकाटक शासित क्षेत्रों को छुआ तक नहीं था।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के तीसरे चरण में हम वाकाटक नरेशों पृथ्वीसेन प्रथम (लगभग 360–385 ई०), रुद्रसेन द्वितीय (लगभग 385–390 ई०) दिवाकरसेन एवं प्रवरसेन द्वितीय (लगभग 410–440 ई०) के समकक्ष गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–414 ई०) के शासनकाल के वाकाटक गुप्त संबंधों की समीक्षा करेंगे। वाकाटक– गुप्त संबंधों के इस चरण में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की कूटनीति और उसका प्रभाव रहा। चन्द्रगुप्त द्वितीय एक प्रतापी साम्राज्य निर्माण शासक था, उसने अपने साम्राज्य के विस्तार की विधिवत् योजना बनायी और इस योजना के तहत पश्चिमी भारत पर विजय के लिए आवश्यक आधारभूत तकनीकी सहायता वाकाटकों से प्राप्त हो सकती थी। वाकाटकों की भौगोलिक स्थिति पश्चिमी भारत के शकों को परास्त करने में महत्वपूर्ण हो सकती थी। रणनीतिक दृष्टि से युद्ध के समय वाकाटकों की सहायता उपयोगी थी, इसके साथ ही वाकाटकों से संभावित खतरा भी नहीं रहेगा। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दूरगामी कूटनीतिक कदम उठाते हुए तत्कालीन वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन प्रथम के पुत्र युवराज रुद्रसेन द्वितीय के साथ अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह कर दिया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटकों की ओर से निश्चित हो जाने के बाद शकों पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। कतिपय इतिहासकारों का मत है कि शकों से संघर्ष में गुप्तों की सहायता वाकाटकों ने की और शकों के साथ युद्ध करते हुए ही रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु हुई। किन्तु अनेक इतिहासविद् ऐसा नहीं मानते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय का दामाद रुद्रसेन द्वितीय (385–390 ई०) तक शासक रहा और लगभग 390 ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय रुद्रसेन द्वितीय और प्रभावती गुप्त के दो पुत्र थे, जिनकी आयु क्रमशः 5 और 3 वर्षों की थी। ऐसी विकट परिस्थिति में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्रभावती गुप्त की सहायता की। इस प्रकार इस काल में गुप्तों और वामटकों के संबंध मधुर रहे।

वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य संबंधों का चौथा चरण वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय (लगभग 410–440) एवं नरेन्द्रसेन द्वितीय (लगभग 440–460 ई०) तथा गुप्त सम्राट कुमार गुप्त (लगभग 412–455 ई०) के मध्य संबंधों का चरण था। इस चरण में वाकाटक एवं गुप्त संबंधों की मधुरता शनैः-शनैः समाप्त होने लगी थी, किन्तु फिर भी वाकाटक एवं गुप्त संबंध कुल मिलाकर अच्छे बने रहे। वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय, प्रभावती गुप्त का पुत्र था और प्रभावती चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री। इस संबंध के नाते जब तक प्रभावती जीवित रही, तब तक वामटकों और गुप्तों के संबंध ठीक रहे। फिर भी चन्द्रगुप्त द्वितीय की लगभग 412 में मृत्यु के बाद प्रवरसेन द्वितीय ने प्रभावती की सलाह पर ही शनैः-शनैः अपनी निर्भरता गुप्त सलाहकारों एवं कर्मचारियों पर कम करनी प्रारंभ कर दी थी। इस प्रमुख कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु और प्रवरसेन द्वितीय का शासन करने में लगातार सक्षम होने के मध्य खोज जा सकता है। कुल मिलाकर ठोस प्रमाणों के आधारपर यह कहा जा सकता है कि, वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय और गुप्त नरेश कुमार गुप्त प्रथम (लगभग 412–455 ई०) के मध्य संबंध अच्छे बने रहे। इसी प्रकार प्रवरसेन द्वितीय के पुत्र नरेन्द्रसेन (440–460 ई०) और कुमार गुप्त प्रथम (लगभग 412–455 ई०) के समय में भी वाकाटक एवं गुप्त संबंधों पर कोई संकट नहीं आया।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के अंतिम चरण में वाकाटक एवं गुप्त संबंधों में तनाव उत्पन्न हो गया था। इस चरण में वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन (440–460 ई०), पृथ्वीसेन द्वितीय (लगभग 460–480 ई०) एवं बसीम शाखा के हरिषेण (लगभग 475–510 ई०) तथा गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त (455–467 ई०) के मध्य वाकाटक एवं गुप्त संबंधों की समीक्षा करेंगे। वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन ने गुप्त सम्राट स्कंदगुप्त के शासन के प्रारंभिक शासनकाल में पुष्य मित्रों द्वारा गुप्त साम्राज्य के लिए उत्पन्न हुए संकट के समय गुप्तों के आधिपत्य मालवा, शैकल, कौशल पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ऐसी स्थिति में वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य तनातनी होना अवश्यभावी था। नरेन्द्रसेन के प्रभाव की पुष्टि बालाघाट अभिलेख से होती है, जिसमें उसे मालवा कौशल एवं मैकल का अधिपति बताया गया है। किन्तु संकट से उबरने के बाद स्कन्दगुप्त ने पुनः इन क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ऐसी स्थिति में वाकाटक एवं गुप्त सेनाओं के बीच युद्ध होना बहुत संभव है, किन्तु इसकी जानकारी किसी तथ्य से होती नहीं है।

बहरहाल, नरेन्द्रसेन और स्कन्दगुप्त के शासनकाल में वाकाटक एवं गुप्त संबंधों की मधुरता का अंत हो गया। वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन द्वितीय (लगभग 460–480 ई०) के शासनकाल में वाकाटक गुप्त संबंधों के बारे में किसी प्रकार की सूचना नहीं मिलती है। संभवतः पृथ्वीसेन द्वितीय के समय वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य कोई टकराव नहीं हुआ था। पृथ्वीसेन द्वितीय की मृत्यु लगभग 480 ई० में हो गयी और इसकी मृत्यु के साथ ही, वाकाटकों की मुख्य शाखा का शासन बसीम शाखा में हरिषेण (लगभग 475–510 ई०) के हाथों में आ गया। हरिषेण बहुत ही महत्वाकांक्षी शासक था उसके शासनकाल में वाकाटक साम्राज्य प्रवरसेन प्रथम के शासनकाल से भी अधिक विस्तृत था। स्कन्दगुप्त की मृत्यु और परवर्ती गुप्तों की कमजोर स्थिति होने का लाभ हरिषेण ने उठाया। हरिषेण ने गुप्तों के आधिपत्य के अनेक क्षेत्र वाकाटक साम्राज्य के प्रभाव में ला दिये। किन्तु इसी बीच लगभग 510 ई० में हरिषेण की मृत्यु हो गयी। हरिषेण के बाद वाकाटक साम्राज्य का एकाएक पतन हो गया और उधर परिवर्ती गुप्तों के काल में गुप्त साम्राज्य पतन की ओर बढ़ रहा था, अतः छठी शताब्दी में वाकाटक गुप्त साम्राज्यों के पतन के साथ ही वाकाटक गुप्त संबंधों का भी पटाक्षेप हो गया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री का नाम था।
(अ) रामवती (ब) प्रभावती (स) श्यामावती (द) कुबेरनागा
2. किस अभिलेख से पता चला कि प्रभावती चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री है।
(अ) अजंता लेख (ब) बालाघाट लेख (स) पूना लेख (द) रिद्धपुर लेख
3. वाकाटक राजवंश का संस्थापक था—
(अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन (स) विन्ध्यशक्ति (द) रुद्रसेन
4. वाकाटक राजवंश का अंतिम शासक था।
(अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन (स) विन्ध्यशक्ति (द) रुद्रसेन
5. सेतुबंध का लेखक था—
(अ) हरिषेण (ब) प्रभावती (स) प्रवरसेन द्वितीय (द) दिवाकर सेन
6. बसीम शाखा का प्रथम शासक था—
(अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन (स) सर्वसेन (द) विन्ध्यशक्ति

7. प्रवरसेन प्रथम ने कितने अश्वमेध यज्ञ किये।
(अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 4
8. वाकाटक राजवंश में किसने सम्राट की उपाधि धारण की थी—
(अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन प्रथम (स) विन्ध्यशक्ति (द) रूद्रसेन
9. वाकाटक जाति के थे—
(अ) ब्राह्मण (ब) क्षत्रीय (स) वैश्य (द) शूद्र
10. किस वाकाटक शासक ने वाकाटक साम्राज्य को चार भागों में बांट दिया था—
(अ) हरिषेण (ब) पृथ्वीषेण द्वितीय (स) नरेन्द्रसेन (द) प्रवरसेन प्रथम

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए

प्रश्न:— समुद्र गुप्त और वाकाटक शासकों के संबंधों का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न:— प्रभावती गुप्ता के संरक्षण शासनकाल का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न:— वाकाटकों की बसीम शाखा का विवरण दीजिए।

1.9 तकनीकी शब्दावली

1. ताम्रभिलेख — ताँबे पर लिखे अभिलेख
2. राजमुद्राभिलेख — राज्य मुद्रा (Seal) पर लिखे अभिलेख
3. मुद्राभाण्ड — मुद्रा (सिक्कों) से भरा मटका
4. शासनाधिकार— शासन का अधिकार

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भण्डारकर, आर० जी० — अर्ली हिस्ट्री ऑफ दी डेक्कन,
2. दीक्षितार, वी. आर. आर. — स्टडीज इन तमिल लिटरेचर एण्ड हिस्ट्री, मद्रास, 1936
3. गोपालाचारी, के. — अर्ली हिस्ट्री ऑफ आन्ध्र कन्ट्री, मद्रास, 1941
4. मिराशी, वी.वी. — सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रियों का इतिहास और अभिलेख, 1982
5. मुखर्जी, राधाकुमुद — प्राचीन भारत, नई दिल्ली, 1970
6. मजूमदार, आर० सी० — दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954
7. राय, बी.वी.के. — अर्ली डायनेस्टिक्स ऑफ आन्ध्रदेश, मद्रास, 1942
8. सरकार, डी. सी. — सक्सर्स ऑफ द सातवाहंस, कलकत्ता, 1929
9. शास्त्री, ए.एम. — अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन, दिल्ली, 1987
10. याजदानी, जी. (संपा.) — द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन, 1982

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र — प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973

2. महाजन, वी.डी. – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
3. पाण्डेय, विमल चन्द्र – प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
4. ओमप्रकाश – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1986
5. श्रीवास्तव, के० सी० – प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहाबाद, 2007
6. त्रिपाठी, आर० एस० – प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न:— प्रवरसेन प्रथम के साम्राज्य विस्तार का वर्णन कीजिए?

प्रश्न:— वाकाटकों की मुख्य शाखा के शासकों का विवरण दीजिए?

प्रश्न:— वाकाटक गुप्त संबंधों की समीक्षा कीजिए?

प्रश्न:— वाकाटक शासन व्यवस्था पर लेख लिखिए।

मौखरी राज्य

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 प्राचीनता
- 2.4 उत्पत्ति, आदिपुरुष एवं जाति
 - 2.4.1 गया के भौखरी
 - 2.4.2 कान्यकुब्ज के भौखरी
 - 2.4.2.1 हरिवर्मा
 - 2.4.2.2 आदित्यवर्मा
 - 2.4.2.3 ईश्वरवर्मा
 - 2.4.2.4 ईशान वर्मा
 - 2.4.2.5 सर्ववर्मा
 - 2.4.2.6 अवन्तिवर्मा
 - 2.4.2.7 गृहवर्मा
- 2.5 तकनीकी शब्दावली
- 2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

उत्तर भारत के राजनैतिक पटल पर महान् गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद अनेक राजनैतिक शक्तियों का उदय हुआ। जिन्होंने अपने पराक्रम और कूटनीतिक सूझबूझ से अपने वंश का नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज कराया। इन राजवंशों में "मौखरी वंश" भी एक था। मौखरियों ने गुप्तों के पतन के बाद शक्ति संचयन करके 'कान्यकुब्ज' में अपनी सत्ता की स्थापना की। मौखरियों ने छठी शताब्दी ई० में अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित किया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. विद्यार्थी मौखरी वंश का इतिहास समझ सकेंगे।
2. विद्यार्थी कन्नौज के इतिहास को जान सकेंगे।

3. विद्यार्थी गया के मौखरी कालीन भारत के इतिहास को समझेंगे।
4. विद्यार्थी कान्यकुब्ज के मौखरी कालीन भारत के इतिहास समझ सकेंगे।
5. विद्यार्थी मौखरियों एवं उत्तरकालीन गुप्तों का राजनैतिक संघर्ष समझ सकेंगे।
6. विद्यार्थी मौखरियों एवं उत्तरकालीन गुप्तों के वैवाहिक संबंधों को जान सकेंगे।

2.3 प्राचीनता

मौखरी वंश भारत के प्राचीन राजवंशों में से एक था। मौखरियों की प्राचीनता के बारे में अनेक साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से जानकारी मिलती है। इतिहासकारों की धारणा है कि, पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी मौखरियों का उल्लेख था क्योंकि पाणिनी की अष्टाध्यायी के आधार पर महर्षि पतंजलि ने 'महाभाष्य' की रचना की। पतंजलि ने महाभाष्य (5.2.107) में मौखरी जाति के लिए 'मुखर' शब्द लिखा है, अतः इतिहासविदों की धारणा है कि, ई0 पू0 द्वितीय शताब्दी में "मौखरी" एक जाति के रूप में विद्यमान थे। इसी प्रकार महाभाष्य के टीकाकार कयत (कय्यत) ने मौखर्या शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार व्याकरण के विद्वान वामन ने अपने ग्रंथ का शिकावृत्ति में भी 'मौखर्या' शब्द का प्रयोग किया है। उक्त साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि, पाणिनी के काल के आधार पर मौखरियों की प्राचीनता को भी छठी शताब्दी ई0 पू0 चौथी शताब्दी ई0 पू0 के आसपास रखा जा सकता है।

मौखरियों की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए अनेक पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं गया से मिट्टी की एक मुहर कनिंघम को मिली थी, जिसे 'गया राजमुद्रा' कहा गया। इस मिट्टी राजमुद्रा पर मौर्यकालीन ब्राम्ही लिपि में 'मौखलिनम्' अंकित है। उक्त राजमुद्रा के आधार पर इतिहासविद् मौखरियों की प्राचीनता को ई0पू0 चौथी या तीसरी शताब्दी ई0पू0 रखने का सुझाव देते हैं।

डॉ0 ए0 एस0 अल्लेकर को राजस्थान के कोटा जिले के बड़वा नामक स्थल से एक अभिलेख मिला है। इस अभिलेख में मौखरी वंश के महासेनापति बल एवं उसके तीन पुत्रों के नाम अंकित हैं। अभिलेख पर कृत संवत् की 294 तिथि अंकित है। विद्वानों का मत है कि यह कृत संवत्, मालव संवत् है। इस प्रकार अभिलेख की तिथि तीसरी शताब्दी की प्रतीत होती है। चूंकि यह अभिलेख यज्ञयूप पर अंकित है, अतः इन्हें वैदिक धर्म को मानने वाला माना जा सकता है। बराबर एवं नागार्जुनी गुहा अभिलेखों से मौखरियों के बारे में अधिक सूचना मिलती है। इनमें यज्ञवर्मा, शार्दलवर्मा, अनन्तवर्मा इन तीन मौखरी नरेशों के नाम अंकित हैं। भाषा और लिपि के आधार पर अभिलेख पाँचवी शताब्दी का माना जा सकता है। उक्त साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर इन्द्रजी एवं ब्यूलर का मत है कि, मौखरियों को पाँचवी शताब्दी में रखा जा सकता है। कीलहर्न ने मौखरियों को छठवीं शताब्दी में रखने का प्रस्ताव दिया है। प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार बराबर एवं नागार्जुनी अभिलेखों की लिपि एवं हरहा अभिलेख (554 ई0) की लिपि का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए मत दिया है कि, बराबर एवं नागार्जुनी अभिलेख, हरहा अभिलेख से दृढ़ प्राचीन है। अधिकांश इतिहासविदों की धारणा है कि, मौखरी वंश के प्रथम नरेश यज्ञवर्मा ने पाँचवी शताब्दी में गया के आस – पास अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। मौखरी अपने उदयकाल में उत्तरकालीन गुप्त वंश के सामन्त रहे थे। गया राजमुद्रा के आधार डॉ0 के0पी0 जायसवाल का मानना है कि, मौखरी तीसरी शताब्दी ई0पू0 में

मौर्यकाल के शासनकाल में एक जाति संघ के रूप में कार्यरत थे। बहुत संभव है कि प्रारंभिक समय में गया और उसके आसपास मौखरी गणतंत्रात्मक व्यवस्था के रूप में कायम थे।

2.4 उत्पत्ति, आदिपुरुष एवं जाति

मौखरियों उत्पत्ति, आदिपुरुष एवं जाति के बारे में साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से प्रकाश पड़ता है। कैयट (कय्यट) एवं वामन की साहित्य रचनाओं से विदित है कि, मौखरी, मुखर नामक आदि पुरुष की संतान थे। बाण ने हर्षचरित में मौखरियों को 'मुखरवंश' एवं कादम्बरी में 'मौखरीवंश' लिखा है। हरहा अभिलेख में मौखरी वंश के लिए "मुखरा" अंकित है। गुजरात अभिलेख में मौखरी वंश का 'मौखर' अंकित मिला है। वहीं बराबर की गुहा के अभिलेखों में मौखरीवंश का राजा अनन्तवर्मा स्वयं अपने कुल के लिए "मौखरिणाम् कुलम्" शब्द का प्रयोग करता है।

उक्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद इतिहासविदों की धारणा है कि, मौखरीवंश का आदिपुरुष 'मुखर' था और उसी के नाम इस वंश का नाम मौखरी पड़ा। मौखरियों की जाति के बारे में भी विद्वानों ने अपने-अपने विचार दिये हैं – डॉ० के. पी. जायसवाल का मत है कि, मौखरी, वैश्य जाति के थे। जायसवाल कहते हैं कि, बिहारप्रान्त के गया जिले की रहने वाली मौहरी जाति के लोग मौखरियों के पूर्वज थे। वर्तमान भौहरी वैश्यजातीय है, अतः भौखरी भी वैश्य थे। निहारंजन रे एवं सी०वी० वैद्य का हर्षचरित के वर्णन के आधार पर मत है कि भौखरी चन्द्रवंशीय थे। हर्षचरित में वर्णित है कि, पुष्यभूमि एवं मुखर के वंशों की ख्याति संपूर्ण जगत् में सूर्य और चन्द्रवंशों की तरह है। अतः निहारंजन रे एवं सी०वी० वैद्य का मत है कि— भौखरी चन्द्रवंशीय हुए। निहारंजन रे एवं सी०वी० वैद्य के मत का खण्डन इतिहासकारों ने विभिन्न तर्कों के आधार पर किया है, अतः यह मत स्वीकार्य नहीं है।

भौखरी वंश के राजाओं के नाम के अंत में 'वर्मन' शब्द लगे होने के आधार पर इतिहासविदों ने इन्हें 'क्षत्रिय' माना है। इतिहासकारों का मत है कि प्राचीनकाल में भारत में क्षत्रिय जाति के लोगों के नामों के बाद में 'वर्धन' शब्द जुड़ा हुआ मिलता है, अतः भौखरी वंश भी 'क्षत्रिय वंश' था। हरहा अभिलेख से विदित हाता है कि भौखरी वंश की उत्पत्ति वैवस्त मनु के वंशज राजा अश्वपति से हुई थी। हरहा अभिलेख के इस साक्ष्य से तो भौखरी सूर्यवंशी क्षत्रिय प्रमाणित होते हैं। जाति के प्रश्न पर अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि, भौखरी सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे।

2.4.1 गया के भौखरी

गया के भौखरी वंश का संस्थापक यज्ञवर्मा था। गया से कनिंघम को जो राजमुद्रा मिली है, उसको आधार बनाते हुए डॉ० के०पी० जायसवाल ने लिखा है कि, भौखरी, मौर्यवंश के समकालीन थे। मौर्यों के समय में तीसरी—चौथी शताब्दी ई०पू० में भौखरी एक जाति संघ के रूप में विद्यमान थे। वर्तमान बिहार प्रान्त के गया जिले के आसपास के भौगोलिक क्षेत्र में भौखरियों की राजनीति एक गणतंत्रात्मक व्यवस्था के रूप में रही होगी। शक्तिशाली मौर्यों के समक्ष भौखरी सिर नहीं उठा सके होंगे और एक क्षत्रिय संघ के रूप में संगठित रहे होंगे। कालान्तर में पाँचवी—छठवीं शताब्दी में अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न होने के कारण भौखरियों का गया के राजवंश के रूप में उदय हुआ होगा। गया के भौखरियों की राजधानी गया ही रही होगी।

गया के भौखरियों की अभिलेखीय सूचना आधुनिक बिहार प्रान्त में बराबर एवं नागार्जुनी गुफाओं पर अंकित अभिलेखों से मिलती है। बराबर एवं नागार्जुनी गुहालेखों में गया के भौखरी राजवंश

क तीन शासकों के नाम मिलते हैं— यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा, अनन्तवर्मा। गया के भौखरी राजवंश की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के बारे में हमें कोई सूचना नहीं मिलती है। अतः यह कहना कठिन है कि, गया के भौखरियों का राजनीतिक स्वरूप क्या था? उनका राजनैतिक व्यवहार कैसा था? आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि गया के भौखरी, गुप्त शासकों के सामन्त रहे होंगे। पाँचवी-छठवी शताब्दी में इनके उदय के समय उत्तर भारत में महान गुप्त साम्राज्य शासनरत् था।

डॉ० निहार रंजन रे ने लिखा है कि गया के भौखरी, कन्नौज के भौखरियों के सामन्त थे। किन्तु अधिकांश इतिहासविद् गया के भौखरियों को गुप्तों का सामन्त बताते हैं। गया के भौखरियों के शासक शार्दूलवर्मा को बराबर एवं नागार्जुनी गुहा लेखों में सामन्त चूड़ामणि की उपाधि से विभूषित किया गया है। अतः इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि, गया के भौखरियों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित नहीं कर पायी होगी। वे एक शक्तिशाली सामन्त की अवस्था में ही रहे होंगे। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, गया के भौखरियों का कन्नौज के भौखरियों से क्या संबंध था? इसकी कोई जानकारी अभी तक किसी साक्ष्य से प्रगट नहीं हो पायी है।

गया के भौखरी वंश के संस्थापक यज्ञवर्मा धार्मिक प्रवृत्ति का शासक प्रतीत होता है। यज्ञवर्मा ने अनेक यज्ञ कराये होंगे जैसा कि उसकी उपाधि 'इष्टसमृद्धमहिमा' से विदित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, यज्ञवर्मा वैदिक धर्म का अवलम्बि था। यज्ञवर्मा को क्षत्रिय राजाओं का उपदेशक (क्षत्रस्थितेर्देशिकः) कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, यज्ञवर्मा ने अनेक क्षत्रिय राजाओं को अपनी बात मानने के लिए बाध्य किया होगा। वस्तुतः यह शब्द यज्ञवर्मा का एक शक्ति के रूप में उभरने का प्रतीक है।

गया के भौखरी वंश का तीसरा और अंतिम ज्ञात वंशज अनन्तवर्मा था। यह शार्दूलवर्मा का पुत्र था। अनन्तवर्मा एक शक्तिद्वीज शासक प्रतीत होता है। अभिलेखों में अनन्तवर्मा के लिए 'नृप' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि अनन्तवर्मा के काल में गया के भौखरी पतन की ओर अग्रसित हो गये थे। इतिहासविदों की धारणा है कि, गया के भौखरियों की शक्ति को उत्तरकालीन गुप्त शासकों ने कुचल दिया होगा। अतः गया के भौखरी उत्तरकालीन गुप्तवंश के उदय की भेंट चढ़ गये।

2.4.2 कान्यकुब्ज के भौखरी

कान्यकुब्ज के भौखरी, भौखरियों की मुख्य शाखा या सबसे अधिक प्रभावशाली शाखा का प्रतीत होती है। इस शाखा का प्रथम एवं संस्थापक नरेश हरिवर्मा था। इसकी राजधानी कान्यकुब्ज ही थी। कान्यकुब्ज के भौखरियों के विषय में आसीरगढ़ ताम्र मुद्रा, देववरनाक अभिलेख एवं हर्षचरित से सूचना मिलती है। कान्यकुब्ज के भौखरी वंश के सात शासकों की जानकारी हमें मिलती है, इनमें हरिवर्मा पहला एवं ग्रहवर्मा अंतिम शासक था। आसीरगढ़ ताम्रमुद्राभिलेख से हमें पाँच भौखरी राजाओं की सूचना मिलती है। हरिवर्मा, आदित्यवर्मा, ईश्वरवर्मा, ईशानवर्मा एवं सर्ववर्मा आसीरगढ़ ताम्रमुद्रा भौखरी नरेश सर्ववर्मा के शासनकाल की भौखरियों के छठवें शासक अवन्तिवर्मा की सूचना देववरनाक अभिलेख से मिलती है। हरिषचरित से भौखरियों के अंतिम शासक ग्रहवर्मा की सूचना मिलती है।

कान्यकुब्ज के भौखरियों में पहले तीन शासकों के लिए अभिलेखों में महाराज की उपाधि मिलती है, इससे इतिहासविदों का मानना है कि, पहले तीन शासक हरिवर्मा, आदित्य वर्मा एवं ईश्वरवर्मा सामन्त थे। ये शासक महान् गुप्तवंश के अधीन सामन्त रहे होंगे। कान्यकुब्ज भौखरी वंश के

चौथे शासक ईश्वर वर्मा ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करके महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इस प्रकार ईश्वरवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। कान्यकुब्ज के भौखरी वंश के सभी अभिलेख एवं मुद्राएँ (सिक्के) आधुनिक उत्तरप्रदेश से ही मिले हैं। इस आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि, कान्यकुब्ज के भौखरियों का उत्कर्ष उत्तर प्रदेश में ही हुआ होगा। डॉ०आर०एस० त्रिपाठी का मत है कि, कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का उत्कर्ष पाँचवी शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ था।

2.4.2.1 हरिवर्मा

हरिवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का संस्थापक प्रथम पुरुष था। हरिवर्मा ने अपनी शक्ति से तत्कालीन समय में कान्यकुब्ज में अपने वंश की स्थापना की है। अभिलेखों में उसे महाराजा हरिवर्मा कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, वह सामन्त था। इतिहासविद् हरिवर्मा को 'गुप्त वंश' के अधीन सामन्त मानते हैं। लेकिन जो भी हो इतना तो तय है कि हरिवर्मा व्यक्तिगत रूप से एक शक्तिशाली शासक रहा होगा। उसने तत्कालीन समय में अनेक छोटी-छोटी शक्तियाँ जब अपने राजवंश की स्थापना के लिए संघर्ष थी, तब अपनी तलवार के बल पर कान्यकुब्ज में एक क्षेत्रिय सत्ता की स्थापना की और अपने को स्वतंत्र शासक न घोषित करते हुए गुप्त साम्राज्य के अधीन कार्य करने का निश्चय किया होगा। असीरगढ़ ताम्र राजमुद्रा से हरिवर्मा की शक्ति और सामर्थ्य का ज्ञान होता है। असीरगढ़ राजमुद्रा में अंकित है कि हरिवर्मा ने अपने शौर्य और प्रेम से अनेक नरेशों (राजाओं) को अपने अधीन कर लिया था तथा हरिवर्मा की ख्याति चारों समुद्रों के पार पहुँच गयी थी। हरहा अभिलेख में हरिवर्मा को ज्वालामुख कहा गया है। इतना तो तय है कि हरिवर्मा एक सामन्त था, जिकी उपाधि महाराजा की ही थी, तब तो ये विवरण निश्चित रूप से अनुकूल नहीं है। किन्तु फिर भी बहुत संभव है कि हरिवर्मा ने रणभूमि में अपने स्वामी गुप्तवंश के शासकों के साथ शौर्य प्रदर्शन करके वीरता की कीर्ति अर्जित की हो। यह सब मात्र संभावना ही है।

2.4.2.2 आदित्यवर्मा

आदित्यवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का दूसरा शासक बना। यह हरिवर्मा का पुत्र था। आदित्यवर्मा के बारे में असीरगढ़ राजमुद्रा, हरहा अभिलेख, जौनपुर अभिलेख आदि से सूचना मिलती है। असीरगढ़ राजमुद्रा में आदित्यवर्मा की माता का नाम भट्टारिकादेवी जयस्वामिनी अंकित है। आदित्यवर्मा के शासनकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि उसका उत्तरकालीन गुप्तवंश के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। डॉ०आर०सी० त्रिपाठी का मत है कि, आदित्यवर्मा ने हर्षगुप्ता के साथ विवाह किया। यह हर्ष गुप्ता उत्तरकालीन गुप्तवंश के हर्षगुप्त की बहिन प्रतीत होती है। इस वैवाहिक संबंध से कान्यकुब्ज के भौखरी वंश को एक शक्तिशाली वंश के रूप में आगे बढ़ने में सहायता मिली होगी। साथ ही, यह तो स्पष्ट हो जाता है कि, शक्तिशाली उत्तरकालीन गुप्त वंश के शासक ने अपनी बहिन की शादी भौखरी वंश में करके मैत्री संबंध स्थापित किये। यह भौखरियों के महत्व को भी प्रमाणित करता है। यह कि, भौखरी शक्ति तेजी से बढ़ रही थी और इसी कारण उत्तर कालीन गुप्त वंश के शासकों ने इनके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके कूटनीतिक कदम उठाया होगा। इतना तो तय है कि, आदित्य वर्मा के समय भौखरी वंश की शक्ति और साधनों के साथ ही, कीर्ति भी बढ़ी होगी। तभी तो हरहा अभिलेख आदित्यवर्मा के अनेक यज्ञों का उल्लेख करता है। जौनपुर अभिलेख में अंकित है कि ईश्वर वर्मा के किसी पूर्वज ने यज्ञों द्वारा पुण्य अर्जित किया। इतिहासविदों का मत है कि, यह

पूर्वज आदित्यवर्मा था। इस प्रकार स्पष्ट है कि, आदित्यवर्मा ने भौखरी वंश की यश और कीर्ति को एक सामन्त शासक के रूप में बढ़ाया।

2.4.2.3 ईश्वरवर्मा

ईश्वरवर्मा भौखरी वंश का तीसरा शासक था। यह आदित्यवर्मा का पुत्र था। ईश्वरवर्मा के शासनकाल की सूचना जौनपुर अभिलेख असीरगढ़ ताम्र राजमुद्रा, हरहा अभिलेख से मिलती है। जौनपुर अभिलेख ईश्वरवर्मा के राज्यकाल की विस्तृत सूचना देता है। ईश्वरवर्मा ने भी उत्तरकालीन गुप्तवंश के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। नवोदित भौखरी वंश और उत्तरकालीन गुप्तवंश के साथ वैवाहिक संबंधों की कूटनीति से दोनों वंशों के मध्य मैत्री संबंध स्थापित हो गये। इससे भौखरियों और उत्तरकालीन गुप्तवंश में आपस में संघर्ष के स्थान पर सहयोग की भावना प्रगट हुई होगी। असीरगढ़ ताम्र राजमुद्रा में ईश्वर वर्मा की पत्नी का नाम उपगुप्ता अंकित है। अतः ईश्वरवर्मा का विवाह उत्तर कालीन गुप्तवंश की राजकुमारी उपगुप्ता के साथ हुआ था। जौनपुर अभिलेख ईश्वरवर्मा की सैन्य विजयों का उल्लेख है। इस अभिलेख अनेक भाग टूट गये हैं। इसमें वर्णित है –

कृपानुराग – शमित – क्रूरागमोपदद्रवैर्
लोकानन्द करैर्गुणैर्गुणर्वताम् को नाम
अधिष्ठितां क्षितिभुजां सिंहेन सिंहासनम्
धारामार्गविनिर्गताग्निगणिका
..... दम विन्ध्याद्रेः प्रतिरन्ध्रपतिना
शंका परेणासितं याते रैवतकाचलम्

अर्थात् इसके (ईश्वरवर्मा) भ्य से आन्ध्रपति विन्ध्याचल के रन्ध्र – प्रतिरन्ध्र में शरण ग्रहण करने के लिए गया। इसने रैवतक पर्वत (सौराष्ट्र) तक अपना नाम किया। अभिलेख में उल्लेखित धारामार्गविनिर्गताग्निगणिका शब्द अंकित है। इस शब्द के अर्थ और व्याख्या में व्यापक मतभेद इतिहासविदों में है। फ्लीट का मत है कि, धारा के उल्लेख से तात्पर्य धारानगरी से है। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी का मत है कि, धारा नरेश ने ईश्वरवर्मा पर आक्रमण किया था। डॉ० आर० जी० बसाक एवं डॉ० डी० सी० सरकार का मत है कि, धारा से यहाँ तलवार की धार का अर्थ है। अर्थानुसार भौखरी ईश्वरवर्मा की तलवार की धार से चिन्गारियाँ (अग्नि कणिकायें) निकलती थीं। डॉ० श्रीराम गोयल का मत है कि, अग्निगणिका का अर्थ यशोधर्मा से है, ईश्वरवर्मा ने यशोधर्मा को परास्त किया था।

इतिहासविदों ने उक्त मत को तर्कों के आधार पर निराधार सिद्ध किया है— फ्लीट और आर० एस० त्रिपाठी का धारा से साम्य धारा नगरी करना उचित नहीं है, क्योंकि धारा नगरी को भोज परमार (1000 – 1055 ई०) ने बसाया था। दोनों के काल में बहुत अंतर है। इस प्रकार धारानगरी भौखरियों के समय अस्तित्व में नहीं थी। धारा नगरी भौखरी के अंत हो जाने के बाद लगभग 500 वर्षों बाद अस्तित्व में आयी। डॉ० बसाक एवं डी०सी० सरकार का साम्य भी उचित नहीं है। श्री रामगोयल का यह तर्क की यशोधर्मा को परास्त किया था, उसके कोई साक्ष्य नहीं हैं। इतिहासकारों का मत है कि, धारामार्ग शब्द का प्रयोग जौनपुर अभिलेख में प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त हुआ है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में धारा और मार्ग शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका शाब्दिक अर्थ घोड़े की गति से मार्ग पर चलना।

जौनपुर अभिलेख में उल्लेखित 'धारामार्ग विनिर्गताग्निकणिकाः' का शाब्दिक अर्थ वस्तुतः यह है कि, तीव्रगति से घोड़ों की चाल से घोड़े के पैरों के खुरों से निकलती आग की चिन्गारियों से है। कुल मिलाकर इसका सीधा तात्पर्य किसी सैन्य अभियान से है। डॉ० वी०सी० पाण्डेय ने जौनपुर एवं हरहा अभिलेखों के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि शूलिकों ने अपने बहुसंख्यक घोड़ों से भौखरियों के विरुद्ध सैनिक अभियान किया होगा। जौनपुर अभिलेख के विन्ध, विन्ध्यांचल रैवतर्क के उल्लेख पर डॉ० आर०के० मुकर्जी का मत है कि, ईश्वर वर्मा अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था और उसने इस पर विजय हासिल कर ली थी। इन विजयों के फलस्वरूप उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी। किन्तु इतिहासविदों का मत है कि ईश्वर वर्मा सामन्त था, उसने यह विजयें रक्षार्थ की होगी न कि राज्य विस्तार के रूप में। अतः ईश्वरवर्मा एक शक्तिशाली भौखरी नरेश था।

2.4.2.4 ईशान वर्मा

ईशान वर्मा भौखरी वंश का सबसे प्रतापी एवं शक्तिशाली शासक था। इसने भौखरी वंश को एक शक्ति के रूप में प्रतिस्थापित करके स्वतंत्र राजवंश के रूप में प्रतिष्ठित किया। ईशानवर्मा भौखरी राजवंश प्रथम शासक था, जिसने 'महाराजाधिराज' की महान् उपाधि धारण करके अपनी स्वतंत्र सत्ता की घोषणा की। ईशानवर्मा, ईश्वरवर्मा एवं उपगुप्ता की संतान था। ईशानवर्मा के शासनकाल की सफलताओं का उल्लेख हरहा अभिलेख विस्तृत रूप से करता है। हरहा अभिलेख में अंकित है –

जित्वान्धाधिपति सहस्रगणित त्रेधाक्षरवारणं
व्यावल्गन्नियुतातिसंख्यतुरगान् भडक्त्वारणे शलिकान्
कृत्वा चायतिमोचितस्थलभुवौ गौडान् समुद्राश्रय
नध्यासिष्टनतक्षितीशचरणः सिंहासनं यो जिती।

इस हरहा अभिलेख में ईशानवर्मा को आन्ध्रों, शूलिकों और समुद्रतटीय गौडत्र को परास्त करने का श्रेय दिया है। इससे पूर्व हरहा अभिलेख में अंकित है कि जब ईशानवर्मा सिंहासनारूढ़ हुआ तब पृथ्वी टूटी हुई नौका के समान थी ईशानवर्मा ने अपने गुणों रूपी रस्सियों से इसे बचाया। यह विवरण भौखरी राजवंश पर आये किसी संकट की ओर प्रतिक्रियात्मक ढंग से इशारा करता है। इतिहासकारों का मत है कि, ईश्वरवर्मा के शासनकाल के अंत में और ईशानवर्मा के शासक बनते समय शत्रुओं ने भौखरी वंश के लिए संकट उत्पन्न कर दिया था। ईशानवर्मा ने अपनी तलवार की शक्ति से इस संकट से भौखरीवंश का उद्धार किया होगा।

हरहा अभिलेख में ईशानवर्मा को आन्ध्रों पर विजय का श्रेय दिया गया है। डॉ० डी०सी० सरकार एवं डॉ० एच०सी० राय चौधरी की धारणा है कि, आन्ध्र का राजा माधववर्मा भौखरी ईशानवर्मा के समकक्ष था। माधव वर्मा, विष्णु कुण्डन राजवंश का शासक था। इसी माधववर्मा का ईशानवर्मा ने परास्त किया था। हरहा अभिलेख में शूलिकों के बारे में डॉ० आर० के० मुकर्जी एवं डॉ० एच० सी० राय चौधरी का मत है कि – शूलिक चालुक्य थे। डॉ० सुधाकर चट्टोपाध्याय इन्हें हूण तथा फादर हेरार चोल मानते हैं। किन्तु शूलिकों के साम्य के बारे में डॉ० आर० एस० त्रिपाठी का मत ठीक प्रतीत होता है। वृहद्संहिता तथा मार्कण्डेयपुराण के साक्ष्यों के आधार पर त्रिपाठी ने लिखा है कि, शूलिक जाति कलिंग, विदर्भ एवं चेदि के दक्षिण – पश्चिम में रहती थी।

हरहा अभिलेख में ईशानवर्मा को समुद्रतटीय गौड़ पर विजय का उल्लेख है। डॉ० वी०सी० पाण्डेय ने अफसड़ अभिलेख, फरीदपुर एवं मल्लसरूल ताम्रपत्रों के आधार पर कहा है कि, गौड़ नरेश

पर विजय ईशानवर्मा एवं उत्तरकालीन गुप्त वंशीय राजा जीवित गुप्त प्रथम ने संयुक्त रूप से की थी। बंगाल में गोपचन्द्र, धर्मादित्य एवं समाचारदेव ने गुप्त साम्राज्य के विरुद्ध स्वतंत्र सत्ता की घोषणा कर दी थी। जीवितगुप्त प्रथम एवं ईशानवर्मा ने गुप्त सम्राट की ओर से सामन्त के रूप गौड़ों को कुचला था। ईशानवर्मा ने अपनी सफलताओं से उत्साहित होकर गुप्त साम्राज्य के विरुद्ध भौखरी राजवंश की स्वतंत्र सत्ता प्रतिष्ठित कर दी और अपने नाम के सिक्के जारी किये। भौखरियों द्वारा अपनी स्वाधीनता की घोषणा से और भौखरियों की शक्ति और प्रतिष्ठा से अन्य राजवंशों के शासकों के कान खड़े होना स्वाभाविक था। भौखरियों की बढ़ती शक्ति और प्रतिष्ठा को उत्तरकालीन गुप्तवंश के शासक कुमारगुप्त ने चुनौती दी।

ज्ञातव्य रहे कि, भौखरियों एवं उत्तरकालीन गुप्तवंश के मध्य मैत्रीपूर्ण वैवाहिक संबंध थे। भौखरी नरेश आदित्यवर्मा का विवाह उत्तरकालीन गुप्तवंश की हर्षागुप्ता तथा ईश्वरवर्मा का उपगुप्ता के साथ हुआ था। भौखरी नरेश ईशानवर्मा की माँ उत्तरकालीन गुप्तवंश की राजकुमारी उपगुप्ता थी। किन्तु उत्तरकालीन गुप्तवंशीय कुमारगुप्त ने अपने वंश की रक्षार्थ भौखरियों पर आक्रमण कर दिया। अफसद अभिलेख में लिखा है कि, एक भयंकर युद्ध में कुमारगुप्त ने ईशानवर्मा को करारी मात दी। कुमारगुप्त ने भौखरियों से उत्तर-पूर्व के अनेक क्षेत्र छीन लिये थे। इनमें मगध और प्रयाग (इलाहाबाद) जैसे प्रतिष्ठित स्थान भी सम्मिलित थे। ईशानवर्मा वैदिक ब्राह्मण धर्म को मानने वाला था। उसने बौद्धिक धर्म सम्मत कार्य किये। ईशानवर्मा के शासनकाल में वेदों की प्रतिष्ठा को स्थापित किया गया। ईशानवर्मा ने अपने शासनकाल में वर्णाश्रय धर्म को भी स्थापित किया।

2.4.2.5 सर्ववर्मा

ईशानवर्मा की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सर्ववर्मा भौखरी राजसिंहासन पर बैठा। सर्ववर्मा एक शक्तिशाली एवं प्रतापी नरेश था। उसने अपनी तलवार की शक्ति से अनेक विजयें प्राप्त की थी। असीरगढ़ राजमुद्रा में सर्ववर्मा को 'महाराजाधिराज' की उपाधि से विभूषित किया गया है। सर्ववर्मा के शासनकाल में भौखरियों उत्तर कालीन गुप्तवंश एवं हूणों से संघर्ष करना पड़ा। सर्ववर्मा ने सर्वप्रथम उत्तरकालीन गुप्तवंश के शासक द्वारा अपने पिता ईशानवर्मा की हार का बदला लेना और अपने खोये हुए क्षेत्रों को वापस प्राप्त करने की योजना बनायी। अफसद अभिलेख से ज्ञात होता है कि, सर्ववर्मा ने अपने समकालीन उत्तरकालीन गुप्त वंशीय दामोदर गुप्त को युद्ध में परास्त किया। यह युद्ध इतना भयंकर था कि उत्तरकालीन गुप्त शासक दामोदर गुप्त जैसा शक्तिशाली शासक भी भौखरी सेना का सामना करते हुए युद्ध भूमि में मारा गया। सर्ववर्मा ने उत्तरकालीन गुप्तवंश के शासकों से अपने पिता की हार का केवल बदला ही नहीं लिया अपितु उत्तरकालीन गुप्तवंशीय शासकों द्वारा अधिकृत एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र को भी हस्तगत कर लिया था। सर्ववर्मा द्वारा सूर्य भगवान के नाम से ग्राम दान देने की पुष्टि देववर्मा के अभिलेख करता है। यह ग्राम दान मगध के भौगोलिक क्षेत्र में दिया गया था सर्ववर्मा के हूणों के साथ संघर्ष के भी प्रमाण मिलते हैं। अफसद अभिलेख से पुष्टि होती है कि सर्ववर्मा ने हूणों को परास्त किया।

अफसद अभिलेख में अंकित है कि सर्ववर्मा की गजसेना ने हूणों की सेना का युद्ध में नाश कर दिया इससे स्पष्ट है कि भौखरी सर्ववर्मा एवं हूणों के मध्य हाथियों की सेना का भीषण युद्ध हुआ होगा। इस संदर्भ में डॉ० आर०एस० त्रिपाठी का मत है कि, सर्ववर्मा ने हूणों पर आक्रमण वर्धनवंश की

सेना के साथ वर्धन वंश की रक्षार्थ किया होगा। इस प्रकार सर्ववर्मा भौखरियों का एक प्रतापी शासक सिद्ध हुआ। उसके काल में भौखरी राजवंश की यश और कीर्ति चतुर्दिक फैल गयी थी।

2.4.2.6 अवन्तिवर्मा

सर्ववर्मा के बाद अवन्तिवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का शासक था। अवन्ति वर्मा, सर्ववर्मा का पुत्र था। अवन्तिवर्मा के इतिहास के मुख्य स्रोत हैं— देववरनाक अभिलेख नालन्दा मुद्रलेख, भितौरा मुद्राभाण्ड (फैजाबाद), हर्षचरित, विशाखदत्त (मुद्राराक्षस) आदि। अवन्तिवर्मा भी भौखरी वंश का प्रतापी राजा था। उसने अपने शासनकाल में भौखरी राजवंश का अग्रणी बनाये रखा। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि, अवन्तिवर्मा का भौखरी वंश सभी राजवंशों में अग्रणी है तथा शिव के समान आदरणीय एवं पूजनीय है। अवन्तिवर्मा ने अपने शासनकाल में हूणों की बढ़ती शक्ति का भी सामना किया था। विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस में अवन्तिवर्मा को (हूणों) से त्रस्त पृथ्वी की रक्षा का श्रेय दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि अवन्तिवर्मा ने हूणों को संघर्ष में परास्त किया। अवन्तिवर्मा ने अपने शासनकाल विद्या और विद्वानों को अपना आश्रय प्रदान किया। बाणभट्ट ने कादम्बरी में लिखा है कि, भौखरियों ने मेरे गुरु भत्सु (भर्व) को राजदरबार में सम्मान प्रदान किया। इससे पता लगता है कि, अवन्तिवर्मा के शासनकाल में ही बाणभट्ट के गुरु भत्सु (भर्व) राजदरबार में रहे होंगे। इतिहासकार तो विशाखदत्त का आश्रयदाता भी अवन्तिवर्मा को मानते हैं। विद्वानों को मुद्राराक्षस की कतिपय प्रतियों के 'भरत वाक्य' में चन्द्रगुप्त के स्थान पर रन्तिवर्मा या अवन्तिवर्मा का नाम मिला है। अतः विद्वानों का मत है कि, विशाखदत्त को अवन्तिवर्मा ने अपना संरक्षण दिया होगा। नालन्दा मुद्रालेख में अवन्तिवर्मा को महाराजाधिराज की उपाधि से विभूषित किया गया है।

2.4.2.7 गृहवर्मा

गृहवर्मा, अवन्तिवर्मा का सबसे बड़ा पुत्र था और अवन्तिवर्मा की मृत्यु के बाद भौखरी सिंहासन पर बैठा। गृहवर्मा भौखरी वंश का अंतिम शक्तिशाली शासक था। गृहवर्मा के इतिहास का एक मात्र स्रोत बाणभट्ट की हर्षचरित है। गृहवर्मा के शासनकाल की सबसे बड़ी घटना उसका वर्धनवंश के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। गृहवर्मा ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए वर्धन वंश के शासक प्रभाकर वर्धन के पास उनकी पुत्री राज्यश्री के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा। प्रभाकर वर्धन ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। राज्यश्री एवं गृहवर्मा का विवाह 'वर्धनवंश' की राजधानी थानेश्वर में हुआ। डॉ० बी०पी० सिन्हा एवं डॉ० आर०एस० त्रिपाठी का मत है कि, राज्यश्री एवं गृहवर्मा के विवाह के अवसर पर गृहवर्मा का पिता अवन्तिवर्मा उपस्थित नहीं था। इस समय अवन्तिवर्मा की मृत्यु हो चुकी थी।

अतः राज्यश्री से विवाह करने का विचार गृहवर्मा ने स्वयं लिया होगा। वस्तुतः यह वैवाहिक संबंध राजनीतिक एवं कूटनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित था। इस विवाह संबंध से भौखरी वंश और वर्धनवंश में मैत्री संबंध स्थापित हो गये। जिससे दोनों राजवंशों को तत्कालीन समय में शक्ति प्राप्त हुई होगी। भौखरीवंश को इस विवाह से उत्तरकालीन गुप्तवंश एवं गौड़ नरेश शशांक से सुरक्षा मिल सकी। हर्षचरित में वर्णित है कि, वर्धनवंश के प्रभाकर वर्धन ने मालवा के उत्तरकालीन गुप्ता का नाश किया था अतः मालवा के उत्तरकालीन गुप्त वर्धन वंश एवं भौखरियों दोनों के शत्रु थे। भौखरियों एवं वर्धनवंश की मित्रता से चिन्तित होकर मालवा के उत्तरकालीन गुप्तों ने गौड़ नरेश शशांक से मित्रता कर ली।

इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमि पर दो धड़े स्पष्ट रूप से देखे गये। एक धड़ा था भौखरियों एवं वर्धनों का तथा दूसरा धड़ा गौड़ एवं मालवा राज देवगुप्त का था। अतः यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा कि, दोनों धड़े आपस में एक-दूसरे के प्रति सशक्त रहते होंगे तथा अवसर मिलने पर एक दूसरे के प्रति आक्रामक भी होते रहे होंगे। हर्षचरित से ज्ञात है कि, गौड़ नरेश शशांक की सह पर मालवाराज देवगुप्त ने कान्यकुब्ज पर आक्रमण करके गृहवर्मा की हत्या कर दी थी। गृहवर्मा की हत्या के साथ ही, भौखरीवंश का पटाक्षेप हो गया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मौखरियों का उल्लेख है—
(अ) अर्थशास्त्र (ब) ऋग्वेद (स) उपनिषद (द) अष्टाध्यायी
2. गया राजमुद्रा किसको मिली थी —
(अ) फ्लीट (ब) आर० सी० मजूमदार (स) कनिंघम (द) ग्राण्ड डफ
3. राजस्थान के बड़वा से अभिलेख मिला था—
(अ) फ्लीट (ब) कनिंघम ((ब) आर० सी० मजूमदार (द) ए० एस० अल्तेकर
4. गया के मौखरी वंश का संस्थापक था—
(अ) यज्ञवर्मा (ब) सूर्यवर्मा (स) शार्दुलवर्मा (द) अनंतवर्मा
5. बराबर एवं नागर्जुनम गुहा लेखों में किसको "सामन्त चूड़ामणि" कहा गया है—
(अ) यज्ञवर्मा (ब) सूर्यवर्मा (स) शार्दुलवर्मा (द) अनंतवर्मा
6. कान्यकुब्ज के मौखरी वंश का संस्थापक था —
(अ) यज्ञवर्मा (ब) हरिवर्मा (स) आदित्यवर्मा (द) सर्ववर्मा
7. कान्यकुब्ज के मौखरी वंश के किस शासक ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की उपाधि धारण की —
(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा (स) आदित्यवर्मा (द) गृहवर्मा
8. उत्तरकालीन गुप्त वंशीय राजकुमारी 'हर्षागुप्ता' का किसके साथ विवाह हुआ था —
(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा (स) आदित्यवर्मा (द) गृहवर्मा
9. बाणभट्ट के गुरु भत्सु (भर्व) को संरक्षण दिया।
(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा (स) आदित्यवर्मा (द) अवन्तिवर्मा
10. वर्धन वंश की राजकुमारी राज्यश्री का विवाह हुआ था—
(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा (स) आदित्यवर्मा (द) गृहवर्मा

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए

प्रश्न-1 मौखरियों कम प्रचीनता पर संक्षिप्त नोट लिखो?

प्रश्न-2 मौखरियों की उत्पत्ति, आदि पुरुष एवं जाति के बारे में आप क्या जानते हो ?

प्रश्न-3 गया के मौखरियों पर संक्षिप्त नोट लिखो?

प्रश्न-6 गृहवर्मा के शासनकाल पर संक्षिप्त नोट लिखो।

2.5 तकनीकी शब्दावली

1. कान्यकुब्ज – कन्नौज
2. अवलम्बी – अनुयायी
3. ताम्रभिलेख – ताँबे के पत्रक पर लिखे अभिलेख
4. राजमुद्राभिलेख – राज्य मुद्रा (Seal) पर लिखे अभिलेख
5. मुद्राभाण्ड – मुद्रा (सिक्कों) से भरा मटका
6. अग्रसित – बढ़ना
7. पटाक्षेप – अंत होना

2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Aravamuthan, T.G. – The Kaveri, the Maukharis and the Sangam Age, Madras, 1937
2. Basak, R.G. - History of Kananj, 1937
3. Pires, E. - The Maukharis, 1934
4. मजूमदार, आर० सी० – दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954
पुसालकर, ए० डी० (सम्पा०) – दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई 1955
5. त्रिपाठी, आर० एस० – प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998
6. त्रिपाठी, आर० एस० – हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, वाराणसी, 1937

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र – प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
2. महाजन, विद्याधर – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
3. पाण्डेय, विमल चन्द्र – प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
4. ओमप्रकाश – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1986
5. श्रीवास्तव, के० सी० – प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहाबाद, 20076

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– ईश्वरवर्मा के शासनकाल का विस्तृत विवरण दमजिये।

प्रश्न 2– मौखरियों का प्राचमनता, उत्पत्ति, आदि पुरुष एवं जाति के बारे में विस्तृत विवरण दीजिये।

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 वर्धन राजवंश का इतिहास
 - 3.3.1 महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन
 - 3.3.2 महाराजाधिराज राज्यवर्धन
 - 3.3.3 हर्षवर्धन
 - 3.3.3.1 हर्ष की दिग्विजय
 - 3.3.3.2 शशांक से संघर्ष
 - 3.3.3.3 बलभी विजय
 - 3.3.3.4 सिन्ध पर आक्रमण
 - 3.3.3.5 नेपाल से संबंध
 - 3.3.3.6 पुलकेशी द्वितीय से युद्ध
 - 3.3.3.7 कांगोद विजय
 - 3.3.4 हर्ष का शासन प्रबंध
 - 3.3.4.1 मंत्रिपरिषद
 - 3.3.4.2 पदाधिकारी
 - 3.3.4.3 प्रान्तीय प्रशासन
 - 3.3.4.4 राजस्व प्रशासन
 - 3.3.4.5 न्याय प्रशासन
 - 3.3.4.6 सैन्य प्रशासन
 - 3.3.5 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ
 - 3.3.5.1 कन्नौज का सम्मेलन
 - 3.3.5.2 प्रयाग सभा
- 3.6 साहित्यिक उपलब्धियाँ
- 3.7 सारांश
- 3.8 तकनीकी शब्दावली
- 3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 3.11 निबंधात्मक प्रश्न
- 3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.1 प्रस्तावना

शक्तिशाली गुप्तकाल के पराभव के बाद भारत के राजनैतिक पटल पर अनेक छोटी – छोटी शक्तियों ने अपने क्षेत्रीय राज्यों का निर्माण कर लिया था, इनमें से अनेक शक्तियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गुप्त साम्राज्य के अधीन रहीं थी। गुप्तों के पराभव के बाद उत्तर भारत में शक्ति – शून्यता का लाभ थानेश्वर के वर्धन वंश ने उठाया। वर्धन वंश ने अपना साम्राज्य थानेश्वर से बढ़ाकर सारे उत्तर भारत में स्थापित किया। थानेश्वर श्रीकण्ठ जनपद के अंतर्गत आता था, जोकि वर्तमान में हरियाणा

प्रान्त के करनाल जिले का थानेश्वर नामक स्थान है। प्रारम्भ में वर्धन वंश का राज्य का भौगोलिक क्षेत्र वर्तमान के हरियाणा और दिल्ली के चतुर्दिक फैला हुआ था।

3.3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. विद्यार्थी वर्धन वंश का इतिहास समझ सकेंगे।
2. विद्यार्थी हर्षवर्धन के इतिहास को जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी हर्षकालीन भारत के इतिहास को समझेंगे।
4. विद्यार्थी थानेश्वर एवं कन्नौज का ऐतिहासिक महत्व समझ सकेंगे।
5. विद्यार्थी राजनैतिक संघर्ष को समझ सकेंगे।
6. विद्यार्थी प्रयाग एवं कन्नौज की धर्म सभाओं को जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी हर्षवर्धन की सांस्कृतिक उपलब्धियों को समझ सकेंगे।
8. विद्यार्थी हर्षवर्धन की दिग्विजय को जान सकेंगे।

3.3 वर्धन राजवंश का इतिहास

वर्धन वंश का संस्थापक पुष्यभूति को माना जाता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में 'पुष्यभूति' को वर्धन वंश का संस्थापक बताया है। बाणभट्ट ने पुष्यभूति को *भूपाल* और *राजा* कहा है, जिससे उसके स्वतंत्र शासक के स्थान पर एक सामन्त होने को प्रमाणित करता है किन्तु हर्षवर्धन के अभिलेखों में पुष्यभूति (पुष्पभूति) का कोई उल्लेख नहीं है अभिलेखों में नरवर्धन का नाम सर्वप्रथम आया है। इस प्रकार वर्धन वंश का प्रमाणिक प्रथम पुरुष नरवर्धन ही था और संभवतः उसके अंत के वर्धन नामाक्षर से ही इस वंश का नाम 'वर्धन वंश' पड़ा। वर्धन राजवंश का राजनैतिक विकास सामन्त शासकों के रूप में हुआ। वर्धन राजवंश समय-समय पर गुप्तों, हूणों और मौखरियों के सामन्त रहे।

वर्धन राजवंश की जातीय उत्पत्ति के संबंध में अधिकांशतः इतिहासविदों की धारणा है कि, वर्धन राजवंश वैश्य जातीय था। चायनीज धर्मयात्री ह्वेनसांग (श्वान्-च्वांग) ने हर्ष वर्धन को वैश्य (फी-शे) तथा आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में राज्यवर्धन और हर्ष वर्धन को 'वैश्यावृत्ति' वाला कहा है। अतः वर्धनवंश को 'वैश्य जाति' का मानना उचित है।

थानेश्वर के वर्धन राजवंश में छः प्रमाणिक राजाओं के नाम मिलते हैं। हर्ष के बांसखेड़ा एवं मधुवन ताम्राभिलेखों तथा सोनीपत एवं नालन्दा राजमुद्राभिलेखों में वर्धन राजवंश के चार शासकों एवं उनकी रानियों के नाम मिलते हैं। प्रथम शासक नरवर्धन था, उसकी पत्नी का नाम वज्रिणी देवी था। द्वितीय शासक राज्यवर्धन (प्रथम) तथा उसकी पत्नि का नाम अप्सरादेवी, तृतीय शासक आदित्यवर्धन एवं उसकी पत्नी का नाम महासेनगुप्त देवी चतुर्थ शासक प्रभाकरवर्धन एवं उसकी पत्नी नाम यशोमती देवी मिलता है। प्रथम तीन शासकों के राजनैतिक एवं प्रशासनिक कार्यों की प्रमाणिक जानकारी हमें किसी भी ऐतिहासिक स्रोत से नहीं मिलती है। प्रथम तीन शासकों के अभिलेखों में महाराज कहा गया है। इतिहासविदों की धारणा है कि, ये प्रारंभिक शासक गुप्तों, हूणों एवं मौखरियों के सामन्त रहे होंगे। अतः स्पष्ट है कि, प्रारंभिक तीन शासकों का शासनाधिकार वर्तमान हरियाणा, दिल्ली एवं पंजाब प्रदेशों के उन भौगोलिक क्षेत्रों पर रहा होगा, जो राजधानी थानेश्वर के चतुर्दिक रहे होंगे। वर्धन राजवंश के इन तीनों शासकों का शासनकाल इतिहासविदों ने लगभग 500 – 580 ई० के मध्य रखा है।

3.3.1 महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन

प्रभाकरवर्धन, वर्धनराजवंश का प्रथम स्वतंत्र एवं सम्प्रभु शासक था। उसने वर्धन राजवंश के थानेश्वर के आसपास फैले छोटे से राज्य को अपनी विजयों से एक साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था। इसी कारण प्रभाकरवर्धन को महाराजाधिराज एवं परमभट्टारक जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि, प्रभाकरवर्धन 'प्रतापशील' नाम से भी प्रसिद्ध था। 'प्रतापशील' नामक शासक की मुद्राएँ भितौरा मुद्राभाण्ड से भी मिली है। बहुत संभव है कि ये मुद्राएँ प्रभाकरवर्धन की ही हों। प्रभाकरवर्धन की विजयों का उल्लेख बाणभट्ट ने हर्षचरित के चतुर्थ उच्छवास में करते हुए लिखा है कि, "हूणहरिणकेशरी सिन्धुराजज्वरः गुर्जरप्रजागरः गांधाराधिपगंधद्विपकूटह स्तज्वरः लाटपाटवपाटच्चरः मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रभाकरवर्द्धनों नाम राजाधिराजः।" अर्थात् महाराजाधिराज प्रभाकर वर्धन हूण रूपी हिरनों के लिए सिंह के समान, सिन्धु नरेश के लिए ज्वर के समान, गुर्जनों की नींद हराम करने वाला, गंधार के राजा रूपी हाथी के लिए घातक महामारी के समान लाटों की कुशलता (चालाकी) को नष्ट करने वाला, मालवा राज्य की राजलक्ष्मी रूपी लता (बेल) के लिए कुल्हाड़ी (कुठार) के समान था।

हर्षचरित् का यह वर्णन निश्चित रूप से प्रभाकरवर्धन की शक्ति और प्रभाव के चतुर्दिक फैलने का प्रमाण है। किन्तु उक्त काव्यात्मक आख्यान से ऐसा प्रतीत होता है कि, तत्कालीन समय में प्रभाकरवर्धन के समक्ष कोई शक्तिशाली शासक नहीं था, वहीं इतिहासविद् आर० के० मुकर्जी एवं सी० वी० वैद्य की धारणा है कि, प्रभाकरवर्धन के लिए यह अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण है, इसे प्रमाणित नहीं माना जा सकता है। क्योंकि सिन्धु, गन्धार, लाट तो प्रभाकरवर्धन से अधिक शक्तिशाली उसके पुत्र हर्षवर्धन के भी अधीन नहीं थे। बहुत संभव है कि, इन सभी राज्यों से प्रभाकरवर्धन की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शत्रुता हो या ये राज्य प्रभाकरवर्धन की बढ़ती शक्ति से भयभीत रहे हों। प्रभाकरवर्धन के समय गुर्जरो का राज्य आधुनिक गुजरात एवं राजस्थान (राजपूताना) में फैला हुआ था। गुर्जरो की एक शाखा भृगुकच्छ (भड़ौच, गुजरात) में शासनरत थी। बहुत संभव है कि, इसी शाखा के किसी शासक से प्रभाकरवर्धन का युद्ध हुआ हो। जहाँ तक मालवा का प्रश्न है तो पश्चिमी मालवा पर तो प्रभाकरवर्धन का प्रत्यक्ष अधिकार था। पूर्वी मालवा पर उत्तरगुप्तकालीन शासकों का अधिकार था, जिनसे वर्धनवंश के मधुर संबंध थे, बहुत संभव है कि, उज्जयिनी के प्रश्न पर उत्तरगुप्तों की सहायता प्रभाकरवर्धन ने की हो। इसी ओर हर्षचरित् का संकेत हो।

प्रभाकरवर्धन का हूणों से संघर्ष के प्रमाणित उल्लेख प्राप्त है। तत्कालीन समय में उत्तर-पश्चिमी भारत पर हूणों का आधिपत्य था और वे लगातार अपने साम्राज्य सीमा बढ़ाने के प्रयास में वर्धन राज्य की सीमाओं पर आक्रमण करते रहते थे। प्रभाकरवर्धन से हूणों का संघर्ष अवश्य हुआ होगा और प्रभाकरवर्धन ने हूणों को परास्त किया होगा। प्रभाकरवर्धन के अंतिम समय में लगभग 604 ई० में पुनः हूणों ने वर्धन साम्राज्य पर आक्रमण किया। हर्षचरित में वर्णित है कि, प्रभाकरवर्धन ने एक बड़ी सेना के साथ राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन को हूणों को कुचलने के लिए भेजा। राज्यवर्धन और हूणों के बीच बड़ा ही भयंकर हुआ। जिसमें राज्यवर्धन के शरीर में बाणों से अनेक घाव हो गये थे। राज्यवर्धन ने संभवतः हूणों को गांधार तक खदेड़ दिया था। इसी बीच राज्यवर्धन को पिता प्रभाकरवर्धन की मृत्यु और माता यशोमति के सती हो जाने की सूचना मिली और राज्यवर्धन राजधानी थानेश्वर लौट आया। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय उसका राजनीतिक प्रभाव आसपास के राज्यों पर स्थापित हो चुका था। जैसाकि, हर्ष

के मधुवन और बाँसखेड़ा के अभिलेखों में लिखा है कि प्रभाकरवर्धन का यश चारों समुद्रों के पार तक व्याप्त हो गया था और दूसरे राजा उसके सम्मुख प्रेम या शक्ति से झुकते थे।

3.3.2 महाराजाधिराज राज्यवर्धन

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद लगभग 605 ई० में राज्यवर्धन, वर्धन राजवंश का अगला शासक बना। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय हर्षवर्धन युद्ध क्षेत्र से वापस लौटकर थानेश्वर आ गया था। राज्यवर्धन की अनुपस्थिति एवं तत्कालीन संकटकालीन परिस्थिति के कारण राजसिंहासन रिक्त नहीं रखा जा सकता था, संभवतः इसी कारण प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को राजसिंहासन पर बैठने को कहा। किन्तु हर्ष ने राजसिंहासन को ग्रहण करने से इंकार कर दिया और राज्यवर्धन के आने का इंतजार करने को कहा। राज्यवर्धन ने राजधानी थानेश्वर लौटने के बाद राजसिंहासन पर बैठने से मना कर दिया और हर्षवर्धन को सत्ता संभालने के लिए कहा। डॉ० वी० एस० पाठक का मानना है कि, राज्यवर्धन स्वभावतः निवृत्तिपरक था। वंशपरम्परा के विपरीत वह बौद्ध धर्मानुयायी भी हो गया था और राज्य शासन के प्रपंचों में पड़ना नहीं चाहता था। उसकी इच्छा थी कि, राजगद्दी हर्ष को दे तथा स्वयं संन्यासी होकर किसी आश्रम में चला जाय। किन्तु हर्ष ने भी बड़ी ही विनम्रता के साथ राजगद्दी पर बैठने से मना कर दिया।

इसी बीच कन्नौज के मौखरी नरेश ग्रहवर्मा (जो राज्यवर्धन का बहनोई था) की मालवराज द्वारा हत्या और बहिन राज्यश्री के कन्नौज में कैद होने की सूचना थानेश्वर पहुँची। ऐसी विकट परिस्थिति में राज्यवर्धन को राजसिंहासन पर बैठना स्वीकार करना पड़ा। राज्यवर्धन एक बड़ी सेना लेकर कन्नौज की ओर बढ़ा और शीघ्र ही उसने कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। मधुवन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों में वर्णित है कि, राज्यवर्धन ने देवगुप्त आदि राजाओं को परास्त किया। उक्त उल्लेख के आधार पर डॉ० सुधाकर चट्टोपाध्याय का मत है कि, राज्यवर्धन ने अकेले देवगुप्त को नहीं अपितु शत्रुओं के एक संघ को परास्त किया था। इतिहासविदों की धारणा है कि, यह देवगुप्त मालवा का राजा देवगुप्त था, जिसे राज्यवर्धन ने मार डाला। देवगुप्त का मित्र गौड़राज शशांक था, जिसे उखाड़ फेंकने का प्रण राज्यवर्धन ने लिया। किन्तु शशांक ने प्रत्यक्ष युद्ध न करके कूटनीति से राज्यवर्धन को प्रभावित कर लिया और अपने शिविर में बुलाकर धोखे से उसकी हत्या कर दी।

3.3.3 हर्षवर्धन

हर्षवर्धन, वर्धन राजवंश का सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रतापी राजा था। गुप्तकाल के पतन के बाद राजनैतिक विखण्डन को एक सूत्र में पिरोने का कार्य भी हर्षवर्धन ने किया। हर्ष ने अपनी तलवार के बल पर उत्तर भारत में एक राजनैतिक एकता स्थापित कर दी थी। हर्षवर्धन लगभग 16 वर्ष की आयु में 606 ई० में वर्धन राजवंश का शासक बना। इस अवसर पर हर्षवर्धन नया संवतः चलाया। जो *हर्ष संवत्* के नाम से जाना जाता है। हर्षवर्धन का जन्म लगभग 590-91 ई० में थानेश्वर में हुआ था। उसके पिता का नाम महाराजा प्रभाकरवर्धन तथा माता का नाम यशोमति था। हर्षवर्धन के बड़े भाई का नाम राज्यवर्धन तथा बहिन राज्यश्री (मौखरी नरेश ग्रहवर्मा की पत्नी) थी। हर्ष बड़ी ही विकट परिस्थितियों में सिंहासन संभाला। माता-पिता की मृत्यु, भाई राज्यवर्धन तथा बहनोई कन्नौज नरेश ग्रहवर्मा की हत्या एवं बहिन राज्यश्री का बंदी ग्रह में कैद होना आदि घटनाओं ने हर्ष के हृदय को विचलित कर दिया था, इसका मार्मिक विवरण बाणभट्ट ने हर्षचरित में दिया है।

हर्षवर्धन ने सिंहासन पर बैठते ही राज्यवर्धन के हत्यारे गौड़ नरेश शशांक को मारने का संकल्प लिया। हर्ष ने एक बड़ी सेना के साथ कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। किन्तु रास्ते में ही हर्ष को सूचना मिली कि, शशांक ने राज्यश्री को कैद से मुक्त कर दिया है और राज्यश्री विंध्य के जंगलों में चली गयी है। अब हर्ष का उद्देश्य पहले राज्य को खोजना हो गया। विंध्य के जंगलों में राज्यश्री को खोजते हुए संयोगवश ग्रहवर्मा के बयपन के दोस्त दिवाकर मित्र जो बौद्ध भिक्षु बनकर विंध्य के जंगलों में रह रहा था के सहयोग से हर्षवर्धन ने राज्यश्री को खोज लिया। जब राज्यश्री मिली तब वह अपनी जीवनलीला समाप्त करने के लिए अग्नि में प्रवेश कर रही थी। किसी भी प्रकार से हर्ष और दिवाकरमित्र राज्यश्री को समझाने में सफल रहे। अब हर्ष ने आगे बढ़कर कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। हर्ष अपनी बहिन राज्यश्री के साथ कन्नौज का शासन करने लगा। चीनी स्त्रोत शे-किअ-फेंग-चे से सभी ज्ञात है कि हर्ष अपनी बहिन की सहायता से कन्नौज का शासन संचालन कर रहा था। अब हर्ष थानेश्वर और कन्नौज दोनों का शासक बन गया था, कालान्तर में हर्षवर्धन ने थानेश्वर के स्थान पर कन्नौज को ही अपनी राजधानी बनाया और समस्त उपलब्धियाँ कन्नौज के शासक के रूप में ही प्राप्त की।

3.3.3.1 हर्ष की दिग्विजय

हेनसांग ने तो हर्ष को कन्नौज का ही शासक कहा है। हर्ष ने शासक बनने के बाद अपनी दिग्विजय की योजना बनायी। हर्ष की दिग्विजय के बारे में हेनसांग की जीवनी सि-यु-कि में वर्णित है कि हर्ष ने शासक बनते ही एक बड़ी सेना के साथ पंचभारतों की विजय की और अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। इस कथन के संदर्भ में इतिहासकारों डॉ० आर० एस० त्रिपाठी, डॉ० आर० के० मुकर्जी, गौरीशंकर चटर्जी आदि का मानना है कि पंचभारतों से तात्पर्य सारस्वत (पंजाब), कान्यकुब्ज (कन्नौज), गौड़, मिथिला एवं उत्कल (उड़ीसा) के भौगोलिक क्षेत्रों से हैं, जो वस्तुतः उत्तर भारत के ब्राह्मणों की पाँच शाखाओं के केन्द्र थे। डॉ० विशुद्धानन्द पाठक का मानना है कि, हेनसांग का उक्त कथन प्राचीन भारतीय प्रशस्तिकारों के कथनों से समानता रखता है जिसमें किसी शासक को सभी द्वीपों का विजेता, पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक का शासक बताया जाता है। अपनी उत्तर भारतीय दिग्विजय में हर्ष ने अनेक शासकों को परास्त किया।

3.3.3.2 शशांक से संघर्ष

हर्ष के समकालीन उत्तर भारतीय शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक गौड़ नरेश शशांक था। शशांक ने तत्कालीन समय में कन्नौज में हस्तक्षेप करके हर्ष के बहनोई ग्रहवर्मा को मरबा कर कन्नौज के मौखरी राज्य का अंत कर दिया था और शशांक ने ही चालाकी से हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या कर दी थी। हर्ष ने शशांक के विरुद्ध सख्त रूख अपनाते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी से गौड़ों को मिटा दूंगा। हर्षचरित में वर्णित है कि, शशांक को कुचलने के लिए हर्ष एक बड़ी सेना के साथ अगे बढ़ा। इसी बीच कामरूप नरेश भास्करवर्मा ने हर्ष से मित्रता करने का प्रस्ताव हर्ष के पास भेजा। भास्कर वर्मा भी शशांक की शक्ति से त्रस्त था, उसे भी शशांक से अपने राज्य की रक्षा का संकट उत्पन्न हो रहा था। अतः अब हर्ष और भास्करवर्मा की संयुक्त सेनाओं ने शशांक से संघर्ष किया। ऐतिहासिक साक्ष्यों से विदित होता है कि, हर्ष एवं भास्करवर्मा की संयुक्त सेवाओं ने अनेक वर्षों के अन्वरत युद्धों के द्वारा भी शशांक की शक्ति को पूर्णतः नष्ट नहीं कर पाया था। शशांक अपने जीवन

के अंत समय तक शासक बना रहा। किन्तु यह सत्य है कि, उसकी काफी शक्ति क्षीण हो गयी थी और अंत में वह एक सामन्त के तौर पर अपनी प्राकृतिक मौत मरा।

पुरातात्विक साक्ष्यों 619-20 ई० के गंजाम अभिलेख एवं 629 ई० के भिदनापुर अभिलेख से क्रमशः शशांक की राजनैतिक पराकाष्ठा और क्षीणता का पता चलता है। 619-20 ई० के एक गंजाम अभिलेख में वर्णित है कि, 'शैलोद्भव वंशीय माधवराज महाराजाधिराज श्री शशांक के अधीन सामन्त के रूप में राज्य कर रहा था।' इस अभिलेख से ज्ञात हो जाता है कि शशांक अपनी राजनैतिक पराकाष्ठा पर था, वह महाराजाधिराज की पदवी के साथ अनेक सामन्तों को अपने अधीन करके पूर्ण शक्ति से राजसत्ता का उपभोग कर रहा था। इस प्रकार साक्ष्यों से स्पष्ट है कि, हर्ष के अनेक प्रयासों के बावजूद शशांक 619-20 ई० तक उन्मुक्त रूप से शासनकर रहा था। 629 ई० के भिदनापुर के एक ताम्रपत्राभिलेख शशांक की शक्ति के क्षीण होने के प्रमाण मिलते हैं। इस लेख में शशांक को 'श्री' लिखा है— "श्री शशांक महीपातिचतुर्जलधिमेखलाम्"। 619 ई० के गंजाम अभिलेख में शशांक को महाराजाधिराज एवं 629 ई० के भिदनापुर अभिलेख में श्री कहा गया है।

अतः स्पष्ट है कि, हर्ष ने 619-20 ई० और 629 ई० के मध्य शशांक की शक्ति को कुचल दिया था और शशांक एक सामन्त के रूप में हर्ष के अधीन आ गया था। हर्ष की शशांक पर विजय की पुष्टि आर्यमंजुश्रीमूलकल्प और शे-किअ-फैंग-चे करते हैं। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में लिखा है कि, हर्ष ने शशांक को पराजित किया। वहीं शे-किअ-फैंग-चे नामक चीनी साक्ष्य का कहना है कि, हर्ष ने अपने मित्र भास्करवर्मा के साथ मिलकर शशांक और उसके सहयोगियों को नष्ट कर दिया था। भास्करवर्मा के निधानपुर अभिलेख में भी वर्णित है कि सैकड़ों राजाओं के विजेता ने कर्णसुवर्ण पर अधिकार कर लिया था। डॉ० सुधाकर चट्टोपाध्याय का मत है कि भास्करवर्मा और हर्ष ने मिलकर यह विजय प्राप्त की होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर्ष ने शशांक को हराने का प्रण पूर्ण किया और शशांक की शक्ति को कुचलकर एक सामन्त के रूप में अपने अधीन शासन करने दिया। शशांक की मृत्यु कब हुई इसकी उचित साक्ष्यों से हमारे पास कोई सूचना नहीं है किन्तु जब 637 ई० में ह्वेनसांग पूर्वी भारत की यात्रा पर गया तब तक शशांक मर चुका था। अतः ह्वेनसांग से हमें इतना ज्ञात है कि 637 ई० के पहले शशांक मर गया था।

3.3.3.3 बलभी विजय

बलभी आधुनिक गुजरात राज्य में स्थित है। बलभी राज्य पश्चिमी मालवा और गुजरात के क्षेत्रों में फैला हुआ था। हर्ष ने बलभी विजय के दौरान बलभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय को परास्त किया था। हर्ष की ध्रुवसेन द्वितीय पर विजय की सूचना देते हुए जयभट्ट तृतीय के 706 ई० के नौसारी (वर्तमान गुजरात राज्य के बड़ौदा जिले में स्थित) अभिलेख में लिखा है कि हर्ष ने हर्ष ने बलभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय को पराजित किया और ध्रुवसेन द्वितीय ने भागकर गुर्जर नरेश ददद द्वितीय के दरबार में शरण ली। गुर्जर नरेश ददद द्वितीय का राज्य गुजरात के भड़ौच में स्थित था। गुर्जर नरेश ददद द्वितीय पुलकेशिन द्वितीय का सामन्त था। गुर्जर नरेश ददद द्वितीय ध्रुवसेन द्वितीय एवं पुलकेशिन द्वितीय के एक साथ होने का भय अब हर्ष को सताने लगा। अतः हर्ष ने दूरगामी कदम उठाते हुए बलभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय से मित्रता स्थापित कर ली और अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन द्वितीय के साथ कर दिया। इस प्रकार हर्ष ने अपनी सीमा दक्षिण-पश्चिम की ओर से सुरक्षित कर ली। बलभी और हर्ष के

मध्य यह संघर्ष संभवतः 630 – 640 ई० के मध्य कभी हुआ होगा। ह्येनसांग भी बलभी नरेश का हर्ष का दामाद बताता है।

3.3.3.4 सिन्धु पर आक्रमण

हर्ष के सिन्धु पर आक्रमण की सूचना बाणभट्ट हर्षचरित में देता है। संभवतः हर्ष ने बलभी पर आक्रमण के समय ही सिन्धु पर आक्रमण किया होगा। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है – “अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराजं प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता”। अर्थात् हर्ष ने सिन्धु देश के राजा को हराकर उसकी राज्यलक्ष्मी को हड़प लिया। विद्वानों का मत है कि हर्ष ने सिन्धु को हराया होगा किन्तु सिन्धु पर प्रत्यक्ष आधिपत्य स्थापित नहीं कर सका था। बहुत संभव है कि, हर्ष, सिन्धु नरेश से अपने प्रति श्रद्धा प्रकट करने और करद बनने पर उसका राज्य वापस लौटा दिया हो। वस्तुतः यह हर्ष का शक्ति प्रदर्शन मात्र था, जिसमें सिन्धु नरेश ने हर्ष के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रगट की थी। बाण तो हर्षचरित में उसके पिता प्रभाकर वर्धन को भी सिन्धु का विजेता बताता है। बहुत संभव है कि, हर्ष के सिंहासन रोहण के समय की राजनैतिक परिस्थितियों के कारण सिन्धु नरेश ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी हो।

3.3.3.5 नेपाल से संबंध

नेपाल से हर्ष के संबंधों के बारे में बाणभट्ट की हर्षचरित में वर्णन से पता चलता है— “अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गायाः गृहीतः करः”। उक्त लेख के आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि, हर्ष ने बर्फीले पर्वतीय क्षेत्रों से कर संग्रह किया। सर्वप्रथम बूल्हर मत दिया कि, उक्त संदर्भ हर्ष की नेपाल विजय का संकेत देता है। फ्लीट, स्मिथ, वैद्य, भगवानलाल इन्द्रजी आदि का भी मानना है कि, हर्ष ने नेपाल की विजय की थी। डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी का भी मानना है कि, नेपाल पर हर्ष का आधिपत्य था, नेपाल ने हर्ष संवत् चलता था, जो हर्ष के प्रभाव का घोटक है। डॉ० आर०एस० त्रिपाठी का मानना है कि, हर्षचरित का उक्त वर्णन हर्ष के किसी शक्तिशाली पहाड़ी राज्य की कन्या के साथ विवाह की ओर संकेत है। वस्तुतः हर्ष के नेपाल के संबंधों के बारे में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है।

3.3.3.6 पुलकेशी द्वितीय से युद्ध

हर्ष ने अपने पराक्रम से उत्तर भारत में अपने साम्राज्य को अजेय बना दिया था। उत्तर भारत में हर्ष को चुनौती देने वाला कोई नहीं था, अतः हर्ष ने अपने साम्राज्य विस्तार की योजना बनाते हुए दक्षिण भारत पर प्रसार का निश्चय किया। चूँकि इस समय हर्ष अपने पराक्रम और प्रतिष्ठा के चर्म पर था, इसीलिए उसके अंदर अति आत्मविश्वास और अहंकार का भाव भी उत्पन्न हो गया था। जिसकी पुष्टि ह्येनसांग की जीवनी से होती है। हर्ष ने एक बड़ी सेना एकत्र की और अपने साम्राज्य के चुनिंदा नायकों, सामन्तों को एकत्रित करके, स्वयं सेना का नेतृत्व करते हुए दक्षिण भारत के स्वामी चालुक्य नरेश पुलशिन, द्वितीय पर आक्रमण कर दिया। किन्तु युद्ध में हर्ष की पराजय हुई। जिसकी पुष्टि ह्येनसांग और पुलकेशी के ऐहोल (अहिहोड़) अभिलेख से होती है। 634 ई० के पुलकेशी के ऐहोल अभिलेख में वर्णित है कि “जिसके चरणकमलों पर अपरिमित समृद्धि से युक्त सामन्तों की सेना नतमस्तक होती थी, उस हर्ष का हर्ष (आनन्द) युद्ध में मारे हुए हाथियों का वीभत्स दृश्य देखकर विचलित हो गया।” हर्ष और पुलकेशी के मध्य यह युद्ध नर्मदा नदी के किनारे कहीं हुआ होगा।

डॉ० वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि “पुलकेशी द्वितीय ने नर्मदा के दर्रा को इतनी अच्छी तरह से सुरक्षित रखा कि हर्ष को अपमानित होकर वापस लौटना पड़ा और नर्मदा नदी को सीमा स्वीकारना पड़ा।” हर्ष और पुलकेशी के मध्य यह युद्ध की तिथि के बारे में इतिहासकारों को डॉ० ए०एस० अल्तेकर

मत अधिक स्वीकार्य है। अल्लेकर ने युद्ध की तिथि 630–634 ई० के मध्य रखी है। उनके तर्क हैं कि— 630 ई० के पुलकेशी के लोहना अभिलेख में उसकी सैन्य विजयों का उल्लेख है किन्तु इन विजयों में हर्ष पर विजय का कोई उल्लेख नहीं है। वहीं 634 ई० का ऐहोल अभिलेख हर्ष पर पुलकेशी की विजय का उल्लेख करता है। अतः स्पष्ट है कि पुलकेशी एवं हर्ष के मध्य 630–634 ई० के मध्य कभी युद्ध हुआ होगा।

3.3.3.7 कांगोद विजय

हर्ष ने अपने जीवन की संभवतः अंतिम विजय कांगोद पर की थी। कांगोद आधुनिक उड़ीसा राज्य का गंजाय में था। ऐहोल (अहिहोड़) अभिलेख कांगोद और कोसम पर पुलकेशी द्वितीय का आधिपत्य बताता है। इस प्रकार हर्ष ने कांगोद पर 643 ई० में विजय प्राप्त करके पुलकेशी से हुई अपनी हार का बदला ले लिया।

3.3.4 हर्ष का शासन प्रबंध

हर्ष का शासन प्रबंध राजतंत्रात्मक था। राज्य की समस्त शक्ति का प्रधान एवं स्रोत राजा ही होता था। राजा पृथ्वी पर देवता का साकार रूप माना जाता था। हर्ष चरित में बाणभट्ट ने हर्ष को 'सभी देवताओं का सम्मिलित अवतार' बताया है। वह माराजाधिराज, परमभट्टारक, चक्रवर्ती, परमेश्वर जैसी महान् एवं दैवीय उपाधियों से विभूषित था। राजतंत्रात्मक शासन की तरह ही हर्ष भी अपने प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी था। वह सेना का सर्वोच्च सेनापति, न्याय का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था होने पर भी हर्ष निरंकुश राजा नहीं था। उसका शासन प्राचीन भारतीय परंपराओं पर आधारित एक प्रजा वत्सल्य शासक की तरह था। हर्ष अपनी प्रजा के कुशलक्षेत्र जानने के लिए साम्राज्य का भ्रमण करता था। बासखेड़ा एवं मधुवन ताम्राभिलेखों में क्रमशः वर्धनमानकोटि और कपिथिका के जयस्कन्धवारों का वर्णन ऐसे शिवरों के रूप में है, जहाँ वह रुककर प्रजा से मिलता था। ऐसे ही एक जयस्कन्धवार 'मणितारा' में हर्ष की सर्वप्रथम भेंट बाणभट्ट से हुई थी।

हेनसांग ने हर्ष के पूरे दिन को तीन भागों में बांटा है। दिन के एक भग में वह राजकाज करता था तथा दो भागों में धर्मकर्म में अपना दिन व्यतीत करता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर्ष का शासन प्रबंधन सुनिश्चित सुव्यवस्थित, श्रम साध्य नियम कायदों से चलता था। हर्ष का शासन प्रबंधन गुप्तकालीन शासन प्रणालियों पर आधारित था। वस्तुतः हर्ष ने प्रचलित गुप्तकालीन शासन पद्धति में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन करके अपना प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया। हर्ष कालीन प्रशासनिक इकाईयों एवं पदाधिकारियों के नाम भी गुप्तकाल के समान ही थे।

3.3.4.1 मंत्रिपरिषद

हर्ष का शासन में सलाह देने के लिए एक केन्द्रीय मंत्री परिषद थी जो समय-समय पर हर्ष को शासन संचालन में महत्वपूर्ण सलाह देती थी। इस मंत्री परिषद में सामन्त, आमात्य, प्रधानामात्य जैसे बड़े-बड़े पदाधिकारी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श करके राजा को नीति-निर्धारण में सहयोग प्रदान करते थे। हेनसांग एवं हर्षचरित से भी मंत्रीमण्डल के विधान का संकेत मिलता है। वस्तुतः मंत्रीमण्डल के सदस्यों ने ही हर्ष को कन्नौज के सिंहासन पर बैठने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया था।

3.3.4.2 पदाधिकारी

केन्द्रीय प्रशासन के सुचारु संचालन हेतु अनेक पदाधिकारी होते थे। वस्तुतः हर्ष का प्रशासन एक सुव्यवस्थित नौकरशाही पर आधारित था। हर्षचरित, हर्ष के अभिलेखों एवं हेनसांग के विवरण से अनेक पदाधिकारियों का ज्ञान होता है। हर्षचरित में वर्णित है कि, हर्ष का प्रशासन अनेक विभागों में विभक्त था, जिनके पदाधिकारी 'अध्यक्ष' कहलाते थे। हेनसांग के विवरण से पता चलता है कि, उच्च पदाधिकारियों एवं मंत्रियों को वेतन के रूप में जागीरें प्रदान की जाती थी। मुख्य पदाधिकारी निम्नलिखित थे—

1. **महाबलाधिकृत** — यह पैदल सेना का सर्वोच्च सेनापति था। हर्ष के समय सिंहनाद सेनापति था।
2. **महासंधिविग्रहिक**— यह बहुत महत्वपूर्ण पद था, जो युद्ध और संधि से संबंधित था। यह राज्य की प्रशासनिक घोषणाओं एवं आलेखों को लिखता तथा उनका रिकॉर्ड रखता था। हर्ष के समय अवन्ति इस पद पर था।
3. **बृहदश्ववार**— यह घुड़सवार सेना का प्रधान होता था। हर्ष के समय कुन्तल घुड़सवार सेना का प्रमुख था।
4. **कटुक**— यह हाथियों की सेना का सर्वोच्च सेनापति था। हर्ष के समय स्कंदगुप्त कटुक के पद पर पदासीन था।
5. **महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत** — यह विभाग साम्राज्य के राजस्व और भूमि का लेखा-जोखा रखता था। हर्ष के समय भान और ईश्वरगुप्त इस विभाग के प्रमुख रहे थे।
6. **महाप्रमातार**— यह राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी होता था। भूमि के मापन आदि कार्यों से संबंधित था। हर्ष के समय स्कंदगुप्त इसका प्रमुख था।

इनके अतिरिक्त दूतक, महासामंत, कुमारामात्य, दौस्साधनिक, उपारिक, राजस्थानीय, विषयपति, चाह भाट सेवक आदि पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं।

3.3.4.3 प्रान्तीय प्रशासन

हर्ष का प्रशासन सुव्यवस्थित प्रशासनिक ईकाईयों में विभक्त था। प्रशासन भूक्ति (प्रांत), विषय (जिला), पाठक (तहसील) एवं ग्राम नामक प्रशासनिक ईकाईयों में विभक्त था।

(अ) **भुक्ति** :- हर्षकालीन प्रांतीय इकाई को भुक्ति कहा गया है। प्रांतीय प्रमुख को राष्ट्रीय, उपारिक, राजस्थानीय आदि कहा जाता था। प्रांतीय प्रमुख को हर्षचरित में 'लोकपाल' कहा गया है। प्रांतीय प्रमुख का कार्यालय 'अधिकरण' कहलाता था। इसका प्रमुख कार्य प्रांत में शांति और सुव्यवस्था कायम रखना था। हर्ष के बाँसखेड़ा एवं मधुवन अभिलेखों में क्रमशः अहिच्छत्र भुक्ति एवं श्रावस्ती भुक्ति का उल्लेख है। रत्नावली में कौशांबी भुक्ति का उल्लेख हुआ है।

(ब) **विषय** :- भुक्ति अनेक विषयों (जिलों) में विभक्त होती थी अर्थात् एक प्रांत में अनेक विषय (जिले) होते थे। विषय का सबसे बड़ा अधिकारी 'विषयपति' कहलाता था। विषयपति के कार्यालय को 'विषयाधिकरण' कहा जाता था। हर्ष के बाँसखेड़ा एवं मधुवन अभिलेखों में क्रमशः अंगदीय विषय एवं कुण्डधानी विषय का उल्लेख है।

(स) **पाठक (पथक)** :- विषय अनेक पाठकों (पथकों) में विभक्त थे। ये पाठक (पथक) वर्तमान की तहसीलों की तरह थे। इनका कार्य पाठकों में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखना रहा होगा।

(द) **ग्राम प्रशासन** :- प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम प्रशासन था। ग्राम का राजस्व भूमि एवं अन्य ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति ग्राम प्रशासन करता था। ग्राम के छोटे – मोटे झगड़े भी ग्राम प्रशासन सुलझाता था। ग्राम प्रशासन का सबसे बड़ा अधिकारी 'महत्तर' कहलाता था। ग्रामाक्षपटलिका (ग्राम का रिकॉर्ड संधारण होने वाला अधिकारी) एवं करणिकों (रिकॉर्ड लेखन कर्मचारी) भी ग्राम के प्रमुख अधिकारी थे। हर्ष के मधुवन अभिलेख में ग्राम प्रशासनिक इकाई सोमकुण्डा का उल्लेख है।

3.3.4.4 राजस्व प्रशासन

हर्ष का राजस्व प्रशासन सुव्यवस्थित था। प्रजा उसके राजस्व निर्धारण एवं राजस्व प्रशासन से प्रसन्न थी। राजस्व कठोरता के साथ वसूल नहीं किया जाता था। कर व्यवस्था उदार विचारधारा की थी। हर्ष के अभिलेखों में भाग हिरण्य एवं बलि नामक तीन करों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि जनता पर करों का बोझ नहीं था। भागकर- राज्य की आय का प्रमुख साधन था भागकर, भूमि की उपज पर लगने वाला कर था, जोकि उपज का छठवाँ भाग (1/6) था। हिरण्य कर – यह संभवतः व्यापारियों से नगद में लिया जाने वाला कर था। बलि कर :संभवतः यह धार्मिक कर था। इसके अतिरिक्त तुल्यमेय- यह कर माप-तौल पर लगता था।

3.3.4.5 न्याय प्रशासन

हर्ष का न्याय प्रशासन प्राचीन भारतीय परंपराओं और लोक व्यवहार पर आधारित था। न्यायालय को अधिकरण या धर्माधिकरण कहा जाता था। न्यायाधीशों को संभवतः प्रभातार कहा जाता था। सर्वोच्च न्यायाधीश सम्राट होता था। सम्राट के नीचे प्राइ विवाक होता था। हर्ष का दण्ड विधान अत्यंत कठोर था। राजद्रोह के लिए आजीवन कारावास, सामाजिक अपराधों के लिए अंग-भंग व देश निकाला का दण्ड दिया जाता था। हर्ष के काल में गंभीर अपराधों के लिए मृत्यु दण्ड प्रदान किया जाता था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि विशेष अवसरों पर कैदियों को मुक्ति प्रदान की जाती थी। राज्य में शांति और व्यवस्था को कायम रखने के लिए सक्षम पुलिस की व्यवस्था। दण्डिक और दण्डपाशिक नामक पुलिस अधिकारियों की व्यवस्था थी।

3.3.4.6 सैन्य प्रशासन

हर्ष एक शक्तिशाली शासक था, उसके पास विशाल सेना थी। हर्ष के पास 50 हजार पदावि, 60 हजार हस्त सेना एवं 1 लाख घुड़सवार सेना थी। बांसखेड़ा एवं मधुवन अभिलेखों से नौ सेना का भी पता चलता है। हर्ष की सेना रथ नहीं थे। सेना युद्ध में धनुष – बाण, बर्छे, भाले, ढाल तलवार, परशु आदि अस्त्र – शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। सर्वोच्च सेनापति सम्राट स्वयं होता था सेना के अनेक अधिकारियों के नाम हर्ष काल में मिलते हैं।

3.3.5 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

हर्ष अपने समय का महान शासक था। राजनैतिक क्षेत्र में वह सकल उत्तरापथ स्वामी था। उसने अपनी तलवार से एक बड़ा साम्राज्य खड़ा किया था। हर्ष की उपलब्धियाँ राजनैतिक क्षेत्र के साथ-साथ सांस्कृतिक क्षेत्रों में अधिक सुदृढ़ थी। डॉ० आर० सी० मजूमदार का कथन है कि हर्ष ने राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की थी। जितनी कुशता से वह तलवार पकड़ता था, उतनी ही कुशलता से लेखनी संभालता था। हर्ष कालीन सांस्कृतिक उपलब्धियाँ चतुर्दिक क्षेत्रों में व्याप्त थीं। डॉ० आर० के० मुकर्जी का कथन है कि "भारतीय इतिहास में

हर्ष ही एक ऐसा शासक है, जिसको धार्मिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों से थोड़े-थोड़े समय में विशाल जन सम्मेलनों को आयोजित करने का गौरव प्राप्त है।”

3.3.5.1 कन्नौज का सम्मेलन

कन्नौज का सम्मेलन हर्ष के शासनकाल की प्रमुख सांस्कृतिक उपलब्धि थी। कन्नौज की धर्म सभा उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार था। हर्ष ने इस धर्म सभा का सभापति हेनसांग को बनाया। डॉ० विशुद्धानंद पाठक के अनुसार, हेनसांग की हर्ष से सबसे पहली भेंट उस समय हुई जब वह जंगल में अपना दरबार लगाये था। कन्नौज की इस धर्मसभा में 3000 महायान और हीनयान बौद्ध भिक्षु, 3000 ब्राह्मण और जैन तथा 1000 नालन्दा बिहार के बौद्ध विद्वान ने भाग लिया। सभा के लिए एक विशाल बिहार का निर्माण गंगा के तट पर किया गया। बुद्ध की सोने की मूर्ति एक सौ फुट ऊँचे स्तम्भ पर स्थापित की गयी। सभा प्रतिदिन भव्य जुलूस से प्रारंभ होती थी। हेनसांग ने महायान बौद्ध मत के सिद्धान्तों को अपने तर्कों से स्थापित कर दिया। इससे पूर्व हर्ष ने हेनसांग की जान को खतरा होने के कारण घोषणा की कि, यदि कोई हेनसांग को हाथ लगाएगा या चोट पहुँचाएगा तो उसको मृत्युदण्ड दिया जायेगा तथा जो भी उसके विरुद्ध बोलेगा उसकी जीभ काट ली जायेगी।” इस घोषणा से सभा की भावना को भारी क्षति पहुँची। यह सभा 23 दिन तक चली। जिसमें महायान बौद्ध धर्म का एक पक्षीय प्रचार हुआ।

3.3.5.2 प्रयाग सभा

हर्ष प्रत्येक पाँच वर्ष में प्रयाग में पुण्य अर्जन के लिए महान् दानोत्सव किया करता था। इसे ‘महामोक्षपरिषद’ कहा जाता था। ऐसे छठवीं सभा 643 ई० में प्रयाग में हुई, जिसमें हेनसांग ने हिस्सा लिया था। इस सभा में हर्ष सहित उसके 18 राजसी मित्रों के साथ ही 5 लाख से अधिक लोगों ने भाग लिया था यह सभा 75 दिनों तक चली। इस अवसर पर लोगों के रहने खाने एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था हर्ष ने की। प्रयाग सभा का शुभारंभ भव्य जुलूस के साथ हुआ। प्रथम दिन देत के एक टीले पर बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की गयी। दूसरे दिन सूर्य (आदित्य) और तीसरे दिन शिव की प्रतिमा स्थापित की गयी। प्रयाग सभा में लगातार बौद्धों, ब्राह्मणों, जैनियों, विविध धर्मालम्बियों, अनाथों, गरीबों, विकलांगों आदि को स्वर्ण वस्त्र एवं अन्य वस्तुएँ दान की गयीं। पाँच वर्षों से संचित राजकोष रिक्त हो गया और हर्ष ने अपने स्वयं के आभूषण और वस्त्रों को भी दान कर दिया। अंत में हर्ष ने अपनी बहिन राज्यश्री से पुराने वस्त्र माँगकर धारण किये। डॉ० आर०एस० त्रिपाठी ने लिखा है कि हर्ष ने व्यक्तिगत दानशीलता में विश्व का अनूठा कीर्तिमान स्थापित किया।” डॉ० विशुद्धानंद पाठक ने लिखा है कि “पवित्र तीर्थ प्रयाग में पुण्यलाभ की इच्छा से किया गया हर्ष का यह सर्वस्व दानोत्सव उसकी सर्वधर्मसम्मत की भावनाओं का सबसे बड़ा उदाहरण है।”

3.6 साहित्यिक उपलब्धियाँ

हर्ष विधानुसागी एवं साहित्य प्रेमी विद्वान शासक था। हर्ष विद्वानों को अपने दरबार में आश्रय ही नहीं दिया, अपितु स्वयं ने भी उच्चकोटि की रचनाओं का सृजन किया। इस प्रकार हर्ष को साहित्य, काव्य, अलंकारों आदि की गहरी जानकारी थी। प्रसिद्ध कवि सोड्डल अपने ग्रंथ अवनति सुन्दरी कथा में हर्ष को विक्रमादित्य, मुंज, भोज की श्रेणी में रखता है। स्वयं हर्ष ने नागानंद, रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटकों का संस्कृत भाषा सृजन किया। हर्ष के दरबार में प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट रहता था, उसने हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक एवं पार्वती परिणय जैसे ग्रंथों की रचना की। हर्ष के दरबार में ही मयूर

भट्ट ने मयूर शतक एवं सूर्यशतक जैसी काव्य रचनाएँ लिखी। हर्ष के दरबार में जयसेन, मातंग, दिवाकर, धवल, हरिदत्त आदि विद्वानों को राजाश्रय प्रदान किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर्ष विद्या और विद्वानों का अनुरागी था।

3.8 सारांश

निःसंदेह हर्षवर्धन, वर्धन राजवंश का सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रतापी नरेश था। शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत के राजनैतिक पटल पर शक्ति – शून्यता को भरकर, एक सशक्त राज्य की स्थापना की। राजनैतिक क्षेत्र में वह 'सकल उत्तरापथ स्वामी' था। उसने अपनी तलवार से एक बड़ा साम्राज्य खड़ा किया था। हर्ष की उपलब्धियाँ राजनैतिक क्षेत्र के साथ-साथ सांस्कृतिक क्षेत्रों में अधिक सुदृढ़ थी। स्वयं हर्ष ने नागानंद, रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटकों का संस्कृत भाषा सृजन किया। हर्ष के दरबार में प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट रहता था, उसने हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक एवं पार्वती परिणय जैसे ग्रंथों की रचना की। कन्नौज का सम्मेलन एवं प्रयाग सभा हर्षवर्धन की श्रेष्ठ सांस्कृतिक उपलब्धियाँ हैं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

- वर्धनवंश किस जाति का था—
(अ) ब्राह्मण (ब) क्षत्रिय (स) वैश्य (द) बौद्ध
- हर्षचरित का लेखक—
(अ) हर्ष (ब) हरिषेण (स) मयूर भट्ट (द) बाणभट्ट
- हेनसांग किस सभा का सभापति बना—
(अ) कन्नौज की सभा (ब) प्रयाग सभा (स) मंत्रीपरिषद (द) इनमें से कोई नहीं
- हेनसांग की जीवनी का नाम है—
(अ) फो-क्यो-की (ब) सी-यू-की (स) लाइफ (द) इनमें से कोई नहीं
- हर्ष की बहिन का क्या नाम था—
(अ) भाग्यश्री (ब) राज्यश्री (स) श्रीदेवी (द) यशोमती

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

प्रश्न – हर्ष की कन्नौज सभा के बारे में आप क्या जानते हैं ?

प्रश्न— हर्ष की प्रयाग सभा का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न— हर्ष एवं शशांक के संघर्ष का उल्लेख कीजिए ?

3.8 तकनीकी शब्दावली

- चतुर्दिक – चारों ओर
- पुष्पभूति – पुष्पभूति
- ताम्रभिलेख – ताँबे पर लिखे अभिलेख
- राजमुद्राभिलेख – राज्य मुद्रा (Seal) पर लिखे अभिलेख
- शासनाधिकार— शासन का अधिकार
- मुद्राभाण्ड – मुद्रा (सिक्कों) से भरा मटका
- चतुर्थ उच्छवास – चौथ अध्याय
- कामरूप – असम

9. मतैक्य – एकमत न होना
10. विद्यानुरागी – विद्या (शिक्षक) का प्रेमी

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चटर्जी, गौरीशंकर – हर्षवर्धन, इलाहाबाद, 1938
2. मुकर्जी, आर०के० – हर्ष, ऑक्सफोर्ड, 1926
3. मजूमदार, आर० सी० – दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954
पुसालकर, ए० डी० (सम्पा०) – दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई 1955
4. पनिककर, के० एम० – श्री हर्ष ऑफ कन्नौज, बम्बई, 1932
5. शर्मा, बैजनाथ – हर्ष एण्ड हिज टाइम्स, वाराणसी, 1970
6. त्रिपाठी, आर० एस० – हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, वाराणसी, 1937

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
2. महाजन, वी.डी. प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
3. पाण्डेय, विमल चन्द्र प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
4. पाठक, विशुद्धानंद उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, 1990
5. श्रीवास्तव, के० सी० प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहाबाद, 2007
6. त्रिपाठी, आर० एस० प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

- प्रश्न 1. हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियों का विस्तृत विवरण दीजिए ?
- प्रश्न 2. हर्षकालीन प्रशासनिक व्यवस्था या शासन प्रबंध का मूल्यांकन कीजिए ?
- प्रश्न 3. हर्ष की दिग्विजय का विस्तृत विवरण दीजिए ?